Sociology of Kinship

DSOC402

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

नातेदारी का समाजशास्त्र

SOCIOLOGY OF KINSHIP

Copyright © 2012 Laxmi Publications (P) Ltd.
All rights reserved

Produced & Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

DLP-7767-128-SOCIOLOGY OF KINSHIP (H)
Typeset at : Goswami Associates, Delhi

C—4791/012/02
Printed at : Sanjay Printers & Publishers (P)Ltd.,Delhi

पाठ्यक्रम

(SYLLABUS)

नातेदारी का समाजशास्त्र

(Sociology of Kinship)

उद्देश्य

- नातेदारी के सामाजिक संबंधों के महत्त्व को छात्रों को समझाना और उससे परिचित कराना, विवाह के आनुवंशिक ढंग से संबंधों के आपसी जुड़ाव की समृद्ध विविधता और अन्य सामाजिक संबंधों से छात्रों को अवगत कराना।
- नातेदारी व्यवस्था में विभिन्न जातीय समाज और सामाजिक संस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन को समझने में छात्रों की सहायता करना।
- नातेदारी, विवाह और परिवार के अध्ययन को विभिन्न स्त्रोतों, मुद्दों और बहस के द्वारा छात्रों के सामने अभिव्यक्त करना।

Objectives

- To demonstrate to the students the social importance of kinship ties and familiarise her/him with the rich diversity in the types of networks of relationships created by genealogical links of marriage and other social ties.
- To show to the students how the study of kinship systems in different ethnographic settings can facilitate a comparative understanding of societies and social institutions.
- To expose the students to the different approaches, issues and debates in studies of kinship, marriage and family.

Sr. No.	Content
1	Sociology of Kinship: Nature and significance of the subject
2	Basic terms and concepts: Lineage, clan, phratry, moiety, kingroup, kindred, incest, descent, Inheritance, succession, consanguinity and affinity.
3	Approaches to the study of kinship: historical and evolutionary, Structural functional, Cultural, gender perspective
4	Kinship terminology, Kinship as an organizing principle: descent- patrilineal, matrilineal, double and cognatic descent
5	Kinship as an organising principle: descent groups, corporate groups and local groups, Changes in Land and Lineage Structure.
6	Concept, forms, significance, Monogamy and polygamy, Mate selection in India and the West, Bride-wealth and Dowry
7	Changing trends in marriage, Divorce, widowhood and remarriage, Rules of residence: virilocal, uxorilocal, neolocal and natolocal residence, The genealogical method
8	Family & Household, Definition of Family, nature of family, Forms and functions of family, Development Cycle of family in India.

9	Joint Family: Forms and functions, Impact of Industrialization, Urbanization and Modernization on Joint Family, Future of Family: Emerging alternatives-Singlehood, cohabitation, Female headed households
10	Family Problems: Violence in families, Desertion & Divorce, Dowry death & Bride Burning, Family and marriage in India: Regional diversities, Forces of change, family in the context of care of the child and the aged. Demographic dimensions of family and marriage

विषय-सूची

इकाई (Units) **(CONTENTS)** **पृष्ठ संख्या (Page No.)**

1. विषय की प्रकृति एवं महत्त्व (Nature and Significance of the Subject) 1
2. नातेदारी : आधारभूत शब्द एवं अवधारणा : कुल, गोत्र, भ्रातृदल, द्विदल, नातेदार समूह, सहवंशीय स्वजन, निकटाभिगमन, वंशानुक्रम (Kinship: Basic Terms and Concepts: Lineage, Clan, Phratry, Moiety, Kingroup, Kindred, Incest, Descent) 8
3. आधारभूत शब्द एवं अवधारणाएँ : उत्तराधिकार, पदारोहन, समरक्तता और विवाह संबंधी (Basic Terms and Concepts: Inheritance, Succession, Consanguinity and Affinity) 21
4. नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोण : ऐतिहासिक एवं उद्विकासीय (Approaches to the Study of Kinship: Historical and Evolutionary) 27
5. नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोण : संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक (Approaches to the Study of Kinship:Structural Functional) 38
6. नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोण : सांस्कृतिक (Approaches to the Study of Kinship: Cultural) 45
7. नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोण : लिंगीय परिप्रेक्ष्य (Approaches to the Study of Kinship: Gender Perspective) 56
8. नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology) 64
9. एक संघटित सिद्धांत के रूप में नातेदारी : पितृवंशीय, मातृवंशीय, दोहरा एवं सजातीय वंशीय (Kinship as an Organising Principle: Descent-Patrilineal, Matrilineal, Double and Cognatic Descent) 68
10. एक संगठन सिद्धांत के रूप में नातेदारी : वंशक्रम समूह, कॉर्पोरेट समूह एवं स्थानीय समूह (Kinship as an Organising Principle: Descent Groups, Corporate Groups and Local Groups) 72
11. नातेदारी व्यवस्था में क्षेत्रीय विभिन्नता और उसके सामाजिक–सांस्कृतिक सह–संबंध (Regional Variations in Kinship System and Its Socio-Cultural Co-relation) 80
12. विवाह : विवाह की अवधारणा, प्रकार एवं महत्त्व (Concept, Forms, Significance of Marriage) 90
13. एक विवाह और बहु-विवाह (Monogamy and Polygamy) 101
14. भारत और पश्चिम में जीवन-साथी का चुनाव (Mate Selection in India and West) 110
15. कन्याधन एवं दहेज (Bride-Wealth and Dowry) 121
16. विवाह में बदलती प्रवृत्तियाँ (Changing Trends in Marriage) 128
17. तलाक, विधवापन एवं पुनर्विवाह (Divorce, Widowhood and Remarriage) 134
18. निवास के नियम : पितृस्थानीय, मातृस्थानीय, नवस्थानीय एवं जन्मस्थानीय निवास (Rules of Residence: Virilocal, Uxorilocal, Neolocal and Natolocal Residence) 144
19. वंशावली विधि (The Geneological Method) 148
20. परिवार : परिवार एवं कुटुम्ब (गृहस्थी), परिवार की परिभाषा, परिवार की प्रकृति (Family: Family and Household, Definition of Family, Nature of Family) 157
21. परिवार के प्रकार और कार्य (Forms and Function of Family) 166
22. भारत में परिवार का विकास-चक्र (Development Cycle of Family in India) 177
23. संयुक्त परिवार : प्रकार एवं कार्य (Joint Family: Types and Function) 190
24. संयुक्त परिवार पर औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण का प्रभाव (Impact of Industrialisation, Urbanisation and Modernisation on Joint Family) 202
25. परिवार का भविष्य : उभरते विकल्प-नाभिकीय परिवार, मार्क्सवादी एवं नारीवादी दृष्टिकोण (Future of Family: Emerging Alternatives-Nuclear Family, Marxist and Feminist Approaches) 210
26. पारिवारिक समस्याएँ : परिवार में हिंसा, परित्याग एवं तलाक (Family Problems: Violence in Families, Desertion and Divorce) 221
27. पारिवारिक समस्याएँ : दहेज हत्या और बहू को जलाना (Family Problems: Dowry Death and Bride Burning) 241
28. भारत में विवाह एवं परिवार : क्षेत्रीय असमानता (Family and Marriage in India: Regional Diversities) 245
29. भारत में परिवार एवं विवाह : परिवर्तन की शक्तियाँ, बच्चों एवं बुजुर्गों की देखभाल के संदर्भ में परिवार (Family and Marriage in India: Forces of Change, Family in the Context of Care of the Child and the Aged) 254
30. परिवार एवं विवाह के जनसांख्यिकीय अथवा जनांकिकीय आयाम (Demographic Dimensions of Family and Marriage) 268

नोट

इकाई–1: विषय की प्रकृति एवं महत्त्व
(Nature and Significance of the Subject)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
1.1 सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्त्व (Role and Importance of Kinship in Social Structure)
1.2 सारांश (Summary)
1.3 शब्दकोश (Keywords)
1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी के अर्थ को समझने में।
- नातेदारी की विशेषता एवं महत्त्व की जानकारी प्राप्त करने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अंग्रेजी भाषा के 'Kinship' शब्द की हिन्दी संगोत्रता, बन्धुत्व, नातेदारी एवं स्वजन की गयी है। नातेदारी एवं विवाह जीवन के आधारभूत तथ्य हैं। यौन इच्छा विवाह को जन्म देती है और विवाह परिवार एवं नातेदारी को। सृष्टि के प्रारम्भ से ही जिन बातों ने व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांधने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, उनमें आर्थिक हित और समान सुरक्षा महत्त्वपूर्ण हैं। सामूहिक सुरक्षा की भावना ने ही कई छोटे-मोटे संघों के निर्माण की प्रेरणा दी जो परिवार से लेकर राष्ट्र तक हैं। समान भाषा, धर्म, जाति एवं राष्ट्र के लोगों के बीच व्यक्ति अपने को अधिक सुरक्षित महसूस करता है, लेकिन इनसे भी अधिक सुरक्षित वह अपने को नातेदारों में पाता है, जिनके साथ उसके सामाजिक, नैतिक, आर्थिक हित जुड़े हुए हैं। वह राष्ट्रीयता, धर्म, प्रदेश सभी बदल सकता है, परन्तु नातेदारी नहीं,

इसमें रक्त का बन्धन है। अतः जंगली और असभ्य जनजातियों से लेकर सभ्य समाजों तक में इसे पुष्ट एवं विश्वसनीय माना जाता है।

संगोत्रता (नातेदारी) का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Kinship)–चार्ल्स विनिक ने संगोत्रता (नातेदारी) को परिभाषित करते हुए लिखा है, "संगोत्रता (नातेदारी) व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त सम्बन्ध आ सकते हैं जो कि अनुमानित और वास्तविक वंशावली सम्बन्धों पर आधारित हों।"

रेडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, "नातेदारी सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश सम्बन्ध है जो कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है।"

डॉ. रिवर्स के अनुसार, "संगोत्रता (बन्धुत्व) की मेरी परिभाषा उस सम्बन्ध से है जो वंशावलियों के माध्यम से निर्धारित तथा वर्णित की जा सकती है।"

लूसी मेयर के अनुसार, "बन्धुत्व में सामाजिक सम्बन्धों को जैविक शब्दों में व्यक्त किया जाता है।"

रॉबिन फॉक्स के अनुसार, नातेदारी की अत्यन्त सरल परिभाषा यह है कि, "नातेदारी केवल मात्र स्वजन अर्थात् वास्तविक, ख्यात अथवा कल्पित समरक्तता वाले व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हम संगोत्रता (नातेदारी) में उन व्यक्तियों को सम्मिलित करते हैं जिनसे हमारा सम्बन्ध वंशावली के आधार पर होता है और वंशावली सम्बन्ध परिवार से पैदा होता है एवं परिवार पर ही निर्भर हैं। ऐसे सम्बन्धों को समाज की स्वीकृति आवश्यक है। कभी-कभी प्राणीशास्त्रीय रूप से सम्बन्ध न होने पर भी यदि उन सम्बन्धों को समाज ने स्वीकार कर लिया है तो वे नातेदार माने जाते हैं। उदाहरण के लिए, गोद लिया हुआ पुत्र पिता का असली पुत्र नहीं है, परन्तु उनके सम्बन्धों को समाज ने स्वीकार कर लिया है, अतः वे एक-दूसरे के नातेदार माने जाते हैं।

बहुपति विवाही टोडा जनजाति में बच्चे का प्राणीशास्त्रीय पिता कोई भी भाई हो सकता है, परन्तु सामाजिक रूप से वही भाई पिता माना जायेगा जिसने 'परसुतपिमी' संस्कार किया हो। यही बात हम देवर एवं साली विवाह में भी देख सकते हैं। देवर विवाह में एक पुरुष को अपने भाई की विधवा स्त्री से विवाह करने की स्वीकृति होती है। ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तानें मृत भाई की ही मानी जाती हैं। साली विवाह में एक व्यक्ति को अपनी मृत पत्नी की बहिन से विवाह करने की आज्ञा होती है और ऐसी बहिन को अपनी मृत बहिन का पद प्राप्त हो जाता है। अतः सामाजिक उद्देश्य के लिए रक्त या प्राणीशास्त्रीय सम्बन्ध नातेदारी में जरूरी नहीं है। इसका कारण यह है कि नातेदारी एक सामाजिक तथ्य (Social Fact) है जिसमें समाज की स्वीकृति महत्त्वपूर्ण है, सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति के नियम भिन्न-भिन्न समाजों व स्थानों पर भिन्न-भिन्न हैं। इसका कोई सर्वमान्य तरीका नहीं है। नातेदारों में हम रक्त सम्बन्धियों एवं विवाह सम्बन्धियों दोनों को सम्मिलित करते हैं। रक्त सम्बन्धों को हम नातेदारी की आन्तरिक व्यवस्था कह सकते हैं तो विवाह सम्बन्धों को इसकी बाह्य व्यवस्था।

नोट्स भारत में प्राचीन समय में विवाह से पूर्व ही किसी लड़की के होने वाला पुत्र या विवाह के बाद पति की स्वीकृति से दूसरे द्वारा उत्पन्न पुत्र, जिसे 'क्षेत्रज' कहते थे, भी नातेदारी में सम्मिलित था।

1.1 सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्त्व (Role and Importance of Kinship in Social Structure)

नातेदारी के सिद्धान्तों को समझ लेने के बाद एक व्यक्ति समाज के अन्य पहलुओं को समझने में भी समक्षम हो जाता है। सरल और आदिम समाजों में नातेदारी एक वास्तविक संस्था है। फर्थ की मान्यता है कि नातेदारी एक ऐसी

छड़ है जिस पर एक व्यक्ति जीवन भर निर्भर रहता है, यह अगणित स्थितियों में उसके व्यवहार को नियन्त्रित करती है। नातेदारी का अध्ययन न केवल रोमांचक ही है अपितु उपयोगी भी है। सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्त्व को हम विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निम्न प्रकार से प्रकट कर सकते हैं–

1. **विवाह एवं परिवार का निर्धारण**–नातेदारी ही यह तय करती है कि एक व्यक्ति के विवाह का क्षेत्र क्या होगा। किस प्रकार का विवाह निषिद्ध है, किसे मान्यता दी गयी है और किसे अधिमान्यता (Preference) । दूसरे शब्दों में, अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह, समलिंग सहोदरज एवं विषमलिंग सहोदरज विवाह (Parallel cousin and cross cousin marriage), आदि का निर्धारण नातेदारी के आधार पर ही होता है। परिवार में रक्त एवं विवाह सम्बन्ध पर आधारित सदस्य पाये जाते हैं। दोनों ही प्रकार के सदस्यों को हम नातेदार कहते हैं। परिवार का विस्तार नातेदारी का विस्तार ही है। परिवार के प्रकार विभिन्न नातेदारों की भूमिका में पाये जाने वाले भेदों को प्रकट करते हैं। उदाहरण के लिए, मातृसत्तात्मक परिवार में भाई की भूमिका अपनी बहिन के परिवार में महत्त्वपूर्ण है, वही परिवार का संचालन करता है और वही सब प्रकार की आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र भी होता है। परिवार की शक्ति एवं सत्ता उसके हाथ में होती है। पति ऐसे परिवारों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं करता है। इसके विपरीत पितृसत्तात्मक परिवारों में बहिन के परिवार में भाई की भूमिका नगण्य है। रैडक्लिफ ब्राउन जैसे मानवशास्त्री ने नातेदारी व्यवस्था का प्रकार्यात्मक विवेचन किया है। उसकी मान्यता है कि विवाह एवं नातेदारी एक-दूसरे के मध्य व्यवस्था उत्पन्न करते हैं।

2. **वंश, उत्तराधिकार एवं पदाधिकार का निर्धारण** (Determination of Descent, Inheritance and Succession)–नातेदारी वंशावली का निर्धारण करती है। वंशावली की लम्बाई प्रतिष्ठा का मापदण्ड होती है। परिवार, वंश, गोत्र, भ्रातृदल एवं अर्द्धांश नातेदारी के ही विस्तृत स्वरूप हैं। भूतकाल के वंश सम्बन्धियों का ज्ञान प्राप्त कर व्यक्ति महसूस करता है कि वह इतिहास-विहीन नहीं है, वरन् उसकी भी जड़ें हैं। एक व्यक्ति की सम्पत्ति एवं पद का हस्तान्तरण किन लोगों में होगा, कौन-कौन उसके दावेदार होंगे, यह नातेदारी के आधार पर भी तय होता है। नातेदारी का प्रारम्भिक अध्ययन वकीलों एवं विधिशास्त्रियों द्वारा सम्भवत: इसलिए किया गया था कि वे अधिकार, दावे, दायित्व, पितृ अधिकार, संविदा, पितृबन्धुता (Agnate), आदि का ज्ञान कर उन्हें कानूनी जामा पहनाना चाहते थे। वे साथ ही इस प्रकार के नियमों की भी रचना करना चाहते थे कि कौन किसका उत्तराधिकारी होगा तथा क्या किसे प्राप्त होगा? यदि नातेदार के बाद किसी अन्य को उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त होता है तब नातेदारी की व्याख्या की जाती है और नातेदारों में वरीयता के क्रम को निश्चित किया जाता है। पितृवंशीय एवं मातृवंशीय परिवारों में वंश उत्तराधिकार एवं वंश पदाधिकार के नियम भिन्न-भिन्न हैं। सभी प्रकार के समाजों में नातेदारी के सम्बन्धों (Kinship ties) का उपयोग सम्पत्ति के स्वामी तथा उत्तराधिकारियों, पदाधिकारियों तथा उसके उत्तरवर्ती अधिकारियों, आदि के मध्य सम्बन्धों को परिभाषित करने के लिए किया जाता है। लूसी मेयर की मान्यता है कि "सरल प्रविधि वाले समाजों में...... किसी व्यक्ति का समाज में स्थान, उसके अधिकार और कर्तव्य, सम्पत्ति पर उसका दावा, अधिकतर दूसरे सदस्यों के साथ उसके जन्मजात सम्बन्धों पर निर्भर होते हैं। ऐसे समाजों में संगठन के चाहे जो भी सिद्धान्त हों, प्राथमिक समूह बन्धुत्व से जुड़े रहते हैं......।"

3. **आर्थिक हितों की सुरक्षा** (Safeguard of Economic Interest)–मरडॉक लिखते हैं–नातेदारी समूह, एक व्यक्ति नहीं, वरन् द्वितीय रक्षा पंक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब एक व्यक्ति संकट अथवा कठिनाई में होता है अथवा जब उसे किसी आर्थिक कार्य को या सांस्कृतिक दायित्वों को पूरा करना होता है, संक्षेप में, जब उसे परिवार के बाहर सहायता की आवश्यकता हो जब वह अपने विस्तृत नातेदारी समूह की ओर सहायता के लिए निहार सकता है। अत: समुदाय अथवा सम्पूर्ण जाति में अन्य सदस्यों की अपेक्षा नातेदारों को उसे सहायता देने का दायित्व सर्वाधिक है। वह भी इसी प्रकार रिश्तेदारों से पारम्परिक दायित्वों में बंधा होता है। इसमें भी रक्त सम्बन्धी विशिष्ट महत्त्व रखते हैं क्योंकि वैवाहिक नातेदारों की तुलना में रक्त सम्बन्धियों को एक व्यक्ति अपने अधिक निकट महसूस करता है।

नोट

लूसी मेयर लिखते हैं, "विभिन्न समाजों में स्वीकृत बन्धुत्व के बन्धन लोगों की खेती तथा जायदाद पर अधिकार, समान हितों की पूर्ति में परस्पर सहायता तथा दूसरों पर आधिपत्य प्रदान करते हैं। प्रभुता प्राप्त लोगों पर यह दायित्व रहता है कि वे आश्रितों का कल्याण करें। आश्रितों का धर्म आज्ञा पालन है। सभी लोगों का कर्तव्य है कि ऐसे अवसरों पर जहाँ बन्धुत्व की मान्यता का प्रश्न है, परस्पर सहयोग करें।" इस प्रकार आर्थिक संकटों के समय नातेदार ही एक व्यक्ति को शरण देते हैं एवं उसकी सहायता करते हैं।

टास्क सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्त्व के बारे में क्या जानते हो?

4. **सामाजिक दायित्वों का निर्वाह** (Fulfilment of Social Responsibilities)–लोवी कहते हैं कि एक रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार को बिना फल की आशा किये हुए नि:शुल्क सेवाएं देता है, जबकि उन्हीं सेवाओं के लिए हमें बाह्य व्यक्ति को उसकी कीमत चुकानी होती है। रिश्तेदार एक नैसर्गिक परामर्शदाता होता है। वह कठिन परिस्थितियों में एक सहायक एवं युद्ध तथा शिकार की अवस्था में एक साथी होता है। इसी प्रकार से रिश्तेदरों की औरतें मिल-जुलकर कृषि कार्य करती हैं, घरेलू कार्यों में मद्द तथा एक-दूसरे के बालकों का पालन-पोषण करती हैं।

वर्तमान औद्योगिक एवं नौकरशाही के युग में एक व्यक्ति का मूल्यांकन नातेदारी के आधार पर न होकर योग्यता के आधार पर होता है। एक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने पद एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठावान रहे, किन्तु नातेदारी दुराग्रही है, और विकासशील राष्ट्रों में तो नौकरशाही का तर्क नातेदारी की निष्ठाओं से हार जाता है। एक उच्च अधिकारी अपने से नीचे के अधिकारियों का चयन के समय योग्यता के स्थान पर सम्बन्धों की निकटता को महत्त्व देता है। यह हमारे लिए भाई-भतीजावाद है, लेकिन उसके लिए एक नैतिक कर्तव्य है। वर्तमान गतिशील समाज में नातेदारों के सम्बन्धों का विस्तार पिता-पुत्र सम्बन्धों से आगे महत्त्वपूर्ण नहीं है, और इनमें भी घनिष्ठता की कमी है। फिर भी वृद्ध माता-पिता को अकेले रहने देने या सुरक्षा घरों में रखने की बात ग्रामीण और आदिवासियों को चौंका देने वाली एवं अनैतिक प्रतीत होती है। आधुनिक समाज नातेदारी सम्बन्धों की कमी वाला समाज कहा जा सकता है। फिर भी उनमें नातेदारी के मनोभाव और दायित्व तो विद्यमान हैं ही। यदि हमारे सगे चाचा, मामा, बुआ, आदि का पुत्र दुर्दिन का मारा हमारे पास आता है तो उसकी सहायता करना हमारा कर्तव्य होता है। विक्टोरिया परिवार का प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान केवल इसलिए ही था कि वे 'एक ही रक्त के थे।' इसी आधार पर एक नातेदार की मृत्यु अथवा अपमान का बदला लेना बन्धुओं का कर्तव्य माना जाता है। ऐंग्लो सैक्सन लोगों में यह नियम पाया जाता था। फिलीपीन के इफुगाओं कि नातेदार अपने समूह के व्यक्ति की हत्या का बदला लें। वास्तव में कौन इस दायित्व को निभायेगा, यह बन्धुत्व की निकटता पर आधारित था।

5. **मानसिक सन्तोष** (Mental Satisfaction)–नातेदारी के मनोभाव एक व्यक्ति को मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। एक व्यक्ति अपने पूर्वजों के चित्र घर में टांगता है, एलबमों का संग्रह करता है, सम्भवत: इसके पीछे सैकड़ों वर्षों के नातेदारी केन्द्रित अनुभवों की खुमारी है। मानवता का इतिहास इस बात का द्योतक है कि एक लम्बी अवधि तक मानव जाति नातेदारी पर आधारित समूहों में रही है। व्यक्ति का स्वास्थ्य, सुरक्षा जीवन सभी कुछ नातेदारों के हाथ में था। नातेदारी विहीन व्यक्ति अपने को बिना सामाजिक प्रतिष्ठा वाला एवं निकृष्ट रूप में मृत व्यक्ति के समान ही मानता था। मनुष्य की एक प्रवृत्ति यह है कि वह अपरिचित से डरता है और परिचित पर विश्वास करता है। रक्त सम्बन्धी हमारे सबसे अधिक परिचित व्यक्ति हैं क्योंकि वे हमारे ही अंग के हिस्से समझे जाते हैं। नातेदारों के बीच अपने को पाकर एक व्यक्ति अपार मानवीय आनन्द, प्रसन्नता और सन्तोष महसूस करता है।

क्या आप जानते हैं हमारी औद्योगिक सभ्यता की माँगें हमें अवैयक्तिक, नौकरशाही वाली विवेकपूर्ण सामाजिक संरचना की ओर अग्रसर करती हैं।

6. **मानवशास्त्रीय ज्ञान का आधार** (Basis for Anthropological Knowledge)–मानवशास्त्रीय अध्ययन में नातेदारी का ज्ञान एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रारम्भिक मानवशास्त्रियों ने अधिकांश अध्ययन नोतदारी से ही प्रारम्भ किये थे। मॉर्गन, मैक्लीनन, हेनरी मेन, लोवी, फ्रेन्ज बोआस, मैलिनोवस्की, रैडक्लिफ ब्राउन, ईवान्स प्रिचार्ड, रिवर्स, सैलिगमे, आदि प्रमुख मानवशास्त्रियों के अध्ययन एक या एकाधिक जनजातियों की नातेदारी व्यवस्था, परिवार एवं विवाह, आदि से सम्बन्धित थे। वे नातेदारी के अध्ययन के आधार पर सामाजिक संरचना को समझना चाहते थे। साथ ही वे समाज एवं संस्थाओं के विकास में भी रुचि रखते थे। नातेदारी का अध्ययन इस दिशा में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रारम्भिक समाजों में वंशानुक्रम समूह की मूलभूत राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और क्षेत्रीय इकाइयाँ रही हैं।

मैक्लीनन ने उन अवस्थाओं का उल्लेख किया है जिनसे सम्पूर्ण मानवता की नातेदरी एवं विवाह की संस्थाएँ गुजरी हैं। उनकी मान्यता है कि प्रारम्भ में नातेदारी की गणना स्त्रियों के माध्यम से होती थी, पुरुषों के माध्यम से गणना का विकास बाद के समय में हुआ है। मैक्लीनन से पूर्व हेनरी मेन ने भारोपीय परिवारों का अध्ययन किया और बताया कि पितृ-सत्तात्मक संयुक्त परिवार पिता-पुत्रों का सम्पत्ति पर सम्मिलित अधिकार वाला परिवार था और भारत में ऐसा परिवार नातेदारी की प्रमुख कड़ी था। मॉर्गन ने न्यूयार्क राज्य की इरोक्वीस जनजाति का अध्ययन किया। उन्होंने वर्गात्मक संज्ञा व्यवस्था के आधार पर यह माना है कि परिवार एवं विवाह का विकास आदिम यौन साम्यवाद से हुआ। मॉर्गन द्वारा प्रेरित होकर ही एक लम्बे समय तक मानवशास्त्री नातेदारी शब्दावली का अध्ययन करते रहे। इसीलिए ही आधे से अधिक नातेदारी का साहित्य केवल नातेदारी शब्दावली से भरा है। लोवी एवं बोआस उद्विकासीय योजनाओं के विरुद्ध थे। मैलिनोवस्की ने ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों का अध्ययन कर नातेदारी के अध्ययन कर नातेदारी के अध्ययनों को नव-जीवन प्रदान किया। आपने नातेदारी के मध्य भावनाओं एवं मनोभावनाओं का अध्ययन किया है। रैडक्लिफ ब्राउन ने भी नातेदारी शब्दावली में रुचि दिखायी एवं तुलनात्मक उपागम (Comparative approach) का विकास किया। उसने अधिकारों एव दायित्वों को स्पष्ट करने के लिए नातेदारी तन्त्र एवं सामाजिक संरचना के अध्ययन पर जोर दिया है।

ईवान्स प्रिचार्ड ने 1940 में दक्षिणी सूडान के न्यूर लोगों पर एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें नातेदारी समूहों पर आधारित समूहों का अध्ययन सम्मिलित था। मेयर फोरटेस ने आधारित समूहों का अध्ययन सम्मिलित था। मेयर फोरटेस ने 1945 में टालेन्सी लोगों के विवाह, वंशानुक्रम एवं नातेदारी का अध्ययन कर एक पुस्तक प्रकाशित की। मरडॉक ने अपनी पुस्तक **'सोशल स्ट्रक्चर'** में उद्विकास के प्रति रुचि दिखायी। लेवी स्टॉस ने नातेदारी शब्दावली, विवाह-मैत्री (Marriage alliance), विवाह द्वारा स्त्रियों के स्थान की विधियों, आदि का उल्लेख किया है। डॉ. रिवर्स एवं अनेक भारतीय मानवशास्त्रियों ने भी नातेदारी के विभिन्न पक्षों का अध्ययन कर मानवशास्त्रीय ज्ञान को समृद्ध बनाया है। नातेदारी के आधार पर मानवशास्त्र में अध्ययन के लिए मॉडल भी विकसित हुए जिनका उपयोग नातेदारी तन्त्रों को समझने के लिए किया गया है।

विभिन्न समाजों में नातेदारी के अध्ययन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए नेल्स ग्रेवर्न ने कुछ कारणों का उल्लेख किया है जिन्होंने मानवशास्त्रियों को ऐसे अध्ययन हेतु प्रेरित किया है। वे कारण इस प्रकार हैं–

1. नातेदारी व्यवस्थाएँ सर्वव्यापी हैं।
2. सभी मानव समाजों की संरचना में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ नातेदारी व्यवस्थाएँ हमेशा महत्त्वपूर्ण होती हैं।

नोट

3. मानवशास्त्रियों ने जिन समाजों का परम्परागत रूप से अध्ययन किया है, उनमें अधिकतर नातेदारी व्यवस्था सामाजिक संगठन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त रहा है।
4. नातेदारी व्यवस्थाएँ अपेक्षाकृत रूप से अधिक सरलता से स्पष्ट की जा सकती हैं तथा उनका विश्लेषण भी सरलता से समझा जा सकता है।
5. मानवशास्त्र में विभिन्न समाजों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि नातेदारी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्था है तथा यह संस्था समाज की संस्था से भिन्न है। इसने सामाजिक मानव-शास्त्रियों का ध्यान नातेदारी के अध्ययन की ओर आकृष्ट किया।
6. सामाजिक मानवशास्त्र के उद्‌भव से पूर्व अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों ने समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया। इन लोगों ने नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन की ओर ध्यान नहीं दिया। सामाजिक मानवशास्त्रियों ने इस उपेक्षित विषय के अध्ययन के प्रति अपनी रुचि दिखायी।

इस प्रकार नातेदारी के अध्ययन ने मानव विकास एवं सामाजिक संरचना को समझने में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया है। उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि नातेदारी के अध्ययन का दिनों-दिन महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. रेडिक्लिफ ब्रउन के अनुसार ········· सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश संबंध है जो कि सामाजिक संबंधों के परम्परात्मक संबंधों का आधार है।
2. डॉ. रिवर्स के अनुसार ········· मेरी परिभाषा उस संबंध से है जो वंशावलियों के माध्यम से निर्धारित तथा ········· की जा सकती है।
3. मेयर फोरटेस ने आधारित ········· का अध्ययन सम्मिलित था।

1.2 सारांश (Summary)

- यौन इच्छा विवाह को जन्म देती है तथा विवाह परिवार एवं नातेदारी को।
- नातेदारी प्रणाली में कल्पित तथा वास्तविक वंशानुगत बंधनों पर आधारित समाज द्वारा मान्य संबंधों को सम्मिलित किया जाता है।
- नातेदारी वंशावली का निर्धारण करती है।
- नातेदारी विवाह का क्षेत्र तय करती है।
- सभी मानव समाजों की रचना में थोड़ा-बहुत परिवर्तन के साथ नातेदारी विद्यमान रहती है।

1.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **नातेदारी व्यवस्था (Kinship system)**–किसी समाज में प्रस्थिति एवं भूमिकाओं की एक प्रथानुगत व्यवस्था जो निकटस्थ स्वजनों के व्यवहार को संचालित एवं नियंत्रित करती है, नातेदारों व्यवस्था कहलाती है।
2. **आर्थिक हितों की सुरक्षा**–नातेदारी समूह, एक व्यक्ति नहीं, वरन् द्वितीय रक्षा पंक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नातेदारी से आप क्या समझते हैं?
2. सामाजिक संरचना में नातेदारी के महत्त्व एवं भूमिका क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. नातेदारी 2. संगोत्रता (बन्धुत्व), वर्णित 3. समूहों।

1.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।
2. सामाजिक मानवशास्त्र–मजुमदार एवं मदान।

नोट

इकाई–2: नातेदारीः आधारभूत शब्द एवं अवधारणाः कुल, गोत्र, भ्रातृदल, द्विदल, नातेदार समूह, सहवंशीय स्वजन, निकटाभिगमन, वंशानुक्रम (Kinship: Basic Terms and Concepts: Lineage, Clan, Phratry, Moiety, Kingroup, Kindred, Incest, Descent)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
2.1 कुल, गोत्र, भ्रातृदल, द्विदल, वंशानुक्रम (Lineage, Clan, Phratry, Moiety, Descent)
2.2 नातेदार समूह, सहवंशीय स्वजन (Kingroup, Kindred)
2.3 सारांश (Summary)
2.4 शब्दकोश (Keywords)
2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
2.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- कुल, गोत्र, भ्रातृदल, द्विदल के अर्थ को समझना।
- नातेदार समूह, सहवंशीय स्वजन की अवधारणा की जानकारी।
- नातेदारी व्यवस्था में वंशानुक्रम के निर्धारण को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

प्राक्कल्पित आधार पर कहें तो **परिवार-पूर्व की कोई भी अवस्था, सामाजिक संगठन-रहित संस्कृति विहीन अवस्था ही रही होगी।** तथापि, एक सामाजिक समूह के रूप में परिवार न तो एकमात्र समिति है, और न स्वजन

संबंधों पर आधारित एकमात्र समूह ही। नगर समाज में प्रचलित होटल, रेस्ट्रां, शिशुगृह, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल क्लब, बैंक आदि। वैयक्तिक हितों पर आधारित द्वितीयक समूह भी हमारी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। आदिम समाजों में इसी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार एवं अन्य प्रकार के स्वजन समूहों द्वारा की जाती है। ये स्वजन समूह दूसरी सुरक्षा पंक्ति जैसे होते हैं।

परिवार स्वजनता के एकतात्मक संबंधों पर आधारित होता है। इस एकता का विस्तार सर्वत्र दो दिशाओं में होता है–

पिता के जन्म के परिवार की दिशा में और माँ के जन्म के परिवार की दिशा में।

2.1 कुल, गोत्र, भ्रातृदल, द्विदल, वंशानुक्रम (Lineage, Clan, Phratry, Moiety, Descent)

आधुनिक प्रचलन के अनुसार संतान द्वारा माँ के जन्म के परिवार के कुल या गोत्र के नाम का प्रयोग नहीं किया जाता। इतना ही नहीं, स्त्री अपने विवाह के बाद न केवल अपने जन्म के परिवार के कुल या गोत्र का नाम ही छोड़ देती है, अपितु अपने पति के परिवार का कुल-नाम भी ग्रहण कर लेती है। तथापि कोई भी परिवार इन दोनों पक्षों में से किसी भी एक की बहुत अधिक अंशों में अनदेखी नहीं कर सकता। इसीलिए परिवार को **उभयपक्षीय समूह** कहा जाता है। इस उभयपक्षीय विशेषता का एक विशिष्ट उदाहरण कादर जन-जाति में देखने को मिलता है। कादर दोनों पक्षों को समान महत्त्व देते हैं, या समान रूप में ही दोनों की अनदेखी करते हैं। ऐसा कोई विशिष्ट उदाहरण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि परिवार को कहीं एकपक्षीय समूह के रूप में ही मान्यता दी जाती है। **मोरिस ओपलर** की यह व्याख्या पूर्णत: गलत है कि उत्तरी भारत के गाँवों में परिवार एकपक्षीय समूह होते हैं।

एकपक्षीय समूह: वंश, सिब/कुल

स्वजन समूहों के कई अन्य प्रकार भी हैं। ये परिवार से इस अर्थ में भिन्न होते हैं कि इनमें दो में से किसी एक पक्ष की पूरी तरह अनदेखी की जाती है। अत: ऐसे समूह एकपक्षीय होते हैं। ये समूह ऐतिहासिक दृष्टि से परिवार से प्राचीन नहीं है, इसलिए कि संसार के आदिमतम एवं सामान्यतम समाजों में ये नहीं पाए जाते। कादर में ऐसा **एकपक्षीय समूह** नहीं पाया जाता, न अंडमान द्वीपनिवासियों में ही। इनसे किंचित विकसित कुमार और बैगा तथा भारत की अधिकांश अन्य जनजातियों में ये अवश्य पाए जाते हैं। फिर भी, जहाँ कहीं भी ये पाए जाते हैं वहाँ परिवार न तो विलुप्त होता है और न महत्त्वहीन ही। एकपक्षीय समूह स्वजनों की दो कोटियों के बीच विभेदीकरण पर आधारित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इनमें से किसी एक को ही अपने लिए चुनता है। इस प्रकार का विभेदीकरण और चयन बौद्धिक दृष्टि से विकसित एवं सामाजिक दृष्टि से प्रगतिशील लोगों का परिचायक होता है। प्रकार्यवादी दृष्टि से, एकपक्षीय सिद्धान्त पर आधारित ये समूह सामाजिक संबंधों की मान्यता के माध्यम से उन विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं जो परिवार के कार्य-क्षेत्र में नहीं आतीं। इससे आपसी संघर्ष टल जाता है और परिवार एवं एकपक्षीय समूहों के बीच सहअस्तित्व भी संभव होता है।

एकपक्षीय समूहों का एक सामान्यतम प्रकार **वंश (लिनिएज)** है। सभी संभावित एकपक्षीय रक्त संबंधी इसके सदस्य होते हैं। जब इस प्रकार के समूहों का विस्तार समान वंशानुक्रम द्वारा संबंधित माने जाने वाले सभी सदस्यों का समावेश अपने में कर ले तब ऐसा विस्तृत समूह **सिब या कुल (क्लान)** कहलाता है। इस प्रकार, एक सिब या कुल कुछ वंशों का ऐसा संगठन होता है जिसका वंशानुक्रम, अंतत:, ऐसे मिथकीय पूर्वज से जोड़ा जा सकता है जो मानव या पशु, पेड़-पौधा या निर्जीव पदार्थ भी हो सकता है।

रेडक्लिफ-ब्राउन, थोड़े भिन्न रूप में, वंश को उस अर्थ में परिभाषित करते हैं जिस अर्थ में हमने सिब को परिभाषित किया है।

नोट्स वंश समूह प्रयोग वंश के उन सदस्यों के लिए किया है जो किसी समय-विशेष में जीवित होते हैं। सिब भी रक्तमूलक समूह होता है किंतु इसके सदस्य संयुक्त आवासी नहीं होते।

एकपक्षीय समूहों में आमतौर पर सर्वाधिक व्यापक प्रचलित समूह **सिब या कुल** है। इसकी रचना उन एकपक्षीय रक्तसंबंधियों से होती है जो बहिर्विवाही समूह के रूप में समूह-बद्ध होते हैं। औपचारिकत; संयुक्त (एकक्षेत्रीय) निवास और किसी पशु, पौधे, या भौतिक वस्तु (टोटमवादी) से रहस्यमय संबंध या वंशनिर्धारण कुल की दो अन्य सार्वभौम विशेषताएं बताई गई है। इस प्रकार, **रिवर्स** की परिभाषा के अनुसार, कुल जनजाति का एक ऐसा बहिर्विवाही संभाग है जिसके सदस्य समान वंशानुक्रम में विश्वास के आधार पर एक-दूसरे से सूत्रबद्ध होते हैं और एक टोटम या एकक्षेत्रीय आवास पर इनका समान स्वामित्व (अधिकार) होता है। **लोवी** ने अपनी परिभाषा में टोटमवाद को स्थान नहीं दिया है, इसलिए कि अमरीकी, अफ्रीकी एवं एशियाई कुलों में यह प्राय: अनुपस्थित होता है। उन्होंने एक-क्षेत्रीय आवास को भी, बिना कोई कारण बताए, अपनी परिभाषा से अलग कर दिया। लोवी ने ऐसा संभवत: इसलिए किया होगा कि, प्राय: मिथकीय स्वजनता पर आधारित होने के कारण कुल एक विस्तृत क्षेत्र में फैला हो सकता है, जैसा कि आस्ट्रेलियाई सिब और हिंदू गोत्र पर यह बात लागू होती है। **मर्डक** ने कुल को सामेल्य स्वजन-समूह कहा है क्योंकि इसमें रक्तमूलक स्वजनता और एकक्षेत्रीय आवास के सिद्धांत सम्मिलित हैं। यह लोवी के सिब या कुल से भिन्न हैं और इसके लिए मर्डक ने **एकपक्षीय रक्तमूलक स्वजन-समूह** संज्ञा प्रयुक्त की है। जिसकी एक सर्वाधिक व्याप्त विशेषता (मर्डक के सेंपल का 94.4 प्रतिशत) बहिर्विवाह है। बहिर्विवाह और कुल के अपरिहार्य संबंध के समर्थन में **लोवी** ने एक सशक्त कारण प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया कि यदि लोग स्वजन समूह के अंतर्गत ही विवाह करने लग जाते तो एक समय ऐसा आता जब एकपक्षीय और उभयपक्षीय वंशानुक्रम के बीच भेद करना असंभव हो जाता क्योंकि सभी व्यक्ति एक-दूसरे से उभयपक्षीय रूप में संबंधित हो जाते। इसलिए कुल की बहिर्विवाही विशेषता ही कुल को एक विशिष्ट समूह बनाती है। सिद्धांतत: यह बात काफी सही हो सकती है, किंतु शंका यह है कि आदिम लोग क्या शिक्षाविदों की तरह इतने तर्कशील हो सकते है? उनके लिए तो, चूँकि एक आयु-वर्ग के सभी सदस्य आपस में सहोदर-अर्थी शब्द द्वारा पुकारे जाते हैं, यानी सभी आपस में सहोदरवत होते हैं, अत: किसके साथ विवाह करना निकटाभिगमनपरक संबंध माना जाएगा। यह तय करना आसान नहीं होता।

भ्रातृदल और द्विदल

जब किसी कारण विशेषा से कई कुल एक बड़े समूह के रूप में संयुक्त हो जाते हैं तब ऐसे समूह को **भ्रातृदल (फ्रेट्री)** कहा जाता है। किसी जनजाति के सभी कुल जब केवल दो भ्रातृदलों में बंटे रहते हैं तब इससे पैदा होने वाली सामाजिक संरचना को **द्वैधसंगठन** कहा जाता है और इनमें से प्रत्येक भ्रातृदल को **द्विदल (मोइटी)**, अर्थात् अर्धांश कहते हैं। भ्रातृदल बहिर्विवाही हो सकते हैं और नहीं भी। दो टोडा भ्रातृदल (द्विदल)-तारथरोल और तेइवालिओल–अंतर्विवाही हैं, यद्यपि ये कई बहिर्विवाही कुलों में भी बंटे हुए हैं। कहा जाता है कि अंगामी नागाओं के द्विदल अतीत में अंतर्विवाही थे किंतु बाद में ये बहिर्विवाही हो गए। **बोंदो** सामाजिक संगठन ओंताल और किल्लो नामक दो द्विदलों में बंटा हुआ है। अपनी पड़ोसी संस्कृतियों के संपर्क में आकर ये क्षेत्र-बहिर्विवाही और कुलबर्हिविवाही हो गए हैं। इसी से इनके द्विदलों में अंतर्विवाह का विकास भी हुआ है।

एक भ्रातृदल में कई कुल होते हैं। भ्रातृदल की रचना कैसे होती है इसकी जानकारी अपने-आप में महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में लोवी ने चार संभावनाओं का उल्लेख किया है–

प्रथम, कई कुल अपनी पूर्ववर्ती पृथकता के सभी अवशेषों को खोए बिना आपस में मिल सकते हैं।

द्वितीय, कोई कुल इतना बड़ा या व्यापक हो सकता है कि यह कई छोटे समूहों में बंट जाए। इन समूहों के बीच एकता के पूर्ववर्ती सूत्र पूरी तरह टूट नहीं पाते। कुलों के जोड़ या तोड़ के उदाहरण उरांव, हो और मुंडा नामक समस्रोतीय उत्पत्ति वाली जनजातियों में देखने को मिलते हैं।

तीसरी रोचक संभावना कुल के अवसान की है। टोडा जनजाति से ऐसी समाप्ति की सूचना रिवर्स ने दी है। इनके अनुसार, पहले टोडाओं में कई कुलों का प्रचलन था किंतु कालांतर में ये सब मिटते गए और इनमें से केवल दो बच रहे जिन पर इनका द्वैधसंगठन आधारित है। इस प्रक्रिया में एक कुल की इतनी वृद्धि होती गई कि इसके सदस्यों ने अपने जीवन-साथी (पति या पत्नी) अन्य सभी कुलों से लेना प्रारंभ कर दिया। परिणामत:, इन अन्य कुलों के बीच आपस में अंतर-विवाह करना कठिन हो गया और एक ऐसी स्थिति आई कि ये सब मिलकर एक-कुल बन गए। गोंडों में प्रचलित द्वैधसंगठन का उद्‌भव भी संभवत: इसी प्रकार हुआ होगा।

चतुर्थ, लोवी ने बताया कि कुल और द्विदलों की उत्पत्ति, अलग-अलग कारणों के फलस्वरूप, अलग-अलग तरह से भी हो सकती है। आगे चलकर ये आपस में मिलकर एक ही समाज-व्यवस्था के एक बड़े संगठन की रचना कर सकते हैं। लोवी की इस संभावना का आधार अमरीकी दत्त है।

पैतृकता और मातृकता

मोर्गन और उनके अनुयायियों ने सामाजिक संस्थाओं संबंधी अपने सभी अध्ययनों में इनकी उत्पत्तियों एवं आरंभिक प्रकारों का पता लगाने की कोशिश की है। इनका विश्वास रहा है कि सामाजिक उद्‌विकास एक अटल नियम है और सभी सामाजिक संस्थाओं पर सत्यत: लागू होता है। इस तरह मोर्गन का कहना है कि स्वजन समूहों का आदिम रूप कुल या झुंड था और परिवार का विकास, तुलनात्मक रूप में, इनसे बाद में हुआ था। इसी अटकल को आगे बढ़ाते हुए **मोर्गन** ने माना कि, उद्‌विकास की दृष्टि से पितृरेखीय कुलों की तुलना में से मातृरेखीय कुल पहले का है और इसीलिए यह मानव-समाज का सबसे प्राचीन स्वजन-समूह है। परिवार के उद्‌भव की व्याख्यार्थ भी मोर्गन ने कतिपय कारण संस्थापित किए हैं जो प्राक्कल्पित तथा अटकलबाजीपूर्ण ही हैं।

मोर्गन का विश्वास है कि यौनस्वाच्छंद्य मनुष्य के यौन संबंध की सर्वप्रथम अवस्था थी, अत: पैतृत्व निर्धारण सदैव कठिन था। परिणामत:, वंशानुक्रम मातृरेखीय रूप में निर्धारित होता था। समय के साथ-साथ, यौनस्वाच्छंद्य का स्थान नियंत्रित यौन संबंधों ने ले लिया और संपत्ति का संचय भी किया जाने लगा। इस स्थिति में पिताओं ने माताओं की उस सत्ता का विरोध किया होगा जिसके अंतर्गत उन्हें पितृपद के अधिकार एवं उनकी संतानों को संपत्ति के उत्तराधिकार से वंचित रखा गया था। मोर्गन के अनुसार, पिताओं के इस विद्रोह के फलस्वरूप पितृरेखीय सिबों की स्थापना हुई। यौनस्वाच्छंद्य की स्थिति में रक्तसंबंधियों के बीच प्रजनन प्राय: प्रचलित रहा होगा। मोर्गन का विश्वास है कि इस प्रकार के अंत: प्रजनन का संबंधित व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा होगा। इसीलिए बहिर्विवाही सिब को सुधारात्मक प्रयासों का परिणाम माना जा सकता है। अंत: प्रजनन के कल्पित दुष्प्रभावों को सत्य या असत्य सिद्धि करने का कोई चिकित्साशास्त्रीय या ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। मोर्गन के तर्क को इसलिए भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि सिब-बहिर्विवाह के अंतर्गत जैविक रूप में असंबंधित लोगों के बीच विवाह चाहे निषिद्ध किया जाता हो किन्तु रक्त-संबंधी समोदरों के बीच विवाह को स्वीकृति प्रदान की ही जाती है।

बहिर्विवाही सिबों की उत्पत्ति एवं पैतृकता की तुलना में मातृकता की प्राचीनता संबंधी मोर्गन का विवेचन अटकलबाजीपूर्ण अधिक एवं ऐतिहासिक कम है। समकालीन आदिम समाजों में सिबों के प्रचलित उदाहरण के

आधार पर भी मोर्गन का दावा असत्य लगता है। मोर्गन के सिद्धांत के अनुसार इनका वितरण सार्वभौम नहीं है, किंतु वस्तुस्थिति के आधार पर मोर्गन का सिद्धांत स्वत: गलत सिद्ध हो जाता है।

आदिमतम समाजों में कुल नहीं होते। इसका एक विशिष्ट उदाहरण अंडमान द्वीप निवासी हैं। कादर जनजाति में कुल न पाए जाने की चर्चा हम पहले कर ही चुके हैं। आस्ट्रेलियाई आदिवासी समाज में सिब पाए जाते हैं, जबकि अन्यत्र सिब के साथ परिवार भी प्रचलित पाए गए हैं। यहाँ यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि आस्ट्रेलियाई आदिवासी, किसी भी रूप में, अंडमान द्वीप-निवासियों की तुलना में अधिक आदिम नहीं हैं। अफ्रीकी आदिम जनजातियों में होटनटोट में सिब नहीं पाए जाते जबकि बांटू और मसाई में पाए जाते हैं। उत्तरी अमरीकी इंडियनों के सामाजिक जीवन से भी ऐसे उदाहरण प्राप्त किए जा सकते हैं। साथ ही, संपत्ति वृद्धि ने मातृकता की सभी स्थितियों में गड़बड़ पैदा नहीं की है। भारत में भी, खासी उत्तराधिकार व्यवस्था पर आलू जैसी व्यापारिक फसल की खेती के कारण हुई संपत्ति वृद्धि का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। हाँ, ईसाइयत ग्रहण कर लेने के फलस्वरूप कई समस्याएँ अवश्य पैदा हुई हैं। गारो जनजाति की स्थिति भी ऐसी ही है। उत्तरी अमरीकी नवाहो, को और हिदास्ता जनजातियों में पशु संपत्ति के रूप में संपत्ति संचय के पश्चात् भी मातृरेखीय उत्तराधिकार का प्रचलन जारी रहा है। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, कुल बहिर्विवाह के जैविक दृष्टि से उपयोगी परिणामों को समुचित शोध द्वारा समर्थन नहीं दिया जा सका है। साथ ही, इस बात को भी नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता कि कुल बहिर्विवाह परिवार के केवल एक पक्ष पर लागू होता है, न कि दोनों पर। संतानोत्पत्ति में पिता की भूमिका के ज्ञान के अभाव को भी मोर्गन ने मातृकता की प्राचीनता की पुष्टि हेतु एक प्रमाण बताया। किंतु **मालिनोस्की** एवं अन्यों में दर्शाया है कि पिता की समाजशास्त्रीय भूमिका सामाजिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण होती है, और यह सर्वत्र मान्य है। कई समाजों में पैतृकता निर्धारण एवं अभिग्रहण करने के परंपरागत तरीके होते हैं। इसी संदर्भ में बहुपतिविवाही टोडाओं के तीर एवं कमान भेंट करने के आयोजन का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। प्रकार्यक या समाजशास्त्रीय पितृत्व की तुलना में जैविक पितृत्व की महत्त्वहीनता इससे परिलक्षित हो ही जाती है। **पिता** कहे जानेवाले व्यक्ति के साथ कतिपय सामाजिक कार्य जुड़े रहते हैं। जब तक ये कार्य पूरे होते रहते हैं तब तक समाज इस बात पर विशेष ध्यान नहीं देता कि जैविक पितृत्व और समाजशास्त्रीय पितृत्व मेल खाए ही। वस्तुत:, सामाजिक कार्य एवं इनकी मान्यता ही महत्त्वपूर्ण तथ्य है, न कि जैविक स्थिति। संभवत: इसी तथ्य की अवगतता के फलस्वरूप लैटिन भाषा में **पेटर** और **जेनिटर** दो शब्द ग्रहण किए गए जिनके अर्थ क्रमश: समाजशास्त्रीय पिता एवं जीवनशास्त्रीय पिता है। इसलिए, **जेनिटर** कौन है इसके अज्ञान को मातृकता की प्राचीनता का सर्मथक तर्क नहीं माना जाना चाहिए।

टायलर ने अपने एक लेख में मोर्गन जैसी ही व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि जैसे भूगर्भिक स्तर पृथ्वी पर सर्वत्र एक समान होते हैं उसी तरह सांस्कृतिक स्तर भी एक समान एवं सार्वभौम होते हैं और प्रजाति, भाषा तथा सांस्कृतिक विशिष्टताओं के वैविध्य से अप्रभावित रहते हैं। टायलर का विश्वास है कि भली प्रकार की गई जाँच से इन सांस्कृतिक स्तरों का एक ऐसा स्तरीकरण प्राप्त हो सकता है जिसके आदि, मध्य और आधुनिक स्तर क्रमश: मातृक, मातृक-पितृक और पितृक हों। ऐसी दलील के समर्थन में विधवा उत्तराधिकार विवाह (पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र द्वारा अपनी सौतेली माँ या माताओं को उत्तराधिकार में ग्रहण करना) और कूवेद नामक संस्थाओं की ओर संकेत करते हुए यह बताया गया कि ये क्रमश: मातृक-पितृक और पितृक स्थितियों में ही पाई जाती हैं। पितृक स्थितियों में कूवेद जिस तरह क्षीणप्राय: हो गया है उससे भी मातृक स्थिति की प्राथमिकता की पुष्टि होती है। मातृक स्थिति की परिभाषा के अंतरगत मुख्य लक्षण मातृरेखीय वंशानुक्रम, माँ की सर्वोच्च सत्ता (मातृ अधिकार)—जो प्राय: माँ के भाई द्वारा संचालित की जाती हैं (मातुल सत्ता), संपत्ति और पद का **स्त्रीरेखीय उत्तराधिकार**, आदि बताए गए हैं। अभी तक ऐसे किसी समाज की जानकारी प्राप्त नहीं हुई है जिसमें ये कारक इनकी पुरातन-शुद्धता एवं उत्कर्ष सहित विद्यमान हों। खासी जनजाति इसका केवल निकटतम प्रतिनिधित्व ही है।

टायलर का सिद्धांत तार्किक दृष्टि से सही है किंतु तथ्यात्मक प्रमाणों के अभाव में असफल रहा है। इसकी कुछ सीमाओं का उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है। इस संबंध में लोवी की आपत्ति की भी अनदेखी नहीं कि जा

सकती। वे कहते हैं कि केवल तर्कसंगत होने के कारण ही सांस्कृतिक संस्थाओं की ऐसी अनम्य (स्थिर) क्रमावस्थाओं को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि संस्कृति का प्रसार ऐसे विकास को ध्वस्त कर देता है।

मातृकता से पैतृकता के विकास की धारणा को शुद्ध तार्किक आधार पर भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि स्वतंत्र रूप में या प्रसार द्वारा हुए इस तरह के विकास में पिछला प्रचलन एकदम उलट जाता है और पूर्णत: विरोधात्मक सिद्धांत अंगीकार करना पड़ता है। सामाजिक संगठन की ये दोनों अवस्थाएँ कालक्रमिक अवस्थाएँ नहीं हैं। अत:, जैसाकि **लोवी** का कहना है, इनकी व्याख्यार्थ दो अलग-अलग सिद्धांतों की जरूरत है। यह बात इस तथ्य से परिपुष्ट होती है कि कई पितृसत्तात्मक आदिम जनजातियाँ प्राचीनतम काल से ही ऐसी रही हैं जबकि कई विकसित जनजातियाँ अब भी मातृसत्तात्मक हैं। इससे दो स्पष्ट निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम यह कि परिवार सभी प्रकार के समाजों में तथा सभी सांस्कृतिक स्तरों पर पाया जाता है जबकि सिब न तो अति आदिम न काफी विकसित किंतु केवल माध्यमिक प्रकार के समाजों में ही विद्यमान होता है। द्वितीय, मातृसिब (मातृकता) और पितृसिब (पैतृकता) में संबंध न तो कारण-कार्य प्रकार का है और न स्थिर क्रमावस्था प्रकार का।

मातृकता और पैतृकता के उद्भव के संभावित कारणों की चर्चा करते हुए लोवी ने बताया है कि जिस तरह इन दोनों में एकतरफा (एकपक्षीय) जोर दिया जाता है उसे देखते हुए आवास एवं संपत्ति के उत्तराधिकार के तरीकों के एक ही दिशा में पड़े सम्मिलित प्रभाव को इनकी उत्पत्ति का कारण मानना पर्याप्त हो सकता है। विवाह द्वारा प्रभावित न होने वाला अपरिवर्तनशील नामकरण (कुल नाम) इनकी स्थायी सदस्यता का परिचायक होता है, और कुल इसी का द्योतक है। फिर भी, पैतृकता में पुत्रियाँ और मातृकता में पुत्र पैतृक संपत्ति में से प्राप्त होने वाले अपने हिस्से को आगे हस्तांतरित नहीं कर सकते। इस तरह, संपत्ति का मात्र एकरेखीय उत्तराधिकार इस एकपक्षीय महत्त्व को बनाए रखता है। रेड्डी कुलों में एक अपवाद इस रूप में देखने में आया है कि स्त्री विवाह के पश्चात् अपने पति का कुल नाम ग्रहण नहीं करती। टोडाओं में भी एक ऐसी ही पद्धति का प्रचलन बताया गया है।

भारतीय जनजातियों में कुल संगठन

कमार, चेंचू और **बिरहोर** जैसी पिछड़ी जनजातियों सहित भारत की लगभग सभी जनजातियों में कुल पाया जाता है। मंगोल और प्रोटो-आस्ट्रेलियाई नामक दो मुख्य प्रजाति वर्गों से संबंधित विभिन्न भारतीय जनजातियों में कुल के प्रचलन का उल्लेख विभिन्न नृवर्णनवेत्ताओं ने किया है। हाँ, अंडमान द्वीप-निवासी, **कादर** और **बैगा** जनजाति इसके उल्लेखनीय अपवाद हैं। इनमें से बैगा जनजाति गोंड समूह की जनजातियों में से एक है और क्योंकि इस समूह में कुल का प्रचलन पाया गया है, अत: हो सकता है कि बैगा के बारे में इसका उल्लेख होना संभवत: छूट गया हो।

अंडमान के पिगमी संसार के सबसे पिछड़े लोगों में से हैं। मेन और रेडक्लिफ ब्राउन ने इसमें कई जनजातियाँ प्रचलित पाईं। दोनों ने इसमें विवाहित दंपत्ति एवं इनकी संतान से बनने वाले एकाकी परिवार के प्रचलन का उल्लेख भी किया। पोर्टमेन द्वारा बताया गया कि सामान्यत: **उपकुल** (सेप्ट) कही जानेवाली स्थिति भी इनमें पहले प्रचलित थी (रिवर्स ने क्लान और सिब के स्थान पर सेप्ट शब्द का प्रयोग किया है)। रेडक्लिफ ब्राउन ने इनमें ये उपकुल तो नहीं देखे किंतु अपना यह मत अवश्य व्यक्त किया है कि ये उपकुल त्यौहार आदि अवसरों पर मित्रता निभाने एवं इकट्ठे होने वाले कुछ स्थानीय समूहों से बनने वाले समूह रहे होंगे।

अन्य भारतीय जनजातियों में से किसी के भी बारे में ऐसा कोई विशेष उदाहरण उपलब्ध नहीं है जिससे इनमें कुल की अनुपस्थिति सिद्ध होती हो। वैसे अध्ययन में प्रयुक्त समान शब्दावली के अभाव एवं प्रत्येक नृवर्णनवेत्ता द्वारा प्रयुक्त किए गए शब्दों की परिभाषा की सामान्य अनुपस्थिति की स्थिति में किसी स्पष्ट निष्कर्ष पर पहुँच पाना काफी कठिन ही रहा है।

आसाम के **नागाओं** में भी कुल पाए जाते हैं। यों **खेल** नामक उनके स्थानीय समूह केवल क्षेत्रीय होते हैं, और यह जरूरी नहीं कि ये स्वजन-समूह भी हों ही।

नोट

कुकी जनजाति के नृवर्णनवेत्ता जे. सेक्सपियर के अनुसार लुशाई कुकियों में कुल समूह बृहत् परिवार से थोड़े ही बड़े होते हैं और इनके सामाजिक जीवन में कुलों का कोई स्पष्ट प्रकट रूप देखने में नहीं आता। ये कुल परिवारों में बंटे रहते हैं। सेक्सपियर के वर्णन से यह पता नहीं चलता कि इन कुलों में एकपक्षीय महत्त्व का प्रचलन है या नहीं। साथ ही यह भी स्पष्ट नहीं होता कि इन कुलों की बहिर्विवाही विशेषता की वास्तविकता क्या है, क्योंकि सेक्सपियर के उल्लेख से केवल निकटतम संबंधियों के बीच विवाह निषेध जैसे सीमित बहिर्विवाह का ही पता चलता है। अत: यह उलझनपूर्ण बात ही है कि इन लोगों के लिए कुल का प्रयोग किस अर्थ में किया गया है।

गुर्डन के अनुसार **खासी** जनजाति में भी कुल पाए जाते हैं। ये कुल बहिर्विवाही बताए गए हैं। इससे कुल की परिभाषा संबंधी आवश्यकता पूर्ति संतोषप्रद रूप में हो ही जाती है। खासी मातृरेखीय लोग हैं इनमें निवास मातृस्थानी होता है, चाहे यह प्राय: अस्थायी ही होता हो। कुल बहिर्विवाह के नियम का उल्लघन इस अर्थ में काफी खतरनाक माना जाता है कि इसके विनाशकारी सामाजिक-धार्मिक परिणाम हो सकते हैं। संपत्ति का उत्तराधिकार स्त्रियों को प्राप्त होता है। अस्तु, खासी कुलों पर आधारित सामाजिक संगठन का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कोरवा एक अंतर्विवाही जनजाति है जो बहिर्विवाही कुलों में बंटी हुई है। मध्यभारत की कई प्रोटो-आस्ट्रेलियाई जनजातियों के बारे में बहिर्विवाही कुलों के प्रचलन की जानकारियाँ दी गई हैं। इसमें कुल केवल बहिर्विवाह से ही नहीं टोटमवाद से भी सहसंबंधित बताए गए हैं। **संथालों** में सौ से भी अधिक कुल हैं जिनका नामकरण पौधों, पशुओं या भौतिक पदार्थों के आधार पर किया गया है। **हो** जनजाति में किल्ली बहिर्विवाह कुल है। इनकी संख्या पचास से अधिक है। इसी तरह **उरांव, मुंडा** और **खरिया** कुल भी बहिर्विवाही और टोटमवादी हैं। राय ने उरांव कुलों की उत्पत्ति जोड़ एवं तोड़ की प्रक्रिया के संदर्भ में बताई है। **भील, कुरमी, कमार** और **भूमिज** भी बहिर्विवाही कुलों में बंटे हुए हैं। महान् **गोंड** जनजाति के मुरिया, मारिया एवं अन्य तबकों में भ्रातृदलों के प्रचलन की जानकारी भी मिली है।

टोडा जनजाति का दो अंतर्विवाह द्विदलों में वर्गीकरण अपने-आप में काफी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी से इनमें द्वैधसंगठन कहे जाने वाले सामाजिक संगठन का विकास हुआ है। ये दोनों द्विदल तारथोरल और तेइवालिओल कहे जाते हैं। इसमें से पहला दूसरे की तुलना में बहुसंख्यक है। ये दोनों पितृवंशी एवं मातृवंशी कुलों में बंटे हुए हैं। इन द्विदलों की उत्पत्ति की चर्चा पीछे की ही जा चुकी है।

मयूरभंज के **खरियाओं** के बारे में राय ने बताया है कि, यद्यपि वर्तमान समय में इनमें कुल प्रचलित नहीं है तथापि भूतकाल में ये अवश्य प्रचलित रहे होंगे—जो संभवत: उसी तरह समाप्त हो गए जैसे इनकी भाषा समाप्त हो गई। कुछ पहाड़ी इलाकों के खरियाओं का ऐसा अस्पष्ट विचार है कि सभी पहाड़ी खरिया नागागोत्र के सदस्य हैं। सालुक (चिड़िया), साल (मछली), अशोक (फूल), सारू (जिमीकंद), बलिया (मछली), और नाग (सर्प) के साथ अस्पष्ट टोटमी संबंधों का इनमें प्रचलन भी राय ने देखा है। मयूरभंज के ये पहाड़ी खरिया अपने टोटमी नामों का प्रयोग अब भी करते हैं। ये इन्हें न तो खाते हैं और न किसी अन्य तरह इन्हें काम में लेते या नुकसान पहुँचाते हैं। तथापि, इन टोटमों ने कुल-बहिर्विवाह का निर्धारण इनमें नहीं किया है। ऐसा संभवत: इसलिए भी हो सकता है कि इनका मूल कुल - संगठन और साथ ही टोटमवाद समाप्त हो गया हो और इधर हाल ही में इन्होंने अपनी पड़ोसी जनजातियों से टोटमी नाम ग्रहण कर लिए हों। हो, मुंडा और संथालों द्वारा कुल के लिए प्रयुक्त **किल्ली** शब्द खरियाओं ने भी, बिना किसी समान कुल-संगठन के ग्रहण कर लिया है। सिद्धांतत: खरिया मानते हैं कि कुल-बहिर्विवाही होते हैं किंतु यथार्थत: जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, ये कुल-बहिर्विवाह का पालन नहीं करते। यह ऐसा उदाहरण है जो एक संस्कृति द्वारा पड़ोस के संस्कृति-समूहों के संस्कृति तत्वों को ग्रहण करने के ऐतिहासिक विकास-जनित भ्रम को स्पष्ट करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. कुमार, चेंचू और बिरहोर जैसी पिछड़ी जनजातियों सहित भारत की लगभग सभी ········ में कुल पाया जाता है।
2. धेलकी खरियाओं में दस ········ टोटमी कुल पाए जाते हैं।
3. हॉपिकन्स के अनुसार भोजन प्रदान करने वाले ········ के प्रति श्रद्धा पैदा होना स्वाभाविक माना जा सकता है।

वंशानुक्रमण

आधुनिक परिवार में स्वजनता पिता एवं माता दोनों के जन्म के परिवारों के साथ जोड़ी जाती है। ऐसे परिवार को **द्विपक्षीय समूह** कहा जाता है। वैसे यह भी सही है कि ऐसी स्थिति में दोनों पक्षों को समान महत्त्व नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ, यह जरूरी नहीं कि माता के कुंवारेपन का गोत्र नाम संतान के साथ जोड़ा जाए। जैसा कि इस पुस्तक में अन्यत्र उल्लेख किया गया है, आदिम समाजों में अन्य प्रकार के वंशानुक्रम भी प्रचलित होते हैं। ऐसे सिब भी पाए जाते हैं, जो वंशानुक्रम की दो में से एक रेखा की पूर्ण अनदेखी कर देते हैं। इन्हें **एकपक्षीय समूह** कहा जाता है। इनके विपरीत **द्वैध वंशानुक्रमण** और **द्विरेखीय** स्वजन समूह भी पाए जाते हैं। इस दूसरे प्रकार के समूह (द्विरेखीय) की रचना केवल उन्हीं व्यक्तियों से होती है, जो आपस में पितृरेखीय और मातृरेखीय दोनों प्रकार के संबंधों से जुड़े रहते हैं। द्वैध वंशानुक्रम में दोनों रेखाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ ही स्वजनों को सम्मिलित किया जाता है।

जो व्यक्ति एक ही पूर्वज के वंशज होते हैं उन्हे **समस्त्रोतीय बन्धु** (संपिड) कहा जाता है। यदि यह समान पूर्वज पुरुष हो तब इन वंशजो को **पितृबन्धु** या **पितृरेखीय स्वजन** कहा जाता है और यदि समान पूर्वज स्त्री हो तब इन वंशजों को **मातृक स्वजन** या **मातृरेखीय स्वजन** कहते हैं।

जो स्वजन वंशानुक्रम में प्रत्यक्षत: एक-दूसरे से संबंधित होते हैं, उन्हें **एकसूत्री स्वजन या** एकशाखीय स्वजन कहा जाता है और जो मुख्य समूह से प्रशाखा रूप में, अलग हो जाते हैं, चाचा और चचेरे भाई-भतीजे, उन्हें **भिन्न शाखीय स्वजन** कहते हैं।

टोटमवाद

गोल्डनवीजर के कथनानुसार, जब हम टोटमवाद की चर्चा करते हैं तब इससे हमारा अभिप्राय किसी जनजाति के सामान्यत: **सिब** प्रकार के सामाजिक संगठन के साथ जुड़ी एक विशेष प्रकार की पारलौकिकता से होता है। इस पारलौकिकता की रचना कतिपय प्रकार के पशुओं, पौधों या प्राकृतिक पदार्थों के प्रति विशिष्ट अभिवृत्ति से होती है। यह अभिवृत्ति भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। यथा, टोटमी पौधे या पशु से वंशनिर्धारण, टोटमी प्राणियों को मारने या/और खाने पर निषेध; टोटमी पशु की मृत्यु का सामूहिक रूप में शोक प्रकट करना; टोटम एवं टोटमपंथियों के बीच शारीरिक और मानसिक विशेषकों का प्रचलन माना जाना; टोटम को टोटमपंथियों के दैव अभिभावक के रूप में देखना; टोटम चिह्नों को तावीजों के रूप में पहनना एवं यहाँ तक कि, इन्हें शरीर पर गोदवाना; टोटमी प्राणियों की वृद्धि हेतु समारोहों का आयोजन करना, टोटमी जनजातियों की सिबों का नामकरण टोटमों के आधार पर करना, आदि-आदि।

धेलकी खरियाओं में दस बहिर्विवाही टोटमी कुल पाए जाते हैं। प्रत्येक कुल के सदस्य एक समान टोटम में विश्वास रखते हैं और इसी से इनमें सामाजिक संगठन की भावना सुदृढ़ होती है; इनके नाम हैं– 1. मुरा (कछुआ), 2. सोरेन या सोरेंग या टोरेंग (चट्टान या पत्थर), 3. सामद (एक प्रकार का हरिण), 4. कागे (बटेर)–यह सामद कुल का

नोट

टोटम है, 5. कारलिहा (फल), 6. छारहड या छारहा (चिड़िया), 7. हंसदा या दानदुंग या एंड (सर्पमीन), 8. मेल (कूड़ा-कचरा), 9. किरो (चीता)—यह मेल कुल का टोटम है, और 10. टोपनो (एक प्रकार की चिड़िया)।

कमार भी कई बहिर्विवाही कुलों में बंटे हुए हैं। प्रत्येक कुल किसी-न-किसी प्रकार के टोटम से जुड़ा रहता है, किंतु धीरे-धीरे यह संबंध समाप्त होता जा रहा है। इन कुलों का प्राथमिक कार्य विवाह नियमन करना बताया गया है। कमार कुल ये हैं: जगत् (इनके पूर्वजों ने विश्व-भर का भ्रमण किया); नेतम (कछुआ); मरकम (यह कुल कछुए की पूजा करता है और मगर को दुश्मन मानता है); सोरी (एक जंगली रेंगनेवाला प्राणी), वाघसोरी (चीता), नाग सोरी (सर्प), कंजम (बकरा), माराई (लाश भक्षी), और छेदिहा (बच्चे)। इन नामों की कई मिथकीय व्याख्याएँ हैं। जैसे, कंजम कुल के सदस्य बकरे और एक कमार लड़की के संयोग की संतान माने जाते हैं। नेतम जलप्लावन के समय कछुए द्वारा बचाए गए थे। एक अन्य समूह मगर की पीठ पर चढ़कर जा रहा था किंतु समुद्र के बीचोंबीच इनमें से कुछ को मगर खा गया। बचे हुए ने कछुए से विनती की और कछुए द्वारा बचा लिए गए। इस कछुए की पीठ पर नेतम कुल वाले पहले ही चढ़े हुए थे। यह दूसरा समूह अपने-आपको मरकम कहने लगा। जगत् और छेदिहा कुल वालों में ऐसे किसी टोटमी विश्वास का प्रचलन नहीं पाया गया। स्थानीय विशेषकों (ट्रेट्स) के आधार पर इस सूची को और विस्तृत बनाया जा सकता है।

टोटमवाद पर गोल्डनवीजर द्वारा 1910 में लिखे गए प्रसिद्ध लेख के प्रकाशन के पूर्व नृतत्ववेत्ता इस विषय पर काफी भ्रम में उलझे हुए थे। तब तक लेंग, **दुर्खीम, फ्रेजर**, **रिवर्स** आदि इसकी व्याख्या करने की कोशिश कर चुके थे। कुछ ने कुल एवं टोटम के संयोग को किसी भी रूप में रहस्यमय या अर्थपूर्ण नहीं बल्कि नामकरण की महज एक पद्धति माना। अन्यों ने, कतिपय प्रकार के भोज्य पशुओं एवं पेड़-पौधों के संदर्भ में व्यापार में समृद्धि तथा सहयोगी श्रम-विभाजन का आर्थिक अभिप्रेरण इसमें निहित पाया। यह दूसरी व्याख्या फ्रेजर की है। फ्रेजर ने ही आस्ट्रेलियाई प्रमाणों के आधार पर एक अन्य सिद्धांत प्रस्तावित किया। उन्होंने बताया कि आदिम लोग गर्भनिर्धारण सहवास की भूमिका से अनभिज्ञ थे। गर्भ जब काफी विकसित अवस्था में पहुँच जाता तभी ये इससे अवगत हो पाते थे। ऐसे बोध की स्थिति में ये लोग निकटतम पशु या पौधे को ही गर्भनिर्धारण का कारण मान लेते।

हॉपिकन्स ने बताया कि भोजन प्रदान करने वाले पशुओं के प्रति श्रद्धा पैदा होना स्वाभाविक माना जा सकता है। टोडाओं की अपनी भैंसों के प्रति श्रद्धाशीलता एक सर्वविदित तथ्य है। **दुर्खीम** ने टोटमवाद को सामूहिक प्रतिनिधित्व—सामाजिक मस्तिष्क—के प्रतीक रूप में देखा। **टायलर** के कथनानुसार, आदिम लोगों का विश्वास रहा है कि मृत्यु के पश्चात् एक व्यक्ति की आत्मा किसी पशु या पौधे में निवास करने लग जाती है, और संभवत: इसीलिए इस प्रकार के संपूर्ण प्राणियों की सुरक्षा टोटमवाद द्वारा की जाती है। इस प्रकार, दुर्खीम की तरह ही टायलर की व्याख्या के अनुसार भी टोटमवाद धार्मिक पूजा-आराधना का एक प्रकार है। अधिक स्पष्ट शब्दों में, टायलर के अनुसार, यह पूर्वज पूजा है और दुर्खीम के अनुसार समाज की पूजा। **बोआस** और **स्वाटंन** जैसे लेखकों के अनुसार टोटमवाद व्यक्तियों का पशुओं या पेड़-पौधों के साथ वैयक्तिक संबंधों का विस्तार है। टोटम एवं टोटमपंथियों के बीच एक विशेष प्रकार के स्वजनता संबंध के रूप में ऐसे संबंधों का साधारणीकरण किया जा सकता है।

गोल्डनवीजर ने बताया है कि टोटमवाद की इस पहेली का कोई भी उपयोगी हल नहीं निकाला जा सकता क्योंकि टोटमवाद की जटिलता विधितापूर्ण होती है एवं स्थान के साथ-साथ बदलती रहती है। इसके सभी तथाकथित विशेष लक्षण भी हर जगह नहीं पाए जाते। उन्होंने टोटमवाद को एक सामाजिक-धार्मिक संस्था माना। इधन हर्बर्ट **रिजले** ने अपने भारतीय दत्त के आधार पर बताया है कि यहाँ टोटमवाद का धार्मिक पक्ष मर चुका है और केवल सामाजिक पक्ष ही क्रियाशील है। साधारणीकरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि जहाँ तक भारतीय टोटमवाद की बात है, पशुओं और वनस्पतियों से संबंध यहाँ संयोगमात्र रहे हैं, किंतु हैं अवश्य। ऐसा कई उदाहरणों से सिद्ध होता है। **एल्विन** ने जुआंगों में टोटमी उपकुलों (सेप्ट्स) का प्रचलन देखते हुए बताया है कि **टोटमवाद** एक ऐतिहासिक संयोग, या अनुकरण, अर्थात् प्रसार का परिणाम भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, कबूतर मारने वाला कोई व्यक्ति यदि

संयोगवश अंधा हो जाता है तो संभव है कि स्थानीय उपचारक इन दोनों घटनाओं का संबंध जोड़ दें। परिणामत: व्यक्ति में भयवश सभी कबूतरों के प्रति श्रद्धाभाव पैदा हो सकता है और एक समय ऐसा आ सकता है जब वह कबूतरों की पूजा और सुरक्षा करने लग जाएँ।

सामान्यत:, टोटमवाद के मुख्य लक्षण तीन है: 1. किसी पशु या पौधे के प्रति विशिष्ट अभिवृत्ति, 2. कुल संगठन, और 3. कुल बहिर्विवाह। तथापि, यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि कुल और टोटमवाद तथा बहिर्विवाह और टोटमवाद के बीच कोई दर्शाने योग्य कारणात्मक संबंध नहीं है। **मर्डक** की श्रमसाध्य सांख्यिकी विधि भी एकपक्षीय समूहों– जैसे कुल इनमें से एक है, और टोटमवाद के बीच कारणात्मक संबंध बताने में असफल नहीं है।

भारत की मध्यक्षेत्रीय पट्टी में रहने वाली अधिकांश प्रोटो-आस्टेलॉइड जन-जातियाँ टोटमी क्षेत्र का उत्कृष्ट उदाहरण है। यों टोटम का प्रचलन अन्य क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों तथा जातियों में भी पाया जाता है। संभावना है कि भारत में टोटमवाद का विकास प्रोटो-आस्ट्रेलॉइडों द्वारा ही किया गया होगा। किंतु अब यह किंचित्‌रूपेण आसाम की मंगोलोइड नागा जनजातियों में भी पाया जाता है। इसका प्रचलन कई अन्य उन्नत समूहों में भी हो गया है, चाहे ये टोटमी पशु या पौधों के प्रति भावनात्मक लगाव रखते हों या न रखते हों।

भारत में टोटमवादी लोगों, निरपवादरूपेण, बहिर्विवाही कुलों में संगठित हैं। उरांव जनजाति में टोटमी समूहों की उत्पत्ति की विस्तृत व्याख्या **राय** ने की ही है। टोटमी कुलों की उत्पत्ति के आधारों के रूप में जोड़, तोड़ एवं साधारणीकरण की चर्चा की गई है। जोड़ का अर्थ है कई परिवारों द्वारा सामूहिक रूप में एक समान नाम ग्रहण कर लेना। कभी-कभी कोई कुल इतना बड़ा हो जाता है कि, एक स्थिति में, टूटकर छोटे-छोटे समूहों में बंट जाता है। इसे तोड़ की प्रक्रिया कहा जाएगा। ऐसी स्थिति में यदि मूल कुल चीता होता तो नए कुलों के नाम प्राय: चीते की पूँछ, चीते का सिर, चीते के दांत आदि रख लिए जाते हैं। कभी ऐसा भी हो सकता है कि किसी पशु या पेड़ द्वारा कभी किसी व्यक्ति को बचाया गया हो या कोई हानि पहुँचाई गई हो। परिणामत: वह व्यक्ति ऐसे पशु या पेड़ के प्रति विशेष कृतज्ञता या भय अनुभव करने लग सकता है और बाद में उसके वंशज ऐसे विशेष संबंध की सततता भी बनाए रख सकते हैं। अत: इस प्रकार के साधारणीकरण द्वारा भी टोटमवाद की उत्पत्ति हो जाती है। हो जनजाति में कुलों की उत्पत्ति के बारे में प्रचलित लोकविश्वासों की कहानियों से भी प्रकट होता है कि किसी व्यक्ति के किन्हीं पशुओं या पेड़-पौधों के साथ संयोगिक संबंधों को, अधिकांश स्थितियों में बाद में साधारणीकृत किया जाता रहा है। **हटन** का विश्वास है कि भारत में टोटमवाद संभवत: फ्रेजर द्वारा प्रस्तुत गर्भाधान सिद्धांत में निहित कारकों पर आधारित है और सहवर्धन के परिणाम के रूप में, अर्थात् गौण कारकों के योग से, इसका विकास होता है। अन्य शब्दों में, कभी किसी संस्था का आरंभ मामूली तौर पर ही हो सकता है, किंतु समय के साथ कई प्रकार के गौण कारण भी ऐसी संस्था की सुदृढ़ता बढ़ाने में योग दे सकते हैं। इन गौण कारणों में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कारण पारिस्थितिक (इकोलॉजिकल) संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता, अर्थात् मनुष्य-प्रकृति संबंधों का सामान्य सामंजस्य बनाए रखना है। इससे मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच सहानुभूतिपूर्ण संबंध बनाए रखे जा सकते हैं। इसी से सामाजिक स्तर पर टोटमवाद का विकास होता है।

कुल और बहिर्विवाह के साथ टोटमवाद के स्थायी संबंध की थोड़ी-बहुत व्याख्या आवश्यक है। यह बात पहले ही बताई जा चुकी है कि बहिर्विवाह एकपक्षीय समूहों का एक अनिवार्य सहगामी लक्षण है, क्योंकि अंतर्विवाह को निषिद्ध किए बिना ऐसे समूहों की रचना संभव नहीं हो सकती। यदि व्यक्ति अपने ही समूह में विवाह करने लगे तो एक समय ऐसा आ सकता है जब ऐसा समूह पूर्णत: पितृवंशीय या पूर्णत: मातृवंशीय नहीं रह सकेगा।

इसलिए हम कह सकते हैं कि एकपक्षीय समूहों (कुलों) और बहिर्विवाह के बीच संबंध तात्त्विक महत्त्व का है। यह संबंध कारणात्मक और सहज (जैव) है। किंतु यही बात टोटमवाद और बहिर्विवाह के संबंध के बारे में नहीं कही जा सकती। टोटमवाद और बहिर्विवाह के बीच कोई तर्कसंगत, स्पष्ट या कारणात्मक संबंध नहीं है।

सभी प्रकार के एकपक्षीय समूहों के बारे में लिखते हुए **मर्डक** का कथन है टोटमवाद वंश, सिब, द्विदल आदि की समान विशेषता है। जब ऐसे सामाजिक समूहों के नामकरण की आवश्यकता होती है तो पशु-नाम इसकी पूर्ति बखूबी कर ही देते हैं। इस प्रकार के संबंध के अन्य कोई भी कारण दिए जा सकते हैं, किंतु वास्तविक अनुभव बताता है कि जहाँ कहीं कुल-संगठन होता है वहाँ यह सामान्यत: टोटमवाद से संबद्ध पाया ही जाता है यों गुर्डन ने खासियों के कुल बहिर्विवाह के बारे में तो लिखा है किंतु इनमें टोटमवाद का प्रचलन है या नहीं, इसके बारे में कुछ नहीं कहा है।

उपरोक्त उदाहरण से यह प्रमाणित हो जाता है कि टोटमवाद और बहिर्विवाह केवल इसी तथ्यवश संबंधित पाए जाते हैं कि दोनों सामान्यत: या तात्त्विक रूप में कुल संगठन से सूत्रबद्ध होते हैं, यद्यपि दोनों एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं।

2.2 नातेदार समूह, सहवंशीय स्वजन (Kingroup, Kindred)

नातेदार/स्वजन (Kin)

रक्त अथवा विवाह बंधनों द्वारा आबद्ध व्यक्तियों को नातेदार या स्वजन कहते हैं। अधिकतर नातेदार परिवार से अलग रक्तमूलक होते हैं। रक्त संबंधों की मान्यता बहुधा सांस्कृतिक प्रतिमानों द्वारा निर्धारित होती है। यही कारण है कि संबंध श्रेणियों में कुछ व्यक्ति स्वजन या नातेदार माने जाते हैं, जबकि कुछ अन्य संबंधियों को सिद्धान्त: स्वीकार नहीं किया जाता।

भिन्नशाखाई स्वजन/नातेदारी (Collateral Kin)

जो स्वजन मुख्य समूह से प्रशाखा के रूप में अलग हो जाते हैं, जैसे चाचा और चचेरे भाई-भतीजे आदि भिन्नशाखाई स्वजन कहलाते हैं। सरल भाषा में, व्यक्ति के समरेखीय स्वजनों के वंशजों को भिन्न शाखाई स्वजन कहते हैं।

समरेखीय स्वजन/नातेदारी (Lineal Kin)

जो स्वजन वंशानुक्रम में प्रत्यक्षत: एक दूसरे से संबंधित होते हैं, उन्हें समरेखीय या एक शाखाई स्वजन कहते हैं। समरेखीय स्वजन एक व्यक्ति के प्रत्यक्ष पूर्वज तथा प्रत्यक्ष वंशज होते हैं, जैसे व्यक्ति के माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी तथा उसकी सन्तानें व पोते-पोतियाँ, आदि।

प्राथमिक स्वजन (नातेदारी) (Primary Kin)

एक व्यक्ति से प्रत्यक्षत: नातेदारी के आधार पर जुड़े व्यक्ति प्राथमिक स्वजन श्रेणी में गिने जाते हैं। पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माता-पुत्री, भाई-भाई, भाई-बहिन, बहिन-बहिन तथा पति-पत्नी प्राथमिक स्वजनों की श्रेणी में आते हैं। इनमें पति-पत्नी को छोड़कर, जो कि वैवाहिक संबंधी होते हैं, सभी रक्त संबंधी हैं।

द्वितीयक स्वजन (नातेदारी) (Secondary Kin)

प्राथमिक स्वजनों के प्राथमिक संबंधी द्वितीयक स्वजनों की श्रेणी में आते हैं, जैसे व्यक्ति का साला, दादा, मामा, नाना, आदि। प्रसिद्ध मानवशास्त्री **जी. पी. मर्डक** ने इसमें 33 प्रकार के संबंधियों का उल्लेख किया है।

तृतीयक स्वजन (Teritiary Kin)

द्वितीयक संबंधियों के प्राथमिक संबंधियों की गणना तृतीयक स्वजनों में की जाती है, जैसे साले की पत्नी या पुत्र। **मर्डक** के अनुसार एक व्यक्ति के 151 प्रकार के तृतीयक स्वजन होते हैं।

सहवंशीय स्वजन (Kindred)

द्विपक्षीय या द्विधाराई वंशक्रम के संबंधी सामूहिक रूप से सहवंशीय स्वजन कहलाते हैं। ये वंशज माता अथवा पिता दोनों की ओर से हो सकते हैं। इसमें पिता के भाई, बहिन व उनकी संतानों के साथ-साथ माता के भाई-बहिन व उनकी संतानें सहवंशी माने जाते हैं।

टास्क नातेदार समूह, सहवंशीय स्वजन के बारे में आप क्या जानते हैं?

2.3 सारांश (Summary)

- एक ऐसे रक्तमूलक एकपक्षीय वंश समूह को कुल कहते हैं, जिसके अर्द्धांशों किसी ज्ञात पूर्वज से अपने पीढ़ीगत संबंधों की खोज करते हैं।
- कुल की सदस्यता पूर्णत: रक्त संबंधों पर आधारित होती है।
- जब किसी कारण विशेष से कई कुल या गोत्र एक बड़े समूह के रूप में संयुक्त हो जाते हैं भ्रातृदल कहा जाता है। यह किसी भी जनजाति का उप-विभाजन है।
- जब कोई आदिवासी समूह किसी कारणवश दो अर्द्धांशों में बंट जाता है तो प्रत्येक अंश को भ्रातृदल, द्विदल कहते हैं। आदिवासी समूह में इसे 'द्वैध या द्विदल संगठन' कहा जाता है।

2.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **निकटाभिगमन (Incest)**—अति निकट रूप में रक्त-संबंधों द्वारा जुड़े विषम लिंगियों के बीच स्थापित लैंगिक संबंध जिनमें विवाह वर्जित होता है, निकटाभिगमन कहलाता है। पिता-पुत्री, माता-पुत्र अथवा सहोदर भाई-बहन के बीच लैंगिक संबंध निकटाभिगमन की श्रेणी में आता है।
2. **निकटाभिगमन निषेध (Incest taboo)**—निकटतम संबंधियों के बीच वर्जित किए गए लैंगिक संबंधों को ही निकटाभिगमन निषेध कहा जाता है। जैसे पिता-पुत्री, माता-पुत्र सहोदर भाई-बहन के बीच लैंगिक संबंध वर्जित है।

2.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वंश और कुल में क्या अंतर है?
2. भ्रातृदल का क्या अर्थ है?
3. नातेदार समूह से आप क्या समझते हैं?
4. टोटमवाद का क्या अर्थ है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. जनजातियों 2. बहिर्विवाही 3. पशुओं।

नोट

2.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।
2. सामाजिक मानवशास्त्र—मजुमदार एवं मदान।
3. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ—गुप्ता एवं शर्मा।
4. भारत में परिवार की सैर—ट्रेमवोर अलिक, कल्पज पब्लिकेशन।

इकाई–3: आधारभूत शब्द एवं अवधारणाएँ: उत्तराधिकार, पदारोहन, समरक्तता और विवाह संबंधी (Basic Terms and Concepts: Inheritance, Succession, Consanguinity and Affinity)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 संगोत्रता (नातेदारी) के भेद (Types of Kinship)
3.2 संगोत्रता (नातेदारी) की श्रेणियाँ (Categories of Kinship)
3.3 अनुक्रमण या पदारोहन (Succession)
3.4 सारांश (Summary)
3.5 शब्दकोश (Keywords)
3.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी के अन्तर्गत समरक्तता के संबंध को समझना।
- नातेदारी के अन्तर्गत विवाह-संबंधों को समझना।
- अनुक्रमण या पदारोहन की अवधारणा की जानकारी।
- उत्तराधिकार के अर्थ की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

नातेदारी का प्रत्येक समाज में बहुत महत्त्व है। संगमन, गर्भावस्था, पितृत्व, समाजीकरण, सहोदरता आदि जीवन के मूलभूत तथ्यों के साथ मानव व्यवहार का अध्ययन ही नातेदारी का अध्ययन है। मनुष्य समाज में जन्म के बाद से

नोट

ही अनेक लोगों से सम्बन्धित हो जाता है। इन संबंधों में रक्त एवं विवाह के आधार पर बने सम्बन्ध अधिक स्थायी एवं घनिष्ठ होते हैं। सम्बन्धों का निर्माण मानव द्वारा की जाने वाली सामाजिक अन्तःक्रिया का ही परिणाम है। जिन विशिष्ट सामाजिक सम्बन्धों द्वारा मनुष्य बंधे होते हैं और जो सम्बन्ध समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं, उन्हें हम नातेदारी के अन्तर्गत सम्मिलित करते हैं।

3.1 संगोत्रता (नातेदारी) के भेद (Types of Kinship)

सामाजिक संबंधों में से सार्वभौमिक और आधारभूत संबंध वे हैं जो प्रजनन पर आधारित होते हैं प्रजनन की कामना दो प्रकार के संबंधों को जन्म देती है–

(*i*) माता-पिता एवं सन्तानों के बीच तथा भाई-बहिनों के बीच बनने वाले सम्बन्ध–इन्हें हम समरक्तता के संबंध कहते हैं।

(*ii*) पति-पत्नी के मध्य बनने वाले एवं इन दोनों के पक्षों के बीच बनने वाले सम्बन्ध, जिन्हें हम विवाह सम्बन्ध कहते हैं। दोनों प्रकार के संबंधों का हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख करेंगे–

***(i)* समरक्त संबंध** (Consanguineous Relations): प्रजनन के आधार पर उत्पन्न होने वाले सामाजिक सम्बन्धों में से एक प्रकार वह है जो रक्त या समरक्तता के आधार पर बनता है, जैसे माता-पिता एवं संतानों के बीच का संबंध। संतानों माता-पिता से वाहकाणु (Genes) ग्रहण करती हैं और ऐसी मान्यता है कि उनमें समान रक्त पाया जाता है। इसी प्रकार से भाई-बहिनों में भी रक्त सम्बन्ध होते हैं।

नोट्स एक व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बहिन, दादा-दादी, मामा, नाना-नानी, चाचा, बुआ आदि रक्त संबंध ही हैं, लेकिन रक्त सम्बन्धियों के बीच सदा ही प्राणी शास्त्रीय संबंध होना आवश्यक नहीं है।

इन संबंधों को यदि समाज स्वीकृति दे देता है तो वे वास्तविक संबंधों की तरह ही माने जाते हैं। अतः रक्त संबंधों में जैविकीय तथ्य इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना की सामाजिक मान्यता का तथ्य। विभिन्न समाजों में हमें इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे। मलेशिया के ट्रोब्रियाण्डा द्वीप निवासियों में वास्तविक पिता कभी-कभी अज्ञात होता है, लेकिन परम्परानुसार संतान का पिता वही माना जाता है जो उस लड़की से विवाह करता है। गोद लेने वाली प्रथा इसका सार्वभौमिक उदाहरण है। जिस व्यक्ति को गोद लिया जाता है, उसके प्रति सभी जगह ऐसा व्यवहार किया जाता है जैसे वह जैविक रूप से उत्पन्न संतान हो। यदि वास्तविक रक्त संबंध ही ऐसे संबंधों का आधार होता है तो हम कई सम्बन्धियों को एक ही नाम से क्यों पुकारते हैं जैसे पिता की आयु व माता की आयु के लोगों को पिता या माता शब्दों द्वारा सम्बोधित क्यों करते हैं? कुछ लोग जैविकीय सम्बन्धों की तुलना में सम्बन्धियों द्वारा निभाये गये अधिकार एवं कर्तव्यों को अधिक महत्त्व देते हैं। मलेशिया के कुछ भागों में बच्चा किस परिवार का माना जायेगा, इसका निर्णय प्रसव की क्रिया से नहीं होता, वरन् कुछ सामाजिक कृत्यों पर निर्भर है। वहाँ एक द्वीप में तो प्रसूता का जो व्यक्ति उसके कार्यों का मूल्य देता है, वही उसकी सन्तान का पिता कहलाता है और उस व्यक्ति की पत्नी उस बच्चे की माँ बन जाती है। एक-दूसरे द्वीप में वह व्यक्ति पिता बन जाता है जो गृह द्वार पर साइकस वृक्ष के पत्ते का आरोपण करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पितृत्व और मातृत्व सृजन एवं प्रसवन की शारीरिक क्रियाओं पर ही पूर्णतः आधारित नहीं है, वरन् सामाजिक प्रथाओं पर निर्भर है। अतः स्पष्ट है कि नातेदारी में सामाजिक मान्यता जैविक तथ्य पर आरोपित है।

नोट

***(ii)* विवाह संबंध** (Affinal Relations): प्रजनन पर आधारित नातेदारी संबंधों में विवाह संबंध भी है जो विषम-लिंगियों के बीच समाज की स्वीकृति के परिणामस्वरूप स्थापित होता है। केवल पति-पत्नी ही विवाह संबंधी नहीं है, वरन् उन दोनों के परिवारों के अनेक संबंधी भी परस्पर विवाह संबंधी होते हैं; जैसे सास, ससुर, ननद, भौजाई, जीजा, साली, साला संबंधी, साढू, फूफा, भाभी, बहू आदि। इन सम्बन्धों को दो व्यक्तियों के संदर्भ में ही प्रकट किया जाता है; जैसे सास-बहू, ससुर-बहू, पति-पत्नी, जीजा-साली, देवर-भाभी, ननद-भौजाई, साला-बहनोई, मामी-भांजा, भतीजा-फूफा आदि। इन सभी सम्बन्धियों के बीच संबंध का आधार रक्त न होकर विवाह है।

3.2 संगोत्रता (नातेदारी) की श्रेणियाँ (Categories of Kinship)

हमारे जितने भी नातेदार हैं उन सबसे हम समान रूप से सम्पर्क, निकटता एवं घनिष्ठता नहीं रखते हैं। कुछ हमारे अधिक निकट हैं तो कुछ दूर। इस निकटता, घनिष्ठता एवं सम्पर्क के आधार पर हम नातेदारों को विभिन्न श्रेणियों में बाँट सकते हैं जैसे–प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थ एवं पंचम आदि।

मरडॉक ने नातेदारी की श्रेणियों का गहन अध्ययन किया है।

प्राथमिक संबंधी (Primary Relatives) वे व्यक्ति हैं जिनसे हमारा सीधा संबंध है या जिनके संबंध को प्रकट करने के लिए और संबंधी बीच में नहीं है। एक परिवार में आठ प्रकार के प्राथमिक संबंधी हो सकते हैं जिनमें सात रक्त से सम्बन्धित एवं एक विवाह से सम्बन्धित होता है। पिता-पुत्र, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, माता-पुत्री, भाई-भाई भाई-बहिन, बहिन-बहिन ये सभी रक्त संबंधी हैं। पति-पत्नी का प्राथमिक संबंध विवाह पर आधारित है।

द्वितीयक संबंधी (Secondary Relatives) वे हैं जो उपर्युक्त प्राथमिक सम्बन्धियों के प्राथमिक सम्बन्धी हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति का दादा उसका द्वितीयक सम्बन्धी है क्योंकि दादा से पोते का संबंध पिता के द्वारा है और पिता तथा पिता के पिता (दादा) आपस में प्राथमिक संबंधी हैं। ये रक्त संबंधी द्वितीयक रिश्तेदार हैं। रक्त संबंधी द्वितीयक रिश्तेदारों के और उदाहरण हैं—चाचा-भतीजा, मामा, नाना, नानी आदि। विवाह द्वारा बने नातेदारों में भी द्वितीयक सम्बन्धियों में हम सास-ससुर, साला-बहनोई, साली, देवर-भाभी आदि को गिन सकते हैं। मरडॉक ने 33 प्रकार के द्वितीयक संबंधों का उल्लेख किया है।

तृतीयक संबंधी (Tertiary Relatives) वे हैं जो हमारे द्वितीयक सम्बन्धियों के प्राथमिक सम्बन्धी हैं या हमारे प्राथमिक सम्बन्धियों के द्वितीयक संबंधी हैं।

पितामह (Great-grand father) हमारे तृतीयक संबंधी हैं क्योंकि हमारे पिता प्राथमिक संबंधी हैं और पिता के पिता द्वैतीयक संबंधी हैं, अतः दादा के पिता हमारे तृतीयक संबंधी होंगे। इसी तरह से साले का लड़का हमारा तृतीयक संबंधी होगा क्योंकि साला हमारा द्वितीयक संबधी और उसका पुत्र तृतीयक होगा। मरडॉक ने कुल 151 प्रकार के तृतीयक सम्बन्धियों का उल्लेख किया है। इस प्रकार संबंधों की यह श्रृंखला हम चतुर्थ, पंचम, षष्ठम और आगे भी ले जा सकते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. एक परिवार में आठ प्रकार के ········· हो सकते हैं।
2. दादा के पिता हमारे ········· संबंधी होंगे।
3. प्रजाति द्वारा क्षेत्र विशेष पर अधिकार जमाने की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया ही ········· कहलाती है।

नोट

3.3 अनुक्रमण या पदारोहन (Succession)

इस अवधारणा का प्रयोग दो अर्थों में किया गया है। प्रथम परिस्थितिकी प्रक्रिया के रूप में यह अवधारणा किसी क्षेत्र पर एक प्रकार के अधिभोक्ता को किसी अन्य प्रकार के अधिभोक्ता द्वारा जबरदस्ती से बाहर निकाल कर अधिकार जमाने को इंगित करती है। बाहर निकालने तथा दूसरी प्रजाति द्वारा क्षेत्र विशेष पर अधिकार जमाने की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया ही अनुक्रमण कहलाती है। अनुक्रमण तब होता है जब हमलावर किसी क्षेत्र पर डबल अधिभोक्ता बन जाते हैं।

द्वितीय, इस अवधारणा का प्रयोग अधिकारों के संचरण वरिष्ठता, चुनाव या नातेदारी संबंधों के आधार पर हो सकता है। अंग्रेजी के 'सक्सेशन' शब्द का बहुधा प्रयोग अंग्रेजी शब्दावली के अन्य शब्द 'इन्हेरिटेन्स' के पर्याय के रूप में किया जाता है जो पद तथा संपत्ति दोनों के संचरण की प्रक्रिया को प्रकट करता है। किन्तु 'सक्सेशन' शब्द अधिकांशत: पद के अधिकारों के संचरण की प्रक्रिया को प्रकट करता है। अत: इसे 'पदाधिकार' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। पदाधिकार का रूप मातृवंशीय तथा पितृवंशीय दोनों में से कोई एक हो सकता है।

उत्तराधिकार (Inheritance)

व्यक्तियों तथा वस्तुओं संबंधी वैधानिक तथा प्रथागत अधिकारों के संचरण को उत्तराधिकार कहते हैं। कुछ समाज वैज्ञानिकों के मतानुसार उत्तराधिकारी से तात्पर्य केवल सम्पत्ति के हस्तांतरण से ही नहीं है, अपितु इसमें पद, प्रतिष्ठा एवं सामाजिक परिस्थिति भी सम्मिलित होती है। जब प्रस्थिति का संचरण होता है तब वस्तुएँ तो स्वत: उस प्रस्थिति के धारक को मिल जाती हैं। अत: जब हम प्रस्थिति के संचरण की बात करते हैं तब उसमें न केवल सम्पत्ति अपितु मुखिया की प्रस्थिति आदि का उत्तराधिकार भी सम्मिलित होता है। वास्तव में, उत्तराधिकार एक व्यापक अवधारणा है जिसमें सम्पत्ति तथा पद दोनों के संचरण की प्रक्रिया सम्मिलित है। इन दोनों के अलग-अलग संचरण की प्रक्रिया के लिए दायाधिकार तथा पदाधिकार की अवधारणाओं का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा। आदिम जातियों में उत्तराधिकार संबंधी तथ्यों की खोज करते समय **प्रो. डब्ल्यू. एच. आर. रीवर्स** ने बहुत पहले ही वंशानुक्रम, दायाधिकार तथा पदाधिकार की प्रक्रियाओं में स्पष्ट भेद प्रदर्शित किया है। उन्होंने 'दाय' अर्थात् सम्पत्ति के हस्तांतरण के लिए दायाधिकार (इनहेरिटेन्स) तथा 'पद' अथवा 'प्रतिष्ठा' के संचरण के लिए पदाधिकार (सक्सेशन) के पदों के प्रयोग का सुझाव दिया है। दायाधिकार के लिए आंग्ल भाषा में कोई अलग शब्द न होने के कारण 'इनहेरिटेंस' शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है, जब कि यह पद सम्पत्ति और पद दोनों के उत्तराधिकार को अभियुक्त करता है। उत्तराधिकार के प्रमुख चार नियम हैं–पितृरेखीय, मातृरेखीय, उभयवाही और समस्त्रोतीय उत्तराधिकार।

उभयवाही उत्तराधिकार (Bilateral Inheritance)

उभयवाही शब्द का प्रयोग पुरुष तथा स्त्री दोनों के द्वारा वंशक्रम या सम्पत्ति-संचरण की व्यवस्था के लिए किया जाता है। जब एक व्यक्ति को पितृपक्ष और मातृपक्ष दोनों से अलग-अलग प्रकार से सम्पत्ति का हस्तांतरण होता है, तब यह व्यवस्था उभयवाही उत्तराधिकार कहलाती है।

समस्त्रोतीय या सपिन्ड उत्तराधिकार (Collateral Inheritance)

जब पद एवं सम्पत्ति का हस्तांतरण पुत्रों की अपेक्षा भाइयों को होता है, तब यह व्यवस्था समस्त्रोतीय या सपिन्ड उत्तराधिकार कहलाती है। संसार की कुछ आदिवासी जातियों जैसे किकुयू एवं काफिर में यह प्रथा देखने को मिली है।

नोट

मातृरेखीय उत्तराधिकार (Matrilineal Inheritance)

जब सम्पत्ति एवं पद का हस्तांतरण संतानों को मातृ-पक्ष के आधार पर होता है, तब इसे मातृरेखीय उत्तराधिकार कहते हैं। यह व्यवस्था मातृवंशीय समाजों की मुख्य विशेषता है जिनमें सम्पत्ति के हस्तांतरण के दो प्रमुख रूप देखने में आये हैं, यथा माँ से पुत्री को और मामा से भानजे को। जहाँ परिवार की सम्पत्ति स्त्रियों की समझी जाती है तथा उन्हें मालिकाना अधिकार प्राप्त होता है, वहाँ सम्पत्ति का हस्तांतरण माँ से पुत्री को होता देखा गया है। भारत की खासी जनजाति इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। कई मातृवंशीय समाजों में उत्तराधिकार की यह प्रक्रिया मामा से भान्जे की ओर चलती है। इस संबंध में **पिडिंगटन** ने लिखा है, 'मातृरेखीय पदाधिकार का अर्थ, वास्तव में पद एवं पदवी का संचरण स्त्रियों के माध्यम से पुरुष से पुरुष को होना है।'

पितृरेखीय उत्तराधिकार (Patrilineal Inheritance)

जब पद एवं साम्पत्तिक अधिकारों के संरचरण की प्रक्रिया पुरुष रेखा का अनुसरण करते हुए पिता से पुत्र के रूप में चलती है, तब यह व्यवस्था पितृरेखीय उत्तराधिकार कहलाती है।

टास्क उभयवाही उत्तराधिकार किसे कहते हैं?

3.4 सारांश (Summary)

- माता-पिता तथा संतानों के बीच तथा भाई-बहनों के बीच के संबंध समरक्तता संबंध कहलाते हैं।
- विवाह संबंध समाज की स्वीकृति द्वारा विषम लैंगिक होता है।
- सास-ससुर, जीजा-साली, देवर-भाभी के बीच का संबंध रक्त न होकर विवाह-संबंधी है।
- व्यक्तियों तथा वस्तुओं संबंधी वैधानिक तथा प्रथागत अधिकारों के संचरण को उत्तराधिकार कहते हैं।
- उत्तराधिकार के प्रमुख चार नियम हैं—उभयवाही, सपिण्ड, मातृरेखीय तथा पितृरेखीय।

3.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **ज्येष्ठाधिकार (Primogeniture):** उत्तराधिकार का एक नियम जिसके अनुसार सबसे बड़ा पुत्र (मातृवंशीय समाजों में पुत्री) माता-पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है।
2. **कनिष्ठाधिकार (Ultimogeniture):** उत्तराधिकार वह नियम जिसके अनुसार सबसे छोटा पुत्र (मातृवंशीय समाज में पुत्री) अपने माता-पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी बनता है। एशिया में यह प्रथा तुर्क, मंगोल जाति में पाई जाती है।
3. **समसाधिकार (Unigeniture):** उत्तराधिकार का एक नियम जिसके अंतर्गत सहोदरों के समूह में कोई एक माता-पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी बनता है।

3.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नातेदारी के प्रकारों का वर्णन करें।
2. पदारोहन का क्या अर्थ है?
3. उत्तराधिकार के प्रमुख चार नियम बताएँ।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. प्राथमिक संबंधी
2. तृतीयक
3. अनुक्रमण।

3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार—के.एम. कपाड़िया।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–4: नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोण: ऐतिहासिक एवं उद्विकासीय (Approaches to the Study of Kinship: Historical and Evolutionary)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
4.1 ऐतिहासिक उपागम (Historical Approaches)
4.2 उद्विकासीय उपागम (Evolutionary Approaches)
4.3 सारांश (Summary)
4.4 शब्दकोश (Keywords)
4.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
4.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी अध्ययन के ऐतिहासिक उपागम की जानकारी।
- नातेदारी अध्ययन के उद्विकासीय उपागम की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

उपागम के उपयोग की कोई सीमा नहीं होती है। उपागम का उपयोग परिप्रेक्ष्य के अनुसार किसी भी विषय में किया जा सकता है। उपागम तो एक मार्ग है जिसके द्वार लक्ष्य (परिप्रेक्ष्य) तक पहुँच जाता है। एक ही उपागम (जैसे–उद्विकासीय उपागम) का प्रयोग जीव विज्ञान, जीवों का; मानवशास्त्र मानव और संस्कृति का; समाजशास्त्र–समाज,

नोट

धर्म, परिवार, विवाह, ज्ञान, कला आदि को अपने-अपने परिप्रेक्ष्य के अनुसार अध्ययन एवं सिद्धांतों का निर्माण करने के लिए प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार से जीव विज्ञान जीवों को और समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए संघर्ष उपागम का प्रयोग करते हैं। निष्कर्षत: एक ही उपागम या मार्ग द्वारा विभिन्न वैज्ञानिक अपने-अपने लक्ष्य तक या परिप्रेक्ष्य के अनुसार विषय-सामग्री का अध्ययन, मनन एवं सिद्धांतों का निर्माण करते हैं।

4.1 ऐतिहासिक उपागम (Historical Approaches)

इतिहास में केवल **'क्या था'** का ही अध्ययन नहीं किया जाता है वरन् यह भी ज्ञात किया जाता है कि **'क्यों और कैसे घटित हुआ'**। इतिहास के द्वारा समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाओं का क्रमिक एवं व्यवस्थित अध्ययन करके हम सामाजिक जीवन की निरन्तरता और सामान्य धारा को समझ सकते हैं। आज यह विचार जोर पकड़ता जा रहा है कि कोई भी घटना अचानक घटित नहीं होती वरन् उसका एक अतीत होता है, एक इतिहास होता है, जिसे समझे बिना उस घटना की पूर्ण एवं स्पष्ट व्याख्या और विश्लेषण सम्भव नहीं है। यही कारण है कि समाजशास्त्र में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग बढ़ा है और अनेक समाजशास्त्रियों ने समाज, सामाजिक समूहों एवं संस्थाओं का अध्ययन करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया है। समाज की उत्पत्ति और विकास को समझने के लिए तो ऐतिहासिक पद्धति ही एकमात्र विधि है। समाजशास्त्र में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग 19वीं सदी से ही होने लगा।

नोट्स सन् 1859 में डार्विन की पुस्तक *'Origin of the Species'* (जीवों की उत्पत्ति) के प्रकाशन के बाद से तो समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में ऐतिहासिक विधि लगभग छा-सी गई और **परिवार, विवाह, नातेदारी, धर्म, राजनीतिक एवं आर्थिक संस्थाओं के अध्ययन हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाने लगा।**

समाजशास्त्र में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करने वाले विद्वानों में कॉम्ट, स्पेन्सर, समनर, दुर्खीम, वेबर, सोरोकिन, ऑगबर्न, मिल्स, रेमण्ड ऐरो, वैलाह, नारमन विरबाय, टॉयनबी, थामस एवं नैनिकी, कोल्टन, वेस्टरमार्क, राधाकुमुद मुकर्जी, घुरिए, ए.आर. देसाई, कपाड़िया, कर्वे, दुबे आदि प्रमुख हैं।

अंग्रेजी का 'History' शब्द 'Historia' से बना है जिसका अर्थ है सीखकर या खोजकर ज्ञान प्राप्त करना। सामान्यत: ऐतिहासिक विधि का अर्थ है किसी घटना या समस्या के कारकों को उनके अतीत में खोजना। ऐतिहासिक विधि का उद्देश्य उन विशिष्ट दशाओं या कारकों का विवरण प्रस्तुत करना है जिनका किसी घटना के उद्गम, विकास या परिवर्तन से कोई संबंध रहा है। दूसरे अर्थों में अतीत की सहायता से वर्तमान को समझना ऐतिहासिक विधि का मूल मंत्र है। विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषाएँ निम्न प्रकार दी हैं–

श्रीमती पी. वी. यंग (P.V. Young) के अनुसार, "ऐतिहासिक पद्धति आगमन के सिद्धांतों के आधार पर अतीत की उन सामाजिक शक्तियों की खोज है जिन्होंने कि वर्तमान को ढाला है।" इस कथन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक विधि में भूतकाल की घटनाओं की खोज आगमन विधि द्वारा करके सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है अर्थात् किसी विशिष्टता के आधार पर व्यापक निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

रैडक्लिफ ब्राउन (Radcliffe Brown) के अनुसार, "ऐतिहासिक पद्धति वह विधि है जिसमें वर्तमानकाल में घटित होने वाली घटनाओं को अतीत में घटित घटनाओं के धारा प्रवाह व क्रमिक विकास की एक कड़ी के रूप में मानकर अध्ययन किया जाता है।"

टी. बी. बॉटोमोर (T.B. Bottomore) के अनुसार, "वह (ऐतिहासिक विधि) सामाजिक संस्थाओं, समाजों और सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास और रूपान्तरण की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करती है। यह मानव इतिहास के

सम्पूर्ण विस्तार और समाज की समस्त प्रधान संस्थाओं से सम्बद्ध है अथवा यह एक विशेष सामाजिक संस्था के सम्पूर्ण विकास से सम्बन्धित है।" बॉटोमोर की परिभाषा से ऐतिहासिक पद्धति के बारे में चार बातें स्पष्ट होती हैं–(1) **इसमें सामाजिक संस्थाओं, समाजों और सभ्यताओं** की उत्पत्ति, विकास एवं रूपान्तरण का अध्ययन किया जाता है; (2) यह मानव इतिहास के सम्पूर्ण विकास का अध्ययन करता है; (3) इसमें समाज की सभी प्रमुख संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है; तथा (4) इसमें किसी एक **विशेष सामाजिक संस्था के विकास** का अध्ययन भी किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक पद्धति घटनाओं का वर्णन और विवरण देने वाली पद्धति मात्र नहीं है जैसा कि कुछ विद्वान मानते हैं वरन् यह घटनाओं की ऐतिहासिक संदर्भ में वैज्ञानिक व्याख्या करती है। इस विधि में भूतकालीन घटनाओं एवं तथ्यों के क्रमिक विकास, नियमितताओं एवं सामाजिक प्रभावों के आधार पर वर्तमान में घटित होने वाली सामाजिक-सांस्कृतिक घटनाओं की व्याख्या एवं विश्लेषण किया जाता है। **संक्षेप में, यह अतीत की सहायता से वर्तमान को समझने की विधि है।**

ऐतिहासिक पद्धति के स्रोत (Sources of Historical Method)

ऐतिहासिक पद्धति का मुख्य आधार ऐतिहासिक तथ्य ही हैं जिनका संकलन विभिन्न स्रोतों द्वारा किया जाता है। ये स्रोत कौन-कौन से हो सकते हैं, इस बारे में विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं। **लुण्डबर्ग** ने ऐतिहासिक तथ्यों के दो स्रोतों का उल्लेख किया है–(1) लिखित सामग्री जो प्रलेखों, प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों, प्राचीन सिक्कों एवं इमारतों पर दिये गए विवरण के रूप में उपलब्ध होते हैं। (2) भू-वैज्ञानिकों द्वारा खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ; जैसे मूर्तियाँ, बर्तन एवं अन्य अवशेष आदि। विन्सेंट ने ऐतिहासिक सामग्री के तीन स्रोतों का उल्लेख किया है–(*i*) लिखित सामग्री, जैसे–कथाएँ, वृतांत, डायरियाँ, वंशावलियाँ, चित्र, सिक्के एवं कलात्मक वस्तुएँ, आदि; (*ii*) स्मारक चिह्न, जैसे–मानव के अस्थिपंजर, उपकरण, व्यापारिक अभिलेख, संस्थात्मक स्वरूप तथा हस्तशिल्प की वस्तुएँ; आदि (*iii*) विभिन्न शिलालेख जिनका संबंध प्राचीन दर्शन, घटनाओं एवं लोक-साहित्य से होता है।

श्रीमती पी. वी. यंग (P.V. Young) ने तीन प्रकार के ऐतिहासिक स्रोतों का उल्लेख किया है–

(*i*) वे प्रेलेख (Documents) तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री जिन तक इतिहासकार की स्वयं की पहुँच है।

(*ii*) सांस्कृतिक इतिहास तथा विश्लेषणात्मक इतिहास (Analytical History): इसके अन्तर्गत डायरियाँ, प्राचीन धार्मिक ग्रंथ, आत्मकथाएँ, गुप्त प्रलेख, व्यापारिक समझौते तथा परम्पराएँ आदि आते हैं। जिनका अध्ययन करना **हॉवर्ड बेकर** (Howard Becker) ऐतिहासिक पद्धति के लिए आवश्यक मानते हैं।

(*iii*) विश्वसनीय निरीक्षकों तथा गवाहों की व्यक्तिगत सूचनाएँ: उपर्युक्त सभी स्रोतों द्वारा ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है, किन्तु इनमें से किसका कब, क्यों और कितना उपयोग किया जायेगा, यह अनुसंधानकर्ता के निर्णय, अध्ययन की समस्या, प्रकृति एवं क्षेत्र पर निर्भर करता है।

ऐतिहासिक पद्धति के चरण (Steps of Historical Method)

ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग करने के लिए निम्नांकित चरणों से गुजरना पड़ता है–

1. समस्या का चुनाव (Selection of problem): इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय सर्वप्रथम, समस्या का चुनाव किया जाता है जिसका शोधकर्ता अध्ययन करना चाहता है। समस्या ऐसी होनी चाहिए जिसका ऐतिहासिक विधि द्वारा अध्ययन संभव हो। अध्ययन-विषय ऐसा हो (*i*) जिसमें अध्ययनकर्ता की रुचि हो; (*ii*) जिसके बारे में हमें थोड़ा-बहुत पूर्व ज्ञान हो; (*iii*) अध्ययन-विषय हमारे साधनों की सीमा के अनुरूप हो अर्थात् हमारे पास उपलब्ध धन, श्रम एवं समय के अनुरूप हो; तथा (*iv*) अध्ययन-विषय उपयोगी भी होना चाहिए।

नोट

2. सूचना स्रोतों का निर्धारण (Determination of sources of information): समस्या के चुनाव के बाद समस्या से सम्बन्धित तथ्यों के स्रोतों को ज्ञात किया जाता है अर्थात् यह देखा जाता है कि ऐतिहासिक तथ्य किन ग्रंथों, पुस्तकालयों, संग्रहालयों एवं अन्य स्थानों से प्राप्त हो सकते हैं। इन सभी की जानकारी अध्ययन से पूर्व ही कर ली जानी चाहिए।

3. तथ्य संकलन (Data collection): सूचना स्रोतों का निर्धारण कर लेने के बाद उन स्रोतों के विषय से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया जाता है। ऐतिहासिक तथ्य प्राथमिक और द्वैतीयक दोनों स्रोतों से ज्ञात किये जा सकते हैं। ऐतिहासिक तथ्य हजारों, लाखों छपे हुए ग्रंथों, दस्तावेजों, शिलालेखों एवं वंशावलियों आदि में बिखरे पड़े हुए हैं, इनमें से विश्वसनीय एवं प्रामाणिक स्रोतों एवं तथ्यों का संकलन शोधकर्ता की योग्यता, अनुभव, दूरदर्शिता एवं प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। सरकारी प्रलेख गैर-सरकारी प्रलेखों की तुलना में अधिक विश्वसनीय होते हैं। तथ्यों के संकलन के समय हमें धन और समय की सीमा को भी ध्यान में रखना चाहिए। तथ्य वे ही संकलित किये जाएँ जो हमारे विषय में सम्बन्धित हों, उनमें पारस्परिक सम्बद्धता हो एवं विश्वसनीय एवं प्रामाणिक हों।

4. ऐतिहासिक आलोचना (Historical criticism): तथ्यों का संकलन कर लेने के बाद उसकी ऐतिहासिक आलोचना की जाती है अर्थात् यह देखा जाता है कि जिन स्रोतों से तथ्य संकलित किये गये हैं, वे प्रामाणिक एवं विश्वसनीय हैं या नहीं, कहीं वे जाली तो नहीं है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि उन स्रोतों के लेख किसी पक्षपात से ग्रसित तो नहीं हैं। इस प्रकार संकलित की गई सामग्री एवं उसके स्रोतों की वैधता एवं विश्वसनीयता की परख करना ही ऐतिहासिक आलोचना कहलाती है।

5. तथ्यों का वर्गीकरण व संगठन (Classification and Organisation of data): ऐतिहासिक पद्धति द्वारा अध्ययन का अगला चरण है—संकलित तथ्यों को अलग-अलग भागों में बांटना जिससे कि उनकी परस्पर तुलना की जा सके। गुणात्मक एवं संख्यात्मक तथ्यों को पृथक् एवं उन्हें व्यवस्थित किया जाता है।

6. विश्लेषण एवं व्याख्या (Analysis and Interpretation): तथ्यों के वर्गीकरण के बाद उनका वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है जिसमें घटना को कार्य-कारण के आधार पर समझाया जाता और निष्कर्ष निकाले जाते हैं। ऐसा करते समय उसे एक वैज्ञानिक की भाँति निष्ठा और निष्पक्षता बरतनी चाहिए एवं अपने व्यक्तिगत पक्षपात को अध्ययन से दूर रखना चाहिए।

7. प्रतिवेदन का निर्माण (Preparing Report): ऐतिहासिक पद्धति द्वारा अध्ययन का अन्तिम चरण प्रतिवेदन लेखन है। प्रतिवेदन लिखते समय सरल, स्पष्ट बोधगम्य, वस्तुनिष्ठ एवं रोचक भाषा-शैली का प्रयोग किया जाना चाहिए।

टास्क ऐतिहासिक पद्धति के स्रोत का उल्लेख करें।

ऐतिहासिक पद्धति का महत्त्व (Importance of Historical Method)

अतीत में घटित हुई घटनाओं का अध्ययन करने के लिए ऐतिहासिक पद्धति की उपयोगिता एवं महत्त्व निर्विवाद है। **एम. एच. गोपाल** (M. H. Gopal) ने लिखा है, "अगर कोई भी सामाजिक अनुसंधानकर्ता जो वर्तमान का विश्लेषण करते समय अतीत की उपेक्षा करता है, बहुत बड़ी जोखिम उठाता है।" इतिहास हमें अतीत के समाज का ज्ञान कराता है जिसकी कोई भी समाज वैज्ञानिक अवहेलना नहीं कर सकता। अनेक समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में ऐतिहासिक पद्धति का उपयोग किया है। दोनों विज्ञानों की घनिष्ठता के कारण ही समाजशास्त्र में एक नई शाखा ऐतिहासिक समाजशास्त्र (Historical Sociology) का उदय हुआ है। **हॉवर्ड** भी 'इतिहास को अतीत का

समाजशास्त्र और समाजशास्त्र को वर्तमान का इतिहास' कहते हैं। **जॉन मेज** (John Medge) ने भी लिखा है, "इतिहासवेत्ता को समाजशास्त्रियों की श्रेणी से बाहर कर देना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं है तथा केवल मूर्ख समाजशास्त्री ही प्रलेखों का उपयोग नहीं करते हैं। ऐतिहासिक पद्धति की उपयोगिता एवं महत्त्व निम्न प्रकार हैं–

1. विकासशील घटनाओं का अध्ययन: ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा हम किसी विशेष घटना या संस्था के घटने या उदय होने, उसकी उत्पत्ति और विकास को तथा उसे जन्म देने वाली परिस्थितियों को ज्ञात कर सकते हैं। अतीत के माध्यम से ही हम वर्तमान को अच्छी तरह समझ सकते हैं। **वाईटहेड** ने लिखा है–"वर्तमान में उभरती हुई प्रत्येक विशेषता में उसका सम्पूर्ण अतीत होता है और साथ ही उसके भविष्य का बीज भी छिपा रहता है।" अतीत अनुभवों का भंडार होता है जिसके माध्यम से हम वर्तमान को भली-भाँति समझ सकते हैं। विकासशील घटनाओं के विकासक्रम में आने वाले परिवर्तनों के अध्ययन के लिए यही विधि सर्वश्रेष्ठ है। समाजों, सभ्यताओं एवं संस्थाओं की उत्पत्ति, परिवर्तन एवं विकास को समझने में यह विधि अत्यन्त उपयोगी है।

2. सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का अध्ययन: ऐतिहासिक विधि के द्वारा हम सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों की प्रक्रिया को सरलता से समझ सकते हैं। समाज वैज्ञानिकों की विशेष रुचि परिवर्तन को ज्ञात करने में होती है। जब सामाजिक संस्थाओं एवं परिस्थितियों में परिवर्तन आता है तो उनके प्रभाव के कारण सामाजिक संगठन एवं संरचना भी परिवर्तित होती है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया का अध्ययन ऐतिहासिक विधि द्वारा ही संभव है।

3. अतीत के प्रभाव का मूल्यांकन: ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा हम किसी भी समाज पर भूतकालीन प्रभाव के महत्त्व का मूल्यांकन कर सकते हैं। अतीत के प्रभाव से कोई भी समाज मुक्त नहीं होता है लेकिन परंपरागत समाजों एवं प्राचीन संस्कृति वाले समाजों का अध्ययन उस समय तक अपूर्ण ही रहेगा जब तक उन पर पड़ने वाले अतीत के प्रभाव का मूल्यांकन नहीं कर लिया जाता। जिस समाज का इतिहास जितना लंबा होता है, उस पर अतीत का प्रभाव भी उतना ही गहन होता है। जिसका अध्ययन ऐतिहासिक पद्धति से ही सम्भव है।

4. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की व्यापकता: समाजशास्त्र की अन्य विधियाँ सामाजिक घटनाओं को विभिन्न छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट कर उनका सूक्ष्मता से अध्ययन करती हैं जबकि ऐतिहासिक पद्धति सामाजिक घटनाओं को उनकी समग्रता एवं सम्पूर्णता में देखती हैं। इस प्रकार यह विधि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को व्यापकता प्रदान करती है। इसके द्वारा समग्रवादी (Macroscopic) अध्ययन किये जा सकते हैं।

5. सामाजिक शक्तियों का अध्ययन: ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा हम उन सामाजिक शक्तियों का अध्ययन कर सकते हैं जिन्होंने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में योग दिया है। अतीत के अध्ययन से ही हम वर्तमान के रहस्यों को जान सकते हैं। अंग्रेज दार्शनिक **बर्नार्ड शा** (Bernard Shaw) ने लिखा है " अतीत समूह के पीछे नहीं होता वरन् समूह में विद्यमान होता है। आज बीत हुए कल से भिन्न अवश्य ही है परन्तु यह कल ही है जिसने कि आज को ढाला है और यही जीता हुआ कल व आज आने वाले कल (Tomorrow) को अवश्य ही प्रभावित करेगा।" इस प्रकार वर्तमान व्यवस्था का निर्माण करने वाली सामाजिक शक्तियों के प्रभाव एवं क्रम विकास का अध्ययन ऐतिहासिक विधि द्वारा सफलता से किया जा सकता है।

ऐतिहासिक पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Historical Method)

ऐतिहासिक पद्धति एक उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण अध्ययन विधि है, किन्तु इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं और नातेदारी के संदर्भ में भी लागू होती है जो निम्नांकित हैं–

1. विश्वसनीय सामग्री का अभाव: ऐतिहासिक विधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि जिन स्रोतों द्वारा तथ्यों का संकलन किया जाता है उन्हें प्रामाणिक एवं विश्वसनीय कैसे माना जाए। अधिकांश ऐतिहासिक विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण, पक्षपातपूर्ण एवं बढ़ा-चढ़ाकर लिखे होते हैं।

नोट

2. रिकार्ड रखने के दोषपूर्ण तरीके: इस विधि में एक कठिनाई यह भी है कि ऐतिहासिक तथ्यों के रिकार्ड व्यवस्थित तरीके से नहीं रखे जाते।

3. प्रलेखों का बिखराव: ऐतिहासिक विधि का एक दोष यह भी है कि इसमें दस्तावेज इधर-उधर बिखरे होते हैं, वे एक ही स्थान पर उपलब्ध नहीं होते हैं।

4. तथ्यों या घटनाओं की परीक्षा व पुनरावृत्ति असंभव: ऐतिहासिक घटनाओं का संबंध भूतकाल से होता है जिनकी न तो पुनरावृत्ति हो सकती है और न ही उनका अवलोकन ही किया जा सकता है, उन्हें केवल तार्किक आधार पर समझा जा सकता है।

5. गणना और माप संभव नहीं: चूंकि ऐतिहासिक तथ्यों एवं घटनाओं का संबंध भूतकाल से होता है, अत: उनका वर्णन ही किया जा सकता है, उनका सांख्यिकी विधि द्वारा माप संभव नहीं है।

6. एकरूपता का अभाव: ऐतिहासिक तथ्यों के बारे में विभिन्न इतिहासकारों के विचारों में एकरूपता नहीं पायी जाती है। उनकी मत-भिन्नता के कारण सही स्थिति क्या है, यह जानना एक कठिन कार्य होता है।

7. आधुनिक समाजों के लिए अनुपयुक्त: ऐतिहासिक पद्धति द्वारा हम अतीत के समाजों का अध्ययन कर सकते हैं, किन्तु वर्तमानकाल की अनेक समस्याओं जिनका संबंध तत्कालिक घटनाओं से है, का अध्ययन इस पद्धति द्वारा नहीं कर सकते।

8. पक्षपात की संभावना: ऐतिहासिक विधि से अध्ययन करने में व्यक्तिगत पक्षपात की अधिक संभावना रहती है क्योंकि प्रत्येक इतिहासकार घटना को अपने दृष्टिकोण से देखता है और उसकी व्याख्या व निष्कर्ष उसके अपने होते हैं।

9. काल्पनिक तथ्यों का प्रयोग: ऐतिहासिक पद्धति में प्राचीन घटनाओं, समाजों, संस्थाओं एवं संस्कृतियों का अध्ययन किया जाता है। कई बार हमें इनकी प्रारम्भिक स्थिति के बारे में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में शोधकर्ता उनके बारे में काल्पनिक अनुमान ही लगा पाता है जो उसके अध्ययन को अवैज्ञानिक एवं दोषयुक्त बना देता है।

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी इस विधि का उपयोग समाज विज्ञानों में वर्तमान की घटनाओं को अतीत से जोड़ने एवं समाज, संस्थाओं एवं संस्कृतियों के उद्‌भव एवं विकास को जानने के लिए किया जाता रहा है।

ऐतिहासिक पद्धति का समाजशास्त्र में प्रयोग: कुछ उदाहरण
(Use of Historical Method in Sociology: Some Examples)

समाजशास्त्र में ऐतिहासिक पद्धति को प्रयोग करने वाले विद्वानों की एक लंबी सूची है, किन्तु उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

ऑगस्ट कॉम्ट ने समाज के विकास की व्याख्या इसी पद्धति के आधार पर करते हुए समाज के विकास को मानव के बौद्धिक विकास से जोड़ा और कहा कि प्रत्येक समाज विकास के तीन स्तरों से गुजरता है–धार्मिक अवस्था, तात्विक अवस्था एवं वैज्ञानिक अवस्था।

हरबर्ट स्पेन्सर ने भी समाज के विकास, उसमें आने वाली कठिनाइयों, विकास के चरणों एवं प्रकार्यों की व्याख्या ऐतिहासिक पद्धति के आधार पर की है।

मैक्स वेबर: ने आधुनिक पूंजीवाद के उदय और उस पर धर्म के प्रभाव की कार्य-कारण के आधार पर व्याख्या इसी विधि के आधार पर की है।

वेस्टरमार्क ने अपनी पुस्तक 'History of Human Marriage' में मानव विवाह के इतिहास को प्रकट किया है।

ओपनहीमर ने अपनी कृति 'The state' में, सी. राइट मिल्स ने अमेरिका के सफेदपोश अपराधियों का तथा रेमण्ड ऐरो ने संघर्ष एवं युद्ध का ऐतिहासिक विवेचन किया है। **कार्ल मार्क्स** ने मानव इतिहास की भौतिक व्याख्या प्रस्तुत की। उनका द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद भी इस विधि पर आधारित है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. कोई भी सामाजिक अनुसंधानकर्ता जो वर्तमान का विश्लेषण करते समय ……… की उपेक्षा करता है, बहुत बड़ी जोखिम उठाता है।
2. तथ्यों के ……… के समय हमें धन और सीमा को भी ध्यान में रखना चाहिए।
3. वाईटहेड ने लिखा है–वर्तमान में उभरती हुई प्रत्येक विशेषता में उसका ……… होता है।

4.2 उद्विकासीय उपागम (Evolutionary Approaches)

जिस समय समाजशास्त्र का विकास हो रहा था उस समय (सन् 1859 ई.) चार्ल्स डार्विन ने ओरिजिन ऑफ़ स्पेसिज नामक पुस्तक प्रकाशित किये थे। डार्विन के जिन उद्विकासीय उपागमों के प्रमाणों तथा अभ्युपगमों का प्रभाव समाजशास्त्रियों पर पड़ा, वे निम्न हैं–(*i*) विकास सरल अवस्था से जटिल अवस्था में होता है। (*ii*) विकास का क्रम सीधी रेखा में होता है। (*iii*) विकास निश्चित चरणों में होकर गुजरता है। (*iv*) जैसे-जैसे विकास होता है वैसे-वैसे ही संरचना में न्यूनश्रम-विभाजन से अधिकतम श्रम-विभाजन की ओर विकास होता है। (*v*) जैसे-जैसे श्रम-विभाजन होता है वैसे-वैसे ही न्यून-विशेषीकरण से अधिकतम-विशेषीकरण तथा न्यून-पारस्परिक निर्भरता से अधिकतम-पारस्परिक-निर्भरता की ओर विकास होता है।

उस काल के समाजशास्त्रियों ने समाज, संस्कृति, सामाजिक संस्थाओं, धर्म, **परम्परा, परिवार, विवाह, नातेदारी, विचार,** आर्थिकी, कला आदि का अध्ययन उद्विकासीय पद्धति द्वारा किया। इन्होंने अपने-अपने अध्ययनों से सम्बन्धित घटनाओं के उद्विकासीय सिद्धांत भी प्रतिपादित किए। इनमें उल्लेखनीय वैज्ञानिक–स्पेन्सर, दुर्खीम, टॉयलर, मार्क्स, मोर्गन, सर हेनरी मेन और मेक मिलन आदि हैं। कुछ विद्वानों ने कला, धर्म-दर्शन तथा तर्क आदि पर अपना ध्यान केन्द्रित किया तो कुछ विद्वानों ने सम्पूर्ण समाज तथा संस्कृति पर अध्ययन कार्य किया और अपने-अपने उद्विकासीय विचार प्रकट किए।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने उद्विकास को इस रूप में परिभाषित किया है, "उद्विकास, तत्व का समन्वय तथा उससे सम्बन्धित गति है जिसके दौरान तत्व एक अनिश्चित-असम्बद्ध-समानता से निश्चित सम्बद्ध भिन्नता में बदलता है।" स्पेन्सर के अनुसार यही नियम समाज और संस्कृति के संबंध में लागू होता है। प्रारम्भिक उद्विकासियों की धारणा थी कि सामाजिक परिवर्तन तथा संस्कृति का संवर्द्धन एक सीधी रेखा के रूप में एक निश्चित क्रम में होता हैं विश्व के सभी समाज, संस्कृतियाँ तथा इनके विभिन्न अंग एक निश्चित विकास क्रम से होकर गुजरे हैं। यह विकास सरल से जटिल, समान से असमान और अनिश्चित से निश्चित की ओर होता है। उदाहरण के लिए–अति प्राचीन युग में सभी व्यक्ति केवल अपने विषय में जानकारी रखते थे–सामाजिक नियम, संस्कृति आदि के विषय में किसी को कोई ज्ञान न था सभी व्यक्ति प्राय: समान व एक-से थे और किसी को किसी के साथ मिलकर कार्य करना भी नहीं आता था। उनकी इस अवस्था को 'अनिश्चित-असम्बद्ध-समानता' की स्थिति कहा जा सकता है। शनै: शनै: उनके अनुभव, ज्ञान व विचार परिपक्व होते गए और सब मिलकर काम करने लगे, बाद में श्रम-विभाजन की स्थिति भी

आ गई। प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य को करने लगा, जिसे वह सबसे अच्छी तरह कर सकता था, और इस प्रकार सब मिलकर निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे। यह स्थिति 'निश्चित-सम्बद्ध-भिन्नता' की हो गई।

उद्विकासीय उपागम की पद्धति पर आधारित उद्विकास के इस सिद्धांत को स्पेन्सर, मॉर्गन, हेड्डन, टॉयलर और दुर्खीम आदि ने अपनी-अपनी कृतियों में स्पष्ट किया। प्रत्येक सामाजिक घटना में यही विकास देखने को मिलता है। आर्थिक क्षेत्र में उद्विकास के तीन प्रमुख स्तरों का उल्लेख किया जाता है–(1) शिकार करने और फल इकट्ठा करने की स्थिति, (2) चारागाह की स्थिति, और (3) कृषि की स्थिति। प्रौद्योगिकी के उद्विकास के तीन स्तर इस प्रकार हैं–(1) पाषाण युग, (2) ताम्र युग, और (3) लौह युग।

मॉर्गन का नाम इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनका मानना है कि मानव जाति का इतिहास अपने उद्गम, अनुभव और प्रगति में एक है। आपके मत में विकासवाद का 'सरलता से धीरे-धीरे जटिलता में बदलने का सिद्धांत' मानव समाज और संस्कृति के विकास में भी सही चरितार्थ होता है। मॉर्गन के अनुसार, "मानव समाज के उद्विकास के तीन स्तर हैं–*(i)* सर्वप्रथम, मानव-संस्कृति आरण्यक अवस्था (Savagery stage) की थी, *(ii)* दूसरी, असभ्य अवस्था (Barbarian Stage) थी, और *(iii)* तीसरी, सभ्य अवस्था (Civilized Stage) थी। इन्होंने प्रत्येक स्तर को निम्न, मध्य और उच्च स्तरों में बाँटा है। आरण्यक अवस्था के निम्न स्तर में मानव की उत्पत्ति हुई। मध्य स्तर पर उसने आग जलाना व मछली का शिकार करना सीखा और उच्च स्तर में तीर, धनुष आदि का आविष्कार किया गया।"

बर्बर अथवा असभ्य अवस्था के निम्न-स्तर में बर्तन बनाने की कला का प्रारंभ हुआ। मध्यस्तर में पशु-पालन व सिंचाई द्वारा कृषि कार्य का प्रारंभ हुआ और उच्च-स्तर में लोहे का प्रयोग किया जाने लगा। समाज की तीसरी सभ्य अवस्था की स्थिति के निम्न-स्तर पर भाषा एवं लेखन-काल का प्रयोग होने लगा। मध्य-स्तर पर व्यापार व मशीनों का प्रयोग होने लगा और उच्च-स्तर पर आज पूँजीवादी, समाजवादी यूरोपीय सभ्यता का विकास हो रहा है।

मॉर्गन ने विवाह और परिवार की उत्पत्ति व विकास को मानव इतिहास में देखा। इनके मत में प्रारंभ में मानव-समाज में यौनाचार की अवस्था थी, जिसमें किसी से भी यौन-संबंध स्थापित किए जा सकते थे। तत्पश्चात् समूह-विवाह, बहु-पति विवाह, बहु-पत्नी विवाह आदि का प्रचलन हुआ और धीरे-धीरे एक विवाह की स्थिति आई। विवाह के साथ-साथ परिवार में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। गोत्र से मातृपक्षीय, पितृपक्षीय आदि आधार परिवार के रहे हैं। वास्तव में परिवार पहले रक्त-संबंधी थे, फिर समूह-परिवार, सिण्डेस्मियन, परिवार, पितृसत्तात्मक और अन्त में, एक विवाही परिवार की स्थिति आई है। मॉर्गन के इस ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा विवाह और परिवार के उद्विकासीय सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं।

टॉयलर ने धर्म का उद्विकास बताया। उनके अनुसार, "बहुदेववाद से एक-देववाद की ओर धर्म का उद्विकास हुआ। स्पेन्सर भी टॉयलर के मत के समर्थक हैं। स्पेन्सर का मानना था कि समस्त धार्मिक संस्कार, कृत्य आदि का उद्भव पूर्वज-पूजा से हुआ है और इन सबका आधार भय था। इनके अनुसार, "सभी धर्मों की उत्पत्ति मरे हुए लोगों के डर के कारण और समस्त समाजों की उत्पत्ति जीवित के भय के कारण हुई है।"

टॉयलर ने धर्म की उत्पत्ति आत्मा में विश्वास के आधार पर मानते हैं और आत्माएँ अनेक हैं इसलिए सर्वप्रथम बहुदेववाद का उदय हुआ और बाद में यही अद्वैतवाद की स्थिति में आ गया। उद्विकासीय उपागम की पद्धति पर आधारित और भी अध्ययन हुए हैं, उनके विकास के क्रम भिन्न हैं, जैसे–सोरोकिन का चक्रीय-सिद्धांत।

सोरोकिन ने सोशियल एण्ड कल्चरल डायनामिक्स में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की व्याख्या को उद्विकासीय उपागम (ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति) के द्वारा समझने एवं समझाने का प्रयास किया है। आपकी मान्यता है कि समाज में संस्कृति का उद्विकास विचारणात्मक, आदर्शात्मक और इन्द्रियबोधक प्रकार की संस्कृतियों की स्थितियों से प्रसारित एवं परिवर्तित होता है। आपने विभिन्न समाजों की संस्कृतियों के ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करके सिद्ध किया

कि संस्कृतियों का भी चक्र चलता है। संस्कृतियों में निरन्तर चक्रीय उतार-चढ़ाव आते हैं। उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया विचारणात्मक और इन्द्रियपरक संस्कृतियों के बीच चलती रहती है। इस उतार-चढ़ाव की प्रक्रिया में संस्कृति को बीच में आदर्शवादी संस्कृति की अवस्था में से गुजरना होता है। सोरोकिन की मान्यता है कि समाज में परिवर्तन इन्हीं संस्कृतियों के रूपों में से चक्रीय-क्रम में घूमते रहना होता है।

स्पेंगलर का योगदान भी इस अध्ययन पद्धति के रूप में देखा जा सकता है जब आपने 'दा डिक्लाइन ऑफ दा वेस्ट' में सभ्यता के चक्रीय-सिद्धांत की स्थापना विश्व इतिहास के अध्ययन के आधार पर की। आपने निष्कर्ष दिया कि सभी संस्कृतियाँ बसंत, ग्रीष्म, शिशिर व हेमंत ऋतुओं की तरह से नियमित अवस्थाओं में परिवर्तित होती रहती हैं। **टायनबी** ने भी सभ्यताओं का अध्ययन किया और सभ्यताओं के विकास, स्थिरता और पतन के क्रम में चक्रीय परिवर्तन की व्याख्या की है। समाजशास्त्र में अनेक विद्वानों ने उद्विकासीय उपागम, उद्विकासीय अध्ययन पद्धति तथा उद्विकासीय सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं। लेकिन इस पद्धति की सीमाएँ तथा कमियाँ भी रही हैं।

नोट्स सन् 1959 ई. में चार्ल्स डार्विन ने ओरिजिन ऑफ स्पेसिज नामक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें आपने उद्विकायीय उपागम के द्वारा जीवों का उद्विकासीय सिद्धांत प्रतिपादित किया था।

उद्विकासीय उपागम का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation of Evolutionary Approach): उद्विकासीय उपागम की अनेक वैज्ञानिकों ने कमियों एवं सीमाओं का उल्लेख किया है—उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण मूल्यांकन प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनका संबंध नातेदारी के अध्ययन से भी है—

1. रेडक्लिफ: ब्राउन और मैलिनोवस्की के अनुसार उद्विकासीय उपागम का प्रयोग उन समाजों के अध्ययन में नहीं किया जा सकता है जिनके संबंध में ऐतिहासिक प्रमाणित तथ्य उपलब्ध नहीं होते हैं। इसी कारण विद्वानों का कहना है कि उद्विकासीय उपागम एवं पद्धति पूर्ण रूप से प्रमाणित एवं विश्वसनीय नहीं है।
2. उद्विकासीय उपागम के अन्तर्गत एकत्र तथ्यों, उनके कारण प्रभाव संबंधों तथा निष्कर्षों की जाँच करना संभव नहीं है। इस पद्धति में अनुमान तथा अटकल पर आधारित तथ्यों की सहायता से निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिनका परीक्षण करना संभव नहीं होता है।
3. कुछ आलोचकों का कहना है कि उद्विकासीय उपागम के द्वारा समाज के अतीत को समझना कठिन है। इसके द्वारा निष्कर्ष भी संभव नहीं है। यह उपागम उन समाजों के अध्ययन के लिए तो बिल्कुल अनुपयोगी है जिनका न तो लिखित इतिहास ही उपलब्ध है और न ही संस्कृति के ठोस अवशेष।
4. रेडक्लिफ-ब्राउन ने उद्विकासीय उपागम से संबंधित निम्न विचार व्यक्त किए हैं—
    (*a*) यह उपागम उन समाजों के अध्ययन के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है जिनका लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं होता है, जैसे—आदिम समाज, निरक्षर समाज आदि।
    (*b*) इसके द्वारा जो अध्ययन किए जाते हैं वे प्राक्कल्पनाओं तक ही सीमित रह जाते हैं। इस उपागम में किसी भी प्रकार का परीक्षण या निरीक्षण संभव नहीं होता है।
    (*c*) इस उपागम में एकत्र तथ्यों की प्रयोग-सिद्ध जाँच करना संभव नहीं है, न ही तथ्यों के पारस्परिक कार्य कारण-प्रभाव संबंध की प्रामाणिकता की जाँच ही संभव है।

(*d*) इस उपागम के द्वारा वैज्ञानिक समाज से संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं के अनुमानित काल-क्रमिक विकास ही पता लगा पाते हैं। वैज्ञानिक इसके द्वारा वास्तविक अवस्थाओं और घटनाओं के संबंध में सत्य, प्रमाणिक और विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए–

4. सर्वप्रथम बहुदेववाद का उदय किसके द्वारा किया गया–

(क) मॉर्गन (ख) दुर्खीम (ग) टॉयलर

5. विवाह और परिवार की उत्पत्ति व विकास को मानव इतिहास में किसने देखा–

(क) दुर्खीम (ख) मॉर्गन (ग) कार्ल-मार्क्स

6. उद्विकासीय उपागम के द्वारा जीवों का उद्विकासीय सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया–

(क) काल-मार्क्स (ख) टॉयलर (ग) चार्ल्स डार्विन

4.3 सारांश (Summary)

- सन् 1859 ई. में चार्ल्स डार्विन ने ओरिजिन ऑफ स्पेसिज नामक पुस्तक की रचना की।
- हर्बर्ट स्पेन्सर के अनुसार "उद्विकास, तत्व का समन्वय तथा उससे संबंधित गति है जिसके दौरान तत्व एक अनिश्चित-असम्बद्ध-समानता से निश्चित-संबद्ध-भिन्नता में बदलता है।"
- मार्गन के अनुसार मानव समाज के उद्विकास के तीन स्तर हैं–(*i*) मानव, (*ii*) संस्कृति आरण्यक अवस्था, असभ्य अवस्था और (*iii*) सभ्य अवस्था।

4.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **उद्विकासीय परिवर्तन (Evolutionary change)**–किसी निश्चित दिशा में निरन्तर एवं क्रमिक बदलाव उद्विकासीय परिवर्तन का द्योतक है।
2. **ऐतिहासिक उपागम (Historical Approach)**–इतिहास के द्वारा समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाओं का क्रमिक एवं व्यवस्थित करके हम सामाजिक जीवन की निरन्तरता और सामान्य धारा को समझ सकते हैं।

4.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नातेदारी अध्ययन के ऐतिहासिक उपागम की विवेचना करें।
2. नातेदारी अध्ययन के उद्विकासीय उपागम की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अतीत 2. संकलन 3. सम्पूर्ण अतीत

4. (ग) टॉयलर 5. (ख) मॉर्गन 6. (ग) चार्ल्स डार्विन।

4.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी–शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।
2. भारत में परिवारिक समाजशास्त्र का विकास–अल्का रानी, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।
3. सामाजिक मानवशास्त्र–मजुमदार एवं मदान।
4. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ–गुप्ता एवं शर्मा।

नोट

इकाई–5: नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोण: संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक (Approaches to the Study of Kinship: Structural Functional)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-Functional Approach)

5.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का इतिहास (History of Structural-Functional Approach)

5.3 सारांश (Summary)

5.4 शब्दकोश (Keywords)

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी अध्ययन के संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम का अध्ययन।
- कॉम्ट, स्पेन्सर, दुर्खीम प्रकार्यात्मक उपागम की विवेचना।

प्रस्तावना (Introduction)

उपागम एक मार्ग, प्रवेश पथ, रास्ता या अभिगम है जो अध्ययन पद्धति, उसकी मान्यताओं एवं सिद्धान्तों के निर्माण का नियंत्रण, निर्देशन एवं संचालन करता है। उपागम परिप्रेक्ष्य के अनुसार विषय, अवलोकन, तथ्य संकलन, वर्गीकरण, सामान्यीकरण या सिद्धान्त का निर्माण करने की पद्धति है। यह एक प्रकार से प्रवेश पथ या मार्ग है जिसके द्वारा घटना को परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण के अनुसार देखा, परखा, जाँचा जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। उपागम

पद्धति है जो लक्ष्य या समस्या को स्पष्ट करने एवं अध्ययन करने के लिए अपनाई जाती है। उपागम वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति की प्रक्रिया के चरण हैं जिनके सहारे वैज्ञानिक घटना को समझने के लिए उसके द्वारा निश्चित रास्ते में आगे बढ़ता है, अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। परिप्रेक्ष्य के अनुसार सिद्धान्तों का निर्माण करता है।

5.1 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-Functional Approach)

समाजशास्त्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रचलित प्रकार्यात्मक उपागम है। किंग्स्ले डेविस के अनुसार, आज समाजशास्त्र में तीन-चौथाई भाग में यह उपागम छाया हुआ है। समाजशास्त्र में इसे अनेक नामों से जाना जाता है, जैसे—संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-Functional Approach), प्रकार्यात्मक-उपागम (Functional Approach), प्रकार्यात्मक विश्लेषण (Functional Analysis), प्रकार्यात्मक सिद्धान्त (Functional Theory), प्रकार्यात्मक अभिविन्यास (Functional Orientation) और आजकल सबसे अधिक प्रचलित एवं संक्षिप्त नाम है—प्रकार्यवाद (Functionalism) नातेदारी के अध्ययन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है—

यह एक अध्ययन की पद्धति, अध्ययन का उपागम एवं सिद्धान्त—तीनों ही हैं। समाजशास्त्र में विद्वानों ने इसकी विवेचना तीनों रूपों को ध्यान में रखकर की है। किंग्स्ले डेविस का तो यहाँ तक कहना है कि समाजशास्त्र और प्रकार्यात्मक विश्लेषण—दोनों के परिप्रेक्ष्य, उपागम, अध्ययन की पद्धतियाँ, मान्यताएँ, समस्याएँ और सीमाएँ आदि समान ही हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण अथवा प्रकार्यवाद समाजशास्त्र का पर्याय ही है, इसलिए समाजशास्त्र में इसको अलग नाम देना अनावश्यक है। इन्हीं उपर्युक्त सन्दर्भों में प्रकार्यात्मक उपागम के विभिन्न पक्षों—इतिहास, अभ्युपगम (मान्यताएँ), विशेषताएँ, महत्त्वपूर्ण सीमाएँ तथा आलोचनात्मक मूल्यांकन आदि की विवेचना प्रस्तुत की जा रही है।

नोट्स प्रकार्यात्मक उपागम के अनेक समर्थक हुए हैं जिनमें ऑगस्ट कॉम्ट, हर्बर्ट स्पेन्सर, दुर्खीम, मैलिनोव्स्की, रेडक्लिफ-ब्राउन, मर्टन आदि अनेक विद्वानों के नाम प्रमुख हैं।

5.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का इतिहास (History of Structural-Functional Approach)

पी. एस. कोहन ने अपनी कृति 'मॉर्डन सोशियल थ्योरी' में प्रकार्यात्मक उपागम के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि समाज के अध्ययन की प्रकार्यात्मक पद्धति का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि सामाजिक सिद्धान्त। कुछ इतिहासकार प्रकार्यवाद के आधुनिक सिद्धान्त का शुभारम्भ मोण्टेस्क्यू से मानते हैं, लेकिन आज इस सिद्धान्त का जो प्रभाव देखा जा रहा है उसका श्रेय सम्भवत: ऑगस्ट कॉम्ट को जाता है जिन्होंने समाजशास्त्रीय अन्वेषण के एक भाग—सामाजिक स्थैतिक का अध्ययन निश्चित किया।

ऑगस्ट कॉम्ट का सामाजिक स्थैतिक से तात्पर्य सामाजिक घटनाओं के सह-अस्तित्व का अध्ययन करना है। आपके अनुसार इसके अन्तर्गत समाज की उन वृहद् संस्थाओं तथा संस्थात्मक जटिलताओं का अध्ययन किया जाता है जिनको सामाजिक विश्लेषण की वृहद् इकाई माना जाता है। कॉम्ट के शब्दों में, "स्थैतिक समाज में विभिन्न भागों की परस्पर क्रिया तथा प्रतिक्रिया की खोज से सम्बन्धित है।" आपने ही समाजशास्त्र 'संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक' उपागम की ओर ध्यान आकर्षित किया तथा एक नई दिशा प्रदान की। आपका कहना है कि समाज की सभी संस्थाएँ—विश्वास और नैतिकता पूर्ण रूप में परस्पर सम्बन्धित हैं। किसी भी एक भाग का पूर्ण समाज में बने रहने

की व्याख्या करना इस पद्धति का उद्देश्य है। इस पद्धति के द्वारा ऐसे सिद्धान्त अथवा नियम की खोज करना है जो यह स्पष्ट करे कि संरचना की एक इकाई तथा अन्य सभी इकाइयाँ किसी एक विशिष्ट इकाई को कैसे प्रभावित करती हैं और प्रभावित होती हैं तथा समाज का अस्तित्व किसी प्रकार से बना रहता है। प्रकार्यात्मक पद्धति में इकाई का पूर्ण से, पूर्ण का इकाई से तथा इकाइयों के परस्पर अन्त:सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

हर्बर्ट स्पेन्सर–ऑगस्ट कॉम्ट के बाद स्पेन्सर ने समाज के अध्ययन के प्रकार्यात्मक उपागम में कुछ और नया जोड़ा। आपने 'प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी' में समाज तथा जीव की प्रक्रियाओं में प्रकार्यात्मक समरूपता एवं समानताओं पर प्रकाश डाला। स्पेन्सर ने पहले जीव की मौलिक विशेषताओं–शरीर संरचना, निर्माण, अंगों की परस्पर निर्भरता, कार्य आदि का वर्णन किया तथा उन्हीं आधारों पर समाज का विश्लेषण किया जो प्रकार्यात्मक उपागम के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। शरीर संरचना का निर्माण कई अंगों के परस्पर मिलने से होता है। प्रत्येक अंग शरीर में विशिष्ट कार्य करता है। इनके कार्य परस्पर अव्यवस्थित और असंगठित होते हैं जो शरीर को व्यवस्थित, सन्तुलित एवं संगठित रखते हैं। स्पेन्सर की मान्यता है कि जिस प्रकार से जीव-जगत में शरीर संरचना और उसके विभिन्न अंग सरल से जटिल रूप में, समानता से भिन्नता तथा निम्न-विभेदीकरण से जटिल-विभेदीकरण के क्रम में विकसित हुए हैं उसी प्रकार से सामाजिक व्यवस्था में भी हुआ है। आप समाज को भी जीव की तरह से एक अखण्ड व्यवस्था मानते हैं। आपका कहना है कि समाज का निर्माण जीवों की भाँति विभिन्न इकाइयों से हुआ है। ये विभिन्न इकाइयाँ सामाजिक संरचना में परस्पर एक-दूसरे से संगठनातमक रूप से सम्बन्धित होती हैं। प्रत्येक इकाई समाज में एक विशिष्ट कार्य करती है। विभिन्न इकाइयों द्वारा किए गए कार्यों से ही समाज सुचारु रूप से व्यवस्थित रहता है। आपकी मान्यता है कि जिस संरचना में एक प्रकार के अथवा समरूप तत्व होते हैं उसमें सभी तत्व प्राय: आत्मनिर्भर होते हैं। लेकिन जहाँ पर तत्व भिन्न-भिन्न संरचना वाले होते हैं या संरचना में आन्तरिक विभेदीकरण अधिक होता है वहाँ पर तत्वों में अधिक मात्रा में पारस्परिक निर्भरता होती है। स्पेन्सर ने तर्क दिया कि संरचना में अधिक मात्रा में विभेदीकरण का उद्देश्य पूर्ण में अधिक मात्रा में एकीकरण पैदा करना होता है तथा उसमें आन्तरिक असन्तुलन कम होता है और वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने में अधिक सक्षम होता है क्योंकि ऐसी संरचना में अनुकूलन करने का गुण भी अधिक होता है। आपके इन प्रकार्यात्मक उपागम, सिद्धान्त और पद्धति से सम्बन्धित विचारों का प्रभाव दुर्खीम पर पड़ा।

इमाइल दुर्खीम–अत्याधुनिक प्रकार्यवाद स्पेन्सर की तुलना में दुर्खीम का अधिक ऋणी है। स्पेन्सर की भाँति दुर्खीम भी अपने प्रारम्भिक लेखों में जैविकीय विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित रहे। आपके प्रारम्भिक विचार स्पेन्सर से सीधे प्रभावित हुए थे। दुर्खीम ने अपने वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति 'द रूल्स ऑफ सोशियोलॉजी मेथड्स' और लेखों में प्रस्तुत की है। आपने इस सिद्धान्त को समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानवशास्त्रियों के लिए आकर्षक बनाने में सहयोग किया था। दुर्खीम ने अपनी श्रम-विभाजन की पुस्तक के द्वितीय अध्याय में श्रम के विभाजन के प्रकार्य और उसके कारणों में स्पष्ट अन्तर किया है। श्रम के विभाजन का प्रकार्य समाज का अन्तर है। नैतिक सघनता जनसंख्या के दबाव के फलस्वरूप बढ़ती है। आपने इस सम्बन्ध में निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं–

(*i*) जहाँ पर जनसंख्या का दबाव बढ़ेगा और सामाजिक अन्त:क्रिया बढ़ेगी वहाँ पर सरल खण्डात्मक समाज द्वारा निर्मित नियन्त्रण टूट जाएँगे तथा प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होगी जो सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा बन जाएगी।

(*ii*) इस बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा और विरोध को घटाने अथवा नियन्त्रित करने के लिए विशेषीकृत प्रकार्यों को अपनाया जाता है जो व्यक्तियों को एक-दूसरे पर अधिक आश्रित बना देता है। इस प्रकार से पारस्परिक उत्तरदायित्व की नैतिकता को अपनाने की स्थिति आ जाती है। आपने जो प्रकार्य बताया वह यह है कि जनसंख्या के दबाव के बढ़ने से श्रम का विभाजन बढ़ना है जो विशेषीकरण में वृद्धि करता है और अन्त: पारस्परिक अन्योन्याश्रितता बढ़ती है जिसके कारण समाज के सदस्यों को सहयोग करना पड़ता है और इससे विरोध और प्रतिस्पर्धा घटती है तथा समाज

नोट

में व्यवस्था स्थापित हो जाती है। आपने धर्म के अध्ययन में भी यही स्थापित किया है कि धर्म का प्रकार्य समाज में एकता स्थापित करना है।

दुर्खीम के समय तक सामाजिक विज्ञानों–विशेष रूप से समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र–में प्रकार्यात्मक उपागम स्थापित नहीं हुआ था परन्तु इसके विकास पर आपके विचारों का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा था।

टास्क श्रम के विभाजन के प्रकार्य और उसके कारणों में स्पष्ट अन्तर क्या है?

मर्टन का योगदान (Contribution of Merton)

आर. के. मर्टन ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम, पद्धति, विश्लेषण एवं सिद्धान्त में उल्लेखनीय योगदान अपनी विश्वविख्यात पुस्तक 'सोशियल थ्योरी एण्ड सोशियल स्ट्रक्चर' में किया है। सर्वप्रथम आपने अपने से पहिले के समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानवशास्त्रियों के इस उपागम से सम्बन्धित विचारों, सिद्धान्तों और अभ्युपगमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है उसके बाद स्वयं ने प्रकार्यात्मक पद्धति का संशोधित प्रारूप प्रस्तुत किया है, जो निम्न प्रकार से है–

मॅर्टन द्वारा अग्रज प्रकार्यवादियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (Merton's Critical Evaluation of Predecessor Functionalists)

मॅर्टन ने स्वयं की प्रकार्यात्मक पद्धति को देने से पूर्व अपने से पूर्व के प्रमुख प्रकार्यवादियों–दुर्खीम, रेडक्लिफ-ब्राउन, मैलिनोव्स्की, डेविस एवं मूर, क्लूखौन आदि का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है, जो निम्न हैं–

मॅर्टन ने लिखा, "इन प्रकार्यवादियों ने मुख्य रूप से प्रकार्यात्मक उपागम में सामान्य रूप से तीन परस्पर सम्बन्धित अभ्युपगमों को अपनाया है जो अब अनावश्यक तथा विवादास्पद सिद्ध हो चुके हैं।" ये निम्न हैं–(1) समाज की प्रकार्यात्मक एकता का अभ्युपगम, (2) सार्वभौमिक प्रकार्यात्मकता का अभ्युपगम, (3) अपरिहार्यता का अभ्युपगम।

मर्टन के अग्रज प्रकार्यवादियों द्वारा प्रतिपादित अभ्युपगम

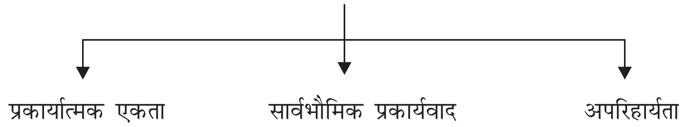

(1) समाज की प्रकार्यात्मक एकता का अभ्युपगम (Postulate of Functional Unity of Society)–रेडक्लिफ-ब्राउन और मैलिनोव्स्की सामाजिक संरचना की विभिन्न इकाइयों के सम्बन्ध में कहते हैं कि ये समाज में एकता बनाए रखती हैं। जिस प्रकार से जीव के विभिन्न अंग परस्पर एकता के रूप में सम्बन्धित होते हैं उसी प्रकार सामाजिक संरचना की प्रत्येक इकाई परस्पर एक-दूसरे से संगठनात्मक कार्य करते हुए सम्बन्धित रहती है।

मॅर्टन ने धर्म का उदाहरण देकर इस विशेषता का मूल्यांकन किया। आपका कहना है कि एक समाज में एक से अधिक धर्म के मानने वाले रहते हैं तो धर्म के कारण उनमें साम्प्रदायिक झगड़े होते हैं। इसलिए दुर्खीम, रेडक्लिफ-ब्राउन, मैलिनोव्स्की आदि का मानना आंशिक रूप में सत्य है। इकाइयाँ प्रकार्यात्मक होती हैं परन्तु वे दुष्कार्यात्मक या विघटनकारी कार्य भी करती हैं।

(2) सार्वभौमिक प्रकार्यवाद का अभ्युपगम (Postulate of Universal Functionalism)– मॅर्टन से पहिले के समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानवशास्त्रियों का मानना था कि–जहाँ-जहाँ मानव समाज है वहाँ-वहाँ सामाजिक इकाइयाँ कोई-न-कोई आवश्यकता की पूर्ति करती हैं। मैलिनोव्स्की जो कि कट्टर प्रकार्यवादी रहे हैं,

उनका कहना है कि "प्रत्येक इकाई, प्रत्येक स्थान पर, कोई-न-कोई महत्त्वपूर्ण कार्य पूर्ण करती है।" इनका तो यह भी कहना है कि सामाजिक संरचना में केवल वे ही इकाइयाँ विद्यमान होती हैं जो सामाजिक व्यवस्था में किसी आवश्यकता की पूर्ति करती हैं।

मॅर्टन ने इस विशेषता का मूल्यांकन धर्म का उदाहरण देकर किया। मॅर्टन ने बताया कि धर्म अनेक दुष्कार्य करता है फिर भी वह सामाजिक संरचना में इकाई के रूप में विद्यमान है। हिन्दू समाज में जाति-प्रथा, बाल-विवाह? सती-प्रथा, अस्पृश्यता, वैधव्य, स्त्री-अशिक्षा आदि धर्म के कारण थे। पश्चिम के कई समाजों में धर्म परिवार-नियोजन के कई तरीकों तथा गर्भपात के विरुद्ध एक बाँधा है।

(3) अपरिहार्यता का अभ्युपगम (Postulate of Indispensibility)–विभिन्न विद्वानों का यह मानना है कि सामाजिक संरचना में इकाइयाँ या उनके कार्य अपरिहार्य हैं तथा प्रकार्यो को संरचना से अलग नहीं किया जा सकता। परन्तु मॅर्टन ने विभिन्न विद्वानों के विचारों तथा लेखों का अध्ययन किया तथा उसमें स्पष्ट रूप से यह नहीं पाया कि–(1) कार्य अपरिहार्य है, अथवा (2) इकाई अपरिहार्य है, अथवा (3) कार्य और इकाई दोनों अपरिहार्य हैं। किंग्स्ले डेविस और मूर ने धर्म को अपरिहार्य बताया, क्योंकि धर्म समाज में सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करता है। मॅर्टन का कहना है कि आधुनिक समाजों में सामाजिक नियन्त्रण धर्म के बिना भी होता है।

मॅर्टन ने अपने अग्रज प्रकार्यवादियों का उपर्युक्त आलोचनात्मक मूल्यांकन करने के बाद प्रकार्य के निम्नलिखित लक्षण और विशेषताएँ बताई हैं–

(4) प्रकार्य, अकार्य और दुष्कार्य (Function, Non-function and Dysfunction)– मॅर्टन का कहना है कि सामाजिक संरचना की इकाइयों के कार्यों को तीन प्रमुख भागों में बाँट सकते हैं– (1) प्रकार्य, (2) अकार्य, और (3) दुष्कार्य। संरचना की अधिकतर इकाइयाँ जब वे कार्य करती हैं जिससे सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने तथा समायोजन लाने में सहायता मिलती है तो ये इकाइयाँ प्रकार्यात्मक कहलाती हैं। कुछ इकाइयाँ ऐसी होती हैं जो अध्ययन के अन्तर्गत सामाजिक व्यवस्था से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित नहीं होती हैं। वे व्यवस्था को बनाए रखने में या अव्यवस्था करने में किसी प्रकार की भूमिका-निर्वाह नहीं करती हैं। यह उनका अकार्य कहलाता है।

संरचना की कुछ इकाइयाँ सामाजिक व्यवस्था में अव्यवस्था बढ़ाने या अनुकूलन एवं समायोजन कम करने की भूमिका अदा करती हैं। उनका विघटनकारी प्रभाव होता है, यह उनका दुष्कार्य कहलाता है।

(5) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कार्य (Manifest and Latent Function)– मॅर्टन ने सामाजिक संरचना की इकाइयों के प्रमुख कार्यो को दो उपकार्यों में बाँटा है–प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष कार्य वे वस्तुनिष्ठ परिणाम है जो व्यवस्था में समायोजन और अनुकूलन में योगदान करते हैं तथा व्यवस्था में भाग लेने वालों द्वारा चाहे जाते हैं तथा मान्यता प्राप्त हैं। ये प्रत्यक्ष कार्य संगठनात्मक या प्रकार्य तथा विघटनात्मक या दुष्कार्य के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं।

अप्रत्यक्ष कार्य सामाजिक संरचना की इकाइयों के वे कार्य हैं जो न तो चाहे जाते हैं न ही मान्यता-प्राप्त होते हैं। ये अप्रत्यक्ष कार्य संगठनात्मक या प्रकार्य तथा विघटनात्मक या दुष्कार्य के रूप में होते हैं। इन कार्यो को निम्नलिखित आरेख द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

इकाई के कार्य

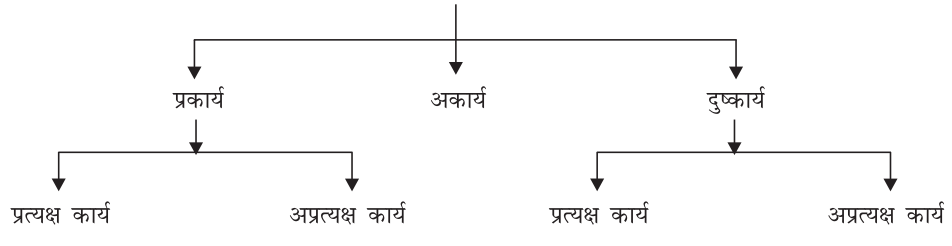

(6) अनुकूलनता तथा सामंजस्यता (Adaptability and Adjustment)–प्रकार्य समाज में अनुकूलनता तथा सामंजस्यता को बढ़ाते हैं। सामाजिक व्यवस्था की निरन्तरता तथा सन्तुलन के लिए आवश्यक है कि सामाजिक संरचना की इकाइयों में अनुकूलनता तथा सामंजस्यता का गुण हो। इस गुण के अभाव में इकाइयाँ अव्यवस्थित तथा असन्तुलित हो जाती हैं। इकाइयों, संस्थाओं, एजेन्सियों आदि में ये गुण जब तक बना रहता है वे संरचना की अभिन्न अंग बनी रहती हैं।

(7) समाज द्वारा स्वीकृत (Accepted by Society)–सामाजिक संरचना के तत्वों, इकाइयों, संस्थाओं, एजेन्सियों आदि के कार्य समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं। भिन्न-भिन्न समाजों में इकाइयाँ अलग-अलग होती हैं तथा उनके कार्य समाज की आवश्यकता के अनुसार तय किये जाते हैं। ये परिवर्तनशील भी होते हैं। जो कार्य समाज द्वारा स्वीकृत नहीं होते हैं उनको मॅर्टन ने अव्यक्त-कार्य अथवा अप्रत्यक्ष-कार्य कहा है।

(8) आवश्यकताओं की पूर्ति (Fulfils Needs)–मैलिनोव्स्की प्रकार्यों की इस विशेषता पर विशेष बल देते हैं। आपका कहना है कि प्रत्येक इकाई, हर स्थान पर कोई-न-कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। आपने यह भी लिखा कि जो इकाई आवश्यकता की पूर्ति के लिए कार्य नहीं करती है, वह संरचना में बनी नहीं रह सकती। मैलिनोव्स्की, रेडक्लिफ-ब्राउन तथा क्लूखौन ने तो उद्विकासियों की इसी आधार पर कटु आलोचना की है कि समाज में कोई भी तत्व या अंग अवशेष नहीं होते हैं। उद्विकासिय सिद्धान्त में अवशेष एक प्रमाण के रूप में काम में लिए जाते हैं, प्रकार्यवादी ऐसा नहीं मानते हैं।

(9) प्रकार्यात्मक विकल्प (Functional Substitutes)–मॅर्टन का कहना है कि सामाजिक संरचना में अनेक इकाइयाँ होती हैं, उनके अनेक कार्य होते हैं, इससे सम्बन्धित हम दो प्रकार की विशेषताएँ और प्रकार्य पाते हैं पहिला–तत्व एक और उसके कार्य अनेक तथा दूसरा–प्रकार्य एक और उसको पूर्ण करने वाले तत्व अनेक होते हैं। समाज की निश्चित आवश्यकता से सम्बन्धित से प्रकार्य के अनेक विकल्प अथवा समकक्ष होते हैं। आदिम समाज में सामाजिक नियन्त्रण का प्रकार्य धर्म करता है। नगरीय या महानगरीय समाज में सामाजिक नियन्त्रण का प्रकार्य पुलिस, सेना, न्यायालय आदि के द्वारा सम्पन्न होता है। अर्थात् प्रकार्यों के अनेक विकल्प या समकक्ष होते हैं।

(10) अन्य विशेषताएँ (Other Characteristics)–प्रकार्य की कुछ और भी विशेषताएँ हैं, जैसे–सामाजिक संरचना में इकाइयाँ अनेक होती हैं, उनकी गणना करना कठिन है। इकाइयों के प्रकार्यों की गणना करना तो और भी असम्भव है। प्रकार्य एक समूह के लिए अधिक लाभदायक, कुछ के लिए कम लाभदायक तथा कुछ समूहों के लिए हानिकारक भी हो सकते हैं। प्रकार्य सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली इकाइयों से सम्बन्धित होते हैं। प्रकार्य समाज में श्रम-विभाजन को भी स्पष्ट तथा निश्चित करते हैं। प्रत्येक इकाई समाज में प्रकार्य, अकार्य, दुष्कार्य, प्रकट-अप्रकट, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, स्पष्ट-अस्पष्ट, ज्ञात और अज्ञात आदि विविध कार्य करती है जो अध्ययन के सन्दर्भ के अनुसार देखे जाते हैं। समाज की व्यवस्था, संगठन, निरन्तरता, सन्तुलन, विकास आदि संरचना की इकाइयों के विविध प्रकार्यों पर निर्भर करता है। इकाइयाँ जैसा कार्य सम्पन्न करेंगी उसी के अनुसार समाज और संस्कृति का सन्तुलन, असन्तुलन, व्यवस्था एवं अव्यवस्था निश्चित एवं प्रभावित होगी। इस प्रकार प्रकार्य सामाजिक संरचना से सम्बन्धित है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. इकाइयाँ ········ होती हैं परन्तु वे दुष्कार्यात्मक या विघटनकारी कार्य भी करती हैं।
2. प्रत्येक इकाई, प्रत्येक स्थान पर, कोई-न-कोई ········ कार्य पूर्ण करती है।
3. प्रकार्य सामाजिक ········ का निर्माण करने वाली इकाइयों से सम्बन्धित होते हैं।

नोट

5.3 सारांश (Summary)

- प्रकार्यवाद समाज को अन्तर्सम्बन्धित भागों की एक ऐसी स्वचलित व्यवस्था के रूप में देखने का सरल दृष्टिकोण है जिसके निर्णायक भागों के सामाजिक संबंधों में संरचना तथा एक वस्तु-निष्ठ नियमित्ता होती है।
- समाजशास्त्र के इस उपागम को श्रय देने वालों में मॅर्टन एवं पारसन्स ने विशेष भूमिका निभायीं हैं।
- प्रकार्य की अवधारणा का प्रयोग दो प्रमुख अर्थों में किया गया है–

  (*i*) वसुपरक परिणाम के अर्थ में (*ii*) परिवर्त्यो के बीच अंतर्सम्बन्धित विशेष संगीत के अर्थ में।
- मॅर्टन के अनुसार सामाजिक संरचना की इकाई को तीन प्रमुख भागों में बांट सकते हैं–

  (*i*) प्रकार्य (*ii*) अकार्य (*iii*) दुष्कार्य।

5.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रकार्यात्मक (Functional)**–किसी सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था को बनाए रखने में उसके निर्णायक भागों द्वारा किए जाने वाले योगदानों की योग्यता को प्रकार्यात्मक कहते हैं।
2. **प्रकार्यवाद (Functionalism)**–सावयविक सादृश्यता पर आधारित एक सिद्धांत जिसमें माना जाता है कि समाज एक ऐसी संगठित व्यवस्था है जिसमें विरोधी परिवारों की स्थिति में भी संतुलन बना रहता है।

5.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हर्वट स्पेन्सर तथा दुर्खीम ने रचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम की विवेचना किस प्रकार की है? बताएँ।
2. मॅर्टन द्वारा प्रकार्यवादियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. प्रकार्यात्मक 2. महत्त्वपूर्ण 3. संरचना।

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में समाज–विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।
2. भारत में परिवार की सैर–ट्रेमवोर अलिक, कल्पज पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–6: नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोणः सांस्कृतिक (Approaches to the Study of Kinship: Cultural)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 संस्कृति के लक्षण (Characteristics of Culture)
6.2 संस्कृति के प्रवर्धन (ग्रोथ) संबंधी सिद्धांत (Theory Related to Growth of Culture)
6.3 उद्‌विकासवाद (Evolutionism)
6.4 प्रसारवाद (Diffussionism)
6.5 संस्कृति-समेकता (इंटीग्रेशन) के सिद्धांत (Theory of Cultural-Integration)
6.6 सारांश (Summary)
6.7 शब्दकोश (Keywords)
6.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
6.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी अध्ययन का दृष्टिकोण।
- मानव संस्कृतियों की उत्पत्ति संरचना एवं काल का अध्ययन।

प्रस्तावना (Introduction)

संस्कृति सांस्कृतिक नेतत्व का एक प्रमुख एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संबोध रहा है। किसी भी समाज संस्कृत सर्वप्रमुख वाहक संस्था परिवार होती है और परिवार एक नातेदारी समूह है। संस्कृति शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है। सामान्य साहित्यिक अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग सामाजिक शिष्टता एवं बौद्धिक उत्कर्ष के लिए किया

नोट

जाता है। प्रसिद्ध समीक्षक एवं कवि मेथ्यू आरनोल्ड ने इसी अर्थ में संस्कृति को माधुर्य एवं प्रकाश बताया है। कुछेक ऐसे समाजशास्त्री भी हैं जो समाज के प्रबुद्ध नेतृत्व के लिए 'सुस्कृंत श्रीमंत' (कल्चरल एलीट) संज्ञा प्रयुक्त करते हैं। कासीर जैसे दार्शनिकों एवं सारोकिन तथा मेकीवर जैसे समाजशास्त्रियों ने संस्कृति को मानव के नैतिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक उपलब्धि के अर्थ में ग्रहण किया है। डेविड बिडने नामक दार्शनिक नेतृत्ववेत्ता ने संस्कृति को मानव-प्रकृति के स्वसंधान तथा भौगोलिक पर्यावरण के संसाधन के रूप में परिभाषित किया है।

अंग्रेजी भाषा के **कल्चर** शब्द के अर्थ में संस्कृत भाषा के **संस्कृति** शब्द का प्रयोग होता है। **संस्कृत** एवं **संस्कृति** दोनों ही शब्दों की व्युत्पत्ति **संस्कार** शब्द से हुई है। **संस्कार** का अर्थ है कतिपय धार्मिक क्रियाओं का संपादन। अपने जन्म से ही एक हिन्दू कई संस्कार-संपादनों से गुजरता है। इसी के परिणामस्वरूप उसे अपने जीवन की विभिन्न भूमिकाएँ (जैसे विद्यार्थी या पति की भूमिकाएँ) निभाने की स्वीकृति प्राप्त होती है। अत: **संस्कृति** एक ऐसे समग्र जीवन की सूचक होती है जिसे विभिन्न संस्कारों द्वारा संस्कारित होने से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसे परिशोधन प्रक्रिया भी कहा जा सकता है। यहाँ यह बता देना महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन भारत में संस्कृत नगरीय बोली थी। ग्रामीण बोली को प्राकृत कहा जाता था। प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति प्रकृति से हुई है। मनुष्य एक असामाजिक प्राणी के रूप में जन्म लेता है तथा विभिन्न संस्कारों में संस्कारित होने पर ही सामाजिकता ग्रहण करता है।

नेतृत्ववेत्ताओं ने संस्कृति शब्द का प्रयोग भिन्न तरह से किया है। संस्कृति को परिभाषित करने और व्यापक रूप से इस शब्द को काम में लेने वाले प्रथम नेतृत्ववेत्ता **टायलर** थे। उन्होंने संस्कृति की परिभाषा उन सभी विश्वासों, विचारों, प्रथाओं, कानूनों आदर्शों, कलाओं तथा अन्य निपुणताओं एवं दक्षताओं के अर्थ में की है, जिन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते ग्रहण करता है। टायलर ने अपनी परिभाषा में विशेष जोर इस बात पर दिया है कि संस्कृति एक सामाजिक विरासत है, समाज द्वारा व्यक्ति को दिया गया उपहार है। मालिनोस्की सहित अन्य कई नेतृत्ववेत्ताओं ने इसी परिभाषा को शब्दों के फेर-बदल के साथ प्रस्तुत किया है। इन्होंने बताया है कि सामाजिक विरासत का एक भौतिक पक्ष और दूसरा अभौतिक, अमूर्त, अति सूक्ष्म पक्ष होता है। अन्य शब्दों में, जीवन की समग्रता का नाम ही संस्कृति है। मानसिक, सामाजिक तथा भौतिक उपकरणों से इसकी रचना होती है। एक दृष्टि से यह सामाजिक संस्कृति है तो दूसरी दृष्टि से भौतिक संस्कृति। इसी विचार का विस्तार करते हुए **बिडने** संस्कृति को **कृषि-तथ्यों** (कृषि की उत्पत्तियों), शिल्प-तथ्यों (उद्योग की उत्पत्तियों), समाज-तथ्यों (सामाजिक संगठन), और मानस-तथ्यों (भाषा, धर्म, कला आदि) की उत्पत्ति के अर्थ में परिभाषित करते हैं।

संस्कृति की उपरोक्त व्याख्या इस मान्यता पर आधारित है कि संस्कृति एक ठोस वास्तविकता है, एक यथार्थत: प्रचलित वस्तु है। संस्कृति की इस व्याख्या को संवेदित या इंद्रियबोधी (सेन्सेट) दृष्टिकोण कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य दृष्टिकोण भी है।

मेरट ने संस्कृति को संप्रेषणीय प्रबुद्धता के रूप में परिभाषित किया है। रेडफिल्ड इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए संस्कृति को शिल्प-तथ्यों, सामाजिक संरचना और प्रतीकों में निहित पारस्परिक अर्थों की समग्रता बताते हैं। यह आदर्शात्मक व्याख्या ज्ञान के संप्रेषण तथा अभिग्रहण में प्रतीकों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका के अभिज्ञान से उत्पन्न होती है।

एक अन्य दृष्टिकोण **रूथ बेनेडिक्ट** ने प्रस्तुत किया है। इसे संरूपवादी (फोरमलिस्टिक), सौंदर्यवादी दृष्टिकोण कहा गया है। इसके अनुसार संस्कृति को सामाजिक जीवन की अंतर्वस्तु (कण्टेण्ट) के रूप में अधिक नहीं बल्कि इसके औपचारिक संरूपण एवं संगठन के रूप में ही प्रधानत: समझा जाता है। बेनेडिक्ट ने संस्कृति के संरूपों पर अपनी लेखनी चलाई है, न कि इसकी अंतर्वस्तु पर।

मालिनोस्की और **रेडक्लिफ-ब्राउन** का संस्कृति-संबंधी दृष्टिकोण साधनवादी (उपकरणवादी), मानवतावादी रहा है। मालिनोस्की संस्कृति को जीवन की वह समग्रता मानते हैं जिससे एक व्यक्ति अपने शरीरिक-मनोवैज्ञानिक अंतर्नोदों

को संतुष्ट करता है, अन्य आवश्यकताओं एवं अभिच्छओं की पूर्ति करता है और अंततः अपनी स्वायत्तता ग्रहण करता है। रेडक्लिफ-ब्राउन संस्कृति को संसाधन मानते हैं, परंपराओं के हस्तांतरण एवं अभिग्रहण की प्रक्रिया मानते हैं, जिससे कि समाज की निरंतरता बनी रहती है। प्रकार्यवादी नेतृत्ववेत्ता संस्कृति के एक समग्रात्मक का प्रयोग करते हैं। ये संपूर्ण संस्कृति को अध्ययन की इकाई मानते हैं न कि किसी एक सांस्कृतिक विशेषक (ट्रेट) अर्थात् संस्कृति की कोई एक वस्तु को ही, जैसा कि टायलर ने सोचा था। ये बेनेडिक्ट की तरह एक संरूप मात्र का अध्ययन भी नहीं करते।

संस्कृति-संबंधी एक नवीनतम दृष्टिकोण **लिंटन, क्लखोन** और हाल ही में **क्रोबर** द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मानवीय ज्ञान की प्रकृति व्यक्तिपरक (सब्जेक्टिव) होती है। लिंटन का कथन है कि लोगों का जीवन एक बात है और जिस रूप में हम इसका अध्ययन करते हैं और इसके बारे में लिखिते हैं वह दूसरी बात। इन दोनों में से पहली बात यथार्थ है और दूसरी बात हमारा यथार्थ-बोध। यदि पहली को **संस्कृति** कहा गया है तो दूसरी को केवल **संस्कृति-निर्मित** ही कहा जा सकता है। यह वास्तविकता का अमूर्तीकरण है। वास्तविकता ही यथार्थ मानव व्यवहार है। क्लखोन ने संस्कृति को विचार, अनुभूति और क्रिया-पद्धति बताया है। गिलिन इस दृष्टिकोण को और स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि संस्कृति क्रिया नहीं है, बल्कि इसका संरूपण है जिसकी रचना स्वयं जनता नहीं किन्तु वह नेतृत्ववेत्ता करता है जो इन लोगों का अध्ययनकर्ता होता है। इसीलिए वास्तविक जीवन से संस्कृति का अंतर किया जाना आवश्यक है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यों तो संस्कृति सांस्कृतिक नेतृत्ववेत्ताओं द्वारा प्रयुक्त सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संबोध रहा है किन्तु इन सभी के बीच संस्कृति क्या है, इसके बारे में कोई एकमतता नहीं है। प्रत्येक दृष्टिकोण ने कई उपयोगी शोधों को दिशा दी है। संस्कृति क्या है? इसकी अंतिम परिभाषा देना तो भविष्य के शोधकर्ताओं का ही काम होगा। यहाँ यह संकेत अवश्य दिया जा सकता है कि उपरोक्त दृष्टिकोणों में से कोई भी दृष्टिकोण दूसरों से अधिक श्रेष्ठ नहीं है।

6.1 संस्कृति के लक्षण (Characteristics of Culture)

नेतृत्ववेत्ताओं ने संस्कृति की परिभाषा देने तक ही स्वयं को व्यस्त नहीं रखा है, अपितु इन्होंने तुलनात्मक अध्ययन द्वारा संस्कृति के लक्षणों के बारे में कतिपय सामान्यीकरण स्थापित करने का प्रयास भी किया है।

ईथांस और ईडांस (संसाध्य एवं सम्मूर्त्य पक्ष)

क्रोबर ने संस्कृति के दो पक्षों पर ध्यान दिया है जिन्हें उन्होंने ईथांस और ईडांस कहा है। संस्कृति के रचना-तत्वों से प्रकट होने वाला इसका औपचारिक व्यक्त रूप ईडांस है। रचना-तत्वों की इस सम्मूर्तता (ईडांस) की तुलना में ईथांस संस्कृति का वह क्रियासाध्य है जो इसके गुण, इसकी प्रेरक मान्यताओं (थीम्स) और इसकी अभिरुचियों को निर्धारित करता है। **बटेसन** भी बताते हैं कि प्रत्येक संस्कृति को दो पक्षों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें से ईथांस कहा जाने वाला पहला पक्ष वह है जिसकी रचना एक संस्कृति की संपूर्ण संवेगी साग्रहता से होती है। ईडांस कहे जाने वाले दूसरे पक्ष में एक संस्कृति में प्रचलित संज्ञानात्मक प्रक्रिया से प्रसूत साग्रहता का समावेश होता है।

अभिहित (एक्सप्लिसिट) और निहित (इंप्लिसिट) तत्व

क्लखोन का कथन है कि लोगों के जीवन की प्रत्येक वस्तु संवेदी अवलोकन मात्र द्वारा न तो समझी जा सकती है और न हमारे ज्ञान का अंग बनाई जा सकती है। आँख और कान की सहायता से जिन यथार्थताओं का प्रत्यक्षण किया जा सकता है उन्हें संस्कृति के अभिहित तत्व कहा जाता है। कुछ ऐसे अप्रकट तत्व भी होते हैं जिनका प्रत्यक्षण किसी विशेष प्रशिक्षण के पश्चात् ही किया जा सकता है, क्योंकि ये तत्व मानव व्यवहार में निहित अभिप्रेरकों एवं

मनोवेगों के रूप में होते हैं जिनसे कर्ता स्वयं भी प्राय: अवगत नहीं होते। इन्हें संस्कृति के निहित तत्व कहा जा सकता है। किसी समाज के लोगों के तौर-तरीकों के संपूर्ण एवं प्रतिनिधि अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि इसमें संस्कृति के अभिहित तथा निहित तत्वों का समावेश किया जाए।

6.2 संस्कृति के प्रवर्धन (ग्रोथ) संबंधी सिद्धांत (Theory Related to Growth of Culture)

संस्कृति के प्रवर्धन एवं सांस्कृतिक समांतरों को समझने की समस्या प्रारंभ से ही सांस्कृतिक नेतृत्ववेत्ताओं के सम्मुख बनी रही है। उनके सामने मूल प्रश्न थे कि संस्कृतियों का जन्म कैसे होता है, और विभिन्न संस्कृतियों में एक जैसे सांस्कृतिक विशेषक एवं संकुल कैसे पनप जाते हैं? संस्कृति के अध्ययन संबंधी प्रारम्भिक सिद्धांतों का विषय ये दो प्रश्न ही थे।

6.3 उद्विकासवाद (Evolutionism)

एक आधुनिक विज्ञान के रूप में नेतृत्व का जन्म उस काल में हुआ। जब उद्विकासवाद का सितारा बुलंद था। **डार्विन एवं स्पेंसर** दोनों ही यह निश्चित करने में लगे हुए थे कि उद्विकास सभी प्रकार के संघटकों का आत्मतत्व है।

अवधारणाएँ

समकालीन उद्विकासवादी विचारधारा के प्रभाव में **टायलर** और **मोर्गन** जैसे नेतृत्वज्ञ प्राणपण से मानव-समाज एवं संस्कृति के उद्विकास के अध्ययन में जुट गए। ऐसी कुछ सहयोगी प्रवृत्तियाँ भी मौजूद थीं जिन्होंने इनके प्रयासों को प्रोत्साहित किया। इनके समय में यह विश्वास बहुप्रचलित था कि मानसिक बनावट की दृष्टि से मनुष्य सर्वत्र एक-सा है। इस विचार को 'मानव जगत् की मानसिक एकता' के रूप में अभिव्यक्त किया जाता था।

नोट्स यह माना गया कि समान समस्याओं की स्थिति में मनुष्य एक-जैसे समाधान ढूँढ़ निकालते हैं। यदि कहीं पर्यावरण का वैविध्य होता है तो वह एक ही संस्था के संस्थात्मक वैविध्य के रूप में प्रकट होता है।

यह उद्विकास सरल से जटिल एवं वैविध्यपूर्ण प्रकारों के रूप में होना बताया गया। सांस्कृतिक समांतरों की व्याख्या इन्हें मानव जगत की मानसिक एकता का परिणाम बताकर की गई। यह विश्वास भी किया गया कि प्रत्येक संस्था का विकास संस्कृति के स्थानीय परिवेश के अंतर्गत स्वतंत्र रूप में होता है। यदि दो संस्कृतियों में एक-जैसे विशेषक या समान संस्थाएँ देखी गईं तो इन्हें समाभिमुखी उद्विकास (कनवरजेंट इवोल्यूशन) के उदाहरण बताया गया। इस संबंध में ये उदाहरण प्राय: दिए जाते रहे हैं—कृषि जिसका विकास दक्षिण-पूर्वी एवं दक्षिण-पश्चिमी एशिया में और नई दुनिया (अमरीका) में स्वतंत्र रूप में हुआ; शून्य, जिसका आविष्कार हिन्दुओं, बेबिलोनवासियों और माया लोगों द्वारा स्वतंत्र रूप में किया गया; भवननिर्माण में टोडियों का विकास मसिनियों, मायाओं और एसकिमों द्वारा स्वतंत्र रूप में किया जाना, आदि। ऐसा विश्वास किया जाता है कि लेखन का विकास भी दुनिया के विभिन्न भागों में, कोई आधे दर्जन अवसरों पर, स्वतंत्र रूप में हुआ। कागज-निर्माण और मुद्रण का विकास भी पूर्व और पश्चिम में स्वतंत्र रूप में होना बताया गया। ऐसे उदाहरणों की सूची काफी लंबी है।

प्रतिनिधि उदाहरण

विकासवादी सिद्धांतवेत्ताओं ने अपना पक्ष कैसे प्रस्तुत किया, इस संबंध में उल्लेखनीय उदाहरण मॉर्गन, टायलर, हेड्डन और लेवी-ब्रूहल के लेखनों से जुटाए जा सकते हैं।

यह मानकर कि मानव-समाजों का विकास निम्न से उन्नत की ओर हुआ है, **मोर्गन** और ऐसे विकास की तीन अवस्थाएँ प्रस्थापित की। आरंभ में मनुष्य **असभ्य अवस्था** में रहता था। इस अवस्था के तीन काल थे–प्राचीन, मध्य (मछली मारने और आग के उपयोग का प्रारंभ इसका समकालिक है) और उत्तरकाल (जब तीर और कमान का इस्तेमाल किया गया।) दूसरी अवस्था **बर्बरता** की है। मिट्टी के पात्रों के निर्माण के साथ ही मनुष्य बर्बरता के आदिकाल में प्रवेश करता है। पशुपालन और कृषि में सिंचाई का प्रयोग बर्बर अवस्था के मध्यकाल के परिचायक हैं। धातु के गलाने की प्रक्रिया के आविष्कार तथा लौह उपकरणों के प्रयोग से प्रारंभ होकर अगले परिवर्तन तक का काल बर्बर अवस्था का उत्तरकाल था। इसके पश्चात् **सभ्यता** (सभ्यावस्था) का आविर्भाव हुआ। वर्णमाला और लेखन के आविष्कार से इसका आरंभ माना जाता है। मोर्गन के अनुसार, समकालीन पश्चिमी यूरोपीय समाज की परिस्थितियों की गिनती भी सभ्यता के अंतर्गत ही होगी।

संस्कृति के वस्तुपक्ष की चर्चा करते समय भी मोर्गन ने ऐसे ही अटकलबाजीपूर्ण तर्क का प्रयोग किया है। यह मानते हुए कि कानूनी तौर पर निर्धारित एक विवाह वैवाहिक संबंध के विकास की अंतिम स्थिति है, मोर्गन ने **विवाह की उद्विकासीय प्रक्रिया** की अवस्थाओं का प्रस्तुतीकरण इस क्रम में किया यौन स्वच्छंद की काल्पनिक अवस्था से प्रारंभ होकर समूह विवाह, बहुपति विवाह, स्वैच्छिक एक विवाह और बहुपत्नी विवाह की अवस्थाएँ। वैवाहिक संबंधों में परिवर्तनों के अनुरूप ही विभिन्न प्रकार के परिवारों के उद्विकास की क्रमावस्थाओं का प्रस्तुतीकरण भी मोर्गन ने किया है। कुल (क्लान) के उद्भव के पश्चात् परिवार की अवस्थाएँ मातृरेखीय, पितृरेखीय और उभयरेखीय बताई गई हैं।

टायलर ने धर्म के प्रवर्धन का ऐसा ही अध्ययन किया। जीववादी बहुदेववाद को उन्होंने धर्म का सामान्यतम एवं प्राचीनतम रूप माना। उन्नत बहुदेववादी विचारधारा इस क्रम में मध्य अवस्था रही, ऐसा मानते हुए टायलर ने बताया कि इसी से अंतत: एकदेववाद का विकास हुआ होगा।

कला के संदर्भ में **हेड्डन** ने कला-प्रकारों के उद्विकास की प्रारंभिक अवस्था यथार्थवादी कला बताते हुए रेखाकार तथा प्रतीकात्मक या अमूर्त कला-प्रकारों को वाद की क्रमावस्थाएँ बताया है।

लेवी-ब्रूहल ने भी आधुनिक तर्क का उद्विकास आदिम तर्क से माना। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि जहाँ तक आदिम लोगों का प्रश्न है, ये लोग भौतिक अलगाव और अंतर्विरोध के निहितार्थों से अवगत नहीं होते। अत: इनकी मन:स्थिति हमारी तुलना में अविकसित होती है। इसलिए इस आदिम अवस्था को वे तर्क-पूर्व मन-स्थिति कहना पसंद करते हैं।

समीक्षा एवं संशोधन

ऐसी सभी अटकलबाजीपूर्ण विकासवादी स्थापनाओं के प्रमाण विभिन्न संस्कृतियों के विविध स्थानों एवं कालों से इकट्ठे किए गए। इस प्रयास में इस बात का विशेष ख्याल नहीं रखा गया कि इनके सांस्कृतिक संदर्भ के महत्त्व पर भी ध्यान दिया जाता। भौतिक संस्कृति के अध्ययनकर्ताओं ने तो हद ही कर दी जब उन्होंने विभिन्न वस्तु तथ्यों के विभिन्न रूपों के उदाहरणों को संसार के विभिन्न भागों और विभिन्न कालों तक से इकट्ठा कर डाला और उद्विकास के मनमाने क्रम में इन्हें प्रस्तुत कर दिया। तीर और कमान के विविध रूपों के उद्विकास को व्याख्या सहित, प्रस्तुत करना ऐसा ही एक उदाहरण है।

सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को समझने की दृष्टि से जहाँ इन प्रारंभिक विकासवादियों का योगदान पर्याप्त महत्त्वपूर्ण रहा है, वहीं स्वतंत्र उद्विकास की धारणा को समर्थन देने में ये प्राय: अतिवादी हो गए हैं। तुलनात्मक विश्लेषण की

नोट

विधि का जिस तरह आँख मीचकर इन्होंने इस्तेमाल किया उससे इनकी काफी बदनामी हुई। वे सदैव तर्कसंगत क्रमावस्थाओं की बात तो करते रहे, किन्तु यह नहीं देख सके कि ऐतिहासिक प्रमाणों से इन्हें समर्थित किया जा सकता था या नहीं। सांस्कृतिक लेन-देन की भूमिका के प्रति भी उन्होंने अजीब अज्ञान प्रदर्शित किया। ये कोरे 'घर बैठे' या **कुर्सीतलब** सिद्धाँतवेत्ता थे और यात्रियों तथा मिशनरियों के वृत्तांतों का निपट अबूझ रूप में इस्तेमाल कर रहे थे। सांस्कृतिक उद्‌विकास की पद्धतियों की रचना के अपने पूर्वाग्रहवश ये सांस्कृतिक प्रवर्धन के अन्य तरीकों एवं सांस्कृतिक समांतरों की अन्य व्याख्याओं के प्रति अंधे बने रहे। इन्होंने श्रेष्ठतावाद (स्वजातिवाद) का भरपूर प्रदर्शन भी किया। यह उनके इस विश्वास में निहित था कि समाज और संस्कृति के उद्‌विकास की अंतिम एवं परिपूर्ण अवस्था उनके समकालीन उन्नीसवीं सदी के यूरोप में ही मौजूद थी। आदिम संस्कृतियों के बारे में उनके निर्णय भी उनकी इसी स्वजातिवादी अभिवृत्ति से ग्रस्त थे।

कई लेखकों ने विकासवाद के संशोधित रूप प्रस्तुत किए हैं। इनमें से एक सिद्धांत यह है कि सामाजिक संस्थाएँ सीधी ऊर्ध्व रेखा में नहीं बल्कि **परवलयिक वक्रता** (पेराबॉलिक कर्व) के रूप में विकसित होती है। इसका अर्थ है–एक संस्था का विकास प्रारंभ में एक विशेष रूप में होता है, आगे चलकर एक स्थिति में यह विकास प्रारंभ के रूप का ठीक विलोम हो जाता है, और यहाँ से यह पुनः अपने वास्तविक रूप में लौटता (विकसित होता) है, किन्तु एक नये एवं उन्नत स्तर पर। उदाहरणार्थ, संपत्ति के स्वामित्व का प्रारंभिक रूप निश्चेष्ट सामुदायिक प्रकार का था। वैयक्तिक या निजी स्वामित्व की संस्था का विकास आगे चलकर ही हुआ। और, अब फिर, राज्य के माध्यम से संपत्ति के सामुदायिक स्वामित्व के विकास की संगतता को साम्यवादी विचारधारा स्थापित कर ही चुकी है। अन्य उदाहरणों को निम्न रेखाचित्र में दर्शाया गया है–

1. सामुदायिक स्वामित्व–राज्य द्वारा सचेष्ट विधि से।
2. नग्नता–एक शारीरिक–सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में।
3. मुक्त यौनाचार–कठोर यौन नैतिकता में ढिलाई और कई आधारों पर इसका औचित्य सिद्ध करना–

1. निजी स्वामित्व।
2. पूरे शरीर का वस्त्राभिधान।
3. एक विवाह।

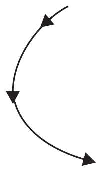

1. सम्पत्ति का सामुदायिक स्वामित्व-निश्चेष्ट।
2. वस्त्र विहीनता या नंगापन।
3. यौन स्वाच्छंद्य।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ये कोरे 'घर बैठे' कुर्सी तलब ········· थे और यात्रियों तथा मिशनरियों के वृत्तांतों का निपट अबूझ रूप में इस्तेमाल कर रहे थे।
2. आदिम संस्कृतियों के बारे में उनके निर्णय भी उनकी इसी ········· अभिवृत्ति से ग्रस्त थे।
3. संपत्ति के स्वामित्व का प्रारंभिक रूप निश्चेष्ट ········· प्रकार का था।

6.4 प्रसारवाद (Diffussionism)

नोट

पृष्ठभूमि

उद्‌विकासवादियों के इस मताग्रह की कड़ी आलोचना हुई कि संस्कृति-विशेषज्ञों का विकास सदैव स्वतंत्र तौर पर होता है और सांस्कृतिक समानताएँ समांतर या समाभिमुखी उद्‌विकास का परिणाम होती है। ऐसा नहीं है कि प्रवर्धन की ऐसी प्रक्रिया को नकारा गया हो, किन्तु विकासवादियों ने जब रीति-रिवाजों एवं शिल्प-तथ्यों के उन जाने-माने उदाहरणों की, जो कि सांस्कृतिक लेन-देन द्वारा किसी संस्कृति के अंग बनाए जाने के प्रमाण थे, पूरी अनदेखी की तो इसे इतिहास की अवैज्ञानिक उपेक्षा कहकर इसका विरोध किया गया। इस तथ्य को समझने के लिए किसी विशेष क्षेत्रीय अनुभव या प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी कि मानव-समाज के एकरेखीय विकास (असभ्यावस्था–बर्बरावस्था–सभ्यावस्था; यौन स्वाच्छंद–समूह विवाह–एक विवाह; आखेट–पशु पालन–कृषि–दस्तकारी–औद्योगिक जीवन) की क्रमावस्थाओं को संसार के सामान्य आदिम लोगों के सामाजिक आर्थिक जीवन के बारे में उपलब्ध एवं संगृहीत ज्ञान के प्रकाश में स्वीकार्य ही माना जाए।

जीव विज्ञानों में आनुवंशिकी नियमों संबंधी मेंडल की खोजें डार्विनवाद की लीक छोड़ चुकी थीं। इसी तरह सामाजिक विज्ञानों में भी स्पेंसर की विचार-भूमि से हटकर ऐसा ही परिवर्तन आया। इस तथ्य का प्रेक्षण करने के लिए भी किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी कि संस्कृति-विशेषक, और यहाँ तक कि पूरे संस्कृति-संकुल, एक समूह से दूसरे समूह तक संप्रेषण या प्रवजन की एजेंसियों द्वारा प्राय: पहुँचा दिए जाते हैं। लोगों के बीच जहाँ किसी भी तरह का भौतिक सामीप्य होता है, वहाँ बढ़ी-चढ़ी मात्रा में अंतर-संप्रेषण होना अवश्यभावी है। ऐसा अंतर-संप्रेषण शब्दों, प्रथाओं, वर-वधुओं, वस्तुओं, सेवाओं, विश्वासों आदि के रूप में होता है। यह भी स्पष्ट है कि दो भिन्न संस्कृतियों के लोग जब परस्पर **पत्थर-फेंक** दूरी पर ही रहते हों तब वे एक-दूसरे की वेशभूषा, आभूषण, बर्तन और बाहरी जीवन को तो देखते ही हैं, वे एक-दूसरे से बातचीत भी कर सकते हैं, और ऐसा तभी किया जा सकता है जब वे एक-दूसरे की भाषा के कुछ शब्द ग्रहण कर चुके हों। भौतिक संपर्क की स्थिति में होने वाले सांस्कृतिक अंतर-संप्रेषण की संभावना एवं वास्तविकता को समझने के लिए और अधिक चर्चा करना आवश्यक नहीं है। संस्कृत-विशेषकों को प्रब्रजक लोगों द्वारा भी उन क्षेत्रों में ले जाया जा सकता है जहाँ वे अस्थायी तौर पर बस जाते हैं। इस तरह, इन क्षेत्रों के मूल निवासियों के बीच भी ये विशेषक संप्रेषित हो सकते हैं। विकासवादी अतिवाद की यह रचनात्मक समीक्षा तर्क-दृष्टि या अटकलबाजी पर नहीं, यथार्थ ऐतिहासिक घटनाओं के ज्ञान पर आधारित है। संस्कृति के प्रवर्धन और संस्कृति-समांतरों को प्रोत्साहित करने वाला ऐसा प्रसारण **प्रसार** कहलाया।

'प्रसार' अध्ययनों के क्षेत्र में जो प्रमुख सिद्धांत या संप्रदाय विकसित हुए हैं उनकी समीक्षात्मक व्याख्या अब प्रस्तुत की जा सकती है।

संस्कृति-चक्र सिद्धांत जर्मन प्रसारवादी

ग्रेबनर, एंकरमेन और **स्मिड** आदि जर्मनभाषी लेखकों ने इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में प्रसार का एक सिद्धांत प्रस्तुत किया। तभी से उनके अनुयायी इसका प्रचार करने में लगे हुए हैं। उनका सिद्धांत प्रसारयुक्त विकास की धारणा पर आधारित है। उनका कहना है कि संस्कृति-संकुल, विभिन्न कालों में, संसार के विभिन्न भागों में विकसित होकर कालांतर में अन्य भागों में प्रसारित होते रहे हैं। ऐसा प्रसार एक क्रमिक प्रक्रिया होती है और प्रसारित संस्कृति-विशेषकों की एक के बाद दूसरी परतें किसी भी संस्कृति में देखी जा सकती है। **संस्कृति-चक्र** (कुलटरक्रीस–जर्मन भाषा एक शब्द) का अर्थ एक संस्कृति-वृत्त या संस्कृति-प्रखंड होता है।

ये लेखक भौतिक संस्कृति के प्रमाणों पर अत्यधिक आश्रित रहे हैं। प्रसार संबंधी अपनी व्याख्याओं को सामाजिक संस्थाओं के संदर्भ में प्रमाणित करने की चेष्टा इन्होंने नहीं की। फिर भी, इन सभी में से **ग्रेबनर** ने मात्रा (क्वांटिटी)

नोट

और आकार (फॉर्म) की कसौटी का विकास करके एक महत्त्वपूर्ण एवं स्थायी योगदान दिया है। ग्रेबनर का कथन है कि ऐतिहासिक प्रमाण के अभाव मे मात्र सतही समानताएँ प्रसार होने संबंधी निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है। बल्कि प्रसार सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक है कि आकार की समानता के साथ संख्या की समानता और ऐसे विशेषक या संकुल के रचना-तत्वों के अंतरंग विन्यास को भी देखा जाए। उदाहरणार्थ, यदि यह देखना हो कि राशिचक्र का प्रसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर हुआ है या नहीं, तब इसके लिए देखना पड़ेगा कि अलग-अलग जगह प्रचलित राशिचक्रों के चिह्न समान हैं या नहीं, चिह्नों की संख्या समान है या नहीं और चिह्नों को घड़ी की सीधी तरफ से देखा जाता है या उल्टी तरफ से।

जहाँ तक इस सिद्धांत के संस्कृति-प्रवर्धन पक्ष की बात है, समीक्षक ने इसे रहस्यवादी सिद्धांत करार दिया है। वस्तुत: यह सिद्धांत कतिपय क्षेत्रों तक ही सीमित प्रसार के अध्ययन का ही प्रयास है और ऐसा ही अन्य अध्ययनकर्ताओं ने भी किया है। संस्कृति-चक्र सिद्धांत को **संस्कृति-इतिहासात्मक** सिद्धांत भी कहा गया है।

परसंस्कृति ग्रहण (एन्कल्चरेशन)

विसलर के संस्कृति-क्षेत्र अध्ययनों एवं बोआस के संपर्क-गत्यात्मकता-विषयक अध्ययन का एक सहज परिणाम यह हुआ कि कई अमरीकी नेतृत्ववेत्ताओं का ध्यान एक संस्कृति पर दूसरी संस्कृति के प्रभाव एवं तज्जनित परिवर्तनों के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ। जब संस्कृति-विशेषक या संकुल प्रसारित होते हैं तब हम इस प्रक्रिया को प्रसार कहते हैं, किन्तु जब एक संस्कृति के प्रभाव से दूसरी संस्कृति की संपूर्ण जीवन-पद्धति परिवर्तन प्रक्रिया के दौर में होती है तब इस प्रक्रिया को परसंस्कृति-ग्रहण कहा जाता है। पर संस्कृति-ग्रहण संबंधी कई व्याख्यात्मक सम्बोध रचने की दृष्टि से **लिंटन, रेडफिल्ड, हर्सकोविट्स, हलोवल, बील्स** आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। उदाहरणार्थ, हर्सकोविट्स कहते हैं कि जब एक बढ़ता हुआ बच्चा अपनी ही सांस्कृतिक परंपराओं का अनुपालन करना सीखता है तो इस प्रक्रिया को **संस्कृति अंत:ग्रहण** (एन्कल्चरेशन) कहा जाता है। सांस्कृतिक विशेषकों एवं स्कूलों के विनिमय को **अंतर-संस्कृतिकरण** (ट्रांस कल्चरेशन) कह सकते हैं, किन्तु एक जीवन-पद्धति का दूसरी जीवन-पद्धति द्वारा विस्थापन **परसंस्कृति ग्रहण** है। परसंस्कृति-ग्रहण से सात्मीकरण तक पहुँचा जा सकता है, किन्तु प्राय: ऐसा नहीं होता। अधिकृत या प्रभावी संस्कृति पहले तो टूटती है, किन्तु बाद में अपने व्यक्तित्व के क्षय की पूर्ति हेतु प्रतिक्रियाशील हो उठती है। ऐसी प्रतिक्रिया **प्रतिपरसंस्कृति-ग्रहण** कहलाती है। भारत में इसका एक उदाहरण **झारखंड आंदोलन** रहा है। शताब्दियों के शोषण और गरीबी के पश्चात् छोटा नागपुर क्षेत्र की जनजातियाँ दृढ़ता और विरोध की नवचेतना के साथ इस आंदोलन के रूप में उठ खड़ी हुई थीं और सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मामलों में स्वायत्तता की माँग करने लगी थीं।

परसंस्कृति-ग्रहणवादी अध्ययन इस प्रतीति से प्रेरित है कि आधुनिक विश्व में कोई भी संस्कृति **शुद्ध** या **अछूती** नहीं है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये अध्ययन प्रसारवादियों के अलिखित इतिहास के बारे में अटकलबाजीपूर्ण अध्ययनों की तुलना में अधिक विश्वस्त, सैद्धांतिक एवं व्याख्यात्मक वैज्ञानिक महत्त्व की परिपूर्ति के प्रयास हैं।

टास्क प्रसारवाद किसे कहते हैं? उल्लेख करें।

6.5 संस्कृति-समेकता (इंटीग्रेशन) के सिद्धांत (Theory of Cultural-Integration)

प्रकार्यवाद

संस्कृति के प्रवर्धन एवं समांतरण संबंधी प्रश्नों के थोड़े-बहुत संतोषप्रद उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् नेतृत्ववेत्ताओं ने अगला प्रश्न उठाया–'एक संस्कृति की अंतरंग संरचना क्या है?' क्या यह कृषि-तथ्यों, शिल्प-तथ्यों, समाज-तथ्यों

एवं मानस-तथ्यों का बिखरा-छितरा तथा अंतर-संबंध रहित या संगति-रहित जमाव है? अन्यथा, **वह क्या है जो संस्कृति को एक अर्थपूर्ण समग्र बनाता है?**

क्या आप जानते हैं मालिनोस्की तथा रेडक्लिफ-ब्राउन द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार प्रकार्यवाद के नाम से जाने गए हैं।

मालिनोस्की टायलर द्वारा दी गई संस्कृति की परिभाषा काम में लेते हैं, किन्तु टायलर की तरह इसे पराजैविक यथार्थ नहीं मानते। मालिनोस्की के अनुसार, संस्कृति एक ऐसा माध्यम या उपकरण है जो मनुष्य का शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा साथ ही, उन्नत मानसिक-बौद्धिक अस्तित्व निर्वाह संभव बनाती है। चूंकि संस्कृति के सभी पक्ष चाहे आर्थिक संगठन हो या सामाजिक संगठन या धर्म या भाषा—मानवीय आवश्यकताओं से जुड़े रहते हैं, अत: ये उसी तरह परस्पर अंतर-संबंधित होते हैं जिस तरह मनुष्य की आवश्यकताएँ मूलत: अंतर-संबंधित होती है। इसीलिए मालिनोस्की संस्कृति के असंबद्ध अवशेषों में विश्वास नहीं करते। विकासवादियों ने प्रकटत: प्रकार्यहीन संस्कृति-विशेषकों को प्राय: **अवशेष** या **अतीत के ठूंठ** कहा है। मालिनोस्की ने यह कहकर इनकी भर्त्सना की कि तथाकथित अवशेषों में किसी संस्कृति-विशेष के लिए उपयुक्त स्थान तलाशने की क्षमता नहीं थी। एक संस्कृति के अंतर्गत कुछ भी असंबद्ध नहीं होता। अपितु, सभी अंतरंग पक्ष अंतर-संबंधित होते हैं एवं किसी भी एकांकी विशेषक का स्वयं में कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि समग्र संदर्भ में इसे न देखा जाए।

इसी तरह, प्रसार की व्याख्या भी मालिनोस्की ने नई तरह से प्रस्तुत की। उन्होंने बताया कि एक विशेषक प्रसार के बाद अपना मूल आकार तो बनाए रख सकता है, किन्तु कार्य वही संपादित कर पाएगा जिसकी गुंजाइश उसके प्रसारण की संस्कृति में मौजूद होगी। इस तरह मालिनोस्की ने संस्कृति की समग्रता एवं स्वावलंबन की विशेषताओं का विशेषत: उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी बताया कि संस्कृति के किसी भी पक्षों में परिवर्तन का प्रभाव पूरी संस्कृति पर पड़ता है।

मालिनोस्की **संस्कृति बहुलतावाद** में विश्वास करते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक संस्कृति का विकास लोगों की स्थानीय शारीरिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार होता है। वे संस्कृति का विकास इन आवश्यकताओं के संदर्भ में समझना ठीक मानते हैं, न कि किन्हीं सुनिश्चित मूल्यों के अर्थ में। प्रचलित ज्ञान के अनुसार स्थानीय आवश्यकताओं की उपयुक्ततम पूर्ति सुसमेकित संस्कृति की परिचायक बताई गई है।

फिर भी, मालिनोस्की इस दृष्टि से असफल रहे कि वे मानवीय समाज की आवश्यकताओं एवं चेष्टाओं की चर्चा से आगे बढ़कर किसी समेकित समाज की तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।

रेडक्लिफ-ब्राउन मात्र व्यक्ति के अस्तित्व-निर्वाह की तुलना में समाज के अस्तित्व-निर्वाह पर विशेष जोर देते हैं। इसीलिए वे बताते हैं कि किसी संस्कृति की अंतरंग समेकता ही समाज के अस्तित्व-निर्वाह का एकमात्र रास्ता है। ऐसी समेकता एक आदर्श है, और एक यथार्थ भी। यदि ऐसी समेकता टूट जाती है तो समाज भी समाप्त हो जाता है। प्रत्येक संस्था का प्रकार्य संपूर्ण समूह की सुदृढ़ता को बनाए रखने में योगदान देना है, न कि व्यक्तिगत शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में, जैसा कि मालिनोस्की ने बताया है।

ये दोनों ही दृष्टिकोण अपूर्ण हैं, इसलिए कि ये समेकता को केवल संस्कृति के वस्तुपक्ष के अर्थ से ही देखते हैं। मालिनोस्की संस्कृति के संरूप (आकार) को प्रकार्य का अनुचर मानते हैं किन्तु यह बात गलत है। संरूप की अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है। अत: समेकता का एक संरूपवादी आधार भी होता है।

नोट

संस्कृति के संरूप (पेटर्न्स)

कला एवं सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र से अभिप्रेरित एवं इन्हीं से अपने प्रारूपों (मॉडल्स) को ग्रहण करते हुए, **रूथ बेनेडिक्ट** का कहना है कि संस्कृति की समेकता वह स्थायी या अर्धस्थायी जीवन-पद्धति या शैली है जो इसकी अंतर्वस्तु के संयोजन द्वारा रची जाती है। ऐसी जीवन-पद्धति को रूथ बेनेडिक्ट ने **संरूप** कहा है। एक संस्कृति में प्रत्येक बड़े संभाग की अपनी शैली होती है। एक ही संस्कृति के अंतर्गत ऐसी कई शैलियाँ मिलकर एक परम शैली बनती है जिसे संपूर्ण संस्कृति की जीवन-पद्धति कहा जा सकता है। इसे **परमसंरूप** (कॉनफिग्युरेशन) भी कहा गया है। वे आगे बताती है कि एक संस्कृति के अंतर्गत सभी शैलियाँ परस्पर समसंगतिपूर्ण होती हैं और इसी से ये एक सुसंगत परमसंरूप की रचना करती है। यह सुसंगति, उनके अनुसार, उस मुख्य प्रवृत्ति से पैदा होती है जो प्रत्येक संस्कृति के सभी पक्षों में दृष्टिगोचर होती है। इस मुख्य प्रवृत्ति को बेनेडिक्ट संस्कृति की **प्रतिभा** (जिनियस) कहती हैं। लोगों की यही प्रतिभा उनकी संस्कृति का समाकलन करती है—स्वरूप का समेकन करती है।

बेनेडिक्ट का विश्वास है कि किसी भी समाज की प्रतिभा दो संभावित प्रकारों **अपोलोधर्मी** (देवधर्मी) एवं **डायोनिसियसधर्मी** (दानवधर्मी)— में से किसी भी एक प्रकार की हो सकती है (अपोलो: प्राचीन ग्रीकवासियों में पूज्य कृपाल सूर्य देवता, डायोनिसियस: ग्रीकों का ही राक्षसी वृत्तिवाला देवता) अपोलोधर्मी प्रतिभा शांत स्वभाव की परिचायक है। जिस संस्कृति का समेकन इस प्रतिभा पर आधारित होता है उसके सभी पक्षों में इसका परिलक्षण विद्यमान रहता है। डायोनिसियसधर्मी प्रतिभा अशांति एवं हिंसक स्वभाव का प्रतिनिधित्व करती है और जिस संस्कृति के समेकन का यह आधार बनती है उसके स्तरों पर इसके लक्षण प्रचलित रहते हैं।

बेनेडिक्ट ने इस संदर्भ में तीन उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। अमरीका के उत्तर-पूर्वी तट के डोबू एवं क्वाकिउतल लोगों की संस्कृति के समेकन को इन्होंने डायोनिसियसधर्मी तथा न्यूमेक्सिको के प्यूबलो लोगों की संस्कृति के समेकन को अपोलोधर्मी बताया है।

6.6 सारांश (Summary)

- संस्कृति सांस्कृतिक नेतृत्व का एक प्रमुख एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संबोध रहा है। किसी भी समाज संस्कृत सर्वप्रमुख वाहक संस्था परिवार होती है और परिवार एक नातेदारी समूह है। संस्कृति शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता रहा है। सामान्य साहित्यिक अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग सामाजिक शिष्टता एवं बौद्धिक उत्कर्ष के लिए किया जाता है।
- संस्कृति को परिभाषित करने और व्यापक रूप से इस शब्द को काम में लेने वाले प्रथम नेतृत्ववेत्ता **टायलर** थे।
- एक अन्य दृष्टिकोण **रूथ बेनेडिक्ट** ने प्रस्तुत किया है। इसे संरूपवादी (फोरमलिस्टिक), सौंदर्यवादी दृष्टिकोण कहा गया है।
- **क्रोबर** ने संस्कृति के दो पक्षों पर ध्यान दिया है जिन्हें उन्होंने ईथांस और ईडांस कहा है। संस्कृति के रचना-तत्वों से प्रकट होने वाला इसका औपचारिक व्यक्त रूप ईडांस है।
- कला के संदर्भ में **हेड्डन** ने कला-प्रकारों के उद्विकास की प्रारंभिक अवस्था यथार्थवादी कला बताते हुए रेखाकार तथा प्रतीकात्मक या अमूर्त कला-प्रकारों को वाद की क्रमावस्थाएँ बताया है।
- मालिनोस्की **संस्कृति बहुलतावाद** में विश्वास करते हैं। उनका कहना है कि प्रत्येक संस्कृति का विकास लोगों की स्थानीय शारीरिक, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के अनुसार होता है।

6.7 शब्दकोष (Keywords)

1. **सांस्कृतिक मानवशास्त्र (Cultural Anthropology):** मानव संस्कृतियों की उत्पत्ति, इतिहास, उद्विकास और प्रत्येक स्थान एवं काल में मानव संस्कृतियों की संरचना एवं कार्यों का अध्ययन करने वाली मानवशास्त्र की एक शाखा है। इसके अंतर्गत प्रथाओं को सीखने, उन्हें सुरक्षित रखने तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इन प्रथाओं की हस्तांतरण की प्रक्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है।
2. **प्रसारवाद (Diffussionism):** संस्कृति के प्रवर्धन और संस्कृति-समांतरों को प्रोत्साहित करने वाला ऐसा प्रसारण प्रसार कहलाता है।

6.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. उद्विकासवाद का अर्थ क्या है? उल्लेख करें।
2. संस्कृति के प्रवर्धन (ग्रोथ) संबंधी सिद्धांत क्या है?
3. प्रसारवाद क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सिद्धांतवेत्ता 2. स्वजातिवादी 3. सामुदायिक।

6.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. परिवार का समाजशास्त्र—डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. सोलह संस्कार—स्वामी अवधेशन, मनोज पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–7: नातेदारी के अध्ययन का दृष्टिकोणः लिंगीय परिप्रेक्ष्य (Approaches to the Study of Kinship: Gender Perspective)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
7.1 मातृरेखीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति (Status of Women in Matrilineal Society)
7.2 पितृरेखीय समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति (Status of Women in Patrilineal Society)
7.3 सारांश (Summary)
7.4 शब्दकोश (Keywords)
7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सामाजिक पक्ष के संदर्भ में 'जेन्डर' की अवधारणा को समझना।
- विभिन्न समाजों में लिंग भेद के रूपों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

जनजातीय समाजों में स्त्री की प्रस्थिति के बारे में नेतृत्वेत्ताओं में लंबे समय तक मतभेद बना रहा। इस संबंध में परस्पर विरोधी मत भी व्यक्त किए जाते रहे हैं। कुछ का कहना है कि जनजातीय समाजों में स्त्रियों को सामान्यता ऊँची प्रस्थिति दी जाती है, जब कि अन्य इसकी विपरीत स्थिति का समर्थन करते हुए कहते हैं कि आदिम समाजों में स्त्रियाँ आमतौर से एक पिछड़ा समूह होती हैं।

विचारों का यह विपर्यय, अन्य कारणों को छोड़, सीमित एवं विशिष्ट दत्त (डेटा) के आधार पर साधारणीकरण करने की अध्ययन-प्रणालीय गलती का परिणाम है। प्रस्थिति के बारे में भिन्न-भिन्न व्याख्याओं का प्रचलन भी एक अन्य कारण है। ऊँची या नीची के अर्थ में प्रस्थिति की व्याख्याएँ प्राय: काफी सामान्यीकृत और अस्पष्ट होती है।

नोट्स मालिनोस्की ने कहा है, प्रस्थिति की सही परिभाषा पुरुषों एवं स्त्रियों के पारस्परिक दायित्वों और इनमें से प्रत्येक को दूसरे की निरंकुशता से बचाने के लिए किए जाने वाले उपायों को समझ लेने के बाद ही दी जा सकती है।

लोवी ने प्रस्थिति के चार भिन्न-भिन्न आधार बताए हैं और कहा है कि यह जरूरी नहीं कि ये चारों साथ-साथ पाए ही जाएँ ये हैं–

1. स्त्री के वास्तविक व्यवहार।
2. स्त्री की कानूनी प्रस्थिति।
3. स्त्री को उपलब्ध सामाजिक सहभागिता के अवसर।
4. स्त्री के कार्य का प्रकार और विस्तार।

ये सभी, और इनमें से प्रत्येक, एक विशेष अर्थ में, एवं विशेष तरीके से, समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति का निर्धारण करते हैं। ये चारों निर्धारक एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं और कार्य-कारण रूप में संबंधित नहीं है। इनके बीच में सहसंबंध वास्तविक (एम्पिरिकल) होता है, न कि अभिधारणात्मक (कॉनसेप्चुअल)।

सिद्धांत और व्यवहार, या इसे अन्य शब्दों में कहें तो, प्रतिमान (नॉर्म) और क्रियाएँ सदैव एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। अत: यह जरूरी नहीं कि सैद्धांतिक या कानूनी प्रस्थिति सामाजिक व्यवहार में देखने को मिले ही।

ऊपर जिस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है उसकी व्याख्या कुछ उदाहरण देकर की जा सकती है। टोडाओं में दुग्धशाला का जनजाति की आर्थिक और धार्मिक क्रियाओं में केन्द्रस्थ महत्त्व है। दूध एवं दूध उत्पादन पर ही इनकी अर्थव्यवस्था टिकी रहती है। दुग्धशाला ही इनका मंदिर है, और इसी से उनके सामाजिक-धार्मिक विचार एवं क्रियाएँ अविभाज्य रूप में गुंथी रहती है। स्त्रियों को, कुल मिलाकर, अपवित्र माना जाता है और दुग्धशाला में प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता। स्त्रियाँ भैंस नहीं दुह सकतीं, न अपने स्थानीय उपयोग या विनिमय हेतु दुग्ध उत्पादन ही तैयार कर सकती है, और न ऐसा भोजन पका या परोस सकती हैं, जिसमें दूध का इस्तेमाल किया जाता हो। इस प्रकार का निषेध, स्वभावत: स्त्रियों को वैधानिक प्रस्थिति को एक आंशिक बहिष्कृत समूह के रूप में नीचा कर देता है। किन्तु इसे बलपूर्वक या प्रभुत्व द्वारा लागू नहीं किया जाता। यों स्त्रियों के प्रति सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है और जैसा कि माना जा सकता है, उन्हें सामाजिक तिरस्कार का पात्र नहीं बनाया जाता। टोडा महिलाओं को अन्य भारतीय जनजातीय महिलाओं की तुलना में अत्यधिक प्यार मिलता है। टोडा पहले बहुपति विवाही थे, किन्तु इनमें अब बहुपत्नी विवाह भी होने लगे हैं। इससे टोडा स्त्रियों की प्रस्थिति पर कोई असर नहीं पड़ा है। जापानी फैशन के छाते टोडाओं में द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले ही पहुँच गए थे। टोडा स्त्रियाँ अपने प्रेमियों या पतियों से ये छाते उपहार में प्राप्त कर गर्वपूर्वक इनका इस्तेमाल करती थीं।

अडंमान द्वीपवासियों के समाज में स्त्रियाँ एवं पुरुष जनजाति के धार्मिक-आर्थिक जीवन में समान रूप से भाग लेते हैं। फिर भी अंडमान पिगमी स्त्री की स्थिति, टोडा स्त्री की तुलना में, दासी जैसी होती है। पुरुषों के साथ कई प्रकार के कार्य करने के अतिरिक्त उन्हें वे सभी काम भी करने पड़ते हैं जो सर्वत्र केवल स्त्रियाँ ही करती हैं। यथा, घर का कामकाज, संतानोत्पति और संतान का पालन-पोषण आदि। इस प्रकार, काम का समान अवसर इनके लिए कोई वरदान नहीं है।

कादर में पुरुष और स्त्री के बीच काम का बंटवारा पूर्णत: निश्चित होता है। महिलोचित या स्त्रीसुलभ कामों को संपादित करने के स्त्रियों को पूरे अवसर दिए जाते हैं। इससे वे पुरुषोचित एवं स्त्रियोचित दोनों तरह के काम एक ही साथ करने से बच जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि काम का प्रकार एवं विस्तार स्त्रियों की वास्तविक स्थिति के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योग देता है।

जहाँ तक सिद्धांत और व्यवहार में फर्क का सवाल है, इसका उपयुक्त उदाहरण हिन्दू ग्रामीणों के जीवन में देखने को मिलता है। ये सिद्धांतत: तो स्त्रियों को देवीवत मानते हैं किन्तु यथार्थ आचरण में इनके साथ दासी या नौकरानी जैसा व्यवहार करते हैं।

7.1 मातृरेखीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति (Status of Women in Matrilineal Society)

खासी

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् अब हमारे सामने एक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण सवाल है–वह क्या है जो किसी समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति निर्धारित करता है? इसका एक तैयारशुदा उत्तर यह दिया जाता रहा है कि पितृसत्तात्मक समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति नीची एवं दलित होती है जबकि मातृसत्तात्मक समाजों में इनकी प्रस्थिति ऊँची होती है।

मातृसत्ता शब्द एक संबोधीय रचना है। हमारी अब तक की जानकारी में संसार का ऐसा कोई भाग नहीं है जहाँ पूर्णमातृसत्ता जैसी स्थिति प्रचलित हो। खासी जनजाति में प्रचलित मातृसत्ता को इसका निकटतम संरचना प्रकार माना जा सकता है।

खासी समाज व्यवस्था मातृस्थानी एवं मातृरेखीय है। ये अपना वंशनिर्धारण उन महिला-पूर्वजों से करते हैं जिन्हें लोक-कथाओं में प्राय: जनजातीय पौराणिक राजकुमारियाँ बताया जाता है। यहाँ तक कि सृष्टि रचयिता देवता के लिए भी ये स्त्रीलिंगीय लक्षणों का उल्लेख करते हैं। इनमें वंशनिर्धारण माँ से होता है, अर्थात् केवल स्त्री-रेखीय रूप में होता है। संपत्ति का उत्तराधिकार माँ से केवल बेटी को ही मिलता है। एक पुरुष की कमाई भी उसके विवाह के पूर्व उसकी माँ के एवं विवाह के पश्चात् उसकी पत्नी के अधिकार में रहती है। गृहसंचालन स्त्रियाँ करती हैं, फिर भी, मातृस्थानी निवास एक स्थानी निवास एक स्थायी स्थिति नहीं है।

त्यौहारों एवं धार्मिक जीवन के आयोजनों, विशेषत: परिवार से संबंधित आयोजनों का संचालन भी स्त्रियाँ करती हैं। पूर्वज आत्माओं की पूजा की जाती है, और ये मुख्यत: स्त्री रूपी होती हैं। बीमारी, मृत्यु और सुरक्षा की शक्तियाँ देवियों के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं। सभी प्रकार के बलि आयोजनों का संपादन पुरोहिताइनें करती हैं। पुरुष पुरोहित केवल सहायक का कार्य करते हैं।

कुछ स्थितियों में स्त्रियाँ धार्मिक तथा लौकिक (सेक्यूलर) दोनों क्षेत्रों की मुखिया होती हैं। उदाहरणार्थ, महत्त्वपूर्ण खाइरिम प्रदेश में प्रदेश की प्रधान-पुरोहित और वास्तविक मुखिया एक स्त्री हुआ करती थी, जिसने पवित्र एवं राजसी भूमिकाओं का समावेश स्वयं में ही कर लिया था।

वैसे ऐसे कोई प्रमाण नहीं है जो स्त्रियों के पूर्ण प्रभुत्व को सिद्ध करे। जहाँ तक पुरुषों की बात है, न तो स्त्रियों का उनपर प्रभुत्व होता है, न उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है, और न उन्हें किसी तरह से दबाया ही जाता है। वस्तुत:, स्त्रियाँ उनका सम्मान करती हैं और विवाह के बाद अलग स्थापित किए जाने वाले परिवार में पतियों का प्रचुर अधिपत्य होता है। खासी पत्नियाँ खासी बोली में जिस शब्द से पतियों को संबोधित करती है। उसका अर्थ **'स्वामी'** होता है। तलाक तभी संभव होता है जबकि दोनों पक्ष इसके लिए तैयार हों। विवाह अनुबंध को एकतरफा तौर पर तभी तोड़ा जा सकता है जबकि ऐसा करने वाला दूसरे पक्ष को हर्जाना चुका दे। पुरुष अतिभोगी होते हैं और

असंयम इनमें आमतौर से पाया जाता है। इसी से यह शंका उठ खड़ी होती है कि पुरुषों की ऊँची मृत्यु दर का कारण कहीं यह बात तो नहीं है? पति पत्नियों के अधिकार से उतने ही मुक्त हैं जितनी पत्नियाँ स्वयं में स्वतंत्र।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मातृ-रेखीयस्थिति एवं मातृस्थानी आवास (चाहे यह अस्थायी हो) खासी स्त्रियों की प्रस्थिति को पर्याप्त ऊँचा बनाए रहते हैं।

आवास स्वयं में इतना प्रभावकारी नहीं होता कि स्त्री की प्रस्थिति का निर्धारण कर सके। यह जरूरी कि मातृस्थानी आवास पत्नी की प्रस्थिति को बढ़ावा दे ही, जबकि उसके स्वजनों के लिए यह निश्चयात्मक रूप में सहायक सिद्ध होता है। तथापि, अपने स्वजनों की प्रस्थिति की सुरक्षा से एक स्त्री को अप्रत्यक्ष रूप में लाभ मिलता ही है।

आवास सामाजिक प्रस्थिति को तब बढ़ाता है जब संपत्ति के उत्तराधिकार का इससे मेल हो।

गारो

गारो जनजाति मातृसत्तात्मक समाज का एक अन्य निकटतम उदाहरण है। इनमें बच्चों पर माँ के उपकुल (सेप्ट) और मातृदल (मदरहुड), अर्थात् विस्तृत परिवार, का अधिकार होता है। इनमें यह जरूरी होता है कि विवाह का प्रस्ताव लड़की वालों की तरफ से आए। गारो अपने आपको एक ही पूर्वजा के वंशज मानते हैं। वंश निर्धारण एवं उत्तराधिकार माँ से प्राप्त होता है। एक मातृदल के स्वामित्व में एक बार रही संपत्ति फिर कभी इसके बाहर नहीं जा सकती। पुत्र संपत्ति का उत्तराधिकारी इसलिए नहीं होता कि वह कहीं इस संपत्ति को अपनी पत्नी के बच्चों तक न पहुँचा दे, जो उसके (पुत्र या पति) मातृदल के सदस्य न होकर अपनी माँ के मातृदल के सदस्य होते हैं। तथापि, एक पति अपनी पत्नी के जीवनकाल में उसकी (पत्नी) संपत्ति का पूरा उपयोग कर सकता है। गारो में स्त्री वस्तुत: एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संपत्ति के हस्तांतरण का माध्यम मात्र है।

पुरुष एक से अधिक पत्नियों के विवाह कर सकते हैं। सामान्यत: इनमें अधिकतम तीन तक पत्नियाँ होने की जानकारी मिली है। वर या वधू के लिए कोई मूल्य नहीं चुकाया जाता। विधवाओं को लंबे समय तक पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं दी जाती, ताकि संपत्ति को परिवार में ही रखा जा सके और छोटे बच्चों के वयस्क होने की प्रतीक्षा की जा सके। यह स्थिति स्त्रियों के लिए दमनात्मक सिद्ध होती है। इसका कारण स्त्रियों की वैध श्रेष्ठता एवं पात्रता है। विधवाओं को अपने मृत पति के भतीजे से विवाह करना पड़ता है, यदि कि वह (भतीजा) ऐसा चाहे। यदि विधवा ऐसे विवाह के लिए इंकार करती है तब अपकृत (हानि भोगी) भतीजा हरजाना प्रप्ति करने का अधिकारी हो जाता है। व्यावसायिक 'वेश्यावृत्ति' से ये अनभिज्ञ है, किंतु यौनाचार इनमें आमतौर से प्रचलित होता है। अवैध संबंध रखने वाले पुरुष को प्राय: मौत की सजा दी जाती है, जबकि ऐसी स्त्री के लिए सजा उसके कान की चमड़ी काट लेना और कपड़े फाड़ देना मात्र है। इस प्रकार के अपराध की पुनरावृत्ति करने वाले पुरुष या स्त्री के लिए प्राणदंड निश्चित है। अवैध संबंधों से तलाक की नौबत भी आ जाती है। काम करने से इंकार करना भी तलाक का एक अन्य कारण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. परिवार से संबंधित आयोजनों का ········· भी स्त्रियाँ करती हैं।
2. सम्पत्ति का उत्तराधिकार माँ से केवल ········· को ही मिलता है।
3. बीमारी, मृत्यु और सुरक्षा की शक्तियाँ ········· के रूप में प्रतिष्ठित होती हैं।

नोट

आर्थिक व्याख्या

हॉबहाउस ने आदिम समाजों के आर्थिक जीवन में स्त्रियों के योगदान के आधार पर उनकी प्रस्थिति की व्याख्या करने की चेष्टा की है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 87.5 प्रतिशत पशुपालक जनजातियों और 73.0 प्रतिशत कृषक जनजातियों में स्त्रियों की प्रस्थिति नकारात्मक, अर्थात् दलित रही हैं। इसका यह कारण बताया गया कि पशुपालन कार्य पुरुषोचित अधिक है। **लोवी** ने हॉबहाउस की आलोचना करते हुए कहा कि प्रसार की वास्तविकता की दृष्टि से देखने पर ऐसी सांस्कृतिक कारणात्मकता सामान्यत: असंभाव्य हो जाती है और केवल संयोग या सहसंबंधिता मात्र रह जाती है।

दक्षिणी एशिया में स्त्रियों की प्रस्थिति के बारे में लिखते हुए यू. आर. **एहरेनफेल्स** ने कहा है कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में चार प्रकार के आदिम समाज पाए जाते हैं। यथा, खाद्य संकलक, उन्नत आखेटक, पौध उत्पादक और घुमक्कड़ चरवाहे। संपत्ति का उत्तराधिकार एवं विरासत पुरुष एवं स्त्रियों की प्रस्थिति में विभेद पैदा करते हैं। उदाहरणार्थ, खाद्या संकलक कादर, मालपतारम्, पलियान, इरुला पनियान चेंचू और अंडमान द्वीप निवासी उभयपक्षी हैं। इनमें उत्तराधिकार एवं विरासत संबंधी कोई कानून नहीं होते, अत: पुरुष एवं स्त्रियों की प्रस्थिति लगभग समान होती है।

संपत्ति के विकास के साथ ही, जो मुख्यत: पुरुष सामर्थ्य से संभव हो पाया, पितृसत्ता और पुरुषों की ऊँची प्रस्थिति का जन्म हुआ।

खासी मातृसत्तात्मक समाज पौध उत्पादक है। पौध उत्पादन का आर्थिकी से खासियों का संपर्क हाल में ही हुआ है। इससे खासी पुरुष उन्नत व्यावसायिक वैशिष्ट्य, व्यक्तिगत संपत्ति और सत्ता अर्जित करने लगे हैं। फिर भी, इनकी स्त्रियों के अधिकार इनसे किसी तरह के खतरे में नहीं पड़े हैं क्योंकि परिवार के पद एवं नामग्रहरण निर्धारण और संपत्ति के उत्तराधिकार के वरीयता अधिकार इनकी रक्षा करते हैं। वैसे यह सब पुरुष की किस्मत पर भी नहीं हुआ है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण गारो, नायर, मेनन, टिया, मुस्लिम मापिल्लई और कुछ पिल्लई परिवार हैं।

टोडा जैसे घुमक्कड़ चरवाहों के जीवन में पितृसत्ता सिद्धांत पर पुन: जोर देने से पुरुष एवं स्त्री की प्रस्थिति के बीच विषमता पैदा हुई है। इससे पुरुषों की स्थिति ऊँची उठी है।

7.2 पितृरेखीय समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति (Status of Women in Patrilineal Society)

यह पहले ही बताया जा चुका है कि आवास के प्रकार का स्त्रियों की प्रस्थिति के निर्धारण में पर्याप्त हाथ रहता है, हालांकि यह प्रभाव किसी भी रूप में अंतिम नहीं होता। अपने प्राथमिक स्वजनों की उपस्थिति में यह कम ही संभव है कि एक स्त्री के साथ दुर्व्यवहार हो। बल्कि उसके प्रभुत्वपूर्ण स्थिति ग्रहण कर लेने की संभावना ही अधिक रहती है। इस प्रभुत्वपूर्ण स्थिति का चाहे कोई भी कानूनी या सामाजिक आधार न हो और जैसा कि लोवी ने कहा है, यह केवल पत्नी के स्वजनों की श्रेष्ठता का सूचक मात्र हो, किंतु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि इसका एक सामान्य परिणाम स्त्रियों की प्रस्थिति, या कम से कम स्थिति (पोजिशन), को प्रभुत्वपूर्ण बनाना होता है। यह दूसरी बात है कि ऐसी स्थिति का उपयोग किया ही न जाए।

जिन कारणों से मातृस्थानी समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति अच्छी होती है, उन्हीं कारणों से पितृस्थानी समाजों में भी पुरुषों की प्रस्थिति अच्छी होती है। हम यह पहले ही बता चुके हैं स्त्री प्रभुत्व वाले समाज सदैव मातृस्थानी नहीं होते। जैसे, प्रधानत: मातृरेखीय खासी भी सदैव मातृस्थानी आवास की स्थिति में रहते नहीं पाए जाते। विवाह के बाद अपनी पत्नी के घर आकर रहनेवाला पति अपना घर अलग बसाने में तत्काल जुट जाता है। अधिकांशत: वह अपने प्रयत्नों में सफल होता है और उसके नए घर में केवल उसकी पत्नी एवं बच्चे ही उसके साथ रहते हैं।

नोट

भारत में पितृसत्तात्मक समाजों में मातृस्थानी आवास का विकास भी पाया गया है। बंगाल में कुलीनवाद के अंतर्गत ब्राह्मण पत्नी अपने माता-पिता के साथ ही रहती थी। उसका बहुपत्नीविवाही पति समय-समय पर अपनी पत्नी के घर आता था, तथा संतान अपने मामा के घर बड़ी होती थी। **घरजंवाई** की प्रथा में भी एक पति को अपना पैतृक निवास छोड़कर अपनी पत्नी के घर रहना पड़ता है। इससे भी मातृस्थानी आवास का विकास होता है। इन सभी के बावजूद भी ऐसे समूहों की मूल जीवन पद्धति पितृसत्तात्मक बनी रहती है।

क्या आप जानते हैं सभी प्रकार के समाजों में, और विशेषत: **पितृसत्तात्मक** में, स्त्रियों की प्रस्थिति कई प्रकार के निषेधों से युक्त होती है। ये निषेध सुरक्षात्मक, परहेजात्मक और उत्पादनात्मक होते हैं।

टोडाओं में स्त्रियों पर लागू होनेवाले निषेध परहेजात्मक हैं इस अर्थ में कि ऋतुस्राव, शिशुजन्म आदि से पैदा होनेवाली स्त्रियों की अशुद्धताएँ उनहें उनकी पवित्र दुग्धशाला पर केंद्रित **टोडा** धार्मिक-सामाजिक जीवन के लिए अनुपयुक्त बना देती है। परिणामत:, दुग्धशाला और दूध को स्त्रियों के संपर्क से अपवित्र होने से सामान्यत: बचाया जाता है।

सभी पितृसत्तात्मक समाजों के बारे में ऐसे बड़े नियम नहीं बनाए जा सकते। जैसा कि हो के बारे में बताया गया है, इनमें अधिपति और आधीन दोनों प्रकार के पति समान रूप से मिल जाते हैं—जबकि हो पितृसत्तात्मक है।

ग्रिगसन का कहना है कि **गोंड** स्त्रियों को सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त प्रतिष्ठा और स्वतंत्रता उपलब्ध है। पति के चयन, विवाह-पूर्व यौन-संबंध बनाने और तलाक प्राप्ति, आदि दृष्टि से गोंड स्त्रियों पर्याप्त स्वतंत्र हैं। वैसे कई अन्य क्षेत्रों में इनकी स्थिति काफी गिरी हुई है और इन्हें पतियों के लिए श्रमिक की तरह काम करना पड़ता है। गोंड समाज में श्रमिक के रूप में स्त्रियों की इतनी कीमत होती है कि गोंडो में कुवारे गोंड कदाचित् ही मिलते हैं।

हिमालयवर्ती क्षेत्र के रंगीले **थारू** अपनी पत्नियों के वश में होते हैं। इनकी स्त्रियाँ मंत्र-तंत्र और जादू-टोने में माहिर होती हैं। थारू स्त्रियाँ मैदानी लोगों तक को अपने चक्कर में फंसा लेने के लिए ख्यात हैं। यह इनकी अद्वितीय सुन्दरता और यौन चांचल्य का प्रताप है।

बहुपतिविवाही **खस** भातृबहुविवाही होने के कारण पितृस्थानी हैं। अपने पति के साथ रहने की स्थिति में खस स्त्री को बराबर शारीरिक, भावनात्मक एवं सामाजिक परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। उसकी स्थिति लगभग गौण होती है। किंतु खस समाज ने स्त्रियों को ऐसी अनवरत स्थिति से बचाने के लिए अपने ऐसे सामाजिक विधितंत्र का विकास किया है जो **सेफ्टी वाल्व** का काम कर सके, और इसी से इनका सामाजिक स्थाायित्व बिगड़ नहीं सकता है। खस अपनी स्त्रियों की नैतिकता के दुहरे मापदंड के लिए प्रसिद्ध है। अन्य शब्दों में, इनकी स्त्रियों के यौन जीवन में विषम द्वैतता पाई जाती है। जब एक स्त्री अपने पति के घर होती है तब उसका जीवन, एक तरह से, नौकरानी जैसा होता है। उसकी कोई स्थिति नहीं होती और न उसकी स्वतंत्र एवं निजी इच्छा ही। परंपरागत चलन के अनुसार वह अपने माता-पिता के घर प्राय: आती रहती है। जब वह अपने पिता के गाँव में होती है तब वे सभी नियंत्रण और प्रतिबंध उस पर से उठ जाते हैं जो उसके पति के गाँव में लागू होते हैं। पति के घर की घनीभूत मायूसी पिता के गाँव के मुक्त यौन में मुखर हो उठती है।

उपरोक्त उदाहरणों से एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। किसी भी समाज में स्त्री की स्थित को समझने के लिए उसकी प्रस्थिति को, रूढ़ पूर्वग्रहनुसार, नीची या ऊँची मानना एक वैज्ञानकि गलती है। इस प्रकार का द्विभाजन सामान्यत: भ्रामक होता है। खस के संदर्भ में तो ऐसा निश्चिततः है ही। प्रस्थिति की वस्तुत: कई मध्यवर्ती स्थितियाँ हो सकती है, और दो ध्रुवी स्थितियाँ भी—चाहे ये खस स्त्री की दो ध्रुवी स्थिति जैसी स्पष्ट शायद न भी हो।

पितृसत्तात्मक **नागा** जनजातियों में स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त वैविध्य पाया जाता है। सेमा स्त्रियों की सामाजिक स्थितियों और अंगामी स्त्रियों से अच्छी होती है, जबकि संपत्ति पर स्वामित्व और यौन स्वतंत्रता की दृष्टि से ओ और अंगामी स्त्रियों की स्थिति सेमा से बेहतर होती है। पतियों के चयन में सेमा स्त्रियाँ कोई निर्णायक हाथ नहीं बंटाती। यों उनकी पसंदगी का पता लगाया अवश्य जाता है, और इसे सामान्यत: माना भी जाता है। एक पत्नी का सर्वोत्कृष्ट गुण काम-काज करने की उसकी योग्यता माना जाता है, न कि उसकी शक्ल-सूरत की सुंदरता। सेमा स्त्री की पति के घर में इज्जत होती है और उसके बच्चों को प्यार से रखा जाता है।

मध्यवर्ती भारत की जनजातियों में स्त्रियाँ हर तरह के काम में पुरुषों का साथ देती हैं और न्यूनाधिक रूप में पुरुषों के समान ही उनके अधिकार होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि इन स्त्रियों की प्रस्थिति अच्छी है। इसके विपरीत, उनको शारीरिक क्षमाताओं की सीमा एवं मातृत्व-संबंधी दायित्वों को देखते हुए, उनकी ऐसी स्थिति उन्हें उस अवस्था में भी पहुँचा देती है जो उनके लिए अभिशाप सिद्ध होती है। जैसा कि अंडमान द्वीपवासियों के संदर्भ में पहले बताया जा चुका है, श्रम की अनिर्दिष्ट संभावना और सामाजिक मेलजोल स्त्रियों के लिए वस्तुत: भार बन जाता है।

भारतीय जनजातियों के संदर्भ में स्त्रियों की प्रस्थिति का जो उल्लेख ऊपर हुआ है वह स्त्रियों के साथ जुड़ी हीनता या नियोग्यताकारक कलंक पर आधारित नहीं है। स्त्रियों को जिन अपवित्र अवस्थाओं को भोगना पड़ता है और कतिपय निषेधों से डरना पड़ता है उनकी व्यापक जानकारी भी लोगों को होती है। ऊँची जातियों में स्त्रियों की स्थिति काफी निरीह, दासीवत और असहाय देखने में आती है। नीची जातियों की स्त्रियों की स्थिति जनजातीय स्त्रियों जैसी ही होती है। अधिकार की अनुस्थिति मात्र अधीनता की सूचक नहीं होती, ठीक उसी तरह जैसे उनकी उपस्थिति का यह अर्थ नहीं होता कि वे क्रियाशील भी हों ही। यहाँ तक कि, जिन जनजातीय स्त्रियों को स्वतंत्र और मुक्त यौन भोगी बताया जाता है उन्हीं की यथार्थ स्थिति जब हम देखते हैं तो पुरुष की इनके प्रति क्रूरता, इनका परित्याग, और इन्हें पुरुषों के निर्दय व्यवहार के साथ समझौता करते हुए देखा जाता है। इन स्थितियों में तलाक लेने की संभवना हो तब भी स्त्रियाँ बहुत कम ही ऐसा कर पाती हैं। हो अपनी-पत्नियों की सुख-सुविधा का ध्यान प्राय: रखते हैं, फिर भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जब पत्नियाँ पतियों के अत्याचार, दुर्व्यवहार और पत्यिाग के कारण आत्महत्या कर लेती हैं।

कई समाजों में स्त्रियों की प्रस्थिति संतानोत्पति और संतान के लालन-पालन के कार्य के साथ जुड़ी रहती है। माताओं के रूप में उनकी सदैव इज्जत की जाती है, और उनके प्रति विशेष ध्यान दिया जाता है। इसी कारण बांझपन को प्राय: सभी जातियों एवं जनजातियों में कलंक माना जाता है। कतिपय स्थितियों में बांझ स्त्रियों को समाजविरोधी भी माना है। संतानविहीन हो कुंआरी औरतें, जो ऊँची वधू मूल्य के प्रचलन के कारण अविवाहित रह जाती हैं, कई बार डायनें करार दी जाती है।

भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति को धर्म की तुलना में भारतीय नृजातिसंस्कृति (एथनोलॉजी) के संदर्भ में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। स्त्रियों की हीन प्रस्थिति को कुछ लेखक मातृसत्ता पर पितृसत्ता के आधिपत्य का परिणाम मानते हैं, किंतु दक्षिण भारत में इस तरह की टकराहट के बावजूद भी स्त्रियों की प्रस्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। ब्राह्मणी शास्त्रों में प्रस्तुत स्त्रियों के व्यवहार संबंधी कड़े नियम जनजातीय और निम्न जाति की स्त्रियों को प्रभावित नहीं करते, न इन स्त्रियों पर शास्त्रों में उल्लेखित ब्राह्मण पत्नियों के लिए प्रयुक्त अर्धांगिनी का सिद्धांत ही लागू होता है।

7.3 सारांश (Summary)

- विभिन्न समाजों में लैंगिक संबंधों के भिन्न रूप हैं–ऐतिहासिक काल, प्रजातिक और जातीय समूहों, सामाजिक वर्ग और पीढ़ीओं में।

नोट

- घर में लैंगिक श्रम विभाजन से लेकर श्रम बाज़ार तक, राज्य की व्यवस्था में, काम भावना में और सामाजिक संगठन के कई पक्षों में लैंगिक संबंधों की रचना होती है।
- आज भी जहाँ मातृसत्तात्मक समाज है वहाँ स्त्रियों को कुछ अधिकार दिए गए हैं जैसे खासी, गारो समुदाय मातृसत्तात्मक है।
- पितृस्थानीय समाजों में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं होती है। ज्यादातर समाजों में पितृस्थानीय व्यवस्था ही हैं।

7.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **लिंग-भेद (Gender)**–जेन्डर का अर्थ स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व के रूप में सामानान्तर और सामाजिक रूप में असमान विभाजन से है।
2. **मध्यवर्ती**– भारत की जनजातियों में स्त्रियाँ हर तरह के काम में पुरुषों का साथ देती हैं और न्यूनाधिक रूप में पुरुषों के समान ही उनके अधिकार होते हैं।

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मातृरेखीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन करें।
2. पितृरेखीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. संचालन 2. बेटी 3. देवियों।

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक मानवशास्त्र परिचय–मजुमदार एवं मदान।
2. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ–गुप्ता एवं शर्मा।

नोट

इकाई–8: नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology)
8.2 सारांश (Summary)
8.3 शब्दकोश (Keywords)
8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी शब्द स्वजन-सूचक शब्द का विकास की जानकारी।
- नातेदारी शब्द का अर्थ समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

मोर्गन के स्वजन-सूचक संज्ञाओं के अध्ययन के मूल में एक असत् ऐतिहासक पूर्व ग्रह निहित है। वे उद्‌विकासीय संस्तरों के निर्माण पर ही सदैव जोर देते रहे थे।

रिवर्स ने स्वजन-सूचक संज्ञाओं के महत्त्व का विवेचन प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि स्वजन-सूचक शब्द उन सामाजिक प्रकार्यों के द्योतक हैं जो इन शब्दों के प्रयोग के पहले भी प्रचलित थे। उदाहरणार्थ, इंडियनों के एक विशेष वर्ग में कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त शब्द **मामा** इन व्यक्तियों के सामाजिक कार्यों को निर्दिष्ट करता है। रिवर्स ने अपने सिद्धांत की व्याख्या अब विलुप्त किंतु पूर्व प्रचलित कतिपय स्वजन-सूचक शब्दों के आधार पर अनुमानित रूप में करने की कोशिश भी की है। तथापि, यह बात स्वीकार की जा सकती है कि जब तक रिवर्स की व्यख्याओं को मोर्गनवादी अटकलों-अनुमानों मे समाविष्ट नहीं कर लिया जाता तब तक इन्हें स्वजन-सूचक संज्ञाओं की विवेचना का उपयोगी तरीका माना ही जा सकता है। जैसे, उरांव में **टाची** शब्द पिता की

बहन, माँ के भाई की पत्नी, माँ की बहन और सास के लिए प्रयुक्त होता है। इस प्रकार यह विषमलिंगीय समोदर विवाह और पत्नीभगिनी विवाह के प्रचलन का सूचक है, जो इस जनजाति में बहुतायत में पाए जाते हैं। कुछ अन्य उदाहरण भी दिए ही जा चुके हैं। फिर भी, ऐसी व्याख्या को स्वीकार करने की अपनी सीमाएँ हैं।

8.1 नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology)

मजूमदार एवं **मदान** के शब्दों में, "संगोत्र (सम्बन्ध) सूचक शब्द ऐसी संज्ञाएँ होती हैं जिनका प्रयोग विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों के उल्लेख के लिए किया जाता है। जब हम किन्हीं लोगों के नातेदारी के नियमों तथा व्यवहारों को समझना चाहते हैं तो हमें यह अवश्य ही पूछना होगा कि वे स्वजनों को किस प्रकार वर्गीकृत करते हैं, उनमें भेद किस आधार पर करते हैं तथा उनकों पुकारने के लिए किन शब्दों का प्रयोग करते हैं। नातेदारों को सम्बोधित करने के संज्ञा शब्द उनको विभिन्न श्रेणियों और उप-श्रेणियों में विभाजित करते हैं। कभी-कभी यह विभाजन सामाजिक वास्तविकता के साथ सामंजस्य स्थापित करता है और कभी-कभी नहीं भी।

नातेदारी-सूचक शब्दों का अध्ययन भी अति प्राचीन है। मानवशास्त्र में नातेदारी से सम्बन्धित साहित्य का कम से कम आधा भाग इस बात पर लिख गया है कि हम अपने वंश सम्बन्धियों एवं विवाह सम्बन्धियों को सम्बोधित करने के लिए किन-किन शब्दों का प्रयोग करते हैं। **मोर्गन** पहला विद्वान् था जिसने नातेदारी शब्दावलियों के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योग दिया। उसने न्यूयार्क राज्य की इराक्विस जनजाति का जीवनपर्यन्त अध्ययन किया। अपने अध्ययन में आपने यह पाया कि इराक्विस लोगों में नातेदारों का नामोल्लेख करने का तरीका पश्चिमी समाजों से भिन्न है, जैसे पिता को सम्बोधित करने के लिए जो शब्द काम में लाया जाता है, उसी शब्द से वे पिता के भाई, मामा के भाई, आदि को भी पुकारते हैं। इसी तरह से जो शब्द 'माँ' के लिए प्रयुक्त होता है, वही माँ की बहिन के लिए भी किया जाता है। इस विलक्षण घटना की व्याख्या की खोज के लिए मोर्गन ने संसार के सभी भागों में प्रचलित नातेदारी सूचक शब्दों का अध्ययन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भौतिक रूप से दूर होने या समय की दृष्टि से आगे-पीछे रहने वाले देशों में भी नातेदारी की समान प्रकार की नाम पद्धति है और कुछ नाम पद्धतियाँ तो सभी देशों एवं समाजों में प्रचलित हैं। मोर्गन ने नातेदारी तत्व को समझने के लिए शब्दावली के अध्ययन को राजमार्ग बताया। अपने शब्दावली को वर्गीकरण की एक पद्धति के रूप में बताया जिसके द्वारा हम यह जान सकते हैं कि विभिन्न तन्त्र किस प्रकार नातेदारों को वर्गीकृत करते हैं। नातेदारी शब्दावली को समझने में हम नातेदारी तन्त्रों के उद्विकास को समझ सकते हैं क्योंकि यह भूतकालीन व्यवस्था को समझने का सूत्र प्रदान करती है। उनका यह वर्गीकरण आज मानवशास्त्र में सर्वरूप से मान्य एवं प्रयुक्त है।

(*i*) **विशिष्ट, वर्णनात्मक या व्यक्तिकात्मक** शब्द "यथार्थ सम्बन्ध सूचक होते हैं और केवल उन्हीं व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त होते हैं जिनके संदर्भ में या जिनको सम्बोधित करते हुए बात की जाती है।" उदाहरण के लिए, जब हम कहते हैं 'पिताजी' तब हमारा अर्थ एक विशिष्ट सम्बन्धी से ही है जो समाज में पिता के सम्बन्ध से जाना जाता है। पुत्र, पत्नी, माँ आदि अनेक ऐसे ही विशिष्ट शब्द हैं।

(*ii*) इसके विपरीत "**वर्गात्मक पद्धति** के अन्तर्गत एक शाखीय एवं भिन्न शाखीय कई व्यक्तियों और प्राय: विवाह मूलक सम्बन्धियों के लिए एक ही सम्बन्ध सूचक शब्द का प्रयोग किया जाता है। सम्बन्ध सूचक शब्द इन सभी सम्बन्धियों को एक वर्ग के रूप में समान मानता है।" उदाहरण के लिए असम के सेमानागा 'अजा' शब्द का प्रयोग माँ, पिता के भाई की पत्नी, मौसी, आदि तीनों प्रकार के सम्बन्धियों के लिए करते हैं। 'अपू' शब्द का प्रयोग पिता, पिता के भाई एवं माँ की बहिन के पति (मौसा) के लिए किया जाता है। 'आमी' शब्द बुआ और सास के लिए प्रयुक्त किया जाता है। कूकी लोगों में 'हेप' शब्द का प्रयोग दादा, नाना, मामा, ससुर, ममेरा भाई, साला, भतीजा, आदि विभिन्न आयु वर्गों एवं पीढ़ियों के लोगों के

नोट

लिए किया जाता है। अंगामी नागाओं में 'बूरी' शब्द बड़े भाई, पत्नी की बहिन, ज्येष्ठ एवं उनकी पत्नी, चाची, ताई, आदि सभी के लिए किया जाता है। यहाँ हम यह देखते हैं कि विपरीत लिंगीय सदस्यों के लिए भी एक ही शब्द काम लिया जाता है। अंग्रेजी में 'कजिन' (Cousin) शब्द का प्रयोग चचेरे, ममेरे, फुफेरे और मौसेर भाई-बहिनों के लिए किया जाता है। इसी प्रकार 'अंकल' (Uncle) शब्द का प्रयोग भी पिता के भाई, मामा, फूफा, मौसा आदि सम्बन्धियों के लिए किया जाता है। डॉ रिवर्स ने सम्बन्ध सूचक संज्ञाओं की एक तीसरी पद्धति का उल्लेख भी किया है जिसका प्रयोग जैविक परिवार के सदस्य आपस में करते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ……… पहला विद्वान था जिसने नातेदारी शब्दावलियों के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण योग दिया।
2. हमारा अर्थ एक ……… से ही है जो समाज में पिता के संबंध से जाना जाता है।
3. ……… शब्द बुआ और सास के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

कुछ अन्य व्याख्याएँ भी उपलब्ध हैं। ऐसा सुझाया गया है कि वर्गात्मक संज्ञाएँ कुछ विशेष स्वजनों के बीच कल्पित समानताबोध पर आधारित हो सकती हैं। कोबर एवं कुछ अन्य लेखकों ने इसकी तथाकथित मात्र नामवादी व्याख्या की है। इसका अभिप्राय यह है कि इन शब्दों द्वारा एक व्यक्ति को मात्र नाम दिया जाता है, तथा स्वजन-सूचक शब्द परिचय के उपकरण मात्र होते हैं, अत: इनसे कोई गंभीर अर्थ नहीं निकाला जा सकता। यह बात भी सही हो सकती है कि एक भाषा जितनी कम या अधिक विकसित होगी, अर्थात् जितना सीमित या विस्तृत इसका शब्द-भंडार होगा, उतनी ही कम या अधिक वर्गात्मक संज्ञाएँ इसमें होंगी।

स्वजन अध्ययनों के क्षेत्र में विषय के वैज्ञानिक प्रतिपादन द्वारा रेडक्लिफ-ब्राउन ने काफी वैचारिक स्पष्टता ला दी है। उन्होंने, मोर्गन से भिन्न, बिना किसी उद्विकासीय पूर्वग्रह के स्वजन पद्धतियों का अध्ययन किया। स्वजन-प्रथा की उत्पत्ति की खोज के हर अटकलबाजीपूर्ण प्रयासों का खंडन करते हुए उन्होंने प्रकार्यवादी आधार पर सूक्ष्मदर्शी रूप में इसका अध्ययन किया। इस तरह के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य समाज की क्रियाशीलता की संपूर्णता को किसी काल अथवा सर्वकालीन संदर्भ में समझना है। इसीलिए विवाह और स्वजन-पद्धति की परिभाषा रेडक्लिफ-ब्राउन ने एक ऐसी व्यवस्था के अर्थ में दी है जो व्यक्तियों को साथ-साथ रहने एवं एक व्यवस्थित सामाजिक जीवन के रूप में एक-दूसरे के साथ सहयोग करने में सक्षम बनाती है। प्रचलित स्वजन-सूचक शब्दों के अध्ययन को उन्होंने स्वजन-पद्धति के अध्ययन का प्रथम चरण माना है।

रेडक्लिफ-ब्राउन ने कतिपय साधारणीकरणों की रचना भी की है। इन्हें उन्होंने स्वजन-संरचना के सिद्धांत कहा है। ये सिद्धांत हैं: निकटवर्ती पीढ़ियों की असमानता का सिद्धांत, सहोदर समूह की एकता का सिद्धांत, आदि। इसे दूसरे सिद्धांत के अनुसार, सिब नामक समूह की एकात्मकता इसके किसी भी सदस्य (श्री) द्वारा अपनी आयु समूह के सभी सिब सदस्यों को अपने सहोदरवत मानने तथा उनके लिए सहोदर-अर्थी संबोधन प्रयुक्त करने द्वारा व्यक्त होती है। इससे एक छितरा-बिखरा समूह भी पूर्णसंगठित इकाई का रूप ग्रहण कर लेता है। एक अनपलट (अप्रत्यावर्ती) नियम की तरह बहिर्विवाह इसका तर्कसंगत परिणाम होता है। प्रथम सिद्धांत के संदर्भ में, जब एक पीढ़ी अपने से तत्काल बाद वाली पीढ़ी के शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए जिम्मेदार होती है, तथा वरिष्ठ पीढ़ी की सत्ता बनाए रखना आवश्यक होता है, तब इन्हीं तथ्यों से निकटवर्ती पीढ़ियों की असमानता का सिद्धांत अभिव्यक्त होता है।

नोट्स मोर्गन ने विश्व में प्रचलित नातेदारी शब्दों का अध्ययन करके उन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांटा है—वर्गात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाएँ (Classificatory terminology), एवं व्यक्तिकात्मक या वर्णनात्मक या विशिष्टात्मक सम्बन्ध सूचक संज्ञाएँ (Descriptive Terminology)।

8.2 सारांश (Summary)

- नातेदारी शब्दावली ऐसी संज्ञाएँ होती हैं जिनका प्रयोग विभिन्न प्रकार के नाते-रिश्तेदारों के संबंधों का उल्लेख करने के लिए किया जाता है।
- मोर्गन ने इसे दो भागों में विभाजित किया है—1. व्यक्तिकात्मक 2. वर्गात्मक नातेदारी शब्दावली।
- जब अनेक संबंधियों को एक ही वर्ग अथवा श्रेणी में वर्गीकृत कर उन्हें एक ही संज्ञा से संबोधित किया जाता है तो ये वर्गात्मक नातेदारी शब्दावली है। उरांव में 'टाची' शब्द पिता की बहन, माँ के भाई की पत्नी, और सास के लिए प्रयुक्त होता है।

8.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **व्यक्तिकात्मक नातेदारी शब्दावली (Descriptive Kinship terms)**—प्रत्येक संबंधी के लिए एक विशिष्ट संज्ञा का प्रयोग।
2. **संबोधन नातेदारी शब्दावली (Kinship terms of address)**—एक व्यक्ति द्वारा अपने किसी संबंधी को पुकारने या संबोधन करने के लिए एक विशिष्ट संज्ञा का प्रयोग जैसे मम्मी, पापा, डैडी, बाबा आदि।

8.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. स्वजन-सूचक शब्द या नातेदारी शब्द का क्या अर्थ है?
2. मोर्गन ने नातेदारी शब्दों को कितने भागों में बाँटा है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. मोर्गन 2. विशिष्ट सम्बन्धी 3. आमी।

8.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक मानवशास्त्र—मजुमदार एवं मदान।
2. भारत में समाज—विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।

नोट

इकाई–9: एक संघटित सिद्धांत के रूप में नातेदारी: पितृवंशीय, मातृवंशीय, दोहरा एवं सजातीय वंशीय (Kinship as an Organising Principle: Descent–Patrilineal, Matrilineal, Double and Cognatic Descent)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 वंशानुक्रमण (Descent)
9.2 सारांश (Summary)
9.3 शब्दकोश (Keywords)
9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वंशानुक्रमण के नियम को समझना।
- वंशनुक्रम के निर्धारण की विधियों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

आदिम एवं सरल समाजों में प्रदत्त प्रस्थिति का अधिक महत्त्व होता है। ऐसे समाजों में व्यक्ति का पद-निर्धारण, उसके अधिकार एवं कर्तव्य सम्पत्ति पर अधिकार तथा दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध, आदि का प्रमुख आधार जन्मजात सम्बन्ध होते हैं। यहाँ प्राथमिक सामाजिक समूह बन्धुत्व से जुड़े रहते हैं और अधिकांशत: उनकी सदस्यता वंशानुक्रमण से निर्धारित होती है।

9.1 वंशानुक्रमण (Descent)

बन्धुत्व एवं वंशानुक्रम (Kinship and Descent) एक ही शब्द नहीं हैं। यद्यपि कई बार इनमें स्पष्ट अन्तर करना कठिन होता है। वंशानुक्रमण को परिभाषित करने के लिए सामाजिक, संस्कृतिक एवं जैविकीय आधारों का सहारा लिया गया है।

रिवर्स ने वंशानुक्रम शब्द को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है। एक उस विधि के रूप में जिससे किसी समूह की सदस्यता का निर्णय किया जात है तथा दूसरा उन अनुरीतियों के लिए जिनके द्वारा सम्पत्ति, पदवी और अधिकार का संचारण होता है। वंशानुक्रमण को परिभाषित करते हुए **पिडिंगटन** लिखते हैं–"वंशानुक्रम के नियम वे हैं जो एक व्यक्ति की सामाजिक समूह में जन्मजात सदस्यता को नियमित करते हैं, यद्यपि इस प्रकार की सदस्यता विशिष्ट स्थितियों में गोद लेने की प्रथा द्वारा प्राप्त की जाती है।

इस प्रकार से पिडिंगटन वंशानुक्रम समूह की सदस्यता में जैविकीय और सामाजिक दोनों आधारों को सम्मिलित करते हैं। **बोहनन** के अनुसार, "जब एक विवाहित जोड़े से एक सन्तान पैदा होती है तो उसका उन दोनों से सम्बन्ध वंशानुक्रम सम्बन्ध के नाम से पुकारा जाता है।" इस परिभाषा में बोहनन ने वंशानुक्रम को माता-पिता एवं बच्चे के सम्बन्धों को प्रकट करने वाली व्यवस्था के रूप में दर्शाया है। **मरडॉक** लिखते हैं, "वंशानुक्रम पूर्णत: एक सांस्कृतिक सिद्धान्त की ओर संकेत करता है। जिसमें एक व्यक्ति को सामाजिक दृष्टि से एक विशिष्ट" रक्त सम्बन्ध बन्धुत्व से जोड़ा जाता है। फोरटेस के अनुसार, "एक वंशानुक्रम समूह व्यक्तियों की ऐसी व्यवस्था है जो वैध सामाजिक एवं वैयक्ति उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होती है।"

रिवर्स ने 1907 में ब्रिटिश एसोसिएशन के समक्ष वंशानुक्रम की परिभाषा इस प्रकार से दी है, "वंशानुक्रम का तात्पर्य ऐसे समूह से है जिसकी सदस्यता जन्मजात है, जहाँ लोग यह निश्चित कर सकते हैं कि वे माता-पिता में से किस पक्ष में हैं।"

रैडक्लिफ ब्राउन वंशानुक्रम को एक कानूनी अवधारणा (Jural Concept) मानते हैं।

नोट्स वंशानुक्रम वह जैविकीय एवं सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था है जो सन्तानों को उनके माता-पिता एवं पूर्वजों से जोड़ती है। इसमें जन्म-गत अथवा रक्त-सम्बन्धियों को ही सम्मिलित किया जाता है जो वास्तविक तथा काल्पनिक सम्बन्धों में बंधे होते हैं और ये सम्बन्ध समाज द्वारा मान्य होते हैं।

वंशानुक्रम निर्धारण की विधियाँ (Methods of Reckoning Descent)

विभिन्न समाजों में वंशानुक्रम निर्धारण की अलग-अलग विधियाँ प्रचलित हैं जो तीन पक्षों से सम्बन्धित हैं–1. पितृपक्ष, 2. मातृपक्ष 3. द्वि-पक्ष।

जब हम वंशानुक्रम की गणना पिता एवं माता में से केवल एक पक्ष के आधार पर ही करते हैं तो यह गणना **एकपक्षीय वंशानुक्रम** (Unilateral Descent) कहलाती है। इस एकपक्षीय वंशानुक्रम के दो भेद हैं–एक में गणना पितृपक्ष से की जाती है, दूसरे में मातृपक्ष से। पितृपक्ष में वंशानुक्रम गणना पुरुष की ओर से की जाती है अर्थात् जब एक व्यक्ति का वंशानुक्रम उसके पिता पक्ष से गिना जाता है तो उसे **पितृवंशीय वंशानुक्रम (Patrilineal Descent)** कहते हैं। पितृवंशीय वंशानुक्रम का सर्वप्रथम प्रयोग रोमवासियों ने किया था क्योंकि उनके यहाँ स्त्रियों के द्वारा वंशानुक्रम निश्चित करने के लिए कोई शब्द नहीं था। पितृवंशीय वंशानुक्रम हमें प्राचीन रोम, चीन तथा पूर्वी व दक्षिणी अफ्रीका के पशुपालक समाजों में देखने को मिलते हैं। पितृवंशीय वंशानुक्रम से सम्बन्धित सभी बन्धुओं को **पितृ-बन्धु** (Agnates) कहते हैं।

जब एक व्यक्ति की वंश गणना स्त्री पक्ष अर्थात् माता की ओर से की जाती है। तो उसे **मातृवंशीय वंशानुक्रम (Matrilineal Descent)** कहते हैं तथा इस प्रकार से सम्बन्धित सभी बन्धुओं को **सहोदर बन्धु (Utarine)**

कहते हैं। एक व्यक्ति के रक्त से सम्बन्धित सभी रिश्तेदार जिसमें पिता एवं माता दोनों पक्षों के सम्बन्धी होते हैं, **मातृ बन्धु (Cognates)** कहलाते हैं। उदाहरण के लिए, एक वयक्ति के दादा-दादी, चेचेरे भाई-बहिन जो कि पितृपक्षीय हैं एवं नाना-नानी, मामा-मौसी जो कि पितृपक्षीय हैं, मिलकर मातृ बन्धु कहलायेंगे। मातृपक्षीय वंशानुक्रम भारत में गारो, खासी, नायर, अमरीकन, इण्डियन, आस्ट्रेलिया की जनजातियों, इण्डोनेशिया, मलाया, केन्द्रीय अफ्रीका की बांटू जनजाति तथा घाना की अकान जनजाति में पाया जाता है।

कई बार वंश का निर्धारण माता अथवा पिता में से किसी एक की अपेक्षा दोनों पक्षों से होता है। तो ऐसे वंशानुक्रम को **द्वि-पक्षीय वंशानुक्रम (Bilateral Descent)** कहते हैं। जब वंशानुक्रम माता अथवा पिता में से किसी भी एक से गिना जा सकता है तो इसे **संदिग्ध पक्षीय वंशानुक्रम (Ambilateral Descent)** कहते हैं। ऐसी स्थिति में यह पूरा निश्चित नहीं होता है कि गण्ना किस पक्ष से की जोयगी। इसीलिए ही इसे संदिग्ध पक्षीय वंशानुक्रम कहा जाता है। इस प्रकार का वंशानुक्रम निर्धारण न्यूजीलैण्ड के हापु माओरियों (Hapu maories) में पाया जाता है।

एक परिवार के बच्चों जैसे, भाई-भाई, भाई-बहिन, आदि के सम्बन्धों को बन्धुत्व व्यवस्था में **सम-पार्ईव बन्धु (Collateral Kin)** कहते हैं। इस प्रकार एक ही माता-पिता के बच्चे सम-पार्श्व बन्धु हैं। लीच का मत है कि जब एक ही वंशानुक्रम समूह के सदस्य एक स्थान पर एक-दूसरे के निकट रहते हों तो उसे **स्थानीय वंशानुक्रम समूह (Local Descent Group)** कहते हैं। **फोरटेस** ने वंशानुक्रम और पितृत्व (Descent and filiation) में भेद किया है। किसी व्यक्ति का अपने माता-पिता से सम्बन्ध पितृत्व या पुत्रत्व (Filiation) कहलाता है, जबकि उसका अपने पूर्वजों से सम्बन्ध वंशानुक्रम कहलाता है। इस प्रकार वंशानुक्रम में पितृत्व की अपेक्षा पीढ़ियों की गहराई होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. एक व्यक्ति के दादा-दादी, चचेरे भाई-बहन जो ········ हैं।
2. माता अथवा पिता में से किसी एक की अपेक्षा दोनों पक्ष से होता है, तो ऐसे वंशानुक्रम को ········ कहते हैं।
3. एक परिवार के बच्चों जैसे, भाई-भाई, भाई-बहिन, आदि के संबंधों को बधुत्व व्यवस्था में ········ कहते हैं।

वंशानुक्रम के प्रकार्य (Functions of Descent)

अधिकांश आदिम एवं पूर्व औद्योगिक समाजों में वंशानुक्रम का महत्त्व बन्धुओं के विस्तार को बताने की दृष्टि से नहीं है, वरन् इसके आधार पर यह भी निर्धारित किया जाता है कि सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का संगठन किन-किन पक्षों में हो सकता है और किन में नहीं? फोरटेस और ब्राउन का मत है कि वंशानुक्रम के आधार पर ही पदाधिकार एवं सम्पत्ति में उत्तराधिकार तय किया जाता है। आक्रमण, सुरक्षा, धार्मिक कार्य, दाह-संस्कार, निकटाभिगमन, निवास, आदि विभिन्न प्रयोजनों में कौन-कौन से सम्बन्धी सम्मिलित किये जायेंगे और कौन से नहीं, यह भी वंशानुक्रम से तय किया जाता है। वंशानुक्रम की जानकारी राजनीतिक एंव कानूनी, बाह्य एवं घरेलू पक्षों को समझने के लिए आवश्यक है। इसके आधार पर ही स्त्री की प्रजनन शक्ति एवं यौन सम्बन्धी अधिकारों को नियमित किया जाता है। व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण, नातेदारी शब्दों एवं नियमों के प्रयोग को भी वंशानुक्रम के आधार पर तय किया जाता है। इसी आधार पर भविष्य में जन्म लेने वाली सन्तानों को एक समूह में जोड़ा जाता है।

फोरटेस का मत है कि वंशानुक्रम व्यक्ति के सम्बन्ध एवं वर्गीकरण को निश्चित करता है तथा उसके सामाजिक जीवन को नियमित करता है। उनकी मान्यता है कि वंशानुक्रम और पितृत्व व्यक्ति की सामाजिक भूमिका एवं पद, अधिकार एवं दायित्व को उसी प्रकार से तय करते हैं, जिस प्रकार से विलिंग सहोदर विवाह (Cross Cousin Marriage) में वे व्यक्ति के लिए पति अथवा पत्नी का चयन करती हैं। **बोहनन** का मत है कि वंशानुक्रम समूह

नोट

अपने सदस्यों में नातेदारी नैतिकता पैदा करता है। यह न्यायिक वंशानुक्रम को नियतिम बनाता है, विवाह पर नियन्त्रण रखता है तथा समाज में पारस्परिक सहायता को बढ़ावा देता है। यह पद संचरण, राजनीति तथा सरकार से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण पक्षों को तय करता है। इस कथन से वंशानुक्रम का महत्त्व स्वतः ही प्रकट हो जाता है।

9.2 सारांश (Summary)

- रिवर्स के अनुसार "वंशानुक्रम का तात्पर्य ऐसे समूह से है जिसकी सदस्यता जन्मजात है। जहाँ लोग यह निश्चित कर सकते हैं कि वे माता-पिता में से किस पक्ष में हैं।"
- विभिन्न समाजों में वंशानुक्रम की अलग-अलग विधियाँ प्रचलित हैं। जो प्रायः तीन पक्षों से संबंधित हैं– पितृपक्ष, मातृपक्ष तथा द्वि-पक्ष।
- वंशानुक्रम के आधार पर ही पदाधिकार एवं संपत्ति में उत्तराधिकार तय किया जाता है।
- नातेदारी शब्दों एवं नियमों के प्रयोग को भी वंशानुक्रम के आधार पर तय किया जाता है।

9.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **वैकल्पिक वक्र वंशक्रम (Alternate descent)**–जब पुरुष से उसकी पुत्रियों एवं महिला से उसके पुत्रों को वंशक्रम की सदस्यता मिलती है, तब इसे वैकल्पिक या वक्र वंशानुक्रम कहते हैं। यह वंशक्रम व्यवस्था बहुत कम पाई जाती है।
2. **वंशानुक्रमण (Descent)**–वंशानुक्रम का तात्पर्य ऐसे समूह से है जिसकी सदस्यता जन्मजात है।

9.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वंशानुक्रम का अर्थ क्या है?
2. वंशानुक्रम निर्धारण की विधियाँ बताएँ।
3. वंशानुक्रम के कार्यों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. पितृपक्षीय 2. द्वि-पक्षीय वंशानुक्रम 3. सम-पार्श्व बन्धु।

9.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।
2. सोलह संस्कार–स्वामी अवधेशन, मनोज पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–10: एक संगठन सिद्धान्त के रूप में नातेदारी: वंशक्रम समूह, कॉर्पोरेट समूह एवं स्थानीय समूह (Kinship as an Organising Principle: Descent Groups, Corporate Groups and Local Groups)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 अन्वय के नियम (Rule of Descent)
10.2 नातेदारी अध्ययन के उपागम (Approaches to the Study of Kinship)
10.3 विवाह सम्बन्ध उपागम (Marital Approach)
10.4 भारतीय संस्कृति में नातेदारी (Kinship in Indian Culture)
10.5 भारत में नातेदारी संबंधों की व्यापकता (Diversity of Kinship Relations in India)
10.6 उत्तर और दक्षिण भारत में नातेदारी के बंधन और व्यवहार (Limitation and Practices of Kinship in North and South India)
10.7 सारांश (Summary)
10.8 शब्दकोश (Keywords)
10.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
10.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वंशक्रम समूह के नियमों का वर्णन।
- वंशक्रम समूह के प्रकारों को बताना।
- स्थानीय समुदायों की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को बताना।

प्रस्तावना (Introduction)

हम सब किसी न किसी परिवार के सदस्य अवश्य हैं। परिवार में हमारे भाई-बहिन हैं, माता-पिता हैं और शायद दादा-दादी भी हैं। परिवार में जहाँ हमारे भाई हैं वहीं भाभी और चाची भी हैं। ये सब हमारे नातेदार हैं। सच्चाई यह है कि परिवार एक नातेदारी समूह है। उधर हमारी भाभी और चाची किसी अन्य परिवार से आयी हैं। उनके परिवार में उनके भाई-बहिन और उनके माता-पिता हैं। वे भी हमारे नातेदार हैं। हमारे कुछ नातेदार हमसे रक्त (Blood) से जुड़े हुए हैं और दूसरे नातेदार विवाह (Marriage) से जुड़े हुए हैं। हमारा भाई और उनके बच्चे हमसे रक्त से जुड़े हैं। इन्हें हम रक्त सम्बन्धी नातेदारी (Blood Kinship) कहते हैं। दूसरी ओर हमारी भाभी हमारी नातेदार तो है लेकिन उसके साथ हमारा सम्बन्ध विवाह के कारण हुआ है। हमारे भाई उनसे विवाह करके हमारे यहाँ लाये हैं। वह हमारी विवाह नातेदार (Marital Kin) है। इस भाँति किसी भी परिवार में दो तरह के नातेदार होते हैं– रक्त सम्बन्धी नातेदार और विवाह सम्बन्धी नातेदार। हमारा यह देश एकाधिक एथनिसिटियों अर्थात् संस्कृतियों का देश है। इसी कारण उत्तर की नातेदारी व्यवस्था दक्षिण की नातेदारी व्यवस्था से एकदम भिन्न है। इन दोनों भागों में नातेदारी की प्रकृति ही भिन्न है। वैसे नातेदारी व्यवस्था पर सामाजिक मानवशास्त्र में कई महत्त्वपूर्ण कार्य हुए हैं। फिर भी शीर्ष कार्यों में दो कार्य उल्लेखनीय रूप से हमारे सामने आते हैं। इरावती कर्वे ने बहुत पहले भारतीय नातेदारी व्यवस्था का एक अधिकृत अध्ययन अपनी पुस्तक किनशिप ओरगेनाइज़ेशन इन इण्डिया (Kinship Organisation in India, 1965) में रखा है। इरावती कर्वे एक मूर्धन्य सामाजिक मानवशास्त्री रही हैं। किसी भी दृष्टि से देखें उनकी यह पुस्तक नातेदारी पर एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। उन्होंने भारतीय समाज को चार महाक्षेत्रों—उत्तरी, मध्य, दक्षिणी और पूर्वी में बाँटकर नातेदारी के स्वरूपों का वर्णन किया है। ऐसा करके उन्होंने भौगोलिक क्षेत्र, भाषा, प्रदेश तथा बंधुत्व स्वरूपों के अन्तर सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन किया है।

इरावती कर्वे के अध्ययन के बाद कुछ और अध्ययन भी हुए हैं। उत्तरी क्षेत्र में हुए अध्ययनों में ए.सी. मायर और टी. एन. मदान का नाम उल्लेखनीय है। दक्षिणी क्षेत्र में केथलीन गफ़, लुई ड्यूमों और विलियम मेकोरमेक के योगदान महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन ये सब अध्ययन अपने क्षेत्र में सीमित हैं। इनका सम्बन्ध किसी एक क्षेत्र या कुछ गाँवों से ही रहा है। जहाँ इरावती कर्वे देश के चार महाक्षेत्रों की विभिन्नता को बताती है, वहाँ ड्यूमों एक सीमित क्षेत्र की समानता को बताते हैं। नातेदारी के इन अध्ययनों में हम जिस दूसरी पुस्तक का उल्लेख करना चाहते हैं वह शोभिता जैन की पुस्तक भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी (रावत, 1996, जयपुर) है। पेशे से शोभिता मानवशास्त्र में विशेषज्ञ हैं। उन्होंने हिन्दी भाषा के माध्यम से अपनी इस पुस्तक में पितृवंशीय और मातृवंशीय नातेदारी का बहुत अच्छा अध्ययन किया है।

यह सही है कि उत्तर और दक्षिण भारत की नातेदारी में विषमता है। लेकिन यह भी सही है कि नातेदारी के इन दो प्रतिमानों में बहुत बड़ी समानता भी है। उदाहरण के लिए दोनों क्षेत्रों में अधिमान्य विवाह (Preferential Marriage) को स्वीकार किया जाता है। इसका अर्थ है कि कुछ नातेदार ऐसे हैं जिनके साथ विवाह सम्बन्ध रखना पसंद किया जाता है। दूसरा, उत्तर और दक्षिण दोनों ही क्षेत्रों में भाई-बहिन में विवाह निषेध है। इन समानताओं के अतिरिक्त इन दोनों क्षेत्रों में नातेदारी के प्रतिमानों में अन्तर है। उदाहरण के लिये उत्तरी क्षेत्र में पितृवंशीय व पति स्थानिक सार्वभौमिक होते हैं जबकि दक्षिणी क्षेत्र में पितृवंशीय परिवारों की प्रधानता होते हुए भी कुछ समुदायों में मातृवंशीय व पत्नी स्थानीक परिवारों का प्रभुत्व होता है। दक्षिण में संयुक्त परिवार का स्वरूप थारवाड़ में मिलता है। नायरों में थारवाड़ व्यवस्था में महिला पूर्वज़ों द्वारा शुरू की गयी वंश परम्पराओं से वंशक्रम (Descent) चलता है। एक तारवाड़ में मृत एवं जीवित सभी सदस्यों की गिनती की जाती हैं वहाँ जब थारवाड़ बड़ा हो जाता है तो व्यवस्था के लिये इसे तावज़ी बाँट दिया जाता है। तावज़ी का शाब्दिक अर्थ है माँ की परम्परा, अर्थात् माँ के आधार पर बनी पारिवारिक इकाई या माँ और उसके बच्चे। एक ही थारवाड़ से निकली तावज़ियों के सदस्य आपस में विवाह नहीं कर सकते और जन्म मरण के समय वे समान रूप से सूत्तक-पात्तक के नियमों का पालन करते हैं।

नोट

10.1 अन्वय के नियम (Rule of Descent)

वह सिद्धांत या सिद्धांतों की वह समष्टि जिसके आधार पर किसी के रिश्तेदारों का निर्धारण होता है तकनीकी रूप से अन्वय या उत्तराधिकार के नियम कहलाते हैं। अन्वय (डीसेंट) के मूलत: तीन नियम हैं: पितृवंशीय, मातृवंशीय और उभयवंशीय।

पितृवंशीय अन्वय के नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपने पिता के समरक्त नातेदारी समूह का सदस्य बन जाता है परन्तु वह माँ के समरक्त नातेदारी समूह का सदस्य नहीं होता।

मातृवंशीय अन्वय में व्यक्ति अपनी माँ के समरक्त नातेदारी समूह का सदस्य बन जाता है पर पिता के समरक्त समूह का सदस्य नहीं बन पाता।

द्विवंशीय या उभयवंशीय प्रणाली में एक व्यक्ति अपने पिता के वंश के कुछ रक्त संबंधियों का उत्तराधिकारी होता है पर सभी का नहीं और इसी प्रकार अपनी माँ के तद्नुरूपी रक्तसंबंधियों का भी उत्तराधिकार प्राप्त करता है। ठोस सच्चाई तो यह है कि शायद कोई भी समाज द्विवंशीय अन्वय पर पूर्णत: आधारित नहीं है। इसी प्रकार कोई भी समाज पूर्णत: एक वंशीय भी नहीं है अगर हम एक वंशीय शब्द का मतलब यह समझते हैं कि एक को (मातृपक्ष या पितृपक्ष) दूसरे पक्ष की बिना पर अनदेखा कर दिया जाए। अगर एक बिना पर पूर्वज के आधार पर कुछ लोग रिश्ते में बंधे हों तो उन्हें रक्त-सम्बन्धी (कोग्नेट्स) कहते हैं। अगर उनका पूर्वज कोई पुरुष हो तो वे पैतृक या पितृवंशीय कहे जाते हैं। दूसरी तरफ औरत को पूर्वज को मातृक या मातृवंशीय नातेदार कहे जाते हैं।

नोट्स वे नातेदार, जो एक दूसरे से अन्वय द्वारा सीधे-सीधे जुड़े हों, घनिष्ठ सम्बन्धी (लीनियल किन) कहलाते हैं और वे जो शाखा के रूप में होते हैं (जैसे-चाचा, भतीजे आदि) एक ही खानदान के सम्बन्धी (कोलैटरल किन) तो कहलायेंगे पर घनिष्ठ सम्बन्धी नहीं कहलायेंगे।

10.2 नातेदारी अध्ययन के उपागम (Approaches to the Study of Kinship)

मोटे तौर पर भारत में नातेदारी का अध्ययन दो उपागमों (Approaches) से हुआ है–(1) प्राचीन ग्रन्थ, (2) मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण। भारतीय समाज में सामाजिक संस्थाएँ मूल रूप से देश की साहित्यिक तथा शास्त्रीय परम्पराओं से जुड़ी हुई हैं। समाजशास्त्रियों ने भी इन कृतियों को प्राच्य विद्या (Indology) के उपागम से देखा है। उदाहरण के लिये के. एम. कपाड़िया और पी. एन. प्रभु ने नातेदारी के अध्ययन में प्राचीन ग्रन्थों का खुलकर प्रयोग किया है। कुछ इसी तरह इरावती कर्वे और जी. एस. घुरिये ने भी प्राचीन ग्रन्थों को और विशेष करके संस्कृत ग्रन्थों का उपयोग किया है। यह निश्चित है कि प्राचीन ग्रन्थों के इस उपागम ने हमें नातेदारी की निरन्तरता को समझने में बहुत सहायता दी है।

मानवशास्त्रियों ने नातेदारी का अध्ययन सामान्यतया दो उपागमों से किया है: वंशक्रम उपागम (Descent Approach) और विवाह सम्बन्धी उपागम (Marital Approach)। जिन मानवशास्त्रियों ने वंशक्रम उपागम से नातेदारी का अध्ययन किया है उनका कहना है कि हमें हमारे दिन-प्रतिदिन के कार्यों में अपने रक्त सम्बन्धियों से सहायता मिलती है। ऐसे रक्त सम्बन्धी माँ-बाप और बच्चे होते हैं। जब इन रक्त सम्बन्धियों को समान वंशक्रम के आधार पर मान्यता दी जाती है या उसकी व्याख्या की जाती है तब मानवशास्त्री इन्हें वंशक्रम समूह कहते हैं। वंशक्रम समूह के छ: स्वरूप हैं–

(1) पितृवंशीय (Patriarchal)

यहाँ वंशक्रम का निर्धारण पुरुष के आधार पर किया जाता है। इसका अर्थ हुआ वंश (Lineage) पिता से पुत्र द्वारा चलता है।

(2) मातृवंशीय (Matriarchal)

इस वंशक्रम में वंश का निर्धारण माँ से पुत्री की परम्परा में चलता है।

(3) दोहरा वंशक्रम (Dual Descent)

इस वंशक्रम को द्वि-वंश परम्परागत या द्वि-परम्परागत भी कहते हैं। यहाँ वंशक्रम का निर्धारण विभिन्न आशयों के लिए पिता के वंश और माता के वंश दोनों से होता है। उदाहरण के लिए एक वंश परम्परा में, सम्पत्ति जाती है तो दूसरी वंश परम्परा में अचल सम्पत्ति विरासत में दी जाती है।

(4) उभयपक्षीय वंशक्रम (Bilineal Descent)

इस वंशक्रम में माता-पिता दोनों की वंश परम्परा को देखते हैं। यह वह समूह है जो पिता की और माता की मिश्रित नातेदारी से बना हो। इस समूह की सदस्यता पितृ तथा मातृवंश परम्परा दोनों से मिलती है।

(5) समानान्तर वंशक्रम (Parallel Descent)

यह वंशक्रम बहुत दुर्लभ है। इसमें वंशक्रम लिंग के आधार पर होता है। इस वंशक्रम की सदस्यता पुरुषों द्वारा पुत्रों को मिलती है और स्त्रियों द्वारा पुत्रियों को मिलती है।

(6) वैकल्पिक वंशक्रम (Optional Descent)

यह वंशक्रम भी बहुत कम पाया जाता है। इसमें पुरुष से उसकी पुत्रियों का और स्त्री से उसके पुत्रों का वंश माना जाता है।

हमारे देश में आमतौर पर दो वंश परम्पराएँ पायी जाती हैं—पितृवंश परम्परा (Patrilineal Descent) और मातृवंश परम्परा (Matrilineal Descent)। इन दोनों में से पितृवंश परम्परा पद्धति अधिक प्रचलित है। “वंशक्रम समूह में नातेदारी सम्बन्धों के वर्णन और विश्लेषण से माध्यम से हमें भारत में नातेदारी पद्धति की कुछ किस्मों की पर्याप्त और व्यापक समाजशास्त्रीय जानकारी मिली है। उदाहरण के लिये गफ़ (1956) ने भूमि सम्बन्धी सामूहिक अधिकारों के आधार पर वंश परम्परा की एकता का विवेचन किया है। उन्होंने व्यापक नातेदारी में अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों की भूमिका पर विस्तार से चर्चा की है। टी. एन. मदान (1965) ने कश्मीरी ब्राह्मण समाज में संगठनकारी सिद्धान्त के रूप में नातेदारी की भूमिका का अध्ययन किया है। उन्होंने कश्मीरी पंडितों की नातेदारी पद्धति को परिभाषित करने वाली सुदृढ़ पितृवंश परम्परा की विचारधारा का वर्णन किया है।”

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. भारतीय समाज में सामाजिक ……… मूल रूप से देश की साहित्यिक तथा शास्त्रीय परम्पराओं से जुड़ी हुई है।
2. समाजशास्त्रियों ने भी इन ……… को प्राच्य विद्या (Indology) के उपागम से देखा है।
3. के. एम. कपाड़िया और पी. एन. प्रभु ने नातेदारी के ……… में प्राचीन ग्रंथों का खुलकर प्रयोग किया है।

10.3 विवाह सम्बन्ध उपागम (Marital Approach)

नातेदारी का अध्ययन विवाह सम्बन्धी उपागम द्वारा भी किया जाता है। भारत में नातेदारी के कई अध्ययनों में दो समूहों के बीच विवाह सम्बन्ध के रूप में विवाह पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। ऐसे अध्ययनों में नातेदारी शब्दावली का विवेचन विवाह सम्बन्ध के स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिये किया गया है। इस दृष्टिकोण के मुख्य प्रतिपादक लुई ड्यूमों हैं। उन्होंने दक्षिण भारत में नातेदारी के क्षेत्र के विवाह की भूमिका पर ज़ोर दिया है। उन्होंने समरक्तता और विवाह सम्बन्ध में प्रतिकूलता दिखाकर, जैसा कि द्रविड़ नातेदारी शब्दावली में मिलता है, सामान्य रूप से भारत में और विशेष रूप से दक्षिण भारत में नातेदारी पद्धति की जानकारी देने में ड्यूमों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने दक्षिण भारत में पायी जाने वाली नातेदारी के अध्ययन में नातेदारी की संरचनात्मक प्रणाली (Structural Theory) का प्रयोग किया है। उनके अध्ययन से दक्षिण भारतीय नातेदारी पद्धति में पीढ़ियों के दौरान अन्तर्विवाह की पुनरावृत्ति प्रकाश में आती है। इस विन्यास का संरचनात्मक प्रणाली द्वारा अध्ययन करने से हमारे सामने दो श्रेणियाँ—समानान्तर (Parallel) और ममेरे-फुफेरे (Cross) सम्बन्ध विशेष रूप से स्पष्ट होती हैं। नातेदारी के अध्ययन में विवाह सम्बन्ध से उत्पन्न रिश्तेदारों को महत्त्व देने से वधू-पक्ष और वर-पक्ष के बीच अन्तर की व्याख्या

नोट

करने में सहायता मिलती है। इसके अलावा इस दृष्टिकोण से किये गये अध्ययनों में अनुलोम विवाह (अर्थात् वर-पक्ष वाले सदैव वधू-पक्ष वालों से श्रेष्ठ होते हैं) की धारणा अनुलोम विवाह के संदर्भ में दहेज प्रथा और विवाह में विनिमय के विचार भी शामिल किये जाते हैं।

10.4 भारतीय संस्कृति में नातेदारी (Kinship in Indian Culture)

रिश्ते-नातों की व्यवस्था वस्तृत: एक सांस्कृतिक व्यवस्था है। दुनिया में कहीं भी सर्वमान्य रिश्ते-नातों का प्रतिमान नहीं है। यह अलग-अलग सांस्कृतिक व्यवस्था में भिन्न-भिन्न है। उदाहरणों के द्वारा हम यूरोपीय और भारतीय समाजों में मौजूद विभिन्नताओं को ध्यान में रख सकते हैं। समरक्त नातेदारों और विवाहाधारित नातेदारों के बीच बड़ा ही स्पष्ट अंतर दिखाया जा चुका है। ये दोनों एक दूसरे के विपरीत ध्रुवों पर हैं। इन समाजों में नातेदारों के लिए जो शब्द इस्तेमाल होते हैं वे इस अंतर को बहुत साफ-साफ ढंग से सामने लाते हैं। एक शादीशुदा औरत और मर्द अपने पति या अपनी पत्नी के लिए ससुराल वाले शब्द का प्रयोग करते हैं। 'ससुराल वाले' शब्द के इस्तेमाल से ही पता लग जाता है कि ये इनके वंश के नहीं हैं। पश्चिमी देशों में किसी शादीशुदा औरत को अपने पति के घर में आत्मीय स्वजनों के रूप में स्थान प्राप्त होता है। दूसरी तरफ भारतीय समाज में नातेदारों व विवाह द्वारा संबंधित नातेदारों के बीच के फर्क को स्पष्ट नहीं किया गया है। कई बार तो यह फर्क इतना धुंधला होता है कि इन्हें एक दूसरे में फर्क करना कठिन हो जाता है। शादी के बाद पत्नी अपने पति के घर में उसी के समरक्त संबंधी के तुल्य में होती है। वह अपने पति के घर में रक्त संबंधियों के लिए नियत सारे अधिकारों का इस्तेमाल करती है और सारे कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। भारतीय समाज में रक्त संबंधियों और विवाह के कारण आत्मीय रिश्तेदारों के अलावा एक घर में रहने वाले लोगों, पड़ोसियों सहपाठियों, सहकर्मियों, गुरूभाइयों आदि को भी स्वजनों में शामिल कर लिया जाता है। इन्डेन और निकोलस ने पाश्चात्य और भारतीय समाजों में मौजूद सांस्कृतिक भिन्नता को रेखांकित करते हुए कहा है कि पाश्चात्य संस्कृति में मौजूद दोहरी मान्यताओं के कारण वे बड़े वर्ग में मौजूद फर्क पर ज़ोर देते हैं और उन लोगों के बीच फर्क करते हैं जो या तो प्राकृतिक रिश्ते से जुड़े हैं या फिर मात्र किसी आचरण सम्बन्धी नियम के तहत परस्पर संबद्ध हैं। भारतीय संस्कृति की एकात्मक व्यवस्था में इसके विपरीत रिश्ते और आचरण के कारण जुड़े तमाम लोगों को अपने ही स्वजनों में स्थान दिया जाता है।

हमारा समाज परिवार से आगे बढ़ने पर गाँव तक आता है, इससे आगे नहीं। इस तरह के संकीर्ण समाज की पारिभाषिक विशेषतायें और उस समाज के लोगों के अधिकार और कर्त्तव्य उस समुदाय और गाँव की जरूरतों के आधार पर निश्चित होते हैं। "स्वभावत: इससे गाँव के सदस्यों के बीच एक बहुत ही घनिष्ठ संबंध कायम होता है। दूसरी तरफ पश्चिमी समाज परिवार और गाँव से काफी आगे बढ़ा होता है। इसलिए अनौपचारिक संबंध औपचारिक संबंधों में बदल जाते हैं और स्वभावत: रक्त के सम्बन्ध और आत्मीय सम्बन्ध के बीच खास फर्क होता है।"

हम सम्पूर्ण भारतवर्ष में मौजूद सामाजिक विभिन्नताओं को देखते हुए एक समान नातेदारी की बात भी नहीं कर सकते। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग नियम तथा आचरण मौजूद हैं। बोलचाल की भाषाओं में मौजूद विभिन्नताओं के आधार पर इरावती कार्वे ने देश को चार भागों में बाँटा है - उत्तरी, मध्य, पूर्वी और दक्षिणी। नातेदारी के प्रतिमान में मौजूद फर्क को समझने में इससे आसानी हुई है। भारतीय आर्य भाषा उत्तरी और मध्य भाग में आस्ट्रिक और मुन्डारी भाषायें पूर्वी भाग में और द्रविड़ भाषायें दक्षिणी भाग में बोली-लिखी जाती हैं। स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि मध्य और पूर्वी भारत में विद्यमान नातेदारियों का प्रतिमान उत्तर भारत से अलग नहीं है यद्यपि न केवल क्षेत्रीय स्तर पर बल्कि स्थान-स्थान पर भी मामूली भिन्नताएँ मौजूद हैं। दक्षिणी क्षेत्र नातेदारी की बड़ी जटिल तस्वीर प्रस्तुत करता है जो उत्तरी भारत से स्पष्टत: भिन्न है। फिर भी हम मानते हैं कि सांस्कृतिक उदारीकरण और मिश्रण के क्षेत्र भी हैं। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में उत्तर और दक्षिण भारतीय नातेदारी व्यवहारों का अच्छा खासा मेल पाया

जाता है। नातेदारी की पदावली, जाति या समुदाय के प्रति वफादारी, शादी के नियमों आदि में ये मेलजोल मिलते हैं। संचार और यातायात के साधनों के विकसित होने से ऐसे आदान-प्रदान करीब-करीब सारे भारत में हुए हैं। परन्तु मोटे तौर पर पूरे भारत में मौजूद संस्कृति को हम अलग से पहचान सकते हैं यद्यपि जगह-जगह पर इसकी कुछ अलग पहचान भी है।

क्या आप जानते हैं पश्चिमी समाज और भारतीय समाज के नातेदारी प्रतिमानों में मौजूद फर्क दोनों समाजों के सामाजिक संगठनों में मौजूद सैद्धांतिक फर्क के कारण हैं।

10.5 भारत में नातेदारी संबंधों की व्यापकता (Diversity of Kinship Relations in India)

अपने परिवार से बाहर अपने सगे-सम्बन्धियों के बीच ही एक ग्रामीण अपना अधिक समय बिताता है। गाँव में हर परिवार आपातकाल के समय या रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार के मौके पर, या खेत में काम करने, झगड़ों के निबटारे आदि के लिए सगे-सम्बन्धियों पर आश्रित होता है। हम नातेदारों के विभिन्न वर्गों को इसमें शामिल कर सकते हैं, जो उनके साथ मिलते-जुलते हैं। सर्वप्रथम हम उन परिवारों के विषय में विचार कर सकते हैं जो निवास के आधार पर या पितृवंशीय अन्वय के आधार पर निकट हों। मंडेलबाउम ने ऐसे समूह को स्थानिक वंश की संज्ञा दी है। ये व्यक्ति भाई है, जिन्होंने अपने अलग घर बना रखे हैं या जिनमें भाइयों के बेटे या पैतृक भतीजे हैं। ऐसे तमाम लोग, जो इन घरों में रहते हैं, चाहे वे पत्नियाँ हों, गोद लिये हुए बच्चे हों या घर जमाई हों, दूसरे पैतृक वंश के होने के बावजूद अपने परिवार के हिस्से होते हैं।

जो परिवार एक ही वंश के होते हैं, अक्सर औपचारिक यज्ञ, अनुष्ठान खासकर श्राद्ध कर्म में एक साथ भाग लेते हैं। ऐसे संयुक्त समारोह समूहों की सीमा रेखाओं को परिभाषित करने में मदद करते हैं। वे संयुक्त रूप से अन्य कार्यक्रमों में भी हिस्सा लेते हैं। वंश परिवार का ही विस्तार है और इस रूप में यह एक बहिर्वैवाहिक इकाई है। दूसरे, एक बड़ी एकात्मक इकाई बहुत सारी जातियों में मिलती है, किन्तु सभी जातियों में नहीं। यह गोत्र या कुल कहलाती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने पिता के गोत्र का उत्तराधिकारी होता है। गोत्र के भीतर विवाह निषिद्ध होता है क्योंकि एक गोत्र के लोग एक ही पूर्वज से उत्पन्न माने जाते हैं। एक ही गोत्र के लोग काफी बिखरे होते हैं और उनके रिश्ते-नाते काफी अलग-अलग होते हैं जिसके कारण वे एक सामान्य हित रक्षा या संयुक्त कार्यवाही नहीं कर सकते। फिर भी गोत्र समुदाय का गठन जाति के लोगों के बीच योग्य और आयोग्य वर-वधू का वर्गीकरण करने के लिए किया गया है।

तीसरे, सगे-सम्बन्धियों का एक वर्ग होता है, जो संयुक्त कार्यवाही को आधार प्रदान करते हैं। इस वर्गीकरण में जाति समूहों या एक ही जाति के लोगों के परिवार होते हैं जो एक गाँव में रहते हैं। वे लोग इस अर्थ में सगे-सम्बन्धी समझे जाते हैं कि गाँव के निवासी होने के साथ ही वे स्वजन भी हैं।

अन्त में काल्पनिक नातेदारों का भी एक वर्ग होता है। ग्रामीण चूँकि नातेदारी के आधार पर कार्य संबंधों को एकता का सबल कारक माना जाता है वे लोग जो खून के रिश्ते या शादी के रिश्ते द्वारा परस्पर जुड़े नहीं हैं, एक दूसरे के साथ काल्पनिक रिश्तों के आधार पर जुड़ सकते हैं। इस प्रकार से एक व्यक्ति जीव-विज्ञान प्रदत्त संबंधों से ज्यादा व्यापाक आधार वाले सम्बन्धों से लाभान्वित हो सकता है।

टास्क भारत में नातेदारी संबंधों का वर्णन करें।

नोट

10.6 उत्तर और दक्षिण भारत में नातेदारी के बंधन और व्यवहार (Limitation and Practices of Kinship in North and South India)

वैवाहिक संबंध नातेदारी में बंधने का प्रधान कारक है। पर उत्तरी और दक्षिणी भारत में इस मामले में एक मूलभूत अन्तर है।

पहली बात तो यह है कि दक्षिण भारत में एक परिवार शादी के रिश्ते द्वारा नातेदारी संबंध को और अधिक मजबूत करना चाहता है। दूसरी तरफ, उत्तर भारत में एक परिवार दूसरे प्रकार के लोगों से रिश्ता कायम करता है जो पहले उससे जुड़े नही थे।

दक्षिण भारत के द्रविड़ भाषा-भाषी अधिकांश लोगों के नातेदारी संबंधी पद विवाह की घनिष्ठता के साथ जुड़े हैं। सभी आनुवंशिक लोग दो वर्गों में बाँटे जाते हैं। एक वर्ग उनका है जिनके साथ विवाह हो सकता है और दूसरे वे लोग है जिनके साथ विवाह नहीं हो सकता। मंडेलबाउम के अनुसार द्रविड़ लोगों की नातेदारी पदावली कुछ बातों से तय होती है। उनमें से एक के तहत भाई और बहन के बच्चे शादी कर सकते हैं। विपरीत लिंग के भाई-बहन के बच्चों अर्थात् एक व्यक्ति की माता के भाई की बेटी और प्राय: उसके पिता की बहन की बेटी में पति-पत्नी बनने की संभावना होती है। अगर इसे बढ़ाकर देखें तो कह सकते हैं कि सभी संभावित जोड़े विपरीत ममेरे-फुफेरे भाई-बहन हैं। नातेदारों के बीच सहयोग को शादी के बन्धन द्वारा बढ़ाया जाता है। नूर यलमान दक्षिण भारतीय नातेदारी का विवेचन करते हुए कहते हैं। “जरूरी है कि भाई-बहन अलग रहें, परन्तु उनके बच्चों को अवश्य ही एक सूत्र में बाँध दिया जाना चाहिए।”

इस बात को ध्यान में रखते हुए ही मंडेलबाउम कहते हैं: “उत्तर भारत के अधिकांश क्षेत्रों में विवाह कार्य के संपादन की स्थिति दक्षिण भारत से बिल्कुल विपरीत है। यह केन्द्रापसारी प्रवृत्ति हैं, न कि केन्द्राभिगामी। एक संभावित जोड़ा दो विभिन्न समूहों के लोगों को जोड़ने के अवसर के रूप में देखा जाता है न कि मौजूद सम्बन्धों को मजबूत करने के लिए।”

दूसरे, उत्तरी भारत में अनुस्थापन के परिवार और प्रजनन के परिवारों के बीच साफ फर्क दिखाई पड़ता है, लेकिन दक्षिण भारत में ऐसा कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

तीसरे, उत्तरी भारत में एकवंशीय नातेदार एक क्षेत्र विशेष के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ जाते हैं। इनके बीच ग्रामीण बहिर्विवाह आम बात होती है। दक्षिण भारतीय रिवाजों में द्विपक्षीय सम्बन्धों पर ज्यादा जोर होता है। इनके बीच क्षेत्रीय बहिर्विवाह का प्रचलन नहीं होता।

पाँचवें, उत्तरी भारत में विवाह के बाद लड़की पूरी तरह से अपने पहले परिवार से अलग हो जाती है। वह अपने माता-पिता के घर में यदा-कदा आती है। लेकिन दक्षिण भारत में ऐसा नहीं है।

छठा, उत्तरी भारत में नातेदार संबंधों की प्रकृति के अनुसार संगठित होते हैं। उनके बीच एकात्मकता एक महत्त्वपूर्ण बात है। दूसरी तरफ, दक्षिण भारत में सम्बन्धी उम्र के अनुसार संगठित होते हैं। उन्हें उम्र के अनुसार दो भागों में बाँटते हैं: ताम मुन यानी अपने से ज्यादा उम्र का और तम-पिन यानी अपने से कम उम्र का।

सातवें, उत्तर भारत में महिलाओं पर शादी के बाद बहुत सारे प्रतिबंध लग जाते हैं। उदाहरण के लिए, उनसे आशा की जाती है कि वे अपनों से बड़ों के सामने अपना सिर ढ़क कर रखें। दक्षिण भारत में इस तरह के निषेध नहीं हैं।

नोट

10.7 सारांश (Summary)

- इरावती कार्वे ने भारतीय समाज को चार महाक्षेत्रों-उत्तरी, मध्य, दक्षिणी, और पूर्वी में बाँटकर नातेदारी के स्वरूपों का वर्णन किया है।
- मानवशास्त्रियों ने नातेदारी का अध्ययन दो उपागमों से किया है—वंशक्रम उपागम तथा विवाह संबंधी उपागम।
- वंशक्रम समूह के छः स्वरूप हैं– पितृवंशीय, मातृवंशीय, दोहरा, उभयपक्षीय, समानान्तर तथा वैकल्पिक वंशक्रम।
- भारतवर्ष में सामाजिक विभिन्नताओं को देखते हुए अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नियम तथा आचरण मौजूद हैं।

10.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **स्थानीय समुदाय (Local community)–**सांस्कृतिक एवं भाषायी विशिष्टताओं वाले स्थानीय समुदाय। ऐसे समुदायों में प्राय:स्थानीय निष्ठा पाई जाती है।
2. **वैकल्पिक वंशक्रम (Optional Descent)–**पुरुष से उसकी पुत्रियों का और स्त्री से उसके पुत्रों का वंश माना जाता है।

10.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अन्वय (Descent) के नियम बताएँ।
2. वंशक्रम समूह के प्रकारों का वर्णन करें।
3. उत्तरी, मध्य, पूर्वी और दक्षिणी भागों में वंशक्रम समूह का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. संस्थाएँ 2. कृतियों 3. अध्ययन।

10.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी—शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।
2. भारत में समाज—विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।

नोट

इकाई–11: नातेदारी व्यवस्था में क्षेत्रीय विभिन्नता और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक सह-संबंध (Regional Variations in Kinship System and Its Socio-Cultural Co-relation)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 नातेदारी व्यवस्था में क्षेत्रीय विभिन्नता और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक सह-सम्बन्ध (Regional Variations in Kinship System and Its Socio-Cultural Co-relation)

11.2 दक्षिण भारत में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System in South India)

11.3 पूर्वी भारत में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System in Eastern India)

11.4 भारत में नातेदारी: उत्तर व दक्षिण भारत (Kinship in India: North and South India)

11.5 सारांश (Summary)

11.6 शब्दकोश (Keywords)

11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विभिन्न क्षेत्रों में वंशावली ढाँचे की जानकारी।
- विभिन्न क्षेत्रों के वंशावली ढाँचे में सामाजिक-सांस्कृतिक सह-संबंध।

प्रस्तावना (Introduction)

बच्चे को जन्म देने की इच्छा एक अन्य प्रकार के सुदृढ़ संबंध का भी सूत्रपात करती है। यह संबंध स्त्री और पुरुष का अपने ससुराल वालों के साथ संबंध के रूप में दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के रिश्ते जो सामाजिक या कानूनी

रूप से परिभाषित वैवाहिक सम्बन्धों के कारण बनते हैं विवाह सम्बन्धी नातेदारी कहे जाते हैं। वैवाहिक रूप से संबद्ध रिश्तेदार एक दूसरे से खून के आधार पर नहीं जुड़े होते। इस प्रकार नातेदारी को हम रक्त सम्बन्ध या शादी के आधार पर निसृत सामाजिक सम्बन्ध के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। नातेदारी समूह (किन ग्रुप) एक ऐसा समूह है जिसके सदस्य रक्त अथवा विवाह के बंधन के आधार पर परस्पर जुड़े होते हैं।

विषय-वस्तु—प्रत्येक समाज में अन्वय के नियम दो कारणों से महत्त्वपूर्ण होते हैं—

(*i*) यह प्रत्येक व्यक्ति को स्वत: एक सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। इसके अनुसार व्यक्ति साधिकार, सामाजिक प्रतिष्ठा की भूमिकाओं व जिम्मेदारियों में सहभागी बनता है। नातेदारी समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान तथा सहयोग के अलावा अधिकार और जिम्मेदारियों से जुड़े ये लोग शादी-विवाह के नियमों का पालन करते हैं।

(*ii*) कानून या पूर्णत: स्थापित प्रथा अथवा रिवाज के अनुसार अन्वय के नियम उत्तराधिकार के कुछ प्रकारों को परिभाषित करते हैं। मसलन अधिकार जो जन्म से स्थापित होता है, इसके अनुसार सबसे बड़ा बेटा या सबसे छोटा बेटा या सभी बेटे और बेटियाँ मृतक की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं। उसी प्रकार शादी के आधार पर उत्तराधिकार होता है जिसके अनुसार पति के मरने पर सम्पत्ति की उत्तराधिकारी पत्नी होती है।

द्विपक्षीय समूह और एक पक्षीय समूह

परिवार नातेदारी के बंधन से अटूट रूप से बाँधा होता है। यह एकता दो तरफ जाती है—पिता के परिवार के मूल की तरफ और माता के परिवार के मूल की तरफ। किसी न किसी कारण से किसी एक पक्ष पर ही जोर दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए आधुनिक व्यवहार में हम माता के परिवार के कुलनाम को नकार देते हैं। इतना ही नहीं, शादी हो जाने के बाद लड़कियाँ अपने पति के नाम के आगे जुड़ने वाले कुलनाम को ग्रहण कर लेती हैं। पर परिवार दोनों में से किसी भी सहयोगी पक्ष को नहीं नकारता। इसीलिए इसे द्विपक्षीय समूह माना जाता है।

नातेदारी को एकता का आधार मानने वाले दूसरे प्रकार के समूह हैं जो द्विपक्षीय समूहों से भिन्न हैं क्योंकि वे एक सहयोगी पक्ष को पूरे तौर पर नकार देते हैं। ये सब एक पक्षीय समूह कहे जाते हैं।

नातेदारी का प्रसार-क्षेत्र

नातेदारी समूह को उसमें शामिल व्यक्तियों की संख्या के आधार पर विस्तृत प्रसारी या संकीर्ण प्रसारी समूह कहा जाता हैं। आधुनिक नातेदारी व्यवस्था संकीर्ण प्रसार क्षेत्र वाली व्यवस्था है जबकि आदि कालीन कबीला या सिब व्यापक क्षेत्र वाली व्यवस्था है। इसमें शामिल लोग के आपेक्षिक रूप से इतने बड़े क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं कि किसी-न-किसी मिथकीय पूर्वज को बीच में लाए बगैर उनके आपसी सम्बन्धों की पहचान मुश्किल है।

नातेदारी व्यवहार

नातेदारी व्यवहार दो प्रमुख कार्य सम्पादित करते हैं—

प्रथम तो ये नातेदारों के विशिष्ट समूह निर्मित करते हैं। इस प्रकार विवाह के सामाजिक अन्वेषण से प्रत्येक माँ को एक पति निश्चित होता है जिससे पिता के बच्चे माँ के बच्चे हो जाते हैं। इससे माता, पिता और बच्चों के विशिष्ट समूह बनते हैं जिसे हम परिवार कहते हैं। अतिरिक्त नियमों और सामाजिक परिपाटियों द्वारा विस्तृत नातेदारी समूहों का गठन होता हैं, जैसे विस्तृत परिवार या वंश या गोत्र का कबीला।

नातेदारी सम्बन्धी नियमों का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य नातेदारों के बीच भूमिका सम्बन्धों को अनुशासित करना है। नातेदारी एक प्रकार के सामाजिक 'ग्रिड' का गठन करता है। किसी भी समाज में लोग जन्मगत बंधनों या समान नातेदारी समूह की सदस्यता के कारण परस्पर संपृक्त होते हैं। नातेदारी के उपयोग से इन सामाजिक समूहों के लोग आपस में एक दूसरे के साथ मेल-जोल करते हैं। यह सम्बन्धों की उचित भूमिकाओं एवं रिश्तों को परिभाषित करता है, जैसे पिता और पुत्री के बीच सम्बन्ध, भाई-बहन के बीच सम्बन्ध, युवा दामाद तथा सास के बीच के सम्बन्ध आदि। अत: नातेदारी व्यवहार द्वारा सामाजिक जीवन नियमित होता है।

सामाजिक जीवन के नियामक के रूप में नातेदारी का महत्त्व तीन बातों पर आधारित है: (*i*) उस हद तक जहाँ तक व्यक्ति अपने रक्त-सम्बंधियों से घिरा होता है। यदि एक ही वंश के लोग विस्तृत इलाकों में बिखरे हों तो नातेदारी व्यवहार की भूमिका सीमित होगी। (*ii*) प्रतिमानित नातेदारी व्यवहार के विकास का स्तर। कुछ सामाजिक लोगों में सम्बन्ध इतने प्रतिमानित होते हैं कि आकस्मिकता के लिए जगह बहुत कम होती है। कुछ समाजों में नातेदारी का निश्चित 'पैटर्न' नहीं होता जिससे व्यक्तिवादी व्यवहार बहुत ज्यादा होने की सभावना होती है। (*iii*) लोगों की भूमिकाएँ निश्चित करने के लिए वैकल्पिक विकास का स्तर। शहरी क्षेत्रों में हमारा अपना व्यवहार नातेदारी के नियमों से प्रभावित नहीं होता क्योंकि हम नातेदारों के साथ आमतौर पर अंत: क्रिया नहीं करते। यह स्थिति एक सामान्य किसान के गाँव के बिल्कुल विपरीत है, क्योंकि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति से सम्बद्ध होता है। परिणामत: कोई भी व्यक्ति अपने वंश के लोगों की उपस्थिति में ही कोई काम करता है। बिल्कुल छोटे समाज में जहाँ भौगोलिक गतिशीलता की थोड़ी या बिल्कुल भी संभावना नहीं होती नातेदारी व्यवहार ही सामाजिक व्यवहार को नियमित करते हैं।

11.1 नातेदारी व्यवस्था में क्षेत्रीय विभिन्नता और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक सह-सम्बन्ध (Regional Variations in Kinship System and Its Socio-Cultural Co-relation)

किसी भी समाज की नातेदारी व्यवस्था उस समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक दशाओं में जुड़ी होती हैं। यह प्रश्न पूछा जा सकता है: केरल समाज की संरचना में ऐसे कौन से तत्व हैं जो वहाँ एक ओर तो मातृवंशीय और दूसरी ओर पितृवंशीय नातेदारी परम्परा को जन्म देते हैं। ऐसी कौन-सी बात है जहाँ उत्तर भारत में संयुक्त परिवार हैं और दक्षिण में थारवाड़? स्पष्ट है, नातेदारी की ये विभिन्नताएँ हैं और इनका उत्तर, उत्तर भारत तथा केरल की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्थाओं से है। वास्तविकता यह है कि उत्तर भारत में पितृवंशीय परिवार हैं और दक्षिण भारत के केरल के कुछ क्षेत्रों में मातृवंशीय परिवार हैं।

नोट्स पूर्व के जयन्तिया पहाड़ियों में खासी जनजाति हैं। इसकी परम्परा और सामाजिक तथा सांस्कृतिक विरासत उत्तर और दक्षिण दोनों ही क्षेत्रों से भिन्न है। ऐसी अवस्था में नातेदारी की विभिन्नताओं-पितृवंशीय और मातृवंशीय व्यवस्थाओं का अन्तर सामाजिक-सांस्कृति संदर्भ में देखा जा सकता है।

यहाँ हम इन तीनों क्षेत्रों—उत्तर, दक्षिण और पूर्व की नातेदारी की विभिन्नता को उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में देखेंगे।

उत्तर भारत में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System in North India)

इरावती कर्वे अपनी पुस्तक के प्रारम्भ में यह जोर देकर कहती हैं कि भारतीय समाज को समझने के लिये भाषा और परिवार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये संस्कृति के अंग हैं। भारत का उत्तरी क्षेत्र उत्तर में हिमालय और विंध्याचल पर्वत के बीच का क्षेत्र है। इस क्षेत्र की भाषाएँ इण्डो-आर्यन भाषा परिवार की इस संस्कृति ने इस क्षेत्र को एक ही नातेदारी व्यवस्था के होते हुए भी यहाँ शब्दों की संरचना में थोड़े बहुत अन्तर दिखायी दे जाते हैं। इस क्षेत्र की नातेदारी व्यवस्था का विवरण हम—(1) नातेदारी वर्ग, (2) नातेदारी शब्दावली, (3) विवाह के नियम, और (4) नातेदारों में औपचारिक उपहारों का आदान-प्रदान देंगे।

1. नातेदारी वर्ग (Kinship Groups)

उत्तर भारत के नातेदारों में मुख्य समूह पितृवंश है। इसका सम्बन्ध जाति और उपजाति से है। पितृवंश के साथ स्वत: गोत्र, जाति और उपजाति जुड़े होते हैं।

(*i*) पितृवंश

नातेदारी वर्ग में बहुत बड़ा समूह पितृवंश का है। उत्तर भारत में **एकलवंशीय परम्परा** (Unilineal) है। जब वंश का पता केवल एक वंश परम्परा के माध्यम से होता है तो उसे एकलवंशीय परम्परा कहते हैं। पितृवंश परम्परा पिता से पुत्र को जाती है। इस समूह के सदस्य एक-दूसरे को सहायता देते हैं लेकिन कभी-कभी सम्पत्ति को लेकर दोनों में संघर्ष भी होता है। संघर्ष के होते हुए कम से कम धर्म विधियों में तो पितृवंशीय समूह के सदस्य एक-दूसरे की सहायता करते हैं। हमारे सामने **लेविस, मिनटर्न, हिचकाक, बेरेमन** और **निकालस** आदि के कुछ अध्ययन हैं जो बताते हैं कि उत्तर भारत में धर्म विधियों में एक-दूसरे की बड़ी सहायता करते हैं।

पितृवंश के साथ में उत्तराधिकार के नियम भी जुड़े रहते हैं। इस क्षेत्र में सम्पत्ति का हस्तान्तरण पितृवंश परम्परा पर आधारित होता है। होता यह है कि इस वंश के सदस्य आर्थिक और कानूनी रूप से परिवार की सम्पत्ति में अपना योगदान देते हैं।

(*ii*) गोत्र

वंश परम्परा एक बहिर्विवाही समूह है। इसका अर्थ यह है कि एक ही वंश के लड़के-लड़की आपस में विवाह नहीं कर सकते। सामान्य रूप से ऐसी इकाई जिसमें विवाह नहीं किया जा सकता उसे सामाजिक मानवशास्त्र में **क्लान** (Clan) कहते हैं। हिन्दू जातियों में इसे गोत्र कहते हैं। गोत्र का सामान्य अर्थ पूर्वज से जोड़ा जाता है। पर कई बार गोत्र काल्पनिक भी होता है। गोत्र और वंश परम्परा में बड़ा अन्तर है। **गोत्र तो वास्तविक पूर्वज होता है, जबकि वंश काल्पनिक होता है। इस** अन्तर के होते हुए भी गोत्र और वंश बहिर्विवाही समूह के महत्त्वपूर्ण सदस्य होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. भारतीय समाज को समझने के लिए भाषा और परिवार बहुत ········· हैं।
2. इस क्षेत्र की भाषाएँ ········ भाषा परिवार की इस संस्कृति ने इस क्षेत्र को एक ही नातेदारी व्यवस्था के होते हुए भी यहाँ शब्दों की संरचना में थोड़े बहुत अन्तर दिखाई है।
3. गोत्र तो वास्तविक पूर्वज होता है, जबकि ········ काल्पनिक होता है।

(*iii*) जाति और उपजाति

वंश परम्परा तथा गोत्र के अतिरिक्त एक ही गाँव के अथवा निकट के गाँव वाले जाति समूहों के परिवारों में नातेदारी पद्धति का ताना-बाना फैला होता है। इन जातियों में अन्तर्विवाह होता है। हर जाति उपजातियों में बँटी होती है और हर उपजाति एक जाति की सम्पूर्ण भूमिकाएँ है। उप जातिगत नातेदारों में हमें उन व्यक्तियों को भी सम्मिलित करना चाहिये जो विवाह के माध्यम से सम्बन्धी बने हैं। अर्थ यह है कि **हमारे विवाह सम्बन्धी हमारी जाति या उपजाति के होते हैं।** ये नातेदार माँ की ओर से होते हैं तो उन्हें **मातृक नातेदार** (Uterine Kin) कहते हैं और जो नातेदार पत्नी के माध्यम से बनते हैं उनको हम **विवाह सम्बन्ध से उपजे नातेदार** (Affinal Kin) कहते हैं। मातृक और विवाह सम्बन्धी नातेदार वंश परम्परा या गोत्र के नातेदार नहीं होते। उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे यदि सम्भव हो तब हमारी सहायता करें।

2. नातेदारी शब्दावली (Kinship Vocabulary)

नातेदारी की एक विशिष्ट शब्दावली होती है। यह शब्दावली हमारे सामाजिक सम्बन्धों को बताती है। जहाँ एक ओर शब्दावली हमारे जैविकीय तथा सामाजिक सम्बन्धों को बताती है वहीं वह हमारे सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण दर्शन को समझने में भी मदद देती है। आजकल तो **उत्तर संरचनावादी** (Post-structuralist) इस बात पर जोर देते हैं कि भाषा की संरचना की तरह नातेदारी की भी एक निश्चित संरचना होती है। इसी कारण नातेदारी शब्दावली का अध्ययन भाषा और संस्कृति के साथ सरोकार रखता है।

(*i*) उत्तर भारतीय नातेदारी शब्दावली का वर्णनात्मक स्वरूप

नातेदारी शब्दावली नातेदारों के सम्बन्धों को भाषा में बताती है। उत्तर भारत में पायी जाने वाली नातेदारी शब्दावली को हम **वर्णनात्मक** (Descriptive) पद्धति कहते हैं। नातेदारी शब्दावली वक्ता की दृष्टि से सम्बन्धों का सीधा-सादा वर्णन करती हैं। नातेदारी शब्दावली वक्ता की दृष्टि से सम्बन्धों का ठीक-ठीक वर्णन करती है। इस शब्दावली द्वारा बहुत दूर के नातेदारी सम्बन्धों का ठीक-ठीक वर्णन किया जा सकता है। उदारहण के लिये अंग्रेजी शब्दावली के **अंकल, आंटी, कज़िन** जैसे शब्दों से यह स्पष्ट नहीं होता कि इस शब्द विशेष का माँ की तरफ से या पिता की तरफ से प्रयोग हुआ है। उत्तर भारत की नातेदारी शब्दावली में यह अर्थ बहुत स्पष्ट दिखायी देता है। उदाहरण के लिए जब हम चचेरा भाई कहते हैं तो आसानी से इसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि यह पिता के छोटे भाई अर्थात् चाचा का पुत्र है और इसी प्रकार इसके साथ भाई का सम्बन्ध है। इसी तरह से ममेरा भाई का अर्थ यह है कि यह माँ के भाई अर्थात् मामा का पुत्र है।

लुई ड्यूमों ने उत्तर भारत की नातेदारी का वर्णनात्मक विश्लेषण किया है। "इसमें सभी प्राथमिक सम्बन्धों का वर्णन किया जाता है। 'मैं' (अहं) से शुरू होने वाले प्राथमिक शब्दावली के पहले क्रम में वे शब्द हैं जो (*i*) सहोदर (भाई/बहिन) वाली पीढ़ी से सम्बन्ध को स्पष्ट करते हैं, (*ii*) विवाह सम्बन्ध बताते हैं, तथा (*iii*) अगली व पिछली पीढ़ी के वंशत्वगत सम्बन्ध बताते हैं। इसके बाद दूसरे क्रम के सम्बन्ध हैं जो प्राथमिक सम्बन्धों को मिलाकर बनाये गये हैं, अर्थात् इसमें वंशत्व + वंशत्व, वंशत्व + सहोदर, सहोदर + वंशत्व, विवाह + वंशत्व तथा विवाह + सहोदर के सम्बन्धों को दर्शाने वाले शब्द आते हैं। सम्बन्धों के तीसरे क्रम में हमें वंशत्व + विवाह + वंशत्व से बने सम्बन्धों के बारे में मालूम होता है। इसके अतिरिक्त **ड्यूमों** (1966) के अनुसार उत्तर भारत में नातेदारी शब्दावली **वर्गीकरणात्मक** (Classificatory) नहीं है क्योंकि यह नातेदारी शब्दों का वर्गीकरण विपरीत सम्बन्धों के आधार पर नहीं करती है बल्कि इसमें हमें प्राथमिक सम्बन्धों का बढ़ा हुआ रूप विभिन्न क्रमों में मिलता है।"

उत्तर भारत की वर्णनात्मक नातेदारी की शब्दावली को देखने से ज्ञात होता है कि यहाँ चचेरे और फुफेरे-ममेरे भाईयों के बीच स्पष्ट अन्तर है। भाई के बच्चे, भतीजे, भतीजियाँ कहलाते हैं और बहिन के बच्चे भानजे, भानजियाँ कहलाते हैं। इन दो श्रेणियों के अन्तर से कभी कोई संदेह की गुंजाइश नहीं रहती। सदैव हमारे **समानान्तर** (Parallel) नातेदार हमारी वंश परम्परा के सदस्य होते हैं और वे प्राय: लगभग एक ही गाँव में भी रहते हैं। इसके विपरीत बहिन की संतान या भानजे-भानजियाँ सदा ही दूसरी परम्परा समूह के सदस्य होते हैं। वे प्राय: रहते भी दूसरे गाँव या शहर में हैं।

(*ii*) सामाजिक व्यवहार

इरावती कर्वे ने उत्तर भारत की भाषाओं में नातेदारी शब्दावली की सूची दी है। कर्वे के अतिरिक्त जी. एस. घुरिये ने भी आर्य नातेदारी शब्दावली का विश्लेषण किया है। नातेदारी शब्द के प्रयोग से ही स्पष्ट हो जाता है कि किसी नातेदार से किस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। उदाहरण के लिये **ऑस्कर लेविस** (1958) ने उत्तर भारतीय गांवों से सम्बन्धित अपने अध्ययन में व्यक्ति और उसके बड़े भाई की पत्नी के बीच सम्बन्ध और विन्यास का वर्णन किया है। इसे हम देवर-भाभी के सम्बन्ध कहते हैं। इन सम्बन्धों में हँसी-मज़ाक का रिश्ता होता है। इस नातेदारी व्यवहार के बिल्कुल विपरीत एक स्त्री का अपने पति के पिता के साथ शील-संकोच का रिश्ता होता है। इसी प्रकार व्यवहार स्त्री अपने पति के बड़े भाई के साथ करती है। पति के पिता के लिये **ससुर** और पति के बड़े भाई के लिये **जेठ** शब्द का प्रयोग किया जाता है।

3. विवाह के नियम (Rules of Marriage)

उत्तरी भारत में विवाह के निश्चित नियम होते हैं। इन नियमों का सम्बन्ध विभिन्न नातेदारों से होता है। शोभिता जैन कहती हैं कि उत्तर भारत में विवाह के जो नियम हैं, वे **निषेधात्मक** (Negative) हैं। गोत्र से बाहर विवाह नहीं करना, भाई-बहिनों के बीच विवाह नहीं करना आदि निषेध हैं। अर्थ हुआ, इन निषेधों के बाहर विवाह किया जा सकता है।

4. नातेदारों में औपचारिक उपहारों का आदान-प्रदान (Exchange of Gifts among Kins)

किसी भी परिवार में जन्म से लेकर मृत्यु तक, ऐसे अवसर आते हैं जब नातेदारों के बीच में आदान-प्रदान होता है। आमतौर पर वधू-पक्ष वर पक्ष की तुलना में अपनी निम्न प्रस्थिति के अनुकूल विवाह के दौरान उपहार देते हैं। कहना यह चाहिये कि उपहार देना और लेना दोनों ही एक सामाजिक गतिविधि है जो नातेदारी सम्बन्धों को बनाये रखते हैं। यहाँ हम फिर लुई ड्यूमों के उत्तर भारत के नातेदारी अध्ययन का दृष्टान्त देंगे। ड्यूमों कहते हैं कि "माँ के भाई (सहोदर नातेदार) और पत्नी के भाई (वैवाहिक नातेदार) के एक जैसे ही औपचारिक प्रकार्य होते हैं। पत्नी का भाई (साला) कुछ वर्षों के बाद बच्चों का मामा हो जाता है, इसलिये इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। **ए. सी. मेयर** ने मालवा के देवास जिले के एक गाँव का अध्ययन किये हैं। वे कहते हैं कि व्यक्ति के मामा द्वारा दिये गये सभी उपहार ममेरे उपहार कहलाते हैं। मामा द्वारा दिये जाने वाले उपहारों के विपरीत अपने पितृवंश द्वारा दिये गये उपहार **बान** (मालवा में) कहलाते हैं। दूसरी ओर बान शब्द का प्रयोग उस उपहार के लिये भी होता है जिसे अन्य रिश्तेदार जैसे वर की बहिन का पति (वर का जीजा), वर की पत्नी के भाई (वर का साला) को देता है।" इससे पता चलता है कि उपहारों के आदान-प्रदान की गिनती में वर का जीजा अथवा पिछली पीढ़ी के संदर्भ में फूफा को वर के साले (अथवा पिछली पीढ़ी के संदर्भ में मामा) के समकक्ष पितृवंश का ही एक अंग समझा जाता है।

मृत्यु के अवसर पर भी कुछ आदान-प्रदान होते हैं। एक व्यक्ति की मृत्यु पर उसका पुत्र **मुख्य विलापकर्ता** (Chief Mournex) होता है। उसके सिर पगड़ी बाँधने का रस्म उस घनिष्ठ सम्बन्धी द्वारा की जाती है जो उस परिवार से वधू (लड़की) ले जा चुका हो। दूसरे शब्दों में, यह पगड़ी विशेष रूप से बहिन के पति अर्थात् जीजा या पिता की बहिन के पति (फूफा) द्वारा बाँधी जाती है।

जब हम विवाह, मृत्यु आदि अवसरों पर उपहारों की आदान-प्रदान की चर्चा करते हैं तब यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि उत्तरी भारत में हमें इस क्षेत्र में विषमता दिखाई देती है।

नोट्स **एफ.जी. बेली (1957), ऑस्कर लेविस (1958), ए. सी. मायर (1960) के** अध्ययनों से यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि **वर-पक्ष, वधू-पक्ष से ऊँचा होता है और सभी परिस्थितियों में उपहार देने का कर्तव्य वधू-पक्ष का होता है। इससे ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में अनुलोम विवाह, विवाह का मुख्य स्वरूप है** और इस कारण वधू-पक्ष की तुलना में वर पक्ष हमेशा ऊँचा स्थान रखता है।

11.2 दक्षिण भारत में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System in South India)

जब हम दक्षिण भारत की नातेदारी व्यवस्था का उल्लेख करते हैं तब उसके अन्तर्गत जैसा कि **इरावती कर्वे** ने किया है, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और केरल राज्यों को सम्मिलित करते हैं। यहाँ की चार मुख्य भाषाएँ–तमिल, कन्नड़, तेलगु और मलयालम–द्रविड़ भाषा परिवार की सदस्य हैं। **दक्षिण भारत में बहुतायत रूप से पितृवंश और मातृवंश दोनों परम्पराओं का उल्लेख करेंगे–**

पितृवंश

ठीक उत्तर भारत की तरह दक्षिण भारत में भी पितृवंश की परम्परा प्रचलित है। **कैथलीन गफ़** (1955) ने तंजोर जिले के ब्राह्मणों के पितृवंशीय परिवारों का अध्ययन किया है। ये परिवार छोटे-छोटे समुदायों में बँटे हुए हैं। **गफ़** को प्रत्येक जाति की एक से लेकर बारह तक बहिर्विवाह पितृवंश परम्पराएँ एक गाँव में मिली हैं। **गफ़** बताती हैं कि तंजोर जिले में पितृवंश को **कुट्टम** कहते हैं। प्राय: **कुट्टम** के सारे सदस्य एक या एक से अधिक गाँवों में

नोट

रहते हैं। आगे चलकर ये कुट्टम पुनः विभाजित हो जाते हैं। प्रत्येक कुट्टम अपने पूर्वज का नाम धारण करता है और यही उसके प्रधान का नाम भी होता है। यह नाम सबसे बड़े पुत्र को उत्तराधिकार में प्राप्त होता है जो कि उस समूह के प्रधान का पद भी सम्भालता है।

कैथलीन गफ़ और लुई ड्यूमों ने दक्षिण भारत की विवाह सम्बन्धी परम्पराओं या नियमों का उल्लेख किया है। यहाँ विवाहजन्य अर्थात् जिनके साथ विवाह हो सकता है उस नातेदारी के सम्बन्धी होते हैं। ये वे सम्बन्धी होते हैं जो माँ तथा पत्नी के जन्म परिवार के सदस्य होते हैं। इन्हें सामान्यतः **मामा-मच्चिनन** के रूप में जाना जाता है। इस वर्ग में वे समूह भी आते हैं जिन समूहों में अपनी बहिन अथवा पिता की बहिन का विवाह होता है। **ड्यूमों** कहते हैं, पितृवंश परम्परा और विवाहजन्य सम्बन्धियों के बीच अन्तःक्रिया सौहाद्रपूर्ण होती है।

11.3 पूर्वी भारत में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System in Eastern India)

भारत के उत्तर-पूर्व में मातृवंशीय नातेदारी व्यवस्था है। यह व्यवस्था गारो जनजाति में मिलती है। इस जनजाति के लोग मेघालय राज्य का गारो पर्वत-श्रेणियों में पाये जाते हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण कुछ गारो मैदानी इलाकों में भी बस गये हैं। मेघालय के पड़ोस में खासी पहाड़ियाँ हैं। यहाँ खासी जनजाति रहती है। **खासी और गारो दोनों जनजातियों में मातृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं।** इन दोनों जनजातियों में जिस प्रकार की मातृवंशीय व्यवस्था है उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। देखा जाये तो इन दोनों जनजातियों की नातेदारी व्यवस्था के बारे में हमारे पास बहुत थोड़ी सामग्री है। **ची. नकाने** तथा **परिमलचन्द्र** ने गारो जनजाति में शोध कार्य किया है। यह शोधकार्य आज से लगभग 40 वर्ष पहले हुआ था। नकाने के अतिरिक्त **बरलिंग** तथा **गोस्वामी एवं मजूमदार** ने गारो जनजाति की सामाजिक स्थिति का अच्छा अध्ययन किया है।

इन दोनों जनजातियों—गारों और खासी में मातृसत्तात्मक नातेदारी व्यवस्था है। इन जनजातियों में **क्लान** (Clan) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक क्रिया कलापों में मातृवंश का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन जातियों में गाँव एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। महत्त्वपूर्ण इकाई इसलिये है कि जहाँ गारो में गाँव बहिर्विवाही समूह है वहाँ खासी गाँव अन्तर्विवाही समूह है। दूसरे शब्दों में, कोई भी खासी अपने गाँव से बाहर विवाह नहीं कर सकता। एक ही गाँव में कई कुलों के परिवारों में बसने के कारण यह सम्भव हुआ कि एक ही गाँव के लोग आपस में विवाह सम्बन्ध कर पाये।

गारो जनजाति के विवाह के नियम

गारो में विवाह का नियम है कि मामा, बुआ के बच्चों में विवाह की अनुमति है परन्तु पत्नी की बहिन से भाई का विवाह तथा पति की बहिन से भाई का विवाह निषेध है। अपने गोत्र में विवाह वर्जित है। यहाँ दामाद अपने को ससुराल के नये वातावरण में जाने के लिय तैयार करता है। दामाद की स्थिति गारो जनजाति में ऐसी ही होती है जैसे उत्तर के पितृवंशीय परिवार में बहू की।

खासी जनजाति में नातेदारी व्यवस्था (Kinship System in Khasi Tribe)

खासी जनजाति की एक विशिष्ट अर्थव्यवस्था है और इस अर्थव्यवस्था से उनकी नातेदारी व्यवस्था जुड़ी हुई है। यह जनजाति **झूम खेती** करती है। गाँव की सम्पूर्ण भूमि **गोत्र** (Clan) की होती है। यहाँ मातृवंश परम्परा है। हर कुल की पूर्वज माँ होती है। सभी अपने को इस माँ की संतान समझते हैं। इस जनजाति में व्यक्ति की पहचान उसके कुल यानी **कुर** से होती है। **कुर** के लोगों में एकता और सहकारिता की भावना होती है। यहाँ मातृवंश महत्त्वपूर्ण है।

विवाह के नियम (Rules of Marriage)

इस जनजाति में विवाह के नियम निषेधात्मक हैं। उदाहरण के लिये मामा के जीवन काल में मामा की बेटी से विवाह और पिता के जीवन काल में बुआ की बेटी से विवाह करने की अनुमति नहीं है। इसके अतिरिक्त सगे चाचा व मौसी की संतानों में भी विवाह की अनुमति नहीं है और पिता से सम्बद्ध तीन पीढ़ी तक भी संतानों के बीच भी विवाह नहीं होता है। **विवाह के निषेधात्मक नियमों के संदर्भ में देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि शेष बची श्रेणियों में विवाह हो सकता है।**

खासी जनजाति की नातेदारी के बारे में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस समाज में वंशक्रम समूह का निर्माण एक से तीन पीढ़ियों में पूरा होता है। आवास एवं सम्पत्ति की दृष्टि से माँ-बेटी अथवा मातृवंश परम्परागत सम्बन्धों को प्रमुखता दी जाती है। माँ-बेटी के बाद बहिन-भाई का सम्बन्ध मुख्य है तथा पति-पत्नी के सम्बन्ध का तो एक तरह से बलिदान ही हो जाता है। अधिकांश मातृवंश परम्परात्मक समाजों में सम्पत्ति माँ से बेटी को जाती है। खासी समुदाय में भी यही है परन्तु पति की स्वअर्जित सम्पत्ति विवाह के बाद उसकी पत्नी तथा बच्चों को मिलती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनियें—

4. किस समाजशास्त्रीय के अनुसार तंजोर जिले में पितृवंश को कुट्टम कहते हैं—
   (क) कैथलीन ग़फ (ख) दुर्खिम (ग) कार्ल-मार्क्स।
5. ग़फ को प्रत्येक जाति की एक से लेकर बारह तक ········ पितृवंश परम्पराएँ एक गाँव में मिली हैं।
   (क) बहिर्विवाह (ख) सामूहिक विवाह (ग) द्वि-विवाह
6. किस समाजशास्त्रीय के अनुसार उत्तर भारत में नातेदारी शब्दावली वर्गीकरणात्मक नहीं है—
   (क) रेम्जे मैकडोनाल्ड (ख) लुई डयूमों (ग) इरावती कर्वे।

11.4 भारत में नातेदारी: उत्तर व दक्षिण भारत (Kinship in India: North and South India)

भारत एक विविधतापूर्ण देश है जिसके विभिन्न क्षेत्रों में परिवार और विवाह से उपजे सम्बन्धों की दुनियाँ यानी नातेदारी की अनेक पद्धतियाँ पायी जाती हैं। मुख्य रूप से हमारे देश में दो तरह के नातेदार हैं—रक्त सम्बन्धी नातेदार और विवाह सम्बन्धी नातेदार। इन दोनों को समेट कर देखें तो उत्तर भारत में पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था है और दक्षिण के कुछ राज्यों तथा उत्तर पूर्व के कुछ भागों में मातृवंशीय नातेदार हैं। इस तरह हमारे यहाँ नातेदारी के दो प्रतिमान हैं—पितृवंशीय। जब हम दक्षिण के मातृवंशीय परिवारों की तुलना उत्तर से करते हैं तो इसमें हम पूर्वी भारत के खासी और गारो जनजाति की मातृवंशीय व्यवस्था को भी शामिल करते हैं। जब हम इन दोनों व्यवस्थाओं की तुलना करते हैं तो तुलना में कुछ तथ्य उत्तर और दक्षिण भारतीय नातेदारी व्यवस्था में असमानता को बताते हैं और कुछ समानता को बताते हैं। पहले हम इन दोनों व्यवस्थाओं की असमानताओं को देखते हैं—

असमानताएँ (Dissimilarities)

नातेदारी में विवाह के नियम यानी किससे विवाह किया जाए और किससे नहीं, महत्त्वपूर्ण होता है। हमने देखा कि उत्तर भारत में विवाह के नियम **नकारात्मक** (Negative) हैं, जबकि दक्षिण के विवाह के नियम **सकारात्मक** (Positive) हैं। यह बहुत बड़ा अन्तर है। उत्तर भारत में विवाह सम्बन्ध से एक परिवार हर तरह से दूसरे परिवार से जुड़ता है। और कहीं-कहीं तो एक गाँव दूसरे गाँव से। आदिवासियों में तो जहाँ ग्राम बहिर्विवाह होता है वहाँ एक गाँव दूसरे गोत्र के गाँव से नातेदारी में बँध जाता है। दक्षिण भारत में स्थिति दूसरी हैं यहाँ अधिकतर विवाह सम्बन्ध एक छोटे से समूह के बीच होते हैं और पिता तथा माता दोनों पक्षों के सम्बन्धों पर ज़ोर दिया जाता है। इसके अलावा लगभग कोई क्षेत्रीय बहिर्विवाह नहीं होता। **उत्तर और दक्षिण भारत की नातेदारी व्यवस्था का यह बहुत बड़ा अन्तर है।**

दोनों व्यवस्थाओं में एक और असमानता हैं **यह असमानता नातेदारी** शब्दावली में है। उत्तर भारत में नातेदारी शब्दावली में रक्त से सम्बन्धित तथा विवाह से सम्बन्धित **नातेदारी के पृथक्करण पर ज़ोर दिया जाता है।** दक्षिण भारत में नातेदारी शब्दावली में विवाहजन्य सम्बन्धियों के बीच सम्बन्धों की समान स्थिति पर ज़ोर दिया जाता है। यहाँ द्रविड़ शब्दावली की संरचना वर्गात्मक नाते सम्बन्धों के सिद्धान्त पर आधारित है तथा एक पीढ़ी को चचेर-मौसेरे और फूफेरे-ममेरे भाई बहिनों में अन्तर करती है। दक्षिण भारत में यह विभेद विवाह के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है जबकि उत्तर भारत में यह विभेद कोई मतलब नहीं रखता।

नोट

एक तीसरा अन्तर है कि **उत्तर भारत में अनुलोम विवाह के सिद्धान्त का जहाँ तक सम्भव हो पालन किया जाता है।** इसका अर्थ है कि लड़की वाले लड़के वालों से निम्न प्रस्थिति के हैं। दक्षिण भारत में ऐसा नहीं है। **यहाँ मातृवंशीय और कभी-कभी पितृवंशीय ममेरे-फूफेरे भाई बहिनों में और कभी कभी अन्तः पीढ़ी (मामा और भान्जे के बीच) विवाह अधिमान्य विवाह माना जाता है।** इस स्थिति के कारण दक्षिण भारत में लड़के वालों को लड़की वालों से श्रेष्ठ सिद्ध करने में कोई मतलब नहीं निकलता। बहुत स्पष्ट है कि पहले से ही जो घनिष्ठ नातेदारी सम्बन्ध है, विवाह के बाद उन्हें नीचा या ऊँचा नहीं बनाया जा सकता। उत्तर भारत में लड़की वालों को नीचा समझना सरल हो जाता है क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध अधिकतर गैर-सम्बन्धियों और विशेष रूप से अपरिचित परिवारों के बीच होते हैं।

क्या आप जानते हैं **पितृवंशीय परिवारों में, विवाह के बाद लड़की पूर्णतया अजनबियों के परिवार में आ जाती है और अपना घर छोड़ आती है। पिता के घर में उसका व्यवहार उस व्यवहार से पूर्णतया भिन्न होता है। जिसकी अपेक्षा उसके सास और ससुर करते हैं।**

उत्तर-भारत में सास और बहू की अवधारणाएँ बहुत ताकातवर हैं। मुहावरे के अनुसार ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। **उत्तर भारत की फिल्मों में इन दोनों को परस्पर विरोधी बताया गया है। दक्षिण भारत में महिला के दृष्टिकोण से उसके जन्म के परिवार और विवाह के परिवार में बहुत कम अन्तर होता है। वह अपने पति के घर में अजनबी नहीं होती। अतः एक स्त्री की दृष्टि से देखें तो दक्षिण भारतीय परिवारों में विवाह बहुत कम परिवर्तन लाता है जबकि उत्तर भारत में बहुत अधिक।**

उत्तर और दक्षिण की नातेदारी की इस असमानता को हम निम्न बिन्दुओं में रखेंगे–

1. उत्तर में विवाह के नियम नकारात्मक होते हैं जबकि दक्षिण में सकारात्मक।
2. दोनों की नातेदारी शब्दावली में अन्तर है।
3. उत्तर में अनुलोम विवाह पर ज़ोर दिया जाता है जबकि दक्षिण की मातृवंशीय नातेदारी में अधिमान्य विवाह पर ज़ोर दिया जाता है।
4. उत्तर में बहू होने के कारण पितृवंशीय परिवार में स्त्री की प्रस्थिति अजनबी की होती है जबकि दक्षिण में स्त्री को बहू होकर भी यह विपदा नहीं झेलनी पड़ती।

समानताएँ (Similarities)

उत्तर और दक्षिण की नातेदारी व्यवस्था में **एकल वंश परम्परा** (Unilineality) प्रचलित है। उत्तर में पितृवंशीय नातेदारी है; दक्षिण में या तो पितृवंशीय नातेदारी है या मातृवंशीय। दोनों एक साथ प्रचलित नहीं है। वंश परम्परा कोई भी हो, दोनों ही क्षेत्रों में नातेदारी व्यवस्थाओं द्वारा सामाजिक सम्बन्धों और तन्त्रों में विवाहजन्य सम्बन्धों और तन्त्रों में विवाहजन्य सम्बन्धों की भूमिका पर विशेष बल देखने को मिलता है। इसका अर्थ यह है कि **विवाह द्वारा स्थापित सम्बन्ध दोनों ही व्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण है।** लड़की वालों और लड़के वालों में भेद उत्तर और दक्षिण दोनों में माना जाता है। निःसंदेह विवाहजन्य सम्बन्धों पर बल का कम या अधिक होना व्यवस्थाओं के बीच मुख्य अन्तर को व्यक्त करता है।

इस अध्याय में हमने भारत की नातेदारी व्यवस्था का विश्लेषण किया है। बहुत स्पष्ट है कि उत्तर भारत में पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था है। इधर दक्षिण और उत्तर-पूर्व में मातृवंशीय नातेदारी है। नातेदारी का यह विवरण हमने **इरावती कर्वे** और **शोभिता जैन** की पुस्तकों के आधार पर किया है। मातृवंशीय नातेदार सम्पूर्ण दक्षिण भारत में नहीं है। यहाँ भी प्रधान नातेदारी व्यवस्था उत्तर की तरह पितृवंशीय है। मातृवंश परम्परा केरल, कर्नाटक, और तमिलनाडु के कुछ भागों में और केन्द्र शासित प्रदेश लक्षद्वीप में पायी जाती है। मातृवंश परम्परा हिन्दू और मुसलमान दोनों में हैं।

इन दोनों प्रतिमानों के पीछे सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक कारक हैं। **नातेदारी व्यवस्था किसी भी सामाजिक संस्था की तरह अपनी सामाजिक संरचना की उपज होती है।** उदाहरण के लिए मातृवंश परम्परा उन आर्थिक व्यवस्थाओं से जुड़ी है जो स्त्रियों की स्वतन्त्रता को और उनके अपने रहन-सहन की व्यवस्था करने के अधिकारों को मान्यता देती है। इन व्यवस्थाओं में पुरुष शिकार खेलने, लड़ाई करने और व्यापार करने जैसी कुछ आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं जबकि स्त्रियाँ सामान्य जीवन-यापन के साधन जुटाती हैं।

टास्क भारत में नातेदारी व्यवस्था का वर्णन करो।

11.5 सारांश (Summary)

- अतिरिक्त नियमों और सामाजिक परिपाटियों द्वारा विस्तृत नातेदारी समूहों का गठन होता है, जैसे विस्तृत परिवार या वंश या गोत्र या कबीला।
- उत्तर भारत में पितृवंशीय नातेदारी व्यवस्था है। दक्षिण भारत और उत्तर-पूर्व में मातृवंशीय नातेदारी है।
- मातृवंश परंपरा हिन्दू और मुसलमान दोनों में है। इन दोनों प्रतिमानों के पीछे सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक कारक है।
- नातेदारी व्यवस्था किसी भी सामाजिक संस्था की तरह अपनी सामाजिक संरचना की उपज होती है।

11.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **कुल (Clan)—** एक ऐसे रक्त मूलक एक पक्षीय वंश समूह को कुल कहते हैं, जिसके सदस्य किसी ज्ञात पूर्वज से अपनी पीढ़ीगत संबंधों की खोज करते हैं। कुल की सदस्यता पूर्णत: रक्त संबंधों पर आधारित होती है।
2. **समानताएँ (Similarities)—** विवाह द्वारा स्थापित संबंध दोनों ही व्यवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण हैं।

11.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. नातेदारी व्यवस्था में क्षेत्रीय विभिन्नता बताएँ।
2. नातेदारी व्यवस्था या वंशावली ढांचा में क्षेत्रीय विभिन्नता और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक सह-संबंध बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. महत्त्वपूर्ण	2. इण्डो-आर्यन	3. वंश
4. (क) कैथलीन गफ़	5. (क) बहिर्विवाह	6. (ख) लुई ड्यूमों।

11.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोलह संस्कार–स्वामी अवधेशन, मनोज पब्लिकेशन।
2. भारत में परिवारिक समाजशास्त्र का विकास–अल्का रानी, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।

नोट

इकाई–12: विवाहः विवाह की अवधारणा, प्रकार एवं महत्त्व (Concept, Forms, Significance of Marriage)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 विवाह का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Marriage)

12.2 विवाह की प्रमुख विशेषताएँ एवं महत्त्व (Main Characteristics and Significance of Marriage)

12.3 विवाह के उद्देश्य (Aims of Marriage)

12.4 हिन्दू विवाह के स्वरूप (Forms of Hindu Marriage)

12.5 सारांश (Summary)

12.6 शब्दकोश (Keywords)

12.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विवाह का अर्थ तथा महत्त्व की जानकारी।
- विवाह के प्रकारों को जानना।
- हिन्दू विवाह के प्रकारों की जानकारी।
- विवाह के उद्देश्य क्या हैं?

प्रस्तावना (Introduction)

विवाह का एक आधार स्त्री में माँ एवं पुरुष में पिता बनने की इच्छा भी है, जिसकी पूर्ति वैध रूप में विवाह द्वारा ही सम्भव है। विवाह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संस्कृति का हस्तान्तरण भी करता है। कुछ समाजों में आर्थिक

नोट

जीवन विषमलिंगियों के बीच सहयोग एवं श्रम-विभाजन पर आधारित होता है। आर्थिक क्रियाओं को स्त्री-पुरुष द्वारा सामूहिक रूप से सम्पन्न करने की आवश्यकता ने भी विवाह को अनिवार्य बना दिया। इन सभी कारणों से विवाह रूपी संस्था प्रत्येक काल और प्रत्येक समाज में विद्यमान रही है, यद्यपि इसके स्वरूपों में भिन्नता पायी जाती है। भारत में भी विवाह के क्षेत्र में अनेक विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। प्राचीन काल से ही यहाँ विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, प्रजातियों, भाषाओं एवं मतों से सम्बन्धित लोग रहते आये हैं जिनकी प्रथाओं, रीति-रिवाजों, संस्कृतियों, संस्थाओं एवं जीवनदर्शन में भिन्नता पायी जाती है। इस भिन्ता ने यहाँ की विवाह संस्था को भी प्रभावित किया है। भारत में विवाह के अनेक रूप जैसे एक-विवाह, बहुपति विवाह, द्वि-विवाह एवं बहुपत्नी विवाह, आदि पाये जाते हैं। कुछ समाजों में विवाह को एक संस्कार माना गया है तो कुछ में एक सामाजिक एवं दीवानी समझौता।

12.1 विवाह का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Marriage)

विवाह का शाब्दिक अर्थ है, 'उद्वह' अर्थात् 'वधू को वर के घर ले जाना।' विवाह को परिभाषित करते हुए **लूसी मेयर** लिखते हैं, "विवाह की परिभाषा यह है कि वह स्त्री-पुरुष का ऐसा योग है, जिससे स्त्री से जन्मा बच्चा माता-पिता की वैध सन्तान माना जाय।" इस परिभाषा में विवाह को स्त्री व पुरुष के ऐसे सम्बन्धों के रूप में स्वीकार किया गया है जो सन्तानों को जन्म देते हैं, उन्हें वैध घोषित करते हैं। तथा इसके फलस्वरूप माता-पिता एवं बच्चों को समाज में कुछ अधिकार एवं प्रस्थितियाँ प्राप्त होती हैं।

डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स के अनुसार, "जिन साधनों द्वारा मानव समाज यौन सम्बन्धों का नियमन करता है, उन्हें विवाह की संज्ञा दी जा सकती है।"

वेस्टरमार्क के अनुसार, "विवाह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह सम्बन्ध है, जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और जिसमें इस संगठन में आने वाले दोनों पक्षों एवं उनसे उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तव्यों का समावेश होता है।" वेस्टरमार्क ने विवाह बन्धन में एक समय में एकाधिक स्त्री पुरुषों के सम्बन्धों को स्वीकार किया है जिन्हें प्रथा एवं कानून की मान्यता प्राप्त होती है। पति-पत्नी और उनसे उत्पन्न सन्तानों को कुछ अधिकार और दायित्व प्राप्त होते हैं।

बोगार्डस के अनुसार, "विवाह स्त्री और पुरुष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की संस्था है।"

मजूमदार एवं **मदान** लिखते हैं, "विवाह में कानूनी या धार्मिक आयोजन के रूप में उन सामाजिक स्वीकृतियों का समावेश होता है जो विषमलिंगियों को यौन-क्रिया और उससे सम्बन्धित सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों में सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान करती है।"

जॉनसन ने लिखा है, "विवाह के सम्बन्ध में अनिवार्य बात यह है कि यह एक स्थायी सम्बन्ध है। जिसमें एक पुरुष और एक स्त्री, समुदाय में अपनी प्रतिष्ठा को खोये बिना सन्तान उत्पन्न करने की सामाजिक स्वीकृति प्रदान करते हैं।"

हॉबल के अनुसार, "विवाह सामाजिक आदर्श-मानदण्डों (Social Norms) की वह समग्रता है जो विवाहित व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धों को, उनके रक्त-सम्बन्धियों, सन्तानों तथा समाज के साथ सम्बन्धों को परिभाषित और नियन्त्रित करती है।"

नोट्स

विवाह दो विषमलिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, धार्मिक अथवा कानूनी स्वीकृति है। स्त्री-पुरुषों एवं बच्चों को विभिन्न सामाजिक व आर्थिक क्रियाओं में सहगामी बनाना, सन्तानोत्पत्ति करना तथा उनका लालन-पालन एवं समाजीकरण करना विवाह के प्रमुख कार्य हैं।

विवाह के परिणामस्वरूप माता-पिता एवं बच्चों के बीच कई अधिकारों एवं दायित्वों का जन्म होता है।

12.2 विवाह की प्रमुख विशेषताएँ एवं महत्त्व (Main Characteristics and Significance of Marriage)

विवाह की उपर्युक्त परिभाषाओं से विवाह की निम्नलिखित विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं–

1. **विवाह एक मौलिक और सार्वभौमिक सामाजिक संस्था है** जो प्रत्येक देश, काल, समाज और संस्कृति में पायी जाती है।

2. **विवाह दो विषमलिंगियों का सम्बन्ध है।** विवाह के लिए दो विषमलिंगियों अर्थात् पुरुष और स्त्री का होना आवश्यक है। इतना अवश्य है कि कहीं एक पुरुष का एक या अधिक स्त्रियों के साथ और कहीं एक स्त्री का एक पुरुष या अधिक पुरुषों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होता है, परन्तु सामान्यतः आजकल एक-विवाह (Monogamy) की प्रथा का चलन ही पाया जाता है।

3. **विवाह को मान्यता उसी समय प्राप्त होती है जब उसे समाज की स्वीकृति मिल जाती है।** यह स्वीकृति प्रथा या कानून के द्वारा अथवा धार्मिक संस्कार के रूप में हो सकती है। सामाजिक स्वीकृति के अभाव में यौन सम्बन्धों को अनुचित एवं अनैतिक माना जाता है।

4. **विवाह संस्था के आधार पर लैंगिक या यौन सम्बन्धों को मान्यता प्राप्त होती है।** अन्य शब्दों में यह संस्था पति-पत्नी को एक-दूसरे के साथ यौन सम्बन्धों का अधिकार एवं आज्ञा प्रदान करती है।

5. **वेस्टरमार्क ने विवाह को एक सामाजिक संस्था के अतिरिक्त एक आर्थिक संस्था भी माना है।** इसका कारण यह है कि विवाह सम्बन्ध के आधार पर पति-पत्नी के सम्पत्तिक अधिकार भी निश्चित होते हैं।

6. विवाह संस्था की एक विशेषता यह है कि **यह यौन इच्छाओं की पूर्ति के साथ-साथ सन्तानोत्पत्ति एवं समाज की निरन्तरता को बनाये रखने की आवश्यकता की पूर्ति भी करती है।** यह संस्था व्यक्तित्व के विकास की जैविकीय, मनोवैज्ञानिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

7. **विवाह संस्था व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के निर्धारण में योग देती है।** विवाह की इस विशेषता का इस दृष्टि से काफी महत्त्व है कि विवाह सम्बन्ध के आधार पर उत्पन्न सन्तानों को ही समाज में वैधता या मान्यता प्राप्त होती है। अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तानों की सामाजिक स्थिति वैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तानों की तुलना में काफी नीची होती है, उनकी प्रतिष्ठा कम होती है।

8. **विवाह से सम्बन्धित पद्धतियाँ विभिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न होती हैं।** प्रत्येक समाज की विवाह-पद्धति उस समाज की प्रथाओं, मान्यताओं और संस्कृति पर निर्भर करती है और ये अलग-अलग समाजों में भिन्न-भिन्न होती हैं।

9. **विवाह सम्बन्ध एक स्थायी सम्बन्ध है।** विवाह के आधार पर पति-पत्नी के बीच स्थायी सम्बन्ध की स्थापना होती है। यौन इच्छाओं की पूर्ति, सन्तानोत्पत्ति, बालकों का पालन-पोषण तथा उनके समाजीकरण एवं व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से विवाह सम्बन्ध का स्थायी होना आवश्यक है। बिना स्थायी सम्बन्ध ही स्थापना के पारिवारिक जीवन की दृढ़ता खतरे में पड़ जाती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. विवाह के लिए दो ········ अर्थात् पुरुष और स्त्री का होना आवश्यक है।
2. विवाह के आधार पर पति-पत्नी के बीच ········ की स्थापना होती है।
3. विवाह संस्था व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के ········ में योग देती है।

12.3 विवाह के उद्देश्य (Aims of Marriage)

जब हम विवाह के उद्देश्यों पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि विवाह दो विषमलिंगियों को यौन सम्बन्ध स्थापित करने की सामाजिक या कानूनी स्वीकृति प्रदान करता है। विवाह ही परिवार की आधारशिला है और परिवार में ही बच्चों का समाजीकरण एवं पालन-पोषण होता है। समाज की निरन्तरता विवाह एवं परिवार से ही सम्भव है। यह नातेदारी का भी आधार है। विवाह के कारण कई नातेदारी सम्बन्ध पनपते हैं। विवाह आर्थिक हितों की रक्षा एवं भरण-पोषण के लिए भी आवश्यक है। विवाह संस्था व्यक्ति को शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है। **मरडॉक ने 250 समाजों का अध्ययन करने पर सभी समाजों में विवाह के तीन उद्देश्यों का प्रचलन पाया–1. यौन सन्तुष्टि, 2. आर्थिक सहयोग, 3. सन्तानों का समाजीकरण एवं लालन-पालन।** संक्षेप में विवाह के उद्देश्यों को हम इस प्रकार से प्रकट कर सकते हैं–

1. यौन इच्छाओं की पूर्ति एवं समाज में यौन क्रियाओं का नियमन करना।
2. परिवार का निर्माण करना एवं नातेदारी का विस्तार करना।
3. वैध सन्तानोत्पत्ति करना व समाज की निरन्तरता को बनाये रखना।
4. सन्तानों का लालन-पालन एवं समाजीकरण करना।
5. स्त्री-पुरुषों में आर्थिक सहयोग उत्पन्न करना।
6. मानसिक सन्तोष प्रदान करना।
7. माता-पिता एवं बच्चों में नवीन अधिकारों एवं दायित्वों को जन्म देना।
8. संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण करना।
9. धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्ति करना।
10. सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

स्पष्ट है कि विवाह केवल वैयक्तिक संतुष्टि का साधन मात्र ही नहीं है? वरन् सामजिक क्रिया-विधि भी है जिससे समाज की संरचना को सुदृढ़ता प्राप्त होती है।

मजूमदार और मदान के शब्दों में, "विवाह से वैयक्तिगत स्तर पर शारीरिक (यौन) और मनोवैज्ञानिक (संतान प्राप्ति) संतोष प्राप्त होता है, तो व्यापक सामूहिक स्तर पर इससे समूह और संस्कृति के अस्तित्व को बनाए रखने में सहायता मिलती है।"

टास्क विवाह के क्या-क्या उद्देश्य हैं? संक्षेप में वर्णन करो।

विवाह के रूप

विवाह के अनेक प्रकार होते हैं अगर हम विभिन्न समाजों में प्रचलित विवाह का अंतर्सांस्कृतिक अध्ययन करें तो हमारा साक्षात्कार ऐसे अनेक नियम-कायदों से होता है जो विवाह का स्वरूप तय करने के लिए चुनाव में प्राथमिकताएँ, अनुशंसाएँ और निषेध प्रदान करते हैं।

इससे पूर्व कि हम विवाह के विभिन्न रूपों पर चर्चा करें माता-पिता और बच्चों के बीच परस्पर यौन संबंधों पर आरोपित सार्वभौमिक वर्जना या निषेध का जिक्र समीचीन है। इसे निषिद्ध निकटाभिगमन (इंसेस्ट) कहा जाता है।

विवाह के कुछ वर्गीकरणों पर हम निम्नलिखित ढंग से विचार कर सकते हैं–

(क) जीवन साथियों की संख्या के आधार पर विवाह को दो मुख्य प्रकारों में विभक्त किया जाता है– एक विवाह और बहु विवाह।

नोट

विवाह में पति द्वारा एक पत्नी एवं पत्नी द्वारा एक पति से परिणय एक विवाह कहलाता है।

विवाह में एक से अधिक जीवन साथियों से परिणय का प्रचलन बहुविवाह कहलाता है। बहुविवाह दो तरह के हो सकते हैं: (*i*) बहुपत्नी विवाह (*ii*) बहुपति विवाह।

जब कोई पुरुष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करता है तो उसे बहुपत्नी विवाह कहते हैं। जब कोई व्यक्ति अनेक बहनों से शादी करता है तो यह भगिनी संघीय बहुपत्नी विवाह (सोरोरल पोलीगाइनी) कहलाता है।

जब कोई स्त्री एक समय में एक से अधिक पुरुषों से विवाह करती है तो उसे बहुपति विवाह (पोलीएन्ड्री) कहते हैं। बहुपति विवाह दो तरह से हो सकता है—भ्रातृय या 'एडेल्फिक' बहुपति विवाह और आभ्रातृय बहुपति विवाह और आभ्रातृय बहुपति विवाह। जब कोई स्त्री एक समय में अनेक भाइयों से विवाह करती है तो इसे भ्रातृय (फैटर्नल) बहुपति विवाह के नाम से जाना जाता है। महाभारत में द्रौपदी और पाण्डव भाइयों का विवाह इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। टोडा जनजाति में यह विवाह काफी प्रचलित है। जब किसी स्त्री के अनेक पति होते हैं जो अनिवार्यत: एक दूसरे के भाई नहीं होते हैं तो ऐसे विवाह को आभ्रातृय पति विवाह करते हैं।

इस संदर्भ में हम दो प्रकार के बहुविवाहों का जिक्र कर सकते हैं जिन्हें देवर-भाभी विवाह (लेविरेट) और जीजा-साली विवाह (सोरोरेट) कहते हैं।

अपने मृत भाई या दिवंगत भाई की निस्संतान विधवा पत्नी से किसी व्यक्ति का विवाह 'लेविरेट' कहलाता है। जिस किसी संदर्भ में पति की मृत्यु के बाद वास्तविक प्रकार के 'लेविरेट' का चलन है। वहाँ मृतक के भाइयों में से एक का यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि वह विधवा से विवाह करे। उनके सहवास से जो बच्चे पैदा होते हैं उन्हें मृत व्यक्ति की संततियों के रूप में मान्यता दी जाती है।

जहाँ वास्तविक सोरोरेट का चलन है, वहाँ बाँझ स्त्री का पति उसकी बहन से शादी करता है और कम से कम कुछ बच्चों को जो उनके सहवास से उत्पन्न होते हैं, नि:संतान पत्नी के बच्चों के रूप में गिना जाता है। सोरोरेट पद का इस्तेमाल प्रथागत दृष्टि से भी होता है जिसके द्वारा पत्नी की मृत्यु के बाद उसके सगे-संबंधी विधुर को मृतका की बहिन से विवाह करने की अनुमति देता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि जो बच्चे इस स्त्री से पैदा होते हैं वे उस मृत बहन के नहीं बल्कि जीवित स्त्री के माने जाते हैं।

'लेविरेट' और 'सोरोरेट' अंतरपारिवारिक दायित्वों की स्वीकृति पर बल डालते हैं और विवाह को सिर्फ दो व्यक्तियों के बीच नहीं बल्कि दो परिवारों के बीच बंधन के रूप में मान्यता देते हैं।

हम एक और प्रकार के बहुविवाह का जिक्र कर सकते हैं जिसे समूह विवाह (ग्रुप मैरेज) कहते हैं। जब दो या दो से अधिक दूल्हों का एक ही साथ दो या अधिक दूल्हनों से विवाह होता है तो इसे समूह विवाह कहा जाता है। यह बहुपत्नी विवाह और बहुपति विवाह का मिला-जुला रूप है जो ब्राजील के काइन गाँगू नामक जनजाति में और मार्क्वेसनों में भी यदा-कदा देखने में आता है।

(ख) जीवन-साथी के चुनाव के आधार पर वर्गीकरण: जब विवाह के लिए जीवन साथियों का चुनाव एक दूसरे के द्वारा किया जाता है तो इसे रोमांस पर आधारित विवाह या प्रेम-विवाह कहते हैं। जब इनका चुनाव अभिभावकों या संबंधियों या मित्रों द्वारा होता है तो इसे व्यवस्थित विवाह की संज्ञा दी जाती है।

जब विवाह सिर्फ उन्हीं लोगों के बीच अनुशंसित होता है जो एक ही समूह से जुड़े होते हैं तो उसे अतर्विवाह कहते हैं। इसमें समूह से बाहर विवाह निषिद्ध होता है। हम इस संदर्भ में जनजातीय अंतर्विवाह, जातीय अंतर्विवाह, वर्गाधारित अंतर्विवाह, प्रजातीय अंतर्विवाह आदि का उल्लेख कर सकते हैं। विचित्र, नई और अज्ञात चीजों के प्रति हम सबके मन में जो गहरा भय होता है उसके कारण लगभग सभी भारतीय जनजातियाँ अंतर्विवाह को मान्यता देती हैं।

कभी कभार किसी खास संबंधी से विवाह को प्राथमिकता दी जाती है या उसकी अनुशंसा की जाती है। अत: गोण्ड जन-जाति के लोगों के लिए अपने तृतीयक नातेदारों से विवाह करना जरूरी होता है। अगर कोई व्यक्ति अपने तयी इस प्रावधान की अवमानना करता है तो कमाने वाले पक्ष को भरपाई के रूप में उसे जुर्माना देना पड़ता है। गसन ने पाया कि गोण्डों में होने वाले 54% विवाह इसी कोटि के थे। खड़िया और उराँव जनजातियों में भी तृतीयक नातेदारों

से विवाह की प्रथा है। यही चीज खासी जनजाति के लोगों में भी देखने को मिलती है पर खासी पुरुष अपने पिता के मरने के बाद ही अपनी बुआ की शादी कर सकता है।

(ग) लेवी-स्ट्रास ने कहा कि प्राथमिकता और चयन पर आधारित विवाह का मुख्य उद्देश्य किसी जनजाति के अंदर एकात्मकता की भावना को मज़बूत बनाना है। अत: किसी व्यक्ति द्वारा अपनी माँ के भाई की पुत्री से विवाह उन्हीं संदर्भों में देखा जाता है जो प्रकृति से मातृस्थानीय हैं।

जब विवाह उन व्यक्तियों के बीच निषिद्ध होता है जो एक ही समूह से संबंधित होते हैं तो इसे बहिर्विवाह कहते हैं। हिन्दुओं में गोत्र और प्रवर के आधार पर बहिर्विवाह का प्रचलन है और इसी कारण ऐसे लोगों के बीच विवाह की अनुमति नहीं दी जाती है जो एक ही गोत्र या प्रवर से संबंधित होते हैं। इसके अलावा पिण्ड बहिर्विवाह का भी चलन है। हिन्दू समाज में एक पिण्ड के भीतर विवाह निषिद्ध है। पिण्ड का अर्थ सदृश पितृत्व होता है। मातृ पक्ष की पाँच पीढ़ियों तक और पितृ-पक्ष की सात पीढ़ियों तक लोग 'सपिण्ड' माने जाते हैं एवं उनके बीच विवाह नहीं हो सकता है। कुछ भारतीय जनजाति में ग्राम बहिर्विवाह का प्रचलन है। यह नियम बिहार में छोटानागपुर की मुण्डा और अन्य जनजातियों में प्रचलित हैं। नागालैंड में नागा जनजाति 'खेलों' में विभक्त होती हैं। खेल किसी खास स्थान के निवासियों को दिया गया नाम है और एक खेल के लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते हैं।

(घ) विवाहितों की प्रस्थिति के आधार पर वर्गीकरण: 'जो लोग उम्र' शिक्षा, आचरण, आर्थिक स्थिति, सामाजिक प्रस्थिति आदि की दृष्टि से शुद्धता दर्शाते हैं उनके बीच विवाह को समविवाह कहा जाता है। दूसरी और अगर विवाहित जोड़े इन मानदण्डों के संदर्भ में अत्यधिक भेद जताते हैं तो इस तरह के विवाह को विषम विवाह कहा जाता है।

असमान सामाजिक प्रस्थिति वाले पुरुष और स्त्री के बीच विवाह के आधार पर भी वर्गीकरण होता है। जब कोई पुरुष तुलनात्मक दृष्टिकोण से निम्नतर सामाजिक स्तृत से संबंधित स्त्री से विवाह करता है तो इसे उर्ध्व विवाह या अनुलोम विवाह कहा जाता है। इस विवाह के कारण पुरुष को आमतौर पर लिहाज से अपनी सामाजिक मर्यादा में किसी तरह की कोई क्षति नहीं झेलनी पड़ती है कि उसने निम्नतर सामाजिक प्रस्थिति वाली स्त्री से शादी कर ली है। जब उच्चत्तर सामाजिक स्तृत वाली स्त्री तुलनात्मक रूप से निम्नतर स्तृत वाले पुरुष से विवाह करती है तो उसे अधोविवाह या प्रतिलोम विवाह कहा जाता है। इस तरह के विवाह के फलस्वरूप स्त्री को सामाजिक घृणा, उपेक्षा और यहाँ तक कि कुछ समाजों में निष्कासन की पीड़ा भोगनी पड़ती है। पुरुष और स्त्री के संदर्भ में इस तरह का भेदभाव भरा मूल्यांकन सभी समाजों में नज़र आता है। अत: बाशम कहते हैं: "यह भेद अन्य समाजों में भी दिखाई देता है। उदाहरण के लिए विक्टोरिया कालीन इंग्लैण्ड में कुलीन वर्ग का कोई व्यक्ति अगर किसी अभिनेत्री से विवाह करता था तो उसे शायद ही कभी इस तरह की घृणा और उपेक्षा का सामना करना पड़ता था जिसका सामना किसी सामान्य व्यक्ति से विवाह करने के बाद भद्र परिवार की स्त्री को करना पड़ता था।"

(ङ) बंद विवाह व्यवस्था और खुली विवाह व्यवस्था के बीच भेद: जिन समाजों में यह प्रावधान होता है कि वर वधू का चुनाव लोगों की एक या अधिक मनोनीत कोटियों में से ही हो उनमें बंद या निर्मुक्त विवाह व्यवस्था प्रचलित होती है। जिन समाजों में इस तरह की अनुशंसाओं के लिए कोई जगह नहीं होती उनमें खुली विवाह व्यवस्था का चलन होता है। खुली या मुक्त विवाह व्यवस्था में लोगों का एकमात्र समूह जो विवाह के योग्य नहीं माना जाता है वैसे लोगों का समूह होता है जो निषिद्ध निकटाभिगमन के दायरे में आते हैं।

उपर्युक्त ढंग से वर्गीकृत विवाह-रूपों के अलावा, अन्य अनेक प्रकार के विवाहों का भी अस्तित्व होता है।

उदाहरणस्वरूप सहचारिता विवाह का उल्लेख किया जा सकता है "जो दो लोगों के बीच इस आपसी तालमेल के आधार पर विवाह है कि जब तक बच्चे पैदा नहीं होते हैं तब तक सिर्फ पारस्परिक सहमति के आधार पर वैवाहिक संबंध का विच्छेद हो सकता है।"

उपपत्नीत्व का जिक्र भी हम कर सकते हैं जो बिना विवाह के पति व पत्नी के रूप में एक साथ रहने की अवस्था है।

नोट

प्रायोगिक विवाह की व्यवस्था के अंतर्गत एक स्त्री व एक पुरुष को अस्थायी तौर पर विवाहित जीवन जीने की अनुमति दी जा सकती है ताकि वे यह समझ सकें कि स्थायी तौर पर उनके लिए एक साथ रह पाना संभव है या नहीं है।

हिन्दुओं तथा मुसलमानों में विवाह

हिन्दुओं में विवाह एक पवित्र धार्मिक कार्य होता है। हर हिन्दू के लिए विवाह आवश्यक होता है क्योंकि इसके बगैर हिन्दू पुरुष ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं कर सकता है। प्राचीन धर्मशास्त्रीय विद्वानों ने जो चार जीवन चरण (आश्रम) नियत किए थे उनमें से वह दूसरा है। विवाह की आवश्यकता एक-दूसरे कारण से भी होती है। जन्म, मृत्य और पुनर्जन्म के बंधन के छुटकारा पाने के लिए ही संतान और खासकर पुत्र की प्राप्ति आवश्यक होती है। यह अवधारणा हिन्दुओं में प्रचलित आत्मा की अनश्वरता और पुनर्जन्म के विचार पर आधारित है।

हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने विवाह को संस्कारों में से एक माना है। दूसरे शब्दों में यह उन पावनकारी अनुष्ठानों में से एक है जो हर हिन्दू के लिए जरूरी है। इसके अंतर्गत जो विधि-विधान होते हैं उनका उद्देश्य किसी व्यक्ति को विभिन्न सीमाओं, त्रुटियों और कमजोरियों से मुक्त कराना है जो मानवकाया के रक्त-माँस-मज्जा में फैले होते हैं। कोई व्यक्ति इन सीमाओं या त्रुटियों से पलायन नहीं कर सकता। जहाँ तब सम्भव हो हम इन खामियों से ऊपर उठने की चेष्टा कर सकते हैं या ऐसा हमें ही करना चाहिए। संस्कारों या इन विधि-विधानों का निष्पादन इन उद्देश्य की पूर्ति करता है। हिन्दू विधि वेत्ता मनु ने संस्कार के उद्देश्य को इन शब्दों में प्रकट किया है: ब्रह्मयम् क्रियनते तनु:। तात्पर्य यह कि हर व्यक्ति को अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा को इस तरह शुद्ध रखना चाहिए कि अनुराग और अलगाव, सुखभोग और त्याग, आत्माभिव्यक्ति और आत्मोत्सर्ग किसी व्यक्ति के जीवन में संतुलित रूप से घुल-मिल जाएँ और जीवनमरण के बंधन से स्वयं को स्वतंत्र करने में उसे सक्षम बना दें। विवाह एक संस्कार है क्योंकि नवविवाहित जोड़े को वैवाहिक बंधन का प्रयोग करने का परामर्श दिया जाता है ताकि देह और काम-वासना के बंधन तोड़े जा सकें।

अत: यह आश्चर्यजनक नहीं है कि विवाह की हिन्दू-अवधारणा के पीछे एक धार्मिक अनुशक्ति (सैंक्शन) की पृष्ठभूमि होती है। विवाह संस्कार के अंतर्गत अनेक अनुष्ठानों और यज्ञ-याजनों का निष्पादन होता है। 'कन्यादान' या वधू के पिता द्वारा वर को अपने पुत्री का दान, आहुति की अग्नि को दैवी साक्षी और संस्कार को पवित्र करने वाली अग्नि के रूप में प्रज्वलित करना (विवान-होम), वर द्वारा वधू के हाथों को थामना (पाणिग्रहण) और आहुति की अग्नि के चारों ओर वर और वधू द्वारा सात फेरे लगाना, वर का वधू से आगे-आगे चलना (सप्तपदी) आदि विवाह से संबंधित महत्त्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान हैं। इन सबकी समाप्ति के बाद दुल्हा दुल्हन को लेकर चला जाता है। संस्कृत शब्द 'विवाह' का अर्थ है लेकर चले जाना।

विवाह अपनी ही जाति में (वर्ण) में होना अनिवार्य है। पर व्यवहार में यह अपनी उपजाति के भीतर होता है। अपने लिए वर या वधू खोजने के क्रम में हर किसी को अनिवार्य रूप से मातृपक्ष की पाँच पीढ़ियों (सपिण्ड) की सीमा से बाहर और पितृपक्ष की सात पीढ़ियों (गौत्र और प्रवर से इतर) से बाहर जाना होगा।

हिन्दू विधि-ग्रन्थों में अनेक प्रकार के विवाहों की चर्चा है। जब कोई पिता अच्छे चरित्र और विद्या वाले किसी व्यक्ति को अपनी पुत्री सौंप देता है तो इसे ब्रह्म विवाह कहते हैं। जिस व्यक्ति को पुत्री सौंपी जाती है वह अगर पुजारी या पुरोहित है तो इस तरह के विवाह को दैव कहते हैं। जब कोई संभावित जमाता लड़की के पिता से उपहारस्वरूप लड़की हासिल करने से पूर्व एक साँड या एक गाय सौगात के रूप में देता है तो इसे आर्ष विवाह कहते हैं। पर इस तरह का विवाह खरीदारी या क्रय द्वारा होने वाले विवाह से भिन्न है जिसे असुर विवाह कहते हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के संदर्भ असुर विवाह की निन्दा की गई है पर मनु ने वैश्यों और शूद्रों के संदर्भ में इसे अच्छा माना है। जब कोई पिता किसी व्यक्ति का अच्छी तरह से सम्मान करने के बाद उसे उपहार रूप में अपनी पुत्री दे देता है और विवाहित जोड़े को साथ-साथ धर्म का निर्वाह करने का उपदेश देता है तो इसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं। पारस्परिक प्रेम और अनुबंध के आधार पर होने वाले विवाह को गंधर्व विवाह कहते हैं। अपहरण द्वारा विवाह राक्षस

नोट

विवाह कहलाता है और इसे कानूनी तौर पर वैध माना जाता है। पर अगर कोई लड़की सोई हुई हो, नशे में हो या मानसिक रूप से असंतुलित हो तो उसके साथ सहवास और विवाह को पैशाच विवाह कहते हैं। सभ्य-जीवन के तौर-तरीकों के उल्लंघन के कारण इसकी तीव्र भर्त्सना की गई है।

यह ध्यातव्य है कि हिन्दू विधि वेत्ताओं ने विभिन्न प्रकार के विवाहों को मान्यता देकर अनेक जटिल सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने की चेष्टा की है। अतीत में उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत पर अनेक आक्रमण हुए हैं। देश के भीतर भी गैर-आर्यों की एक बहुत बड़ी संख्या दृष्टिगोचर हुई है। जिनके साथ आर्यों का संपर्क रहा है। एक के बाद एक आप्रवासी और स्थानीय गैर आर्यों के समूहों के कारण अनैतिक यौन-संबंध के मामले भी सामने आए और परिणामस्वरूप अविवाहित स्त्रियों के बच्चे हो गए। बड़ी तादाद में अवैध बच्चों की उपस्थिति के कारण जो समस्याएँ उठ खड़ी हुई उनका समाधान अपहरण, पलायन आदि को विवाह के कुछ रूपों के रूप में मान्यता देने से ही संभव हो सका यद्यपि इस तरह के विवाहों को वांछित नहीं माना जाता था। इस पक्ष पर टिप्पणी करते हुए ए.एल. बाशम कहते हैं: "बड़े आश्चर्यजनक ढंग से संबंधों के एक व्यापक दायरे को मान्यता दी गई ताकि अपने प्रेमी द्वारा शील-भंग की शिकार या बाहरी उठाईगीरों द्वारा जबरन ले जाई गई लड़की को पत्नी का वैधानिक अधिकार मिल सके और उसके बच्चे को नाजायज होने का दुख नहीं भोगना पड़े"।

क्या आप जानते हैं विवाह संस्कार के अंतर्गत अनेक अनुष्ठानों और यज्ञ-याजनों का निष्पादन होता है।

मुस्लिमों में विवाह

मुस्लिम विवाह धार्मिक कृत्य नहीं है बल्कि एक धर्म निरपेक्ष बंधन है। साहचर्य की निषिद्ध सीमाएं काफी कम हैं। अत: चचेरे भाई-बहनों और प्राथमिक समान्तर नातेदारों में भी विवाह हो सकता है। कुछ मुसलमान पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह कर सकता है। शर्त केवल यह है कि दो बहनें या बुआ और भतीजी एक ही व्यक्ति की पत्नी नहीं हो सकती और एक समय में कोई व्यक्ति चार से अधिक पत्नियाँ नहीं रख सकता। मुसलमान अपनी दिवंगत पत्नी की बहन से या अपने बच्चों के सास-ससुर से शादी कर सकते हैं। मुसलमान गैर-मुस्लिम स्त्री से भी शादी कर सकता है अगर वह यहूदी या ईसाई जैसे किसी गैर-मूर्तिपूजक धार्मिक संप्रदाय से संबंधित है। पर मुसलमान स्त्री को यही अधिकार समान रूप से प्राप्त नहीं हैं।

एक कानूनी-दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर के द्वारा विवाह को सुदृढ़ अनुबंध का रूप दिया जाता है जिसे तोड़ा भी जा सकता है पर तलाक पति के विशेषाधिकार के अंतर्गत आने वाली चीज है। वह बिना किसी कारण के तलाक दे सकता है। कम से कम दो गवाहों की उपस्थिति में अगर सिर्फ तीन बार तलाक शब्द कहा जाए तो पति और पत्नी के बीच संबंध-विच्छेद हो सकता है। पर इसके बाद पति को भरपाई के रूप में कुछ नियत राशि पत्नी को देनी पड़ती है। यह एक अनुबंध के तहत होता है जिसके द्वारा मृत्यु और तलाक की स्थित में पत्नी क्षति पूर्ति के रूप में पति की संपत्ति का एक खास हिस्सा पाने की हकदार होती है। पत्नी विवाह के बंधन से मुक्त हो सकती है अगर इस दृष्टि से उसने पति की सहमति हासिल कर ली हो। यह सहमति अनिवार्य है अगर पति और पत्नी संबंध-विच्छेद आपसी सहमति के आधार पर होता है तो इसे 'मुबारत' कहा जाता है। कुछ खास परिस्थितियों में इस्लाम पत्नी को एक पक्षीय कदम उठाने की अनुमति देता है। विधवा स्त्री का पुनर्विवाह भारतीय मुसलमानों में आमतौर पर प्रचलित है।

12.4 हिन्दू विवाह के स्वरूप (Forms of Hindu Marriage)

विवाह के स्वरूप से हमारा तात्पर्य विवाह बन्धन में बंधने की विभिन्न विधियों से है। मनु ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है, किन्तु **वशिष्ठ** ने केवल छ: प्रकार के विवाहों को ही बताया है। मनु का कहना है कि प्रथम चार प्रकार के विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्रजापत्य श्रेष्ठ एवं धर्मानुसार हैं जबकि शेष चार असुर, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच निकृष्ट कोटि के हैं। प्रथम चार प्रकार के विवाहों से उत्पन्न यशस्वी, शीलवान, सम्पत्तिवान और

नोट

अध्ययनशील होती है जबकि शेष चार प्रकार के विवाहों से उत्पन्न सन्तान दुराचारी, धर्म विरोधी एवं मिथ्यावादी होती है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि हिन्दू शास्त्रकार स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान को बनाये रखने के प्रति बड़े सजग थे इसलिए ही उन्होंने पिशाच एवं राक्षस विवाहों को भी सामाजिक स्वीकृति प्रदान की है। हिन्दू विवाह के प्रमुख आठ स्वरूप निम्न प्रकार हैं–

1. **ब्राह्म विवाह** (Brahma Marriage)–यह विवाह सभी प्रकार के विवाह में श्रेष्ठ माना गया है। मनु ने ब्राह्म विवाह को परिभाषित करते हुए लिखा है, "वेदों के ज्ञाता शीलवान वर को स्वयं बुलाकर, वस्त्र एवं आभूषण आदि से सुसज्जित कर पूजा एवं धार्मिक विधि से कन्या दान कराना ही ब्राह्म विवाह है।" **गौतम** ने धर्मसूत्र में ब्राह्म विवाह का वर्णन करते हुए लिखा है, "वेदों का विद्वान अच्छे आचरण वाला, बन्धु-बान्धवों से सम्पन्न, शीलवान वर को वस्त्र के जोड़े एवं अलंकारों से सुसज्जित कन्या दान देना की ब्राह्म विवाह है।" **याज्ञवल्क्य** लिखते हैं, "ब्राह्म विवाह उसे कहते हैं जिसमें वर को बुलाकर शक्ति के अनुसार अलंकरों से अलंकृत कर कन्यादान दिया जाता है। ऐसे विवाह से उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करने वाला होता है।"

2. **दैव विवाह** (Daiva Marriage)–गौतम एवं याज्ञवल्क्य ने दैव विवाह के लक्षण का उल्लेख इस प्रकार किया है–वेदों में दक्षिणा देने के समय पर यज्ञ कराने वाले पुरोहित को अलंकारों से सुसज्जित कन्या दान ही 'दैव' विवाह है। मनु लिखते हैं, "सद्कर्म में लगे पुरोहित को जब वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित कन्या दी जाती है तो इसे दैव विवाह कहते हैं।" प्राचीन समय में यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों का अधिक महत्त्व था। जो ऋषि अथवा पुरोहित इन पवित्र धार्मिक कार्यों को सम्पन्न कराता यजमान उससे अपनी कन्या का विवाह कर देता था। मनु कहते हैं कि इस प्रकार के विवाह से सम्पन्न सन्तान सात पीढ़ी ऊपर की एवं सात पीढ़ी नीचे के व्यक्तियों का उद्धार करा देती है। कुछ स्मृतिकारों ने इस प्रकार के विवाह की आलोचना की है क्योंकि कई बार वर एवं वधू की आयु में बहुत अन्तर होता था। वर्तमान समय में इस प्रकार के विवाह नहीं पाये जाते। **अल्टेकर** लिखते हैं कि "दैव विवाह वैदिक यज्ञों के साथ-साथ लुप्त हो गये।"

3. **आर्ष विवाह** (Arsha Marriage)–इस प्रकार के विवाह में विवाह का इच्छुक वर कन्या के पिता को एक गाय और एक बैल अथवा इनके दो जोड़े प्रदान करके विवाह करता है। गौतम ने धर्मसूत्र में लिखा है, "आर्ष विवाह में वह कन्या के पिता को एक गाय और एक बैल प्रदान करता है।" याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि दो गाय लेकर जब कन्यादान किया जाय तब उसे आर्ष विवाह कहते हैं। मनु लिखते हैं, "गाय और बैल का एक युग्म वर के द्वारा धर्म कार्य हेतु कन्या के लिए देकर विधिवत् कन्यादान करना आर्ष विवाह कहा जाता है। आर्ष का सम्बन्ध ऋषि शब्द से है। जब कोई ऋषि किसी कन्या के पिता को गाय और बैल भेंट के रूप में देता है तो यह समझ लिया जाता था कि अब उसने विवाह करने का निश्चय कर लिया है। कई आचार्यों ने गाय व बैल भेंट करने को कन्या मूल्य माना है, किन्तु यह सही नहीं है, गाय व बैल भेंट करना भारत जैसे देश में पशुधन के महत्त्व को प्रकट करता है। बैल को धर्म का एवं गाय को पृथ्वी का प्रतीक माना गया है जो विवाह की साक्षी के रूप में दिये जाते थे। कन्या के पिता को दिया जाने वाला जोड़ा पुनः वर को लौटा दिया जाता था। इन सभी तथ्यों के आधार पर स्पष्ट है कि आर्ष विवाह में कन्या मूल्य जैसी कोई बात नहीं है। वर्तमान में इस प्रकार के विवाह प्रचलित नहीं हैं।"

4. **प्रजापत्य विवाह** (Prajapatya Marriage)–प्रजापत्य विवाह भी ब्राह्म विवाह के समान होता है। इसमें लड़की का पिता आदेश देते हुए कहता है "तुम दोनों एक साथ रहकर आजीवन धर्म का आचरण करो।" याज्ञवल्क्य कहते हैं कि इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तान अपने वंश की तरह पीढ़ियों को पवित्र करने वाली होती है। वशिष्ठ और आपस्तम्ब ने प्रजापत्य विवाह का कहीं उल्लेख नहीं किया है। डा. अल्टेकर का मत है कि विवाह के आठ प्रकार की संख्या को पूर्ण करने हेतु ही इस पद्धति को पृथक् रूप दे दिया गया।

5. **असुर विवाह** (Asur Marriage)–मनु लिखते हैं, "कन्या के परिवार वालों एवं कन्या को अपनी शक्ति के अनुसार धन देकर अपनी इच्छा से कन्या को ग्रहण करना असुर विवाह कहा जाता है।" याज्ञवल्क्य एवं गौतम का मत है कि अधिक धन देकर कन्या को ग्रहण करना असुर विवाह कहलाता है। कन्या मूल्य देकर सम्पन्न किये जाने वाले सभी विवाह असुर विवाह की श्रेणी में आते हैं। कन्या मूल्य देना कन्या का सम्मान करना है साथ ही कन्या

के परिवार की उसके चले जाने की क्षतिपूर्ति भी है। कन्या मूल्य की प्रथा विशेषत: निम्न जातियों में प्रचलित है, उच्च जातियाँ इसे घृणा की दृष्टि से देखती हैं। स्मृतिकारों ने तो कन्या मूल्य देकर प्राप्त की गयी स्त्री को 'पत्नी' कहने से भी इन्कार किया है। इस प्रकार के दामाद के लिए 'विजामाता' शब्द का प्रयोग किया गया है। कैकेयी, गन्धारी और माद्री के विवाहों में उनके माता-पिता की कन्या मूल्य के रूप में बहुत अधिक धनराशि दिये जाने का उल्लेख मिलता है।

6. **गान्धर्व विवाह** (Gandharva Marriage)—मनु कहते हैं, "कन्या और वर की इच्छा से पारस्परिक स्नेह द्वारा काम और मैथुन युक्त भावों से जो विवाह किया जाता है, उसे गान्धर्व विवाह कहते हैं।" याज्ञवल्क्य पारस्परिक स्नेह द्वारा होने वाले विवाह को गान्धर्व विवाह कहते हैं। गौतम कहते हैं, "इच्छा रखती हुई कन्या के साथ अपनी इच्छा से सम्बन्ध स्थापित करना गान्धर्व विवाह कहलाता है।" प्राचीन समय में गान्धर्व नामक जाति द्वारा इस प्रकार के विवाह किये जाने के कारण ही ऐसे विवाहों का नाम गान्धर्व विवाह रखा गया है। वर्तमान में हम इसे प्रेम-विवाह के नाम से जानते हैं जिसमें वर एवं वधु एक-दूसरे से प्रेम करने के कारण विवाह करते हैं। इस प्रकार के विवाह में धार्मिक क्रियाएँ सम्बन्ध स्थापित करने के बाद की जाती हैं। कुछ स्मृतिकारों ने इस प्रकार के विवाह को स्वीकृत किया है तो कुछ ने अस्वीकृत। बौधायन धर्मसूत्र में इसकी प्रशंसा की गयी है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में इसे एक आदर्श विवाह माना है। दुष्यन्त का शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह ही हुआ था।

7. **राक्षस विवाह** (Rakshasa Marriage)—मनु कहते हैं, "मारकर, अंग-छेदन करके, घर को तोड़कर, हल्ला करती हुई, रोती हुई कन्या को बलात् अपहरण करके लाना 'राक्षस' विवाह कहा जाता है। याज्ञवल्क्य लिखते हैं, 'राक्षसो युद्ध हरणात्' अर्थात् युद्ध में कन्या का अपहरण करके उसके साथ विवाह करना ही राक्षस विवाह है। इस प्रकार के विवाह उस समय अधिक होते थे जब युद्धों का महत्त्व था और स्त्री को युद्ध का पुरस्कार माना जाता था। महाभारत काल में इस प्रकार के विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। भीष्म ने काशी के राजा को पराजित किया और उसकी लड़की अम्बा को अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए उठा लाया। श्रीकृष्ण का रुक्मणी एवं अर्जुन का सुभद्रा के साथ भी इसी प्रकार का विवाह हुआ था। राक्षस विवाह में वर एवं वधु पक्ष के बीच परस्पर मारपीट एवं लड़ाई-झगड़ा होता है। इस प्रकार के विवाह क्षत्रियों में अधिक होने के कारण इसे 'क्षात्र-विवाह' भी कहा जाता है। आजकाल इस प्रकार के विवाह अपवाद के रूप में ही देखने को मिलते हैं।

8. **पैशाच विवाह** (Paishacha Marriage)—मनु कहते हैं, "सोयी हुई उन्मत्त, घबराई हुई, मदिरापान की हुई अथवा राह में जाती हुई लड़की के साथ बलपूर्वक कुकृत्य करने के बाद उससे विवाह करना पैशाच विवाह है। इस प्रकार के विवाह को सबसे निकृष्ट कोटि का माना गया है। वशिष्ठ एवं आपस्तम्ब ने इस प्रकार के विवाह को मान्यता नहीं दी है, किन्तु इस प्रकार के विवाह को लड़की का दोष न होने के कारण कौमार्य भंग हो जाने के बाद उसे सामाजिक बहिष्कार से बचाने एवं उसका सामाजिक सम्मान बनाये रखने के लिए ही स्वीकृति प्रदान की गयी है।

'सत्यार्थ प्रकाश' में 'ब्राह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ, प्रजापत्य को मध्यम एवं आर्ष, असुर तथा गान्धर्व को निम्न कोटि का बताया गया है। राक्षस विवाह को तो अधम तथा पैशाच विवाह को महाभ्रष्ट माना गया है। दैव, आर्ष, प्रजापत्य एवं राक्षस विवाह पूर्णत: समाप्त हो चुके हैं। डॉ. मजूमदार कहते हैं, "हिन्दू समाज अब केवल दो स्वरूपों को मान्यता देता है—ब्राह्म तथा असुर, उच्च जातियों में पहले प्रकार का और निम्न जातियों में दूसरे प्रकार का विवाह प्रचलित है। यद्यपि उच्च जातियों में असुर प्रथा पूर्णत: नष्ट नहीं हुई है।" वर्तमान समय में पढ़े-लिखें लोगों में गान्धर्व विवाह जिसे हम प्रेम-विवाह कहते हैं, का भी प्रचलन पाया जाता है।

क्या आप जानते हैं वर्तमान समय में हिन्दुओं में ब्राह्म, असुर, गन्धर्व एवं कहीं-कहीं पैशाच विवाह प्रचलित हैं।

नोट

12.5 सारांश (Summary)

- विवाह का शाब्दिक अर्थ है, 'वधू को वर के घर ले जाना।'
- विवाह स्त्री-पुरुष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की संस्था है।
- मरडॉक के अनुसार सभी समाजों में विवाह के तीन उद्देश्य हैं–यौन संतुष्टि, आर्थिक सहयोग, संतानों का समाजीकरण एवं लालन-पालन।
- हिन्दू धर्म में विवाह को एक संस्कार माना गया है।
- हिन्दू विवाह के प्रमुख आठ स्वरूप हैं–ब्राह्म विवाह, दैव विवाह, आर्ष विवाह, प्रजापत्य विवाह, असुर विवाह, गांधर्व विवाह, राक्षस विवाह, पैशाच विवाह।
- मुस्लिम विवाह धार्मिक कृत्य नहीं बल्कि धर्मनिरपेक्ष बंधन है। मुस्लिम गैर-मुस्लिम लड़की से भी शादी कर सकता है यदि वह यहूदी, ईसाई या गैर-मूर्तिपूजक धार्मिक संप्रदाय से हो। किंतु ये अधिकार मुस्लिम स्त्री को प्राप्त नहीं है।

12.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **लेविरेट (Levirate)**–देवर-भाभी विवाह।
2. **सोरोरेट (Sororate)**–जीजा-साली विवाह।

12.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विवाह का अर्थ तथा उद्देश्य क्या है?
2. विवाह की विशेषता अथवा महत्त्व क्या है?
3. विवाह के प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
4. हिंदू विवाह के स्वरूपों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. विषमलिंगियों 2. स्थायी संबंध 3. निर्धारण।

12.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार–के.एम. कपाड़िया।
2. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ–गुप्ता एवं शर्मा।

नोट

इकाई–13: एक विवाह और बहु-विवाह (Monogamy and Polygamy)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 विवाह के प्रकार (स्वरूप) (Types of Marriage)
13.2 सारांश (Summary)
13.3 शब्दकोश (Keywords)
13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विवाह के स्वरूप या प्रकारों की जानकारी।
- एक विवाह तथा बहुविवाह के अर्थ को समझना।
- एक विवाह तथा बहुविवाह के कारणों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

मानव में यौन इच्छाओं की पूर्ति का आधार अंशतः दैहिक, अंशतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक है। यौन इच्छाओं की सन्तुष्टि ने ही विवाह, परिवार तथा नातेदारी को जन्म दिया है। परिवार के बाहर भी यौन सन्तुष्टि सम्भव है, किन्तु समाज ऐसे सम्बन्धों को अनुचित मानता है। कभी-कभी कुछ समाजों में परिवार के बाहर यौन सम्बन्धों को संस्थात्मक रूप में स्वीकार किया जाता है, किन्तु वह भी एक निश्चित सीमा तक ही। यौन इच्छाओं की पूर्ति स्वस्थ जीवन एवं सामान्य रूप से जीवित रहने के लिए भी आवश्यक मानी गयी। इसके अभाव में कई मनोविकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। यौन इच्छा की पूर्ति किस प्रकार की जाए यह समाज और संस्कृति द्वारा निश्चित होता है। विवाह का उद्देश्य यौन सन्तुष्टि ही नहीं होता है, वरन् कभी-कभी तो यह केवल सामाजिक-सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए

ही किया जाता है। उदाहरण के लिए, नागाओं में एक पुत्र अपनी सगी माँ को छोड़कर पिता की अन्य विधवा स्त्रियों से विवाह कर लेता है। इसका कारण यौन सन्तुष्टि नहीं, वरन् स्त्रियों को मिलने वाली सम्पत्ति में उत्तराधिकार को प्राप्त करना है।

13.1 विवाह के प्रकार (स्वरूप) (Types of Marriage)

मानव समाज के विकास के साथ-साथ विवाह के विभिन्न प्रकार अस्तित्व में आये हैं। **मोर्गन** (Morgan) एवं उद्‌विकासवादियों की मान्यता है कि सभ्यता के अति प्राचीन काल में विवाह जैसी संस्था नहीं थी, उस समय समाज में कामाचार (Sex Promiscuity) का प्रचलन था। धीरे-धीरे समूह विवाह प्रारम्भ हुए और विभिन्न स्तरों से गुजरने के बाद एक-विवाह प्रथा अस्तित्व में आयी। पति-पत्नी की संख्या के आधार पर भारत में पाये जाने वाले विवाहों के प्रमुख प्रकारों को हम निम्नांकित प्रकार से रेखांकित कर सकते हैं–

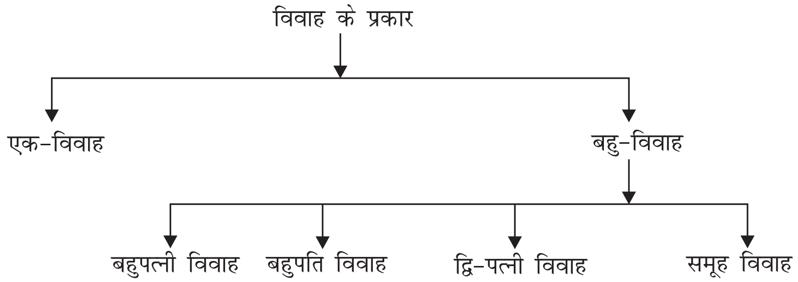

1. एक-विवाह (Monogamy)

श्री बुकेनोविक के अनुसार उस विवाह को एक-विवाह कहना चाहिए जिसमें न केवल एक पुरुष की एक पत्नी या एक स्त्री का एक ही पति हो बल्कि दोनों में से किसी की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा पक्ष अन्य विवाह न करे। एक विवाह में एक समय में एक पुरुष एक ही स्त्री से विवाह करता है। इसके भी कई रूप पाये जाते हैं। एक रूप वह है जिसमें एक पुरुष का एक स्त्री से विवाह होता है और किसी एक पक्ष की मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा पक्ष विवाह नहीं करता। दूसरा रूप वह है जिसमें एक पुरुष एक स्त्री से विवाह करता है, किन्तु रखैल के रूप में कई स्त्रियाँ रखता है। तीसरा रूप वह है जिसमें तलाक या मृत्यु हो जाने पर दूसरा विवाह कर लिया जाता है। एक-विवाह और बहु-विवाह का सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर समाज से है अर्थात् कोई व्यक्ति नहीं, वरन् समाज ही एक-विवाही या बहु-विवाही होता है।

नोट्स लूसी मेयर के अनुसार–"एक-विवाही और बहु-विवाही शब्द विवाह या समाज के लिए प्रयुक्त होते हैं, व्यक्तियों के लिए नहीं। निष्ठाहीन पति या कामाचारी व्यक्ति को बहु-विवाही कहना भाषा के साथ खिलवाड़ करना है, यद्यपि कुछ लोग ऐसा करते हैं।"

हिन्दू समाज में एक-विवाह को आदर्श माना गया है। कई वैदिक देवता भी एक-विवाही थे। दम्पति शब्द का प्रयोग भी घर के दो संयुक्त स्वामी पति-पत्नी के लिए ही हुआ है। भारतीय धर्मशास्त्रों में भी पति से पत्नीव्रत धर्म एवं पत्नी से पतिव्रत धर्म का पालन की अपेक्षा की गयी है। हिन्दू विवाह का एक उद्देश्य धार्मिक कार्यों की पूर्ति करना भी है जिसे पति व पत्नी को साथ निभाना चाहिए। पुत्र-प्राप्ति भी धार्मिक कार्यों के निर्वाह के लिए एक आवश्यक उद्देश्य माना गया है।

वर्तमान में एक-विवाह को विवाह का सर्वश्रेष्ठ रूप समझा जाता है। **वेस्टरमार्क** ने एक-विवाह को ही विवाह का आदि स्वरूप माना है। **मैलिनोवस्की** की भी मान्यता है कि "एक-विवाह ही विवाह का सच्चा स्वरूप है, रहा था

और रहेगा।" वर्तमान में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के द्वारा एक-विवाह को आवश्यक कर दिया गया है। शिक्षा एवं सभ्यता के विकास के साथ-साथ एक-विवाह का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है।

1. एक-विवाह के कारण (Causes of Monogamy)

विश्व में एक-विवाह के प्रचलन के कई कारण हैं, उनमें से प्रमुख कारण इस प्रकार हैं–

1. विश्व में स्त्रियों व पुरुषों का अनुपात लगभग बराबर है। यदि एक-विवाह के स्थान पर बहुपति अथवा बहुपत्नी विवाह प्रथा का पालन किया जाता है तो इसका अर्थ होगा कुछ लोगों को विवाह से वंचित करना।
2. एकाधिक पति अथवा पत्नी होने पर परिवार में अनुकूलन की समस्या पैदा होती है तथा मानसिक तनावों में वृद्धि होती है। सामाजिक संगठन की स्थिरता के लिए पारिवारिक संघर्षों एवं तनावों से बचना आवश्यक है।
3. कई समाजों में कन्या-मूल्य की प्रथा है। एकाधिक विवाह करने पर कन्या-मूल्य जुटाना बहुत कठिन होता है। अत: एक-विवाह प्रथा का ही पालन किया जाता है।
4. पारिवारिक सुख-शान्ति को बनाये रखने के लिए तथा बहुपत्नी विवाह के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए एक-विवाह ही सर्वोत्तम विवाह माना जाता है।

उन समाजों में भी जहां बहुपति अथवा बहुपत्नी विवाह प्रचलित हैं, सामान्यत: तो एक-विवाह ही अधिक पाया जाता है क्योंकि एकाधिक जीवन-साथी का खर्च उठाना कठिन होता है। एक-विवाह प्रथा के लाभ एवं दोष निम्नांकित हैं–

एक-विवाह के लाभ (Merits of Monogamy)

(1) एक-विवाह से निर्मित परिवार अपेक्षतया अधिक स्थायी होते हैं। (2) ऐसे विवाहों से निर्मित परिवारों से स्त्री की प्रतिष्ठा ऊंची होती है। (3) एक-विवाही परिवारों में बच्चों का लालन-पालन, समाजीकरण एवं शिक्षा का कार्य उचित प्रकार से सम्पन्न होता है। (4) एक-विवाही परिवारों में संघर्षों के अभाव में मानसिक तनाव भी कम पाया जाता है। (5) एक-विवाही परिवार का जीवन-स्तर ऊंचा होता है। (6) एक-विवाही परिवारों में सन्तानों की संख्या कम होती है, अत: परिवार छोटा एवं सुखी होता है।

एक-विवाह के दोष (Demerits of Monogamy)

(1) एक-विवाह के कारण कभी-कभी यौन अनैतिकता में वृद्धि होती है और भ्रष्टाचार बढ़ता है। इससे स्त्री-पुरुष के विवाह के अतिरिक्त यौन सम्बन्ध (Extra marital sex relation) स्थापित करने के अवसर बढ़ जाते हैं। (2) यौन सम्बन्धी छूट के अभाव में यौन अपराधों में वृद्धि होती है। ऐसे विवाह से उत्पन्न परिवार में एकाधिपत्य की प्रवृत्ति पायी जाती है और स्त्रियों का शोषण होता है। एक-विवाह की इन कमियों की तुलना में इससे होने वाले लाभ अधिक हैं। इसलिए ही वर्तमान में विश्व के सभी देशों में एक-विवाह प्रथा पर ही अधिक जोर दिया जाने लगा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. बहुपत्नी विवाह के कारण उत्पन्न होने वाली समस्याओं से ········ पाने के लिए एक-विवाह सर्वोत्तम माना गया है।

2. एक-विवाही परिवारों में ········ की संख्या कम पाई जाती है।
3. एक-विवाह की इन कमियों की ········ में इससे होने वाले लाभ अधिक हैं।

2. बहु-विवाह (Polygamy)

जब एकाधिक पुरुष अथवा स्त्रियां विवाह बन्धन में बंधते हैं तो ऐसे विवाह को बहु-विवाह कहते हैं। बहु-विवाह के प्रमुख चार रूप पाये जाते हैं–बहुपति विवाह, बहुपत्नी विवाह, द्वि-पत्नी विवाह एवं समूह विवाह। हम यहाँ इनका संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

(अ) बहुपति विवाह (Polyandry)

बहुपति विवाह को परिभाषित करते हुए **डॉ. रिवर्स** लिखते हैं, "एक स्त्री की कई पतियों के साथ विवाह सम्बन्ध बहुपति विवाह कहलाता है।

मिचेल (Mitchell) लिखते हैं, "एक स्त्री द्वारा पति के जीवित होते हुए अन्य पुरुषों से भी विवाह करना या एक समय पर ही दो से अधिक पुरुषों से विवाह करना बहुपति विवाह है।"

डॉ. कपाड़िया के अनुसार, "बहुपति विवाह एक प्रकार का सम्बन्ध है जिसमें एक स्त्री के एक समय में एक से अधिक पति होते हैं या जिसमें सब भाई एक पत्नी या पत्नियों का सम्मिलित रूप से उपभोग करते हैं।"

स्पष्ट है कि बहुपति विवाह में एक स्त्री का एकाधिक पुरुषों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होता है। अति प्राचीन काल से ही भारत में बहुपति प्रथा का प्रचलन रहा है, यद्यपि यह प्रचलन सीमित मात्रा में ही रहा है। वैदिक साहित्य में बहुपति प्रथा की सख्त मनाही थी, किन्तु महाभारत काल में ऐसे विवाहों के कुछ उदाहरण पाये जाते हैं। द्रोपदी का विवाह पांच पाण्डव भाइयों से हुआ था, किन्तु इसे नियम न मानकर एक आसाधारण घटना ही माना जाता है। द्रविड़ संस्कृति के मालावाही लोगों में बहुपति विवाह का प्रचलन रहा है। डॉ. सक्सेना का मत है कि दक्षिण में कुछ प्राग-द्रविड़ सांस्कृतिक समूहों में भी बहुपतित्व की प्रथा रही है। यह प्रथा देहरादून के जौनसार, बाबर, परगना, गढ़वाल तथा शिमला की पहाड़ियों में रहने वाले खस राजपूतों, नीलगिरि की पहाड़ियों में रहने वाले टोडा एवं कोटा लोगों, लद्दाखी बोटा, मद्रास के तियान एवं इरावा, मालाबार के नायर, हरावान तथा कम्पाला, कम्बेल, कुर्गवासियों एवं कुछ समय पूर्व तक छोटा नागपुर की संथाल एवं मध्य भारत की उरांव जनजाति में प्रचलित रही है, किन्तु वर्तमान में धीरे-धीरे इस प्रकार के विवाह का प्रचलन समाप्त होता जा रहा है।

बहुपति विवाह के भी दो रूप पाये जाते हैं–*(i)* भ्रातृक बहुपति विवाह, एवं *(ii)* अभ्रातृक बहुपति विवाह।

(i) **भ्रातृक बहुपति विवाह** (Fraternal or Adelphic Polyandry)–जब दो या दो से अधिक भाई मिलकर किसी एक स्त्री से विवाह करते हैं अथवा सबसे बड़ा भाई किसी एक स्त्री से विवाह करता है और अन्य भाई स्वत: ही उस स्त्री के पति माने जाते हैं तो इस प्रकार के विवाह को भ्रातृक बहुपति विवाह कहते हैं। भ्रातृक बहुपति विवाह का प्रचलन खस, टोडा एवं कोटा लोगों तथा पंजाब के पहाड़ी भागों, लद्दाख, कांगड़ा जिला के स्पीती और लाहोल परगनों में पाया जाता है। खास लोगों में सबसे बड़ा भाई ही विवाह करके स्त्री लाता है और शेष भाई स्वत: ही उसी स्त्री के पति बन जाते हैं। नीलगिरि पर्वत के टोडा लोगों में भी भ्रातृक बहुपति विवाह का प्रचलन है। डॉ. रिवर्स का कहना है कि कभी-कभी सगे भाइयों के स्थान पर संगोत्री भाई मिलकर भी एक स्त्री से विवाह कर लेते हैं।

(ii) **अभ्रातृक बहुपति विवाह** (Non-Fraternal Adelphic Polyandry)—इस प्रकार के विवाह में पति परस्पर भाई नहीं होते हैं। स्त्री बारी-बारी से समान अवधि के लिए प्रत्येक पति के पास रहती है। यह प्रथा टोडा तथा नायरों में पायी जाती है।

बहुपति विवाह को हम मातृपक्ष एवं पितृपक्ष दोनों से जोड़ सकते हैं। टोडा, खस एवं कोटा, आदि में पितृपक्षीय बहुपति प्रथा का प्रचलन है जिससे स्त्री विवाह के बाद या तो पतियों के सामूहिक निवास पर जाकर रहती है या बारी-बारी से सभी पतियों के पास कुछ समय के लिए रहती है। मातृपक्षीय बहुपति विवाही परिवार में स्त्री अपनी मां के परिवार में या मूल निवास-स्थान पर ही रहती है और पति ही बारी-बारी से वहां निवास के लिए आते रहते हैं। यह प्रथा मातृवंशीय नायर लोगों में पायी जाती है।

बहुपति विवाह के कारण (Causes of Polyandry)

(1) **वेस्टरमार्क का मत है कि बहुपति विवाह का मुख्य कारण लिंग अनुपात का असन्तुलित होना है।** जिन समाजों में स्त्रियों की तुलना में पुरुष अधिक होते हैं, वहां बहुपति प्रथा पायी जाती है। इस असन्तुलन का एक कारण यह है कि कई समाजों में कन्यावध (Female Infanticide) की प्रथा पायी जाती है। जिन समाजों का जीवन संघर्षमय होता है, वहां स्त्रियों को भार समझा जाता है। अत: लड़कियों को पैदा होते ही मार दिया जाता है। **रॉबर्ट ब्रिफाल्ट** का मत है कि यह बात सदा की सही नहीं है क्योंकि लद्दाख, तिब्बत एवं सिक्किम में स्त्री-पुरुषों के अनुपात में कोई विशेष अन्तर नहीं है। लद्दाख में तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है, फिर भी वहाँ बहुपतित्व पाया जाता है।

(2) **समनर, कनिंघम एवं डॉ. सक्सेना ने गरीबी को ही इस प्रकार के विवाहों के लिए उत्तरदायी माना है।** पैदावार कम होने, कृषि योग्य भूमि का अभाव होने, सुगमतापूर्वक धन न कमा सकने, आदि के कारण परिवार का भरण-पोषण कठिन होता है। इसलिए कई पुरुष मिलकर एक स्त्री से विवाह करते हैं।

(3) **जनसंख्या को मर्यादित रखने की इच्छा के कारण भी बहुपति विवाह का पालन किया जाता है** क्योंकि ऐसे विवाह में सन्तानें कम होती हैं।

(4) **वधू-मूल्य**—कई समाजों में बहुपति विवाह का कारण वधू-मूल्य की अधिकता है। वधू-मूल्य को जुटाने के लिए सभी सामूहिक प्रयास करते हैं और ऐसी दशा में विवाह करके लायी गयी स्त्री पर भी सभी का सामूहिक अधिकार होता है।

(5) **सम्पत्ति के विभाजन को रोकने के लिए भी बहुपति विवाह का प्रचलन पाया जाता है।** यदि सभी अलग-अलग विवाह करते हैं तो उनमें तथा उनकी सन्तानों में सम्पत्ति बांटनी होती है। इसके विपरीत, यदि सभी भाई एक स्त्री के साथ एक परिवार में रहते हैं, तो सम्पत्ति भी सामूहिक बनी रहती है।

(6) **भौगोलिक परिस्थितियाँ**—टोडा एवं खस लोग जिन स्थानों पर रहते हैं, वहां कृषि योग्य भूमि का अभाव है और सम्पूर्ण प्रदेश पथरीला एवं पहाड़ी है। अत: इन्हें प्रकृति से कठोर संघर्ष करना होता है जिसमें अकेला व्यक्ति अपने को अयोग्य पाता है। अत: सभी भाई मिलकर ही परिवार की स्त्री एवं बच्चों का भरण-पोषण करते हैं।

(7) **धार्मिक कारण**—खस लोग अपने आपको पाण्डवों के वंशज मानते हैं। अत: ये भी 'द्रोपदी विवाह' प्रथा का पालन करते हैं। इस प्रकार बहुपति विवाह विभिन्न भौगोलिक, धार्मिक जनांकिकी एवं आर्थिक कारणों का परिणाम है।

बहुपति विवाह के परिणाम (Consequences of Polyandry)

बहुपति विवाह के विभिन्न परिणाम सामने आये हैं। इसके प्रमुख गुण व दोष इस प्रकार हैं—

गुण (Merits)—(1) बहुपति विवाह के कारण **कम सन्तानें** पैदा होती हैं। अत: यह प्रथा आदर्श परिवार के निर्माण एवं जनसंख्या-वृद्धि को रोकने में सहायक है। (2) इस प्रकार के विवाह के कारण **सम्पत्ति की संयुक्ता बनी रहती है। कृषि योग्य भूमि का बंटवारा न होने से वह टुकड़े-टुकड़े होने से बच जाती है।** (3) बहुपति विवाह के कारण **परिवार का विभाजन एवं विघटन नहीं होने पाता,** इस कारण परिवार की सामूहिकता एवं एकता बनी रहती है। (4) ऐसे विवाह के कारण परिवार को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं आर्थिक क्रियाओं के सम्पादन में सभी सहयोग प्राप्त होता है। साथ ही **प्रकृति से संघर्ष भी सामूहिक रूप से किया जाता है।**

दोष (Demerits)—(1) इस प्रकार के विवाह के कारण **स्त्रियों में बांझपन** आ जाता है। ऐसा कौन-से जैविकीय कारणों से होता है, यह अभी स्पष्ट नहीं है। पर यह वास्वविकता है कि बहुपति विवाही समाजों की जनसंख्या दिन-प्रतिदिन घट रही है और एक समय ऐसा भी आ सकता है जब वे बिल्कुल समाप्त हो जाएँ। (2) बहुपति विवाह में लड़कियों की तुलना में लड़के अधिक पैदा होते हैं। अत: स्वत: ही **यौन असन्तुलन उत्पन्न हो जाता**

नोट

है, फलस्वरूप बहुपति प्रथा स्वत: चलती रहती है। (3) बहुपति विवाह में एक स्त्री को कई पुरुषों से यौन सम्बन्ध रखने होते हैं। इस कारण **यौन रोग पनपते हैं** एवं स्त्री का स्वास्थ्य गिर जाता है। (4) इस प्रकार की विवाह प्रथा वाले समाजों में स्त्रियों को कुछ अधिक यौन स्वतन्त्रता प्राप्त होने से वहां **यौन अनैतिकता बढ़ जाती है।**

(ब) बहुपत्नी विवाह (Polygyny)

बहुविवाह का एक रूप बहुपत्नी विवाह भी है जिसमें एक पुरुष एकाधिक स्त्रियों से विवाह करता है। **कपाड़िया** का मत है कि भारतवर्ष में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन वैदिक युग से वर्तमान समय तक प्रचलित रहा है। भारत में प्राचीन समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र ये चार वर्ण पाये जाते थे। शूद्रों को छोड़कर शेष तीन वर्गों को अपने वर्ण के अतिरिक्त अपने से निम्न वर्ण की लड़कियों से विवाह करने की भी स्वीकृति प्राप्त थी। इस प्रकार ब्राह्मण चार, छत्रिय तीन एवं वैश्य दो वर्ण की स्त्रियों से विवाह कर सकते थे। ऐसा कहा जाता है कि स्मृतिकार मनु के दस एवं याज्ञवल्क्य के दो पत्नियां थीं। **अल्टेकर** का मत है कि बहुपत्नी प्रथा धनी, शासक एवं अभिजात वर्ग के लोगों में सामान्य थी। बहुपत्नी विवाह के भी दो रूप पाये जाते हैं—सीमित एवं असीमित। सीमित बहुपत्नित्व (Restricted Polygyny) में एक स्त्री के मरने पर ही दूसरी स्त्री से विवाह किया जाता है। असीमित बहुपत्नित्व (Unrestricted Polygyny) में स्त्री के बांझ होने की स्थिति में अथवा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पुरुष एकाधिक स्त्रियों से विवाह करता है।

भारतीय धर्म-ग्रन्थों में सन्तान न होने पर दूसरा विवाह करने की स्वीकृति दी गयी है किन्तु सामान्य स्थिति में एकाधिक पत्नियाँ रखना उचित नहीं माना गया है। मनु, कौटिल्य और आपस्तम्ब, आदि ने सैद्धान्तिक दृष्टि से बहुपत्नित्व को स्वीकार किया है, किन्तु एकपत्नित्व प्रथा भारत की नागा, गोंड, बैगा, भील, टोडा, लुशाई, आदि जनजातियों में पायी जाती है। मध्य भारत की अधिकांश प्रोटो-ऑस्ट्रेलाइड जनजातियों में यह प्रथा प्रचलित रही है। बंगाल में अनुलोम एवं कुलीन विवाह प्रथा के कारण बहुपत्नित्व का प्रचलन रहा है। दक्षिण में नम्बूद्री ब्राह्मणों में भी यह प्रथा पायी जाती है। वर्तमान में बहुपत्नित्व पर कानूनी रोक लगा दी गयी है।

क्या आप जानते हैं महाभारत में यह कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी पुत्र-सम्पन्न एवं धर्मपरायण स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह करता है उसका पाप कभी नहीं धुल सकता।

बहुपत्नी विवाह के कारण (Causes of Polygyny)

1. **पुत्र प्राप्ति के लिए**—हिन्दुओं में पुत्र का धार्मिक महत्त्व है। वही मृत माता-पिता के लिए पिण्डदान एवं तर्पण करता है। अत: एक स्त्री के कोई सन्तान अथवा पुत्र न होने पर दूसरी स्त्री से विवाह किया जाता है। स्मृतिकारों ने प्रथम स्त्री के पुत्र न होने पर दूसरा विवाह करने की छूट दी है।
2. **आर्थिक कारण**—भारत में उन जनजातियों को जो पहाड़ी भागों में रहती हैं, जीवनयापन के लिए प्रकृति से कठोर संघर्ष करना पड़ता है। विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ होने पर आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के कई सदस्यों के सहयोग से ही सम्भव हो पाती है। परिवार में अधिक स्त्रियां होने पर उन्हें खेती में काम एवं गृह उद्योगों में लाकर उनका आर्थिक सहयोग प्राप्त किया जाता है।
3. **सामाजिक प्रतिष्ठा**—धनवान, जमींदार एवं ऐश्वर्यशाली व्यक्ति अधिक पत्नियाँ इसलिए रखते हैं कि इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है। मुसलमान शासक हरम और क्षत्रिय राजा कई रानियां एवं बांदियाँ रखते थे।
4. **लिंग असमानता**—बहुपत्नित्व का एक कारण समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का अधिक होना है। शिकार, युद्ध एवं आर्थिक-साहसिक कार्यों में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों के मरने के अवसर अधिक होते हैं, इससे पुरुषों की संख्या घट जाती है और बहुपत्नित्व पनपता है।

5. **कामवासना एवं यौन अनुभव**—पुरुषों में कामवासना की अधिकता एवं नवीन यौन अनुभव की इच्छा ने भी बहुपत्नित्व को जन्म दिया।
6. **साली विवाह**—जिन समाजों में साली विवाह की प्रथा प्रचलित है, वहां प्रथा के रूप में एक व्यक्ति को अपनी पत्नी की सभी बहिनों से विवाह करना पड़ता है।
7. **देवर विवाह**—कुछ समाजों में देवर विवाह का भी प्रचलन है। अत: जब एक भाई की मृत्यु हो जाती है तो उसकी विधवा स्त्री से दूसरा भाई विवाह कर लेता है। इससे जीवित भाई की पत्नियों की संख्या बढ़ जाती है।
8. **युद्ध एवं आक्रमण**—युद्ध एवं आक्रमण के समय भी स्त्रियों को अपहरण करके लाया और उनसे विवाह कर लिया जाता है।
9. कई जनजातियों में घर की उचित देख-रेख एवं बच्चों के समुचित पालन-पोषण के लिए एकाधिक पत्नियां रखना अच्छा माना जाता है। अफ्रीका की जनजातियों में स्त्री अक्सर अपने पिता के घर आती-जाती रहती है। अत: बच्चों एवं घर की देख-रेख के लिए एकाधिक पत्नियां रखी जाती हैं।

वेस्टरमार्क ने बहुपत्नित्व के निम्नांकित कारण बनाये हैं: (1) जंगली जनजातियों में गर्भवती एवं दुग्धपान कराने वाली स्त्री के साथ सहवास नहीं किया जाता। इस **बाधित ब्रह्मचर्य के कारण** उनमें बहुपत्नित्व की प्रथा चल पड़ी। (2) जंगली जनजातियों में **पुरुषों की तुलना में स्त्रियां जल्दी वृद्ध हो जाती हैं,** अत: पुरुष दूसरा विवाह कर लेता है। (3) **विविधता की इच्छा के कारण** भी बहुपत्नित्व पाया जाता है। (4) **जीवन-यापन की कठिनाई** के कारण परिवार में कई सन्तानों का होना आवश्यक माना जाता है जिसे कई स्त्रियों से विवाह करके ही पूरा किया जा सकता है।

बहुपत्नी विवाह के परिणाम (Consequences of Polygyny)

बहुपत्नी विवाह के परिणामस्वरूप समाज को कुछ लाभ एवं हानियाँ दोनों ही होती हैं उनका हम यहां उल्लेख करेंगे—

लाभ (Merits)—(1) बहुपत्नित्व के कारण कामी पुरुषों की यौन इच्छाएं परिवार में पूरी हो जाती हैं। अत: समाज में **भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता** में वृद्धि नहीं हो पाती है। (2) परिवार में अनेक स्त्रियां होने पर **बच्चों का लालन-पालन एवं घर की देख-रेख सरलता से हो जाती है।** (3) इससे परिवार की **आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति सुगमता से हो** जाती है। (4) किसी समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की अधिकता हो और **एक-विवाह प्रथा का पालन** किया जाता हो तो ऐसी दशा में कई स्त्रियों को विवाह से वंचित रहना पड़ेगा। विवाह के अभाव में उनमें कई विकार पैदा हो जाते हैं। बहुपत्नी विवाह के कारण ऐसे समाजों में स्त्रियों को विवाह से वंचित नहीं रहना पड़ता। (5) बहुपत्नी विवाह समाज के अधिकांशत: धनी एवं समृद्ध लोगों में पाये जाते हैं। अत: ऐसे विवाह से उत्पन्न **सन्तानें शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से उत्तम होती हैं।**

हानियां (Demerits)—(1) बहुपत्नी विवाह के कारण **परिवार में संघर्ष, ईर्ष्या एवं वैमनस्य का वातावरण** उत्पन्न होता है। स्त्रियां परस्पर छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ती रहती हैं। इससे परिवार की सुख-शान्ति समाप्त हो जाती है। (2) कई पत्नियां होने पर परिवार में सन्तानों की संख्या बढ़ जाती है। अधिक सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा एवं देखभाल करना प्राय: कठिन होता है। (3) ऐसे विवाहों के कारण स्त्रियों की **सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जाती है** और उनका शोषण होता है। (4) एकाधिक पत्नियाँ होने पर एक पुरुष उन सभी की यौन इच्छाओं को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में **समाज में यौनाचार पनपता है।** (5) एकाधिक पत्नियां रखने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने पर समाज में **विधवाओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है।** इन हानियों को देखते हुए ही वर्तमान बहुपत्नित्व के स्थान पर एक विवाह के नियम को स्वीकार किया गया है।

(स) द्वि-पत्नी विवाह (Biogamy)

बहुविवाह का एक रूप द्वि-पत्नी विवाह भी है। इस प्रकार के विवाह में एक पुरुष एक साथ दो स्त्रियों से विवाह करता है। कई बार पहली स्त्री के सन्तान न होने से दूसरा विवाह कर लिया जाता है। आरेगन तथा एस्कीमो जनजातियों में यह प्रथा प्रचलित है। भारत में दक्षिण की कुछ जनजातियों में यह प्रथा पायी जाती है, किन्तु वर्तमान में ऐसे विवाहों पर कानूनी रोक लगा दी गयी है।

(द) समूह विवाह (Group Marriage)

समूह विवाह में पुरुषों का एक समूह स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है और समूह का प्रत्येक पुरुष समूह की प्रत्येक स्त्री का पति होता है। परिवार और विवाह की प्रारम्भिक अवस्था में यह स्थिति रही होगी, ऐसी उद्विकासवादियों की धारणा है। यह प्रथा ऑस्ट्रेलिया की जनजातियों में पायी जाती है जहां एक कुल की सभी लड़कियां दूसरे कुल की भावी पत्नियां समझी जाती हैं। वेस्टरमार्क का मत है कि ऐसे विवाह तिब्बत, भारत एवं श्रीलंका के बहुपतित्व वाले समाजों में पाये जाते हैं। **डॉ. सक्सेना** का मत है कि बहुपति विवाही समाजों में आर्थिक स्थिति में सुधार होने पर पुरुष एकाधिक स्त्रियां रखते हैं, तब बहुपति विवाह समूह विवाह का रूप ले लेता है। टोडा लोगों में बहुपतित्व एवं बहुपत्नित्व का सम्मिश्रण हो रहा है क्योंकि उन्होंने बालिका-वध की प्रथा त्याग दी है। अत: उनमें स्त्रियों की संख्या बढ़ रही है। यदि हम समूह विवाह का प्रयोग इस अर्थ में करते हैं तो यह सूचित करता है कि समूह का प्रत्येक पुरुष दूसरे समूह की प्रत्येक स्त्री का पति हो तथा उत्पन्न सन्तानों को भी सम्पूर्ण समूह की सन्तानें समझा जाता हो, तो इस प्रकार के विवाह के उदाहरण विश्व में कहीं नहीं हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न समाजों में विवाह की भिन्नता का कारण उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं जनांकिकी परिस्थितियों की भिन्नता है। हिन्दुओं में विवाह धार्मिक संस्कार माना जाता है तो जनजातियों एवं अन्य लोगों में सामाजिक समझौता।

टास्क विवाह के प्रकारों का वर्णन करें।

13.2 सारांश (Summary)

- मानव समाज के विकास के साथ-साथ विवाह के विभिन्न प्रकार अस्तित्व में आए हैं।
- एक विवाह में एक पुरुष एक समय में एक ही स्त्री से विवाह करता है। हिंदू समाज में एक विवाह को आदर्श माना गया है।
- जब एकाधिक पुरुष अथवा स्त्रियां विवाह बंधन में बंधते हैं उसे बहु-विवाह कहते हैं।
- बहु-विवाह के चार रूप पाए जाते हैं–बहुपति विवाह, बहु-पत्नी विवाह, द्वि-पत्नी विवाह, समूह विवाह।
- बहुपति विवाह के भी दो रूप हैं– (*i*) भ्रातृक बहुपति विवाह (*ii*) अभ्रातृक बहुपति विवाह।

13.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **द्वि-पत्नी विवाह (Biogamy)**—एक पुरुष एक साथ दो स्त्रियों से विवाह करता है। आरेगन तथा एस्कीमों जनजाति में यह प्रथा प्रचलित है।
2. **समूह विवाह (Group marriage)**—पुरुषों का एक समूह, स्त्रियों के एक समूह से विवाह करता है। समूह का प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्रियों का पति होता है। यह प्रथा अस्ट्रेलिया के जनजातियों में पाई जाती हैं।

13.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. एक विवाह के कारणों का उल्लेख करें।
2. बहुविवाह का अर्थ तथा इसके कारणों को बताएँ।
3. बहुपति विवाह तथा बहुपत्नी विवाह में क्या अंतर है?
4. समूह विवाह का क्या अर्थ है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. मुक्ति 2. सन्तानों 3. तुलना।

13.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ–डॉ. आर. एन. सक्सेना।
2. भारत में विवाह एवं परिवार–के.एम. कपाड़िया।

नोट

इकाई–14: भारत और पश्चिम में जीवन-साथी का चुनाव (Mate Selection in India and West)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
14.1 भारत में जीवन-साथी के चुनाव के नियम (Rules of Selection of Life-Mate in India)
14.2 अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह (Anuloma and Pratiloma Marriages)
14.3 पश्चिम में जीवन-साथी का चुनाव (Mate Selection in West)
14.4 ईसाइयों में विवाह पद्धति (Marriage Ritual among Christians)
14.5 सारांश (Summary)
14.6 शब्दकोश (Keywords)
14.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
14.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भारत में जीवन-साथी चुनने के नियमों की जानकारी।
- पश्चिम में जीवन-साथी चुनाव के तरीके।

प्रस्तावना (Introduction)

धर्मसूत्र तथा मनुसंहिता में जीवन-साथी चुनाव के लिए गुणों की लंबी सूची दी गई है जो हमें वर-वधू के चुनाव के समय ध्यान में रखनी चाहिए। प्राचीन समय में चुनाव का अधिकार पूर्ण रूप से पिता का होता था और वर अथवा वधू की इसमें बहुत कम राय ली जाती थी किंतु फिर भी विवाह प्रायः दुखदायी नहीं होते थे क्योंकि माता-पिता योग्य परिवारों में से वर अथवा वधू का चुनाव करने में बहुत सावधानी बर्तते थे और विवाह का सामाजिक आदर्श तथा संयुक्त परिवार का संगठन, विचारों अथवा हितों का संघर्ष उत्पन्न होने का अवसर नहीं आने देता था। सामाजिक परंपरा के द्वारा अब भी वर-वधू का चुनाव नियंत्रित होता है।

14.1 भारत में जीवन-साथी के चुनाव के नियम (Rule of Selection of Life-Mate in India)

प्रत्येक समाज में विवाह से सम्बन्धित कुछ नियम पाये जाते हैं। जीवन साथी के चुनाव के दौरान तीन बातें सामने आती हैं–चुनाव का क्षेत्र, चुनाव का पक्ष एवं चुनाव की कसौटियाँ। चुनाव के क्षेत्र को दो प्रकार से सीमित किया जाता है–(*i*) कुछ लोगों को विवाह में अधिमान्यता (Preference) प्रदान करके और ऐसा वांछनीय ही नहीं वरन् कर्तव्य भी समझा जाता है। उदाहरण के लिए दक्षिणी भारत एवं महाराष्ट्र में ममेरे फूफेरे भाई-बहिन के विवाह को अधिमान्यता दी जाती है। (*ii*) कुछ सम्बन्धियों से विवाह करना अवांछीनीय या निषिद्ध माना जाता है। इसके अतिरिक्त एवं बहिर्विवाह के नियम भी जीवन-साथी के चुनाव को निर्देशित करते हैं। कपाड़िया एवं प्रभु दोनों ने ही इस बात को स्वीकार किया है। प्रभु लिखते हैं, हिन्दू विवाह से सम्बन्धित सभी नियमों को हम **अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह, अनुलोम एवं प्रतिलोम** आदि चार भागों में बांट सकते हैं। संक्षेप में इनका हम यहाँ विवेचन करेंगे।

I. अन्तर्विवाह (Endogamy)

अन्तर्विवाह का तात्पर्य है एक व्यक्ति अपने जीवन-साथी का चुनाव अपने ही समूह में से करे। इसे परिभाषित करते हुए **डॉ. रिवर्स** लिखते हैं, "अन्त:विवाह से अभिप्राय है उस विनिमय का जिसमें अपने समूह में से जीवन-साथी का चुनाव अनिवार्य होता है।"

वैदिक एवं उत्तर-वैदिक काल में द्विजों का (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) एक ही वर्ण था और द्विज वर्ण के लोग अपने में ही विवाह करते थे। शूद्र वर्ण पृथक् था। स्मृतिकाल में अन्तर्वर्ण विवाहों की स्वीकृति प्रदान की गयी थी, लेकिन जब एक वर्ण कई जातियों एवं उपजातियों में विभक्त हुआ तो विवाह का दायरा सीमित होता गया और लोग अपनी ही जाति एवं उप-जातियों में विवाह करने लगे और इसे ही अन्तर्विवाह माना जाने लगा। कपाड़िया ने वैश्यों की एक जाति 'बनिया' की कई उप-शाखाओं जैसे, लाड़, मोढ़, पोरवाड़, नागर, श्रीमाली, आदि का उल्लेख किया है। लाड़ स्वयं भी 'बीसा' एवं 'दस्सा' इन दो उप-भागों में बंटी हुई है। स्वयं 'बीसा' भी अहमदाबादी, खम्बाती, आदि स्थानीय खण्डों में बंटी हुई है। प्रत्येक खण्ड अन्त: विवाही है। कुछ उपजातियों में 'गोल', 'एकड़ा' आदि हैं जो चुनाव क्षेत्र को एक स्थानीय सीमा तक संकुचित कर देते हैं। गाँव के लोग अपनी कन्या का विवाह कस्बों के लोगों के साथ कर देते हैं, किन्तु उनके पुत्रों के लिए कस्बे वाले कन्याएँ नहीं देते। ऐसी स्थिति में विवाह का एक क्षेत्र निर्धारित करना पड़ता है जो 'गोल' अथवा 'एकड़ा' कहलाता है। वर्तमान समय में एक व्यक्ति अपनी ही जाति, उपजाति, प्रजाति, धर्म क्षेत्र, भाषा एवं वर्ग के सदस्यों से ही विवाह करता है। **केतकर** ने तो कहा है कि "कुछ हिन्दू जातियाँ ऐसी हैं जो पन्द्रह परिवारों के बाहर विवाह नहीं करतीं। एक तरफ हमें अन्तर्जातीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विवाह देखने को मिलते हैं वहीं दूसरी ओर अन्तर्विवाह के कारण विवाह का दायरा संकुचित हो गया है।

अन्तर्विवाह के कारण (Causes of Endogamy)–विवाह के क्षेत्र को इस प्रकार सीमित करने के कई प्रजातीय एवं सांस्कृतिक कारण रहे हैं इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–

1. **प्रजाति मिश्रण पर रोक**–भारत में समय-समय पर कई प्रजातियों के लोग आये और उन्होंने अपने को किसी-न-किसी वर्ण में सम्मिलित कर लिया। अन्तर्प्रजातीय मिश्रण को रोकने के लिए अन्तर्वर्ण विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाये गये। विशेषत: आर्य एवं द्राविड़ प्रजातियों के बीच रक्त मिश्रण को रोकने के लिए ऐसा किया गया।

2. **सांस्कृतिक भिन्नता**–आर्यों एवं द्राविड़ों तथा बाह्य आक्रमणकारियों की संस्कृति में पर्याप्त भिन्नता थी। इस कारण वैवाहिक सम्बन्धों में कठिनाई पैदा होती थी। जब वर्ण विभिन्न जातियों एवं उपजातियों में विभक्त हुए तो सांस्कृतिक भिन्नता में भी वृद्धि हुई। प्रत्येक जाति और उपजाति अपनी सांस्कृतिक विशेषता को बनाये रखना चाहती थी। अत: उन्होंने अन्तर्विवाह पर ज़ोर दिया।

3. **जन्म का महत्त्व**–प्रारम्भ में व्यक्ति को उसके कर्म के आधार पर आंका जाता था, किन्तु धीरे-धीरे जन्म का महत्त्व बढ़ा और रक्त शुद्धता की भावना ने जोर पकड़ा, फलस्वरूप अन्तर्विवाह पनपा।

4. **जैन एवं बौद्ध धर्म का विकास**–ब्राह्मणवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के कारण जैन एवं बौद्ध धर्मों का उदय हुआ। इस कारण ब्राह्मणों की शक्ति में गिरावट आयी, किन्तु ज्यों ही इन दोनों धर्मों में शिथिलता आयी, ब्राह्मणों ने अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने के लिए कठोर जातीय नियम बनाये और अन्तर्विवाह के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाने लगा।

5. **मुसलमानों का आक्रमण**–मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दुओं के धर्म एवं संस्कृति पर कठोर प्रहार किया। उन्होंने हिन्दू लड़कियों से विवाह करने प्रारम्भ किये। इस स्थिति से बचने एवं अपने धर्म तथा संस्कृति की रक्षा के लिए हिन्दुओं ने अन्तर्विवाह के नियमों को कठोर बना दिया।

6. **बाल-विवाह**–मध्य युग से ही जब बाल-विवाहों की वृद्धि हुई तो अन्तर्विवाह का पालन किया जाने लगा क्योंकि जब माता-पिता ही बच्चों का विवाह तय करते हैं तो वे जातीय नियमों के विरुद्ध विवाह की बात नहीं सोच पाते।

7. **उपजातियों का क्षेत्रीय केन्द्रीकरण**–भौगोलिक दृष्टि से पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में निवास तथा यातायात और संचारवाहन के साधनों के अभाव के कारण उपजातियों का पारस्परिक सम्पर्क सम्भव नहीं था। अत: एक क्षेत्र में निवास करने वाली उपजाति ने अपने ही सदस्यों से विवाह करने पर ज़ोर दिया।

8. **व्यावसायिक ज्ञान की सुरक्षा**–प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय पाया जाता है। व्यावसायिक ज्ञान को गुप्त रखने की इच्छा ने भी अन्तर्विवाह को प्रोत्साहित किया।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त व्यक्ति का अपनी ही जाति के प्रति लगाव, जाति से बहिष्कृत किये जाने का डर तथा जाति पंचायत एवं ग्राम पंचायत द्वारा जातीय नियमों को कठोरता से लागू करने, आदि के कारण भी अन्तर्विवाह के नियमों का पालन उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अन्तर्विवाह के इन नियमों से एक ओर हिन्दू समाज को कुछ लाभ प्राप्त हुए तो दूसरी ओर इससे कई हानियाँ भी हुई हैं। इससे लागों के सम्पर्क का दायरा सीमित हो गया, संकीर्णता की भावना पनपी, पारस्परिक घृणा, दोष एवं कटुता की वृद्धि हुई, क्षेत्रीयता की भावना भी पनपी, जातिवाद बढ़ा, व्यावसायिक ज्ञान एक समूह तक ही सीमित हो गया। इन सभी के कारण भारतीय समाज की प्रगति अवरुद्ध हुई, किन्तु वर्तमान समय में नगरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात एवं संचारवाहन के साधनों के विकास एवं एकाकी परिवारों की स्थापना के कारण अन्तर्विवाह के नियम शिथिल होते जा रहे हैं। विवाह से सम्बन्धित विधानों ने भी अन्तर्वर्ण एवं अन्तर्जातीय विवाहों को स्वीकृति प्रदान की है। फिर भी नैतिक शक्ति और सामाजिक बाध्यता इतनी प्रबल है कि हिन्दू अन्तर्विवाह के नियमों को पूर्णत: त्याग नहीं सकते।

नोट्स हिन्दू धर्मशास्त्रों में जीवन-साथियों के चुनाव को नियन्त्रित करने की दृष्टि से हिन्दू विवाह को व्यवस्थित करने हेतु अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह के कुछ नियम निर्धारित किये हैं।

II. बहिर्विवाह (Exogamy)

बहिर्विवाह से तात्पर्य है कि एक व्यक्ति जिस समूह का सदस्य है उससे बाहर विवाह करे। **रिवर्स** लिखते हैं, "बहिर्विवाह से बोध होता है उस विनिमय का जिसमें एक समाजिक समूह के सदस्य के लिए यह अनिवार्य होता है कि वह दूसरे सामाजिक समूह से अपना जीवन साथी ढूँढ़े।" हिन्दुओं में बहिर्विवाह के नियमों के अनुसार एक व्यक्ति को अपने परिवार, गोत्र, प्रवर, पिण्ड एवं जाति के कुछ समूहों के बाहर विवाह करना चाहिए। जनजातियों में एक ही टोटम को मानने वाले लोगों को भी परस्पर विवाह करने की मनाही है। गोत्र, प्रवर एवं पिण्डों के नियमों की सदैव अनिश्चितता रही है। इस सन्दर्भ में प्रभु ने लिखा है, "अपने उत्पत्ति के समय से लेकर प्रत्येक युग में बहिर्विवाह के नियमों से सम्बन्धित इन तीन शब्दों 'गोत्र', 'प्रवर' और 'पिण्ड' के वास्तविक अर्थों और अवधारणाओं

में इतना अधिक परिवर्तन संकलन और रूपान्तर हुआ है कि इनके मौलिक अर्थों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कहना असम्भव सा हो गया है।" हिन्दुओं में प्रचलित बहिर्विवाह के स्वरूपों का हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख करेंगे–

(क) **गोत्र बहिर्विवाह** (Gotra Exogamy)–हिन्दुओं में सगोत्र विवाह निषिद्ध है। गोत्र का सामान्य अर्थ उन व्यक्तियों के समूह से है जिनकी उत्पत्ति एक ही ऋषि पुर्वज से हुई हो। 'सत्याषाढ़ हिरण्यकेशी श्रोतसूत्र' के अनुसार विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप और अगस्त्य नामक आठ ऋषियों की सन्तानों को गोत्र के नाम से पुकारा गया। छान्दोग्य उपनिषद् में गोत्र शब्द का प्रयोग परिवार के अर्थ में हुआ है। गोत्र शब्द के तीन या चार अर्थ हैं; गौशाला, गाय का समूह, किला तथा पर्वत, आदि। इस प्रकार एक घेरे या स्थान पर रहने वाले लोगों में परस्पर विवाह वर्जित था। गोत्र का शाब्दिक अर्थ गौ + त्र अर्थात् गायों को बांधने का स्थान (गौशाला या बाड़ा) अथवा गोपालन करने वाला समूह है। जिन लोगों की गायें एक स्थान पर बंधती थीं। उसमें नैतिक संबंध बन जाते थे और सम्भवत: वे रक्त सम्बन्धी भी होते थे। अत: वे परस्पर विवाह नहीं करते थे। विज्ञानेश्वर ने गोत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि वंश-परंपरा में जो नाम प्रसिद्ध होता, उसी को गोत्र कहते हैं। इस प्रकार एक गोत्र के सदस्यों द्वारा अपने गोत्र से बाहर विवाह करना ही गोत्र बहिर्विवाह कहलाता है।

गोत्र बहिर्विवाह का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ इस बारे में निश्चितता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कापड़िया का मत है कि वैदिक काल में सगोत्र विवाह निषिद्ध नहीं थे क्योंकि इस समय गान्धर्व विवाह एवं स्वयंवर की प्रथा का प्रचलन था जिनमें गोत्र सम्बन्धी निषेधों का बना रहना असम्भव था। धर्मशास्त्रों में द्विजों को कलियुग में सगोत्र विवाह से बचने को कहा गया । इसका अर्थ है उस समय सगोत्र विवाह पर प्रतिबन्ध नहीं थे। आर्य भारत में ईरान से आये थे और ईरान में गोत्र बहिर्विवाह का नियम नहीं था। डॉ. अल्टेकर का मत है कि ईसा के 600 वर्ष पूर्व सगोत्र विवाह पर निषेध नहीं था। मनु ने भी सगोत्र विवाह को पाप नहीं माना। सर्वप्रथम गृहसूत्र साहित्य में सगोत्र विवाह को पाप नहीं माना। सर्वप्रथम गृहसूत्र साहित्य में सगोत्र विवाह की मनाही की गयी। बौधायन धर्मसूत्र में तो कहा गया है कि यदि अज्ञानवश भी सगोत्र कन्या से विवाह हो जाता है तो उसका पालन माता की तरह किया जाए। स्मृतिकारों ने सगोत्र विवाह करने वालों के लिए अनेक दण्ड, प्रायश्चित एवं जाति से बहिष्कृत करने की व्यवस्था की है। ऐसे व्यक्ति को चाण्डाल की संज्ञा दी गयी है।

विज्ञानेश्वर का मत है कि ब्राह्मणों के ही वास्तविक गोत्र होते हैं, क्षत्रियों एवं वैश्यों के गोत्र उनके पुरोहितों के गोत्रों के आधार पर होते हैं। शूद्रों के कोई गोत्र नहीं होते, किन्तु वर्तमान में सभी जातियों में गोत्र पाये जाते हैं और वे गोत्र बहिर्विवाह के नियमों का पालन करते हैं। हिन्दू विवाह अधिनियम द्वारा वर्तमान में सगोत्र विवाह से प्रतिबन्ध हटा दिये गये हैं किंतु व्यवहार में आज इसका प्रचलन है।

(ख) **सप्रवर बहिर्विवाह** (Sapravar Exogamy)–गोत्र से सम्बन्धित ही एक शब्द है 'प्रवर' जिसका वैदिक इण्डेण्क्स के अनुसार शाब्दिक अर्थ है, 'आह्वान करना' (Invocation or Summon)। कर्वे के अनुसार प्रवर का अर्थ क्षत्रियों में लगभग वंशकार या कुलकार की तरह ही है।" प्रवर का अर्थ है 'महान्' (great-one)। ब्राह्मण लोग हवन, यज्ञ, आदि के समय गोत्र वंशकार के नाम का उच्चारण करते थे। इस अर्थ में प्रवर का तात्पर्य 'श्रेष्ठ' (The excellent one) से ही था। प्रभु का मत है कि प्राचीन समय में अग्नि पूजा और हवन का प्रचलन था। हवन के लिए अग्नि प्रज्वलित करते समय पुरोहित अपने प्रसिद्ध ऋषि पूर्वजों का नामोच्चारण करता था। इस प्रकार समान पूर्वज और समान ऋषियों के नाम उच्चारण करने वाले व्यक्ति अपने को एक ही प्रवर से सम्बद्ध मानने लगे। एक प्रवर के व्यक्ति अपने को सामान्य ऋषि पूर्वजों से संस्कारात्मक एवं आध्यात्मिक रूप से सम्बन्धित मानते हैं अत: वे परस्पर विवाह नहीं करते। कपाड़िया लिखते हैं, "प्रवर संस्कार अथवा ज्ञान के उस समुदाय की ओर संकेत करता है जिससे एक व्यक्ति सम्बन्धित होता है।" प्रवर आध्यात्मिक दृष्टि से परस्पर सम्बन्धित लोगों के समूह की ओर संकेत करता है न कि रक्त सम्बन्धियों की ओर।

प्रवर पहले केवल ब्राह्मणों के ही होते थे, किन्तु बाद में क्षत्रिय एवं वैश्यों ने भी अपना लिये। शूद्रों के कोई प्रवर नहीं थे। ऐसी मान्यता है कि धर्मसूत्र काल व मनु के समय में सप्रवर विवाह पर कठोर नियन्त्रण नहीं था।

नोट

पी.बी. काणे का मत है कि सप्रवर विवाह निषेध तीसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुए और नवीं शताब्दी तक चलते-चलते तो इनका रूप कठोर हो गया। वर्तमान समय में यज्ञों के प्रचलन एवं महत्त्व में कमी आ जाने के कारण प्रवर जैसी कोई संस्था नहीं है। हिन्दू विवाह अधिनियमों द्वारा 'सप्रवर' विवाह सम्बन्धी निषेधों को समाप्त कर दिया गया है।

(ग) **सपिण्ड बहिर्विवाह** (Sapinda Exogamy)–सप्रवर और सगोत्र बहिर्विवाह के नियम पितृपक्ष के सम्बन्धियों में विवाह की स्वीकृति नहीं देते। सपिण्ड विवाह निषेध के नियम मातृ एवं पितृ पक्ष की कुछ पीढ़ियों में विवाह पर रोक लगाते हैं। कर्वे सपिण्डता का अर्थ बताती हैं स + पिण्ड (together + ball of rice, a body) अर्थात् मृत व्यक्ति को पिण्डदान देने वाले या उसके रक्त कण से सम्बन्धित। स्मृति में सपिण्ड करते हैं; *(i)* वे सभी व्यक्ति सपिण्डी हैं जो एक पिण्डदान करते हैं; *(ii)* मिताक्षरा के अनुसार सभी जो एक ही शरीर से पैदा हुए हैं सपिण्डी हैं। विज्ञानेश्वर के अनुसार एक ही पिण्ड या देह रखने वालों में एक ही शरीर के अवयव होने के कारण सपिण्डता का सम्बन्ध होता है। पिता और पुत्र सपिण्डी हैं क्योंकि पिता के शरीर के अवयव पुत्र में आते हैं। इसी प्रकार से माँ व सन्तानें, दादा-दादी एवं पोते भी सपिण्डी हैं। सपिण्ड विवाह भी निषेध रहे हैं। रामयण एवं महाभारत काल में सपिण्डता का नियम एक स्थान पर निवास करने वाले पितृपक्षीय लोगों पर लागू होता था। मध्ययुगीन टीकाकारों के अनुसार पिता की ओर से सात व माँ की ओर से पाँच पीढ़ियों में विवाह नहीं किया जाना चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मनु ने भी ········· को पाप नहीं माना।
2. हवन के लिए अग्नि प्रज्वलित करते समय ········ अपने प्रसिद्ध ऋषि पूर्वजों का नामोच्चारण करता था।
3. प्रवर संस्कार अथवा ········ के उस समुदाय की ओर संकेत करता है जिससे एक व्यक्ति संबंधित होता है।

दायभाग के प्रवर्तक **जीमूतवाहन** पिण्ड का अर्थ जौ या चावल के आटे से बने गोलों से लेते हैं जो मृत व्यक्ति को नदी के किनारे या जलाशय के पास श्राद्ध या मृत्यु के समय तर्पित किये जाते हैं और यह तर्पण का अधिकार एक ही पूर्वज की सन्तानों को ही है। इस प्रकार के पिण्डों का तर्पण करने वाले सपिण्डी माने जाते हैं और वे परस्पर विवाह नहीं कर सकते। कितनी पीढ़ियों के लोगों को सपिण्डी कहें इस बात में मतभेद है। वशिष्ठ ने पिता की ओर से सात व माता की ओर से पाँच, गौतम ने पिता की ओर से आठ व माता की ओर से छः पीढ़ियों तक के लोगों से विवाह करने पर प्रतिबन्ध लगाया है। गौतम ने तो सपिण्ड विवाह करने वाले को प्रायश्चित करने एवं जाति से बहिष्कृत करने की बात कही है।

किन्तु सदैव ही सपिण्डता के नियमों का पालन नहीं हुआ है। कृष्ण ने अपने मामा की लड़की रुक्मणी तथा अर्जुन ने भी अपने मामा की लड़की सुभद्रा से विवाह किया था। कृष्ण ने अपने पिता की ओर से पांचवीं पीढ़ी की लड़की सत्यभामा से भी विवाह किया था। कपाड़िया लिखते हैं कि पांचवीं, छठी और सम्भतः चौथी पीढ़ी में विवाह की परम्परा यादव कुल में भी थी। देवण भट्ट तथा माधवाचार्य ने अपने मामा की लड़की से विवाह का समर्थन किया था। कर्नाटक व मैसूर के ब्राह्मणों में बहिन की लड़की तथा दक्षिण भारत में मामा की लड़की से विवाह करने की प्रथा आज भी प्रचलित है। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 ने सपिण्ड बहिर्विवाह को मान्यता प्रदान की है। माता एवं पिता दोनों पक्षों से तीन-तीन पीढ़ियों के सपिण्डियों में परस्पर विवाह पर रोक लगा दी गयी है। फिर भी यदि किसी समूह की प्रथा अथवा परम्परा इसे निषिद्ध नहीं मानती है तो ऐसा विवाह भी वैध माना जायेगा।

(घ) **ग्राम बहिर्विवाह** (Village Exogamy)–उत्तरी भारत में प्रमुखतः पंजाब एवं दिल्ली के आस-पास यह नियम है कि एक व्यक्ति अपने ही गाँव में विवाह नहीं करेगा। पंजाब में तो उन गाँवों में भी विवाह करने की मनाही है जिनकी सीमा व्यक्ति के गाँव की सीमा को छूती हो। इस प्रकार के विवाह का कारण गाँव की जनसंख्या का सीमित होना, उसमें एक ही गोत्र, वंश अथवा परिवार के सदस्यों का निवास होना, आदि रहे हैं। सगोत्री एवं सपिण्डियों से विवाह के निषेध के कारण ही ऐसे विवाह प्रचलन में आये। गाँवों में इस प्रकार के विवाह को खेड़ा बहिर्विवाह के नाम से जानते हैं।

(ङ) **टोटम बहिर्विवाह** (Totem Exogamy)– इस प्रकार के विवाह का नियम भारतीय जनजातियों में प्रचलित है। टोटम कोई भी एक पशु, पक्षी, पेड़-पौधों अथवा निर्जीव वस्तु हो सकती है जिसे एक गोत्र के लोग आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, उससे अपना आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ते हैं एक गोत्र कास एक टोटम होता है और एक टोटम को मानने वाले परस्पर भाई-बहिन समझे जाते हैं। अत: वे परस्पर विवाह नहीं कर सकते।

कुछ लोग दिशा बहिर्विवाह का पालन करते हैं। जिस दिशा में उनकी कन्या का विवाह होता है उसी दिशा से वे पुत्र-वधू प्राप्त नहीं करते हैं। उत्तरी भारत में एक कहावत प्रचलित है 'पूर्व की बेटी पश्चिम का बेटा' अर्थात् लड़कियाँ पूर्व दिशा के गाँव से प्राप्त की जाती हैं।

बहिर्विवाह के लाभ (Merits of Exogamy)–(*i*) वेस्टरमार्क का मत है कि बहिर्विवाह का प्रचलन अगम्यगमन (incest) अर्थात् निकट सम्बन्धियों में यौन सम्बन्धी को रोकने के लिए हुआ। (*ii*) प्राणीशास्त्रीय दृष्टि से ऐसा माना जाता है कि बहिर्विवाह से उत्पन्न सन्तानें शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से उत्तम होती हैं क्योंकि एक ही पीढ़ी में विवाह करने पर बच्चों में शारीरिक दोष आने की सम्भावना रहती है। (*iii*) बहिर्विवाह के कारण विभिन्न समूहों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ता है और भेद-भाव तथा संघर्ष की सम्भावना समाप्त हो जाती है। (*iv*) बहिर्विवाह के कारण परिवार में सुख-शन्ति एवं प्रेम का वातावरण बना रहता है। यदि परिवार में ही विवाह की छूट दे दी जाय तो परिवार का वातावरण तनाव एवं संघर्षमय हो जायेगा। (*v*) समनर एवं केलर ने अन्तर्विवाह को रूढ़िवादी एवं बहिर्विवाह का प्रगतिवादी बताया है। **पी. वी. काणे** ने लिखा है, "बहिर्विवाह के द्वारा एक पीढ़ी को अपने दोष दूर करने का अवसर मिल जाता है, क्योंकि इसके द्वारा रक्त के संयोग हमेशा नवीन रूप ग्रहण करते हैं।"

इस प्रकार बहिर्विवाह समाज को प्रगतिशील बनाता है तथा उसमें सांस्कृतिक एकता उत्पन्न करता है, समाज में नैतिकता एवं व्यवस्था बनाये रखता है–

बहिर्विवाह से हानियाँ (Demerits of Exogam)–बहिर्विवाह से जहाँ कुछ लाभ हैं वहीं कुछ हानियाँ भी हैं; जैसे–(*i*) इससे विवाह का क्षेत्र संकुचित हो जाता है, अत: विवाह-साथी चुनाव में कठिनाई आती है। **ब्लण्ट** ने बताया कि पिता की ओर से सात व माँ की ओर से पाँच पीढ़ियों को छोड़कर विवाह करने से करीब 2, 121 सम्भाव्य सम्बन्धियों से विवााह वर्जित हो जाता है। (*ii*) विवाह का दायरा सीमित होने से योग्य वर नहीं मिल पाते फलस्वरूप दहेज की समस्या पैदा होती है। (*iii*) दहेज न जुटा पाने के कारण योग्य लड़की को आयोग्य, बूढ़े एवं कुरूप के साथ भी ब्याहना पड़ता है इस कारण से बेमेल विवाह बढ़ते हैं। इस प्रकार के विवाह विधवाओं की समस्या को भी जन्म देते हैं। इस प्रकर बहिर्विवाह के नियम समाज में कई कुरीतियों को जन्म देने के लिए भी उत्तरदायी हैं।

14.2 अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह (Anuloma and Pratiloma Marriages)

हिन्दुओं में विवाह-साथी चुनाव में अनेक निषेधों का पालन किया जाता है उनमें अनुलोम या प्रतिलोम के नियम भी महत्त्वपूर्ण हैं। इन नियमों का पालन लगभग सभी हिन्दू करते हैं। हम यहाँ संक्षेप में इनका उल्लेख करेंगे।

अनुलोम विवाह (Anuloma Marriages)–जब एक उच्च वर्ण, जाति, उपजाति, कुल एवं गोत्र के लड़के का विवाह ऐसी लड़की से किया जाय जिसका वर्ण, जाति, उपजाति, कुल एवं वंश के लड़के से नीचा हो तो ऐसे विवाह को अनुलोमा विवाह कहते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के विवाह में लड़का उच्च सामाजिक समूह का होता है और लड़की निम्न सामाजिक समूह की। उदाहरण के लिए, एक ब्राह्मण लड़के का विवाह क्षत्रिय या वैश्य लड़की से होता है तो इसे हम अनुलोम विवाह कहेंगे। वैदिक काल से लेकर स्मृति काल तक अनुलोम विवाह का प्रचलन रहा है। मनुस्मृति में लिखा है एक ब्राह्मण को अपने से निम्न तीन वर्णों क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की कन्या से क्षत्रिय को अपने से निम्न दो वर्णों वैश्य एवं शूद्र कन्या से और वैश्य अपने वर्ण के अतिरिक्त शूद्र कन्या से भी विवाह कर सकता है, किन्तु मनु पाणिग्रहण संस्कार करने की स्वीकृति केवल सवर्ण विवाह के लिए ही देते हैं। **याज्ञवल्क्य**

नोट

ने भी ब्राह्मण को चार, क्षत्रिय को तीन, वैश्य को दो, एवं शूद्र को एक विवाह करने की बात कही है। मनु ने एक अन्य स्थान पर शुद्र कन्या से द्विज लड़के का विवाह अनुचित भी बताया है। ऐसे विवाह से द्विज का वर्ण दूषित हो जाता है, उसके परिवार का स्तर गिर जाता है। और उसकी सन्तान को शूद्र की स्थिति प्राप्त होती है। ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान को मनु 'पार्षव' (एक जीवित पशु) की संज्ञा देते हैं तथा उसे सम्पत्ति में भी कोई अधिकार नहीं होता है। प्राचीन समय में अनुलोम विवाह का विस्तार वर्णो तक था, किन्तु जब वर्ण अनेक जातियों एवं उपजातियों में बंट गये और उनमें रक्त शुद्धता एवं ऊँच-नीच की भावना पनपी तथा जैन एवं बौद्ध धर्म का उदय हुआ तो कुलीन विवाह (Hypergamy) का प्रचलन हुआ। कुलीन विवाह का तात्पर्य है एक जाति अथवा उपजाति में विवाह करने पर वधू के लिए वर उच्च कुल या गाँव से प्राप्त किया जाता है। कुलीन विवाह का सर्वाधिक प्रचलन बंगाल में रहा है जहाँ उच्च कुल के लड़के का विवाह निम्न कुल की कई लड़कियों से होता था। **डॉ. राधाकृष्णन्** का मत है कि भारत में अनुलोम विवाहों का प्रचलन दसवीं शताब्दी तक रहा है।

रिजले का मत है कि प्रारम्भ में अन्तर्वर्ण विवाहों का प्रचलन इण्डो-आर्यन प्रजाति में स्त्रियों की कमी पूरी करने के लिए हुआ और जैसे ही उनकी आवश्यकता की पूर्ति हो गयी उन्होंने ऐसे विवाहों पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

अनुलोम विवाह के प्रभावः हानियों (Effect of Anuloma: Demerits)—अनुलोम विवाह ने समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दिया। उसके निम्नांकित दुष्परिणाम निकले—

1. **उच्च कुलों में लड़कों की कमी**—जो कुछ सामाजिक दृष्टि से ऊँचा माना जाता है उस कुल के लड़कों से नीचा समझा जाने वाले कुल के लोग अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं, परिणामस्वरूप ऊँचे कुल की लड़कियों के लिए वर का अभाव हो जाता है और उन्हें अविवाहित ही रहना पड़ता है।

2. **नीच कुलों में लड़कियों की कमी**—नीच कुल के सभी लोग जब अपनी कन्या का विवाह उच्च कुल में कर देते हैं तो नीच कुल में लड़कों के लिए कन्या का अभाव हो जाता है, और कई लड़कों को अविवाहित ही रहना पड़ता है।

3. **बहुपति एवं बहुपत्नी विवाह का जन्म**—ऊँचे कुल के लड़के से नीचे कुल के सभी लोग अपनी कन्या का विवाह करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में उच्च कुल में बहुपत्नी विवाह का प्रचलन होगा, दूसरी ओर नीचे कुल में लड़कियों का अभाव होने पर बहुपति विवाह का प्रचलन होगा।

4. **वर-मूल्य प्रथा**—जब नीचे कुल वाले उच्च कुल के लड़कों को वर के रूप में प्राप्त करना चाहते हैं तो लड़कों का अभाव हो जाता है। ऐसी स्थिति में वर-मूल्य प्रथा प्रचलन बढ़ जाता है।

5. **बेमेल विवाह**—अनुलोम विवाह के कारण ऊँचे कुल में लड़की का विवाह कभी-कभी प्रौढ़ या वृद्ध व्यक्ति के साथ भी कर दिया जाता है। बंगाल एवं बिहार में उच्च कुलों के कई लड़कों के तो सौ तक पत्नियाँ होती हैं जिन्हें याद रखने के लिए रजिस्टर रखना होता है। कई बार तो वधू की आयु वर की पुत्री के बराबर होती है।

6. **बाल-विधवाओं में वृद्धि**—अनुलोम विवाह के कारण उच्च कुल के पुरुषों के कई पत्नियाँ होती हैं। ऐसे व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर समाज में बाल-विधवाओं की संख्या बढ़ जाती है।

7. **बाल-विवाह का प्रचलन**—अनुलोम विवाह में प्रत्येक पिता यह चाहता है कि उसकी कन्या का विवाह उच्च कुल के लड़के से हो अतः ज्योंही कोई योग्य वर मिला कि कन्या का विवाह कर दिया जाता है। कई बार तो चार-पाँच वर्ष से कम आयु की कन्याओं का भी विवाह कर दिया जाता है।

8. **कन्या-मूल्य का प्रचलन**—अनुलोम विवाह के कारण नीच कुलों में कन्याओं का अभाव हो जाता है जिसके फलस्वरूप कन्या-मूल्य का प्रचलन होता है।

9. **सामाजिक बुराइयाँ**—अनुलोम विवाह प्रथा में समाज में रूढ़िवादिता तथा सामाजिक पारिवारिक एवं वैयक्तिक जीवन में अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। निम्न कुल की लड़कियों का देर तक विवाह न होने पर समाज में भ्रष्टाचार व नैतिक पतन की समस्या पैदा होती है। कई कन्याएँ तो जब उनके माता-पिता द्वारा वर-मूल्य नहीं जुटाया जाता तो वे सामाजिक निन्दा से तंग आकर आत्महत्या तक कर लेती हैं।

प्रतिलोम विवाह (Pratiloma Marriage or Hypogamy)–अनुलोम विवाह का विपरीत रूप प्रतिलोम विवाह है। इस प्रकार के विवाह में लड़की उच्च वर्ण, जाति, उपजाति, कुल या वंश की होती है और लड़का निम्न वर्ण, जाति, उपजाति, कुल या वंश का। इसे परिभाषित करते हुए **कपाड़िया** लिखते हैं, "एक निम्न वर्ण के व्यक्ति का उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता था।" उदाहरण के लिए, यदि एक ब्राह्मण लड़की का विवाह किसी क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र लड़के से होता है तो ऐसे विवाह को हम प्रतिलोम विवाह कहेंगे। इस प्रकार के विवाह में स्त्री की स्थिति निम्न हो जाती है। स्मृतिकारों ने इस प्रकार के विवाह की कटु आलोचना की है। ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान को 'चाण्डाल' अथवा 'निषाद' कहा जाता था। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1949 एंव 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम में अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह दोनों को ही वैध माना गया है।

टास्क अनुलोम और प्रतिलोम विवाह के बारे में आप क्या जानते हैं?

14.3 पश्चिम में जीवन-साथी का चुनाव (Mate Selection in West)

ईसाइयों में धार्मिक रूप से 13 वर्ष की लड़की और 16 वर्ष के लड़के को विवाह की आज्ञा प्राप्त है, लेकिन इनमें साधारणतः विलम्ब-विवाह ही होते हैं। श्री एस. के. गुप्ता ने एक सर्वेक्षण के आधार पर कहा है कि 52.5 प्रतिशत ईसाई विवाह 21 से 25 वर्ष की आयु के बीच और 17.5 प्रतिशत 30 वर्ष से अधिका आयु के बीच सम्पन्न किये गये, किन्तु 20 वर्ष से कम की आयु में कोई भी विवाह सम्पन्न नहीं पाये गये। इतना स्पष्ट है कि ईसाइयों में प्रायः 20 वर्ष से अधिक आयु के लड़के-लड़कियों के ही विवाह सम्पन्न होते हैं, उनमें बाल-विवाह का प्रचलन बिल्कुल नहीं पाया जाता है।

ईसाइयों में रक्त-सम्बन्धियों को छोड़कर शेष परस्पर विवाह किये जा सकते हैं। ईसाई पुरुष अपनी मृत पत्नी की बहन, भाई की विधवा स्त्री, मृत पत्नी के भाई या बहन की लड़की से भी विवाह कर सकता है। इनमें विधवा विवाह का निषेध नहीं है, विधवाओं को विवाह करने की आज्ञा प्राप्त है। ईसाइयों में हिन्दुओं के समान 'दहेज' या 'कन्या-मूल्य' और मुसलमानों के समान 'मेहर' के लेन-देन का कोई प्रचलन नहीं है।

ईसाइयों में जीवन-साथी का चुनाव अधिक स्वतन्त्र वातावरण में होता है। यह चुनाव माता-पिता द्वारा भी किया जाता है और स्वयं लड़के-लड़कियों द्वारा भी। परम्परागत ईसाई विवाह में यह चुनाव मुख्यतः माता-पिता के द्वारा ही किया जाता है। युवक प्रेम को अपना ध्येय बना लेते हैं, जिसके सामने वे गृहस्थी, समाज, धर्म और जाति के सम्बन्धों को भी कुछ नहीं समझते। कोई ऐसा विशेष कारण भी नहीं है कि विवाह के सम्बन्ध में युवक अपने माता-पिता की सम्पत्ति न लें या उन पर विश्वास न करें। ईसाइयों में जीवन-साथी के चुनाव में माता-पिता की स्वीकृति साधारणतः ली जाती है। वर्तमान समय में नगरीय क्षेत्रों में जीवन-साथी के चुनाव में लड़के-लड़की स्वयं महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और माता-पिता का हस्तक्षेप कम होता है। आजकल माता-पिता भी प्रायः अपने लड़के-लड़कियों द्वारा किये गये जीवन-साथी के चुनाव का समर्थन कर देते हैं।

क्या आप जानते हैं 'मसीह आवाज' में कहा गया है कि हमारे युवा युवतियों को अपने माता-पिता की सहायता लेनी चाहिए। युवावस्था में स्वाभिमान और बलिदान का भाव बहुत होता हे।

नोट

14.4 ईसाइयों में विवाह पद्धति (Marriage Ritual Among Christians)

ईसाइयों में विवाह को जीवन भर का एक पवित्र बन्धन माना जाता है, जिसमें विवाह-विच्छेद को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह विवाह एक पुरुष और एक स्त्री का ही पवित्र मिलन है। इन लोगों में एक से अधिक पति या पत्नियों का प्रचलन नहीं है। विवाह के लिए जब जीवन-साथी का चुनाव अन्तिम रूप से कर लिया जाता है। और वधू-पक्ष, वर-पक्ष द्वारा रखे गये विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है, तो सगाई या मंगनी का संस्कार सम्पन्न होता है। किसी निश्चित दिन वर-पक्ष और वधू-पक्ष वाले अपने परिजनों एवं मित्रों सहित गिरजाघर में पहुँच जाते है। वर-पक्ष वाले अपने साथ मिठाई, नारियल, वस्त्र, अँगूठी तथा रुपये, आदि ले जाते हैं। इस अवसर पर होने वाले वर-वधू पास-पास बैठाये जाते हैं और पादरी बाइबिल के कुछ अंश पढ़ता है। यहाँ औपचारिक रूप से वैवाहिक-सम्बन्धों की वर-वधू द्वारा स्वीकृति प्राप्त की जाती है। दोनों ही एक-दूसरे को अँगूठियाँ पहनाते हैं और इस अवसर पर मंगनी की घोषणा कर दी जाती है। इसके बाद मिठाई वितरण, जलपान, आदि होता है।

विवाह संस्कार के लिए लड़के और लड़की अथवा दोनों में से किसी एक को चर्च के अधिकारी को विवाह हेतु प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है, जिसमें दोनों के परिवारों का संक्षिप्त परिचय होता है इस प्रार्थना-पत्र के प्राप्त होने पर चर्च का अधिकारी इस आशय की सूचना प्रकाशित करता है ताकि यदि इस विवाह से सम्बन्धित किसी को भी कोई आपत्ति हो, तो वह प्रस्तुत की जा सके । इस सूचना के प्रकाशित होने के 96 घंटे के पश्चात् विवाह सम्पन्न किया जा सकता है। इस विवाह के सम्बन्ध में किसी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं आने पर, विवाह की तिथि निश्चित कर ली जाती है। विवाह-कार्य साधारणतः उस गिरजाघर में सम्पन्न होता है, जिसकी लड़की सदस्या है। यदि लड़के-लड़की में से एक प्रोटेस्टेण्ट चर्च का सदस्य है और दूसरा कैथोलिक चर्च को तो ऐसी स्थिति में विवाह कैथोलिक चर्च में ही सम्पन्न होता है। विवाह के प्रार्थना-पत्र देने के तीन महीने की अवधि में विवाह सम्पन्न करना पड़ता है, वरना पुनः चर्च के अधिकारी को प्रार्थना-पत्र देना होता है।

विवाह के लिए निश्चत की गयी तिथि को वर-पक्ष और वधू-पक्ष वाले गिरजाघर में पहुँच जाते हैं। वर-पक्ष वाले दायीं ओर और वधू-पक्ष वाले बायीं ओर बैठ जाते हैं। वधू के गिरजाघर में पहुँचने पर उसके स्वागत में चर्च का घण्टा बजता है; सब उपस्थित लोग खड़े हो जाते हैं और फिर गीत गाये जाते हैं। तत्पश्चात् पादरी लड़के-लड़की को यह घोषित करने को कहता है कि उनके विवाह में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। फिर दोनों के द्वारा यह प्रतिज्ञा की जाती है कि वे आजीवन एक-दूसरे के साथ पवित्र बन्धन में बंधे रहेंगे; सुख-दु:ख में एक-दूसरे का सदैव साथ देंगे। पादरी पहले लड़के से पूछता है कि क्या तुम्हें यह लड़की पत्नी के रूप में स्वीकार है? जब लड़का इसकी स्वीकृति दे देता है, तो पादरी फिर उससे कहता है कि क्या तुम पवित्र वैवाहिक जीवन बिताने का, प्रत्येक परिस्थिति में पत्नी का साथ देने का उसके प्रति वफादारी से रहने का, मुत्यु पर्यन्त उसका साथ नहीं छोड़ने का वायदा करते हो? इस सम्बन्ध में वर की स्वीकृति प्राप्त हो जाने पर पादरी लड़की से भी ये सब प्रश्न करता है और उसकी भी स्वीकृति प्राप्त करता है। फिर वर और वधू अपनी अँगूठियाँ बदल लेते हैं। इसके पश्चात् पादरी घोषित करता है कि ये दोनों पति-पत्नी हो गये हैं। वह तीन बार 'आमीन' कहता है और इसके साथ ही विवाह सम्पन्न मान लिया जाता है। इस अवसर पर पादरी वर-वधू को आशीर्वाद देता है।

कुछ परिवारों में लोग गिरजाघरों में इस प्रकार का धार्मिक विवाह न करके **सिविल मैरिज** करते हैं। सिविल मैरिज आदालत की सहायता से किया गया एक मामूली समझौता मात्र होता है इसके लिए विवाह के इच्छुक लड़के-लड़की को रजिस्ट्रार को प्रार्थना-पत्र देना होता है और कानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है। 1872 के 'भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम' के अनुसार, विवाह के लिए लड़के-लड़कियों की न्यूनतम आयु क्रमशः 16 वर्ष और 13 वर्ष होनी चाहिए और विवाह के समय किसी का भी दूसरा पक्ष जीवित नहीं होना चाहिए। विवाह के समय लड़के-लड़की

नोट

की आयु निर्धारित आयु से कम होने पर उनके अभिभावकों की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती। सिविल मैरिज करने वाले पति-पत्नी आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु गिरजाघर में भी जाते हैं। ईसाइयों में अधिकांश विवाह धार्मिक विवाह ही होते हैं, जो गिरजाघर में सम्पन्न किये जाते हैं।

टास्क ईसाइयों में विवाह पद्धति के बारे में उल्लेख करें?

14.5 सारांश (Summary)

- प्रत्येक समाज में जीवन-साथी चुनाव के कुछ नियम पाए जाते हैं। जीवन-साथी चुनाव के दौरान तीन बातें सामने आती हैं—चुनाव का क्षेत्र, चुनाव का पक्ष एवं चुनाव की कसौटियाँ।
- विवाह के सभी नियमों को हम अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह, अनुलोम एवं प्रतिलोम आदि चार भागों में बाँट सकते हैं।
- अंतर्विवाह का तात्पर्य है, एक व्यक्ति अपने जीवन-साथी का चुनाव अपने ही समूह में से करता है।
- बहिर्विवाह का तात्पर्य है एक व्यक्ति जिस समूह का सदस्य है उससे बाहर विवाह कर सकता है।
- पश्चिम में ईसाइयों में जीवन-साथी का चुनाव स्वतंत्र वातावरण में होता है। यह चुनाव माता-पिता द्वारा भी किया जाता है तथा स्वयं लड़के-लड़कियों द्वारा भी।

14.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **गोत्र (Gotra)**—उन व्यक्तियों के समूह से है जिसकी उत्पत्ति एक ही ऋषि पूर्वज से हुई हो। हिन्दुओं में सगोत्र विवाह निषिद्ध है।
2. **टोटम बहिर्विवाह (Totam Exogamy)**—एक गोत्र का एक टोटम होता है और एक टोटम को मानने वाले परस्पर विवाह नहीं करते।

14.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में जीवन-साथी चुनाव के क्या-क्या तरीके या नियम हैं?
2. अंतर्विवाह के कारण क्या-क्या हैं?
3. अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह में क्या अंतर है?
4. पश्चिम में जीवन-साथी का चुनाव कैसे किया जाता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. संगोत्र विवाह 2. पुरोहित 3. ज्ञान।

नोट

14.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में समाज–विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।
2. परिवार का समाजशास्त्र–डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
3. भारत में परिवारिक समाजशास्त्र का विकास–अल्का रानी, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।
4. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ–गुप्ता एवं शर्मा।

नोट

इकाई–15: कन्याधन एवं दहेज (Bride-Wealth and Dowry)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
15.1 कन्याधन एवं दहेज-प्रथा (Bride-Wealth and Dowry System)
15.2 दहेज के कारण (Causes of Dowry)
15.3 सारांश (Summary)
15.4 शब्दकोश (Keywords)
15.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
15.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विवाह से संबंधित समस्या दहेज-प्रथा के जन्म के कारणों को बताना।
- दहेज-प्रथा के दुष्परिणामों को स्पष्ट करना।
- दहेज-निरोधक कानून की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

प्राचीन काल से ही हिन्दुओं में विवाह एक पवित्र संस्कार के रूप में माना जाता रहा है। इसे प्रत्येक हिन्दू के लिए एक आवश्यक कर्तव्य माना गया है क्योंकि इसके द्वारा विभिन्न ऋणों, पुरुषार्थों एवं आश्रमों की पूर्ति होती है। विवाह धर्म, परिवार, समाज एवं जाति का मुख्य आधार रहा है। प्राचीन भारतीय समाज में विवाह बन्धन में बंधने वाले दोनों ही पक्ष परस्पर एक-दूसरे का सम्मान करते और वैवाहिक कर्तव्यों को निभाते। समय के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में कई परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने हमारी सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित किया और विवाह संस्था भी अछूती नहीं रही। समाज में रूढ़ियां बढ़ती और बिना तर्क के उन्हें स्वीकार किया गया। ईश्वर के नाम पर धर्म एवं समाज में अनेक कुप्रथाओं ने जन्म लिया और हमारे धर्मभीरु समाज ने उन्हें दृढ़ता प्रदान की।

नोट

उपर्युक्त परिस्थितियों के कारण हिन्दू समाज में विवाह से सम्बन्धित अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। इनमें से प्रमुख हैं, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, विवाह-विच्छेद, अन्तर्जातीय विवाह निषेध, आदि।

15.1 कन्याधन एवं दहेज-प्रथा (Bride-Wealth and Dowry System)

वर्तमान में दहेज एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। इसके कारण माता-पिता के लिए लड़कियों का विवाह एक अभिशाप बन गया है। सामान्यत: दहेज उस धन या सम्पत्ति को कहते हैं जो विवाह के समय कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष को दिया जाता है। **फेयरचाइल्ड** के अनुसार, "दहेज वह धन सम्पत्ति है जो विवाह के अवसर पर लड़की के माता-पिता या अन्य निकट सम्बन्धियों द्वारा दी जाती है।" **मैक्स रेडिन** (Max Radin) लिखते हैं, "साधारणत: दहेज वह सम्पत्ति है जो एक पुरुष विवाह के समय अपनी पत्नी या उसके परिवार से प्राप्त करता है।" **दहेज निरोधक अधिनियम,** 1961 के अनुसार, "दहेज का अर्थ कोई ऐसा सम्पत्ति या मूल्यवान निधि है, जिसे (*i*) विवाह करने वाले दोनों पक्षों में से एक पक्ष ने दूसरे पक्ष को अथवा (*ii*) विवाह में भाग लेने वाले दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष के माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति ने किसी दूसरे पक्ष अथवा उसके किसी व्यक्ति को विवाह के समय, विवाह के पहले या विवाह के बाद विवाह की आवश्यक शर्त के रूप में दी हो अथवा देना स्वीकार किया हो।" दहेज की यह परिभाषा अत्यन्त विस्तृत है जिसमें वर-मूल्य एवं कन्या-मूल्य दोनों ही आ जाते हैं। साथ ही इसमें उपहार एवं दहेज में अन्तर किया गया है। दहेज विवाह की एक आवश्यक शर्त के रूप में दिया जाता है जबकि उपहार देने वाला अपनी स्वेच्छा से देता है।

कभी-कभी वर-मूल्य एवं दहेज में अन्तर किया जाता है। दहेज लड़की के माता-पिता स्नेहवश देते हैं, यह पूर्व-निर्धारित नहीं होता और कन्या-पक्ष के सामर्थ्य पर निर्भर होता है, जबकि वर-मूल्य वर के व्यक्तिगत गुण, शिक्षा, व्यवसाय, कुलीनता तथा परिवार की स्थिति, आदि के आधार पर वर-पक्ष की ओर से मांगा जाता है और विवाह से पूर्व ही तय कर लिया जाता है।

दहेज का प्रचलन प्राचीन काल से ही रहा है। ब्राह्म विवाह में पिता वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित कन्या का विवाह योग्य वर के साथ करता था। रामायण एवं महाभारत काल में भी दहेज का प्रचलन था। सीता एवं द्रौपदी आदि को दहेज में आभूषण, घोड़े, हीरे-जवाहरात एवं अनेक बहुमूल्य वस्तुएं देने का उल्लेख किया है। उस समय दहेज कन्या के प्रति स्नेह के कारण स्वेच्छा से ही दिया जाता था। दहेज का प्रचलन राजपूत काल में तेरहवीं एवं चौदहवीं सदी से प्रारम्भ हुआ और कुलीन परिवार अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार दहेज की मांग करने लगे। बाद में अन्य लोगों में भी इसका प्रचलन हुआ। उच्च शिक्षा प्राप्त, धनी, अच्छे व्यवसाय या नौकरी में लगे हुए एवं उच्च कुल के वर को प्राप्त करने के लिए वर्तमान में लड़की के पिता को अच्छा-खासा दहेज देना होता है। शिक्षा एवं सामाजिक चेतना की वृद्धि के साथ-साथ दहेज का प्रचलन घटने की बजाय बढ़ा दी है और इसने वीभत्स रूप ग्रहण कर लिया है।

भारतवर्ष इस प्रथा के लिए विश्वभर में बदनाम है। यहाँ जन्म से ही लड़की को पराया धन कहा जाता है उसके पालन-पोषण पर लड़कों से कम ध्यान दिया जाता है। माता-पिता कन्या को पराया धन समझकर उसके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते हैं। लड़की को अपने साथ दहेज नहीं ले जाने पर ससुराल में ताने सुनने पड़ते हैं; साथ ही दहेज के कारण लड़कियों को जलाकर मार भी दिया जाता है।

नोट्स वर्तमान में दहेज एवं वर मूल्य में विशेष फर्क नहीं समझा जाता है, क्योंकि आजकल अधिकाशत: दहेज का प्रचलन वर-वधू के रूप में या विवाह की शर्त के शुरू में ही है।

15.2 दहेज के कारण (Causes of Dowry)

1. **जीवन-साथी चुनने का सीमित क्षेत्र**—जब कन्या का विवाह अपने ही वर्ण, जाति या उपजाति में करना होता है तो विवाह का दायरा बहुत सीमित हो जाता है और योग्य वर के लिए दहेज देना आवश्यक हो जाता है।
2. **बाल-विवाह**—बाल-विवाह के कारण वर एवं वधू का चुनाव उनके माता-पिता द्वारा किया जाता है और वे अपने लाभ के लिए दहेज की मांग करते हैं।
3. **विवाह की अनिवार्यता**—हिन्दुओं में कन्या का विवाह अनिवार्य माना गया है। इसका लाभ उठाकर वर-पक्ष के लोग अधिकाधिक दहेज की मांग करते हैं।
4. **कुलीन विवाह**—कुलीन विवाह के कारण ऊंचे कुलों के लड़कों की मांग बढ़ जाती है और उन्हें प्राप्त करने के लिए कन्या पक्ष को दहेज देना होता है।
5. **शिक्षा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा**—वर्तमान समय में शिक्षा एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का अधिक महत्त्व होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी कन्या का विवाह शिक्षित एवं प्रतिष्ठित लड़के के साथ करना चाहता है जिसके लिए उसके काफी दहेज देना होता है क्योंकि ऐसे लड़कों की समाज में कमी पायी जाती है।
6. **धन का महत्त्व**—वर्तमान में धन का महत्त्व बढ़ गया है और इसके द्वारा व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा निर्धारित होती है। जिस व्यक्ति को अधिक दहेज प्राप्त होता है, उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ जाती है। यही नहीं, बल्कि अधिक दहेज देने वाले व्यक्ति की भी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ जाती है।
7. **महंगी शिक्षा**—वर्तमान में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए काफी धन खर्च करना पड़ता है जिसे जुटाने के लिए वर पक्ष के लोग दहेज की मांग करते हैं। शिक्षा के लिए लिये गये ऋण का भुगतान भी कई बार दहेज द्वारा किया जाता है।
8. **प्रदर्शन एवं झूठी प्रतिष्ठा**—अपनी प्रतिष्ठा एवं शान का प्रदर्शन करने के लिए भी लोग अधिकाधिक दहेज लेते एवं देते हैं।
9. **गतिशीलता में वृद्धि**—वर्तमान समय में यातायात के साधनों की उन्नति एवं विकास हुआ है, नगरीकरण एवं औद्योगीकरण बढ़ा है, परिणामस्वरूप एक जाति एवं उपजाति की गतिशीलता में वृद्धि हुई है और उनके सदस्य दूर-दूर तक फैल गये हैं। इस कारण अपनी ही जाति या उपजाति में वर ढूंढ़ना कठिन हो गया है। फलस्वरूप दहेज-प्रथा को बढ़ावा मिला है।
10. **सामाजिक प्रथा**—दहेज का प्रचलन समाज में एक सामाजिक प्रथा के रूप में ही पाया जाता है। जो व्यक्ति अपनी कन्या के लिए दहेज देता है वह अपने पुत्र के लिए भी दहेज प्राप्त करना चाहता है।
11. **दुष्चक्र** (Vicious circle)– दहेज एक दुष्कक्र है जिन लोगों ने अपनी लड़कियों के लिए दहेज दिया है वे भी अवसर आने पर अपने लड़कों के लिए दहेज प्राप्त करना चाहते हैं। इसी प्रकार से लड़के के लिए दहेज प्राप्त करके वे अपनी लड़कियों के विवाह के लिए देने के लिए उसे सुरक्षित रखना चाहते हैं।

टास्क दहेज के कारणों पर प्रकाश डालें।

दहेज-प्रथा के दुष्परिणाम (Evil Effects of Dowry System)

दहेज-प्रथा के परिणामस्वरूप समाज में अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, इनमें से प्रमुख अग्र प्रकार हैं–

1. **बालिका वध**—दहेज की अधिक मांग होने के कारण कई व्यक्ति कन्या को पैदा होते ही मार डालते हैं। इसका प्रचलन राजस्थान में विशेष रूप से रहा है, किन्तु वर्तमान में यह प्रथा प्राय: समाप्त हो चुकी है।

2. **पारिवारिक विघटन**—कम दहेज देने पर कन्या को ससुराल में अनेक प्रकार के कष्ट दिये जाते हैं। दोनों परिवारों में तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं और पति-पत्नी का सुखी वैवाहिक जीवन उजड़ जाता है।
3. **हत्या एवं आत्महत्या**—जिन लड़कियों को अधिक दहेज नहीं दिया जाता उनको ससुराल में अधिक सम्मान नहीं होता, उन्हें कई प्रकार से तंग किया जाता है। इस स्थिति से मुक्ति पाने के लिए बाध्य होकर कुछ लड़कियाँ आत्महत्या तक कर लेती हैं। दहेज के अभाव में कन्या का देर तक विवाह न होने पर उसे सामाजिक निन्दा का पात्र बनना पड़ता है, ऐसी स्थिति में भी कभी-कभी लड़की आत्महत्या कर लेती है।

   जब दहेज की मात्रा आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं होती है तो बहू को जला दिया जाता है या उसकी हत्या कर दी जाती है। सन् 1987 में 2,912, सन् 1990 में 4,148 और 1991 में 5,157 मामले दहेज हत्या के दर्ज किये गये। पति और ससुराल वालों द्वारा क्रूरता के 1983 में 1,160 और 1991 में 15, 949 मामले दर्ज किये गये। दहेज हत्या के सर्वाधिक मामले उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल एवं मध्य प्रदेश में दर्ज किये गये।
4. **ऋणग्रस्तता**—दहेज देने के लिए कन्या के पिता को रुपया उधार लेना पड़ता है या अपनी जमीन एवं जेवरात, मकान आदि को गिरवीं रखना पड़ता है या बेचना पड़ता है परिणामस्वरूप परिवार ऋणग्रस्त हो जाता है। ब्याज की ऊंची दर के कारण उधार लिया हुआ रुपया चुकाना कठिन हो जाता है। अधिक कन्याएं होने पर तो आर्थिक दशा और भी बिगड़ जाती है।
5. **निम्न जीवन-स्तर**—कन्या के लिए दहेज जुटाने के लिए परिवार को अपनी आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ती है। बचत करने के चक्कर में परिवार का जीवन-स्तर गिर जाता है।
6. **बहुपत्नी विवाह**—दहेज प्राप्त करने के लिए एक व्यक्ति कई विवाह करता है इससे बहुपत्नीत्व का प्रचलन बढ़ता है।
7. **बेमेल विवाह**—दहेज के अभाव में कन्या का विवाह अशिक्षित, वृद्ध, कुरूप, अपंग एवं अयोग्य व्यक्ति के साथ भी करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में कन्या को जीवन भर कष्ट उठाना पड़ता है।
8. **विवाह की समाप्ति**—दहेज के अभाव में कई लोग अपने वैवाहिक सम्बन्ध कन्या पक्ष से समाप्त कर देते हैं। कई बार तो दहेज के अभाव में तोरण द्वार से बारात वापस लौट जाती है और कुछ लड़कियों को कुंआरी ही रहना पड़ता है।
9. **अनैतिकता**—दहेज के अभाव में कई लड़कियों को देर तक विवाह नहीं हो पाता है और वे अपनी यौन इच्छाओं की पूर्ति अनैतिक तरीकों से करती है इससे भ्रष्टाचार बढ़ता है।
10. **अपराध को प्रोत्साहन**—दहेज जुटाने के लिए कई अपराध भी किये जाते हैं, रिश्वत, चोरी एवं गबन के द्वारा धन एकत्र किया जाता है, आत्महत्या एवं भ्रष्टाचार में वृद्धि होती है।
11. **मानसिक बीमारियां**—दहेज एकत्र करने एवं योग्य वर की तलाश में माता-पिता चिन्तित रहते हैं। माता-पिता एवं लड़कियों में चिन्ता के कारण कई मानसिक बीमारियां पैदा हो जाती हैं।
12. **स्त्रियों की निम्न स्थिति**—दहेज के कारण स्त्रियों की सामाजिक स्थिति गिर जाती है, उनका जन्म अपशकुन माना जाता है और उन्हें भावी विपत्ति का सूचक समझा जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. दहेज के अभाव में ········· का देर तक विवाह न होने पर उसे सामाजिक निन्दा का पात्र बनना पड़ता है।
2. जब दहेज की मात्रा ········ के अनुरूप नहीं होती है तो बहू को जला दिया जाता है।
3. दहेज हत्या के ········ मामले उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल एवं मध्य प्रदेश में दर्ज किये गये।

दहेज-प्रथा के लाभ (Merits of Dowry)

कुछ लोग दहेज के पक्ष में निम्नांकित तर्क देते हैं–

1. दहेज के कारण **कुरूप कन्याओं का भी विवाह हो जाता है।**
2. दहेज न जुटाने की स्थिति में कन्याओं का देर तक विवाह न होने से **बाल-विवाह समाप्त हो जाते हैं।**
3. दहेज के अभाव में देर तक विवाह न होने पर माता-पिता लड़कियों को शिक्षा दिलाते रहते हैं, इससे **स्त्री-शिक्षा में वृद्धि** होती है।

दहेज-प्रथा को समाप्त करने हेतु सुझाव (Suggestions to end Dowry System)

डॉ. अल्टेकर–ने लिखा है कि हिन्दू समाज के लिए यह उचित समय है कि दहेज की दूषित प्रथा को जिसने अनेक अबोध कन्याओं को आत्महत्या के लिए प्रेरित किया है, समाप्त कर दे। इसे समाप्त करने हेतु निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. **स्त्री-शिक्षा**–स्त्री-शिक्षा का अधिकाधिक प्रसार किया जाय ताकि वे पढ़-लिखकर स्वयं कमाने लगें। ऐसा होने पर उनकी पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता समाप्त होगी तथा इसके परिणामस्वरूप विवाह की अनिवार्यता भी न रहेगी।
2. **जीवन-साथी के चुनाव की स्वतन्त्रता**–लड़के व लड़कियों को अपना जीवन-साथी स्वयं चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर अपने आप दहेज प्रथा समाप्त हो जायेगी।
3. **प्रेम-विवाह**–प्रेम-विवाह की स्वीकृति होने पर भी दहेज की समस्या समाप्त हो जायेगी।
4. **अन्तर्जातीय विवाह**–अन्तर्जातीय विवाह की छूट होने पर विवाह का दायरा विस्तृत होगा। परिणामस्वरूप दहेज-प्रथा समाप्त हो सकेगी।
5. **लड़कों को स्वावलम्बी बनाया जाय**–जब लड़के पढ़-लिखकर स्वयं अर्जन करने लगेंगे तो योग्य वर का अभाव दूर हो जायेगा, उनके लिए प्रतियोगिता कम हो जायेगी फलस्वरूप दहेज भी घट जायेगा।
6. **स्वस्थ जनमत**–दहेज विरोधी जनमत तैयार किया जाए। लोगों में जाग्रति पैदा की जाए जिससे कि वे दहेज का विरोध करें। इसके लिए अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार के साधनों का उपयोग किया जाए। समाज-सुधारकों एवं युवकों द्वारा इस ओर अपने विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए।
7. **दहेज विरोधी क़ानून**–दहेज प्रथा की समाप्ति के लिए कठोर कानूनों का निर्माण किया जाए एवं दहेज मांगने वालों को कड़ी-से-कड़ी सजा दी जाए। वर्तमान में 'दहेज निरोधक अधिनियम, 1961' लागू है, परन्तु यह अधिनियम अपनी कई कमियों के कारण दहेज-प्रथा को कम करने में असफल रहा है। वर्तमान में इस अधिनियम को संशोधित कर इसे कठोर बना दिया गया है तथा दो व्यक्तियों को अधिक सजा देने की व्यवस्था की गयी है।

8. **युवा आन्दोलन**–दहेज-प्रथा को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि युवक स्वयं जागरूक होकर इसका विरोध करें। इसके लिए दृढ़ निश्चय का होना अनिवार्य है।

दहेज निरोधक अधिनियम, 1961 (Dowry Prohibition Act, 1961)

हिन्दू समाज में दहेज की भीषण समस्या को हल करने के लिए भारतीय संसद में मई 1961 में 'दहेज निरोधक अधिनियम' पारित किया गया। इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(1) इस अधिनियम में दहेज को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: "विवाह के पहले या बाद में विवाह की एक शर्त के रूप में, एक पक्ष या व्यक्ति द्वारा दूसरे पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दी गयी कोई भी सम्पत्ति या मूल्यवान वस्तु 'दहेज' कहलायेगी।" (2) विवाह के अवसर पर दी जाने वाली भेंट या उपहार को 'दहेज' नहीं माना जायेगा। (3) दहेज लेने व देने वाले तथा इस कार्य में मदद करने वाले व्यक्ति को छः माह की जेल और पांच हजार रुपये तक का दण्ड दिया जा सकता है। (4) दहेज लेने व देने सम्बन्धी किया गया कोई भी समझौता ग़ैर-कानूनी होगा। (5) विवाह में भेंट दी गयी वस्तुओं पर कन्या का अधिकार होगा। (6) धारा 7 के अनुसार दहेज सम्बन्धी अपराध की सुनवाई प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट ही कर सकता है और ऐसी शिकायत लिखित रूप में एक वर्ष के अन्दर ही की जानी चाहिए।

इस सन्दर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि दहेज निरोधक अधिनियम में उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश सरकारों ने संशोधन कर इसे कठोर बना दिया है। उत्तर प्रदेश ने 1976 में इस अधिनियम में संशोधन किया जिसके अनुसार विवाह के समय कोई भी पक्ष 5 हजार रुपयों से अधिक खर्च नहीं करेगा जिसमें विवाह के उपहार भी सम्मिलित हैं। अब बिना किसी शिकायत के भी पुलिस और प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट ऐसे मामले की रिपोर्ट तथा जांच कर सकते हैं। 1984 एवं 1986 में दहेज निरोधक अधिनियम, 1961 में संशोधन कर इसे और कठोर बनाया गया। दहेज के विरुद्ध अपराध अब संज्ञेय (Cognizable), ग़ैर-ज़मानती है तथा अभियुक्त को ही यह प्रमाण देना होता है कि वह निर्दोष है।

क्या आप जानते हैं दहेज निरोधक अधिनियम 1961 के संदर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि दहेज निरोधक अधिनियम में उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश की सरकारों ने संशोधन किया है।

15.3 सारांश (Summary)

- दहेज का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। रामायण एवं महाभारत काल में भी दहेज का प्रचलन था। उस समय दहेज स्वेच्छा से दिया जाता था।
- वर्तमान में धन का महत्त्व इतना बढ़ गया है कि यह अब सामाजिक प्रतिष्ठा बन गई है।
- दहेज-प्रथा का परिणाम यह हुआ है कि दहेज के आभाव में कन्या का विवाह अशिक्षित, अपंग, अयोग्य व्यक्ति से करना पड़ता है।
- हिंदू समाज में दहेज की भीषण समस्या को हल करने के लिए सन् 1961 में 'दहेज निरोधक अधिनियम' पारित किया गया।

15.4 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. **प्रतिकारी क़ानून (Restitutive law)**–इस प्रकार के क़ानून का मुख्य उद्देश्य अपराधी द्वारा की गई क्षति की पूर्ति करना है।
2. **दमनकारी क़ानून (Repressive law)**–इस प्रकार के क़ानून का उद्देश्य सामूहिक चेतना अथवा इच्छा के विरुद्ध समझे जाने वाले कार्यों को रोकना है। यह समाज में नैतिक संतुलन तथा अपराधी को पुन: अपराध करने से रोकता है।

15.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. दहेज के कारण एवं परिणामों को बताएँ।
2. 'दहेज प्रथा एक अभिशाप है' कैसे?
3. दहेज निरोधक अधिनियम, 1961 में कौन-कौन सी बातें कही गई हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. कन्या 2. आकांक्षाओं 3. सर्वाधिक।

15.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ–डॉ. आर. एन. सक्सेना।
2. भारत में विवाह एवं परिवार–के. एम. कपाड़िया।

नोट

इकाई–16: विवाह में बदलती प्रवृत्तियाँ (Changing Trends in Marriage)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
16.1 विवाह का बदलता स्वरूप (Changing Forms of Marriage)
16.2 ईसाई विवाह में आधुनिक परिवर्तन (Recent Changes in Christian Marriage)
16.3 सारांश (Summary)
16.4 शब्दकोश (Keywords)
16.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
16.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- हिन्दू विवाह संस्था में होने वाले आधुनिक परिवर्तन।
- ईसाई विवाह संस्था में होने वाले आधुनिक परिवर्तन।

प्रस्तावना (Introduction)

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। समाज और उसका कोई भी अंग इस परिवर्तन के प्रभाव से नहीं बच सका है। 19वीं सदी से औद्योगीकरण तथा नगरीकरण में वृद्धि हुई है। औद्योगीकरण ने स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की है। अब विवाह एक धार्मिक संस्कार न रहकर समझौता मात्र रह गया है जिसे जब चाहे तोड़ा जा सकता है। अब अन्तर्जातीय विवाह तथा प्रेम विवाह होने लगे हैं। जीवन-साथी का चुनाव अब माता-पिता के स्थान पर स्वयं लड़के-लड़की करने लगे हैं।

16.1 विवाह का बदलता स्वरूप (Changing Forms of Marriage)

नोट

हिन्दू विवाह में आधुनिक परिवर्तन के लिए निम्नांकित कारक उत्तरदायी हैं–

(1) औद्योगीकरण, (2) नगरीकरण, (3) पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति एवं विचारधारा, (4) नवीन कानूनों का प्रभाव, (5) महिला आन्दोलन, (6) राज्यों के कार्यों का बढ़ना, (7) धर्म के प्रभाव में कमी, तथा (8) स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। वर्तमान समय में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है, शिक्षा का प्रचार और प्रसार बढ़ा है। साथ ही सामूहिकता के बजाय व्यक्तिवादिता बढ़ी है।

नोट्स व्यक्ति सम्पूर्ण समूह, समुदाय एवं समाज की दृष्टि से नहीं सोच कर वैयक्तिक दृष्टि से सोचने लगा है। पिछले हजारों वर्षों में जितने परिवर्तन नहीं हुए, उतने पिछले सौ वर्षों में हुए हैं। आज विश्व के विभिन्न समाज आधुनिकता की ओर तेजी से बढ़ते जा रहे हैं। अब पुरानी परम्पराएं टूटती जा रही हैं और उनका स्थान नयी परम्पराएं लेती जा रही हैं।

यद्यपि प्राचीन काल से चली आ रही परम्परागत सामाजिक संस्थाओं में बहुत धीमी गति से परिवर्तन हो रहे हैं। आज विवाह, परिवार, जाति एवं अन्य सामाजिक संस्थाएं परिवर्तन के मध्य हैं। इनका अब वह स्वरूप नहीं रहा है जो कुछ समय पहले तक था। **यहां हम हिन्दू विवाह संस्था में होने वाले आधुनिक परिवर्तनों पर विचार करेंगे–**

1. **विवाह में वैयक्तिक पक्ष की प्रधानता का बढ़ना–**अब हिन्दू विवाह के धार्मिक पक्ष की बजाय वैयक्तिक पक्ष का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कुछ समय तक अविवाहित व्यक्तियों को बुरी दृष्टि से देखा जाता था, ऐसे व्यक्तियों को समाज में सम्मानित स्थिति प्राप्त नहीं थी, परन्तु अब स्थिति बदल गयी है। अब विवाह को व्यक्तिगत मामला समझा जाने लगा है।
2. **विवाह की अनिवार्यता नहीं रही–**अब बहुत से युवक-युवतियाँ विवाह को अपनी स्वतन्त्रता पर आघात मानने लगे हैं। स्त्रियों के उच्च शिक्षा प्राप्त करने, उनके आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा होने तथा जनसंख्या को सीमित रखने की इच्छा के कारण अब विवाह की अनिवार्यता पर उतना जोर नहीं दिया जाता जितना कुछ समय पहले तक दिया जाता था। अब तो शिक्षित नौकरी शुदा स्त्रियां अपनी इच्छा के अनुरूप वर प्राप्त नहीं कर पाने की स्थिति में अविवाहित रहना ही पसन्द करने लगी हैं।
3. **विवाह की संस्कारात्मक प्रकृति में परिवर्तन–**वर्तमान समय में हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानने के बजाय सामाजिक समझौता (Social Contract) माना जाने लगा है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं पश्चिमीकरण के कारण वर्तमान में हिन्दू विवाह की धार्मिक या संस्कारात्मक प्रकृति का महत्त्व घटा है और इस समझौते का रूप उभरकर सामने आने लगा है। अब विवाह का धार्मिक आधार कमजोर पड़ता जा रहा है।
4. **विवाह के उद्देश्यों में अन्तर–**अधिकतर समाजों में विवाह के एक उद्देश्य के रूप में धार्मिक कार्यों के सम्पादन को महत्त्व दिया जाता है। हिन्दू समाज में तो विवाह का प्रथम उद्देश्य–धर्म या धार्मिक कार्यों की पूर्ति माना गया है, परन्तु अब रति या यौन-इच्छाओं की पूर्ति एवं सन्तानोत्पत्ति का हिन्दू विवाह के प्रमुख उद्देश्यों के रूप में महत्त्व बढ़ता जा रहा है।
5. **वैवाहिक अधिकारों में समानता–**वर्तमान में स्त्री-पुरुषों को विवाह के क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त हैं। कुछ समय पूर्व तक हिन्दू समाज में बहु-पत्नी प्रथा प्रचलित थी, एक पुरुष एक से अधिक पत्नियाँ रख

सकता था। परन्तु अब क़ानून के द्वारा एक विवाह (Monogamy) को आवश्यक कर दिया गया है। अब भी हिन्दू एक पत्नी के होते हुए दूसरी से विवाह नहीं कर सकता। इसी प्रकार विवाह-विच्छेद के मामले में भी पति-पत्नी को समान अधिकार दिये गये हैं।

6. **बाल-विवाहों का कम होना एवं विलम्ब विवाहों** (Late Marriages) **का बढ़ना**—अब धीरे-धीरे लड़के-लड़कियों की विवाह की आयु बढ़ती जा रही है और बाल-विवाहों का प्रचलन शिक्षा के बढ़ने के साथ-साथ कम होता जा रहा है। आजकल उच्च शिक्षा प्राप्त लड़के-लड़कियाँ आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ा होने की स्थिति में आने के पश्चात् ही विवाह करना चाहते हैं। शिक्षा के बढ़ते हुए महत्त्व एवं समय पर दहेज नहीं जुटा पाने के कारण ही विशेषत: लड़कियों के विवाह की आयु बढ़ी है। अब प्रवृत्ति विलम्ब विवाह की ओर है।
7. **दहेज या वर-मूल्य प्रथा का बढ़ना**—आज के इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति के मान-सम्मान या प्रतिष्ठा का एक प्रमुख आधार धन हो गया है। अत: लोग अपने लड़को के विवाह में लड़की वाले पक्ष से अधिक धन, दहेज या वस्तुओं की मांग करने लगे हैं। स्वयं शिक्षित लड़के तक चाहने लगे हैं कि उन्हें विवाह में अधिक-से-अधिक दहेज मिले।
8. **विधवा पुनर्विवाह का बढ़ना**—हिन्दू समाज में कुछ समय पूर्व तक विधवाओं के पुनर्विवाह को अनुचित समझा जाता था और ऐसा विवाह करने वालों को हेय दृष्टि से देखा जाता था, परन्तु अब लोगों के विचार विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में होते जा रहे हैं। यद्यपि अब विधवा पुनर्विवाह होने भी लगे हैं, परन्तु अभी इनकी संख्या बहुत ही कम है।
9. **विवाह सम्बन्धी निषेधों में अन्तर**—अब विवाह सम्बन्धी निषेधों को महत्त्व नहीं दिया जाता जितना कुछ समय पहले तक दिया जाता था। उदाहरण के रूप में, अब हिन्दू समाज में अपने गोत्र और प्रवर के बाहर विवाह करना अनिवार्य नहीं रहा है। कानून की दृष्टि से सगोत्र और सप्रवर विवाह अब वर्जित नहीं हैं। इसी प्रकार अब अपनी ही जाति में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना भी आवश्यक नहीं रहा है।
10. **जीवन-साथी के चुनाव में स्वतन्त्रता**—कुछ समय पूर्व तक विवाह दो परिवारों में होता था, दो व्यक्तियों में नहीं, परन्तु अब विवाह दो व्यक्तियों का मामला रह गया है। पहले माता-पिता ही अपने लड़के-लड़कियों के लिए जीवन-साथी का चुनाव करते थे। इस सम्बन्ध में लड़के-लड़कियों की कोई राय नहीं ली जाती थी, परन्तु अब अधिक आयु में विवाह होने, शिक्षा के बढ़ने तथा लड़के-लड़कियों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने के अवसरों के मिलने से वे स्वयं अपने जीवन-साथी का चुनाव करना चाहते हैं। वर्तमान में युवक युवतियाँ स्वयं अपने जीवन-साथी का चुनाव कर उस पर अपने माता-पिता की स्वीकृति की छाप लगवाना चाहते हैं। इस प्रकार से जीवन-साथी के चुनाव में परिवर्तन 'माता-पिता' से 'संयुक्त' चुनाव तक हुआ है। बी. वी शाह ने बड़ौदा विश्वविद्यालय के 200 छात्रों का अध्ययन करने पर पाया कि 65% छात्र अपनी वधू का चुनाव माता-पिता की सलाह से तथा 32.5% स्वयं ही करना चाहते थे। मार्गरेट कोरमैक के अध्ययन में 70% छात्र माता-पिता व बच्चों की परस्पर सलाह से जीवन-साथी के चुनाव के पक्ष में थे एवं 32% अपनी ही मर्जी से विवाह के पक्ष में थे।
11. **जीवन-साथी के चुनाव की कसौटी में परिवर्तन** (Change in the Criteria of Mate Selection)—माता-पिता जब जीवन-साथी का चुनाव करते हैं तो वे परिवार की प्रतिष्ठा, उसकी नैतिकता, सम्पत्ति, जाति, दहेज की मात्रा, लड़के व लड़की की शारीरिक उपयुक्ता, उनका चरित्र, आय एवं नौकरी, आदि पर विशेष ध्यान देते थे, किन्तु वर्तमान में जब बच्चों को ही जीवन-साथी चयन का अवसर दिया जाता है तो वे सुन्दरता, आकर्षण, शिक्षा, ट्रेनिंग, चरित्र, गृहकार्यों में दक्षता, आदि को महत्त्व देते हैं।

12. **रोमांस पर आधारित प्रेम-विवाहों** (Love Marriages) **का बढ़ना**—वर्तमान में लड़के-लड़कियों के एक-दूसरे के सम्पर्क में आने के अवसरों के बढ़ने से, उनमें रोमांस पर आधारित प्रेम पनपने लगा है। परिणामस्वरूप प्रेम विवाह भी होने लगे हैं। यद्यपि ऐसे विवाह नगरीय क्षेत्रों में शिक्षित लोगों तक ही सीमित हैं। ऐसे विवाहों के प्रति समाज में सहिष्णुता या उदारता का दृष्टिकोण पनपने लगा है।
13. **अन्तर्जातीय विवाह** (Inter-caste Marriage) **का प्रचलन**—जहां जीवन-साथी का चुनाव स्वयं लड़के-लड़कियों के द्वारा किया जाता है और जहां प्रेम पर आधारित विवाह होते हैं, वहां जाति-पाति विवाह के मामले में बाधक नहीं बनती। वर्तमान में भारत में अन्तर्जातीय विवाहों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।
14. **पत्नी की स्थिति में परिवर्तन**—अब विवाह एवं विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में पत्नी को भी वे सब-अधिकार प्राप्त हैं जो पति को हैं। कुछ समय पूर्व तक पति की तुलना में पत्नी की सामाजिक स्थिति काफी निम्न थी, परन्तु अब दोनों की स्थिति में समानता आती जा रही है। अब परिवार में पत्नी की स्थिति दासी के रूप में नहीं रही है। अब वह पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली सहचरी बनती जा रही है।
15. **विवाह के रीति-रिवाजों एवं प्रविधियों में अन्तर**—अब लोग विवाह से सम्बन्धित परम्परागत रीति-रिवाजों और प्रविधियों को अनावश्यक समझने लगे हैं। अब विवाह का सरलीकरण होता जा रहा है। अब एक ही दिन या कुछ ही घण्टों में विवाह सम्पन्न होने लगे हैं। बड़े शहरों में होटलों और शादी-घरों में विवाह का प्रबन्ध होने लगा है। समय के अभाव के कारण आजकल वैवाहिक विधियों के संक्षिप्तीकरण एवं सरलीकरण की प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है।
16. **जीवन-साथी के खोज के तरीकों में अन्तर**—अब समाचार-पत्रों में विवाह के लिए विज्ञापन (Advertisement) देने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, परन्तु भारत में विज्ञापनों के माध्यम से होने वाले विवाहों की संख्या अब भी बहुत कम है। आज भी जीवन-साथी का चुनाव अधिकतर माता-पिता के द्वारा और कहीं-कहीं स्वयं लड़के-लड़कियों के द्वारा किया जाता है। जीवन-साथी के चुनाव में विशेष रूप से नगरीय उच्च एवं मध्यम वर्ग में एक नयी प्रवृत्ति का उदय हो रहा है वह यह कि सगाई के बाद लड़के-लड़कियों को परस्पर मिलने-जुलने की माता-पिता स्वीकृति दे देते हैं। वे सिनेमा, पार्क, रेस्टोरेन्ट में मिलते हैं। इस दौरान वे परिवार, शिक्षा, नौकरी, बजट, मकान, दायित्वों, आदि विषयों पर चर्चा करते हैं; एक-दूसरे के विचारों से अवगत होते हैं और यह जानने का प्रयास करते हैं कि विवाह के बाद उनका जीवन कैसा रहेगा। यदि उनके विचारों एवं दृष्टिकोण में साम्यता होती है तो विवाह हो जाता है वरना यह सम्बन्ध टूट भी सकता है।

स्पष्ट है कि बढ़ते हुए औद्योगीकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, शिक्षा के व्यापक प्रचार, स्त्री आन्दोलन, धर्म के प्रभाव में कमी, रोमांस पर ज़ोर तथा विवाह सम्बन्धी कानूनों के उदार होने, आदि के कारणों से हिन्दू विवाह का परम्परागत स्वरूप बदल रहा है, उसमें अनेक परिवर्तन आ रहे हैं।

16.2 ईसाई विवाह में आधुनिक परिवर्तन (Recent Changes in Christian Marriage)

वर्तमान समय में औद्योगीकरण, नवीकरण, पाश्चात्य शिक्षा, भौतिकवादी-दृष्टिकोण, व्यक्तिवादी आदर्श तथा रोमांस, आदि के कारण ईसाई विवाह से सम्बन्धित आदर्शों में परिवर्तन हो रहे हैं। इन लोगों में स्त्रियों के आर्थिक क्षेत्र में काम करने और अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र होने का कारण, विवाह की परम्परागत मान्यताओं एवं रूप में परिवर्तन दिखलाई पड़ने लगे है। पाश्चात्य समाजों के अनुकरण की प्रवृत्ति ईसाईयों में अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में

अधिक पायी जाती है; इन पर पाश्चात्य संस्कृति का अधिक प्रभाव मालूम पड़ता है। ऐसी दशा में इनके परम्परागत वैवाहिक आदर्श बदलते जा रहे हैं। भारतीय ईसाई विवाह संस्था में वर्तमान समय में ये परिवर्तन हो रहे हैं–

1. विवाह का **धार्मिक पक्ष क़मजोर** पड़ता जा रहा है। गिरजाघर में धार्मिक रीति से विवाह करने के बजाय, सिविल मैरिज की ओर लोगों का झुकाव बढ़ता जा रहा है। विवाह के पश्चात् वर-वधू चर्च में औपचारिकता निभाने के नाते आशीर्वाद प्राप्त करने अवश्य चले जाते हैं। इस प्रकार, विवाह का धार्मिक आधार शिथिल होता जा रहा है और इसको एक समझौते के रूप में महत्ता प्राप्त होती जा रही है।
2. ईसाई विवाह में **रोमांस का महत्त्व** बढ़ता जा रहा है। ईसाई समाज में अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छंद वातावरण पाये जाने से, स्त्री-पुरुषों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आने के अधिक अवसर मिलते हैं, फलतः उनमें रोमांस अधिक पनपता है। परिणामस्वरूप ईसाइयों में रोमांस पर आधारित प्रेम-विवाह अधिक होते हैं। एक सर्वेक्षण के आधार पर पाया गया कि इन लोगों में 42 प्रतिशत विवाह मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के आधार पर, 28 प्रतिशत सामाजिक उत्सवों में परिचय के आधार पर और 20 प्रतिशत विवाह सम्बन्धियों की सहायता से निश्चित होते हैं।
3. ईसाइयों में रक्त-सम्बन्धियों के बीच विवाह-सम्बन्ध वर्जित है, परन्तु वर्तमान में निकट के रक्त-सम्बन्धियों को छोड़कर, शेष सब में ऐसे सम्बन्ध होने लगे हैं। ममेरे-फूफेरे भाई-बहिनों के बीच भी यदाकदा सिविल मैरिज हो जाती है। स्पष्ट है कि ईसाइयों के **वैवाहिक निषेधों में शिथिलता** आती जा रही है।
4. ईसाइयों में यद्यपि धार्मिक दृष्टि से विवाह-विच्छेद मान्य नहीं है तथापि आजकल उनमें **विवाह-विच्छेद की प्रवृत्ति** और बढ़ती जा रही है। अधिकांश शिक्षित स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हैं, अधिक स्वतन्त्र हैं और पारिवारिक क्षेत्र में अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं। वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए पारस्परिक विश्वास, निष्ठा, प्रेम, त्याग, सहानुभूति, हर परिस्थिति में एक-दूसरे का साथ देने की बदलती इच्छा तथा एक-दूसरे की कमजोरियों को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखने की प्रवृत्ति, आदि अत्यन्त आवश्यक हैं। इसके अभाव में मानसिक तनाव में वृद्धि होती है और विवाह-विच्छेद की संख्या बढ़ती है। आज अनेक ईसाई परिवारों में पति-पत्नी में सामंजस्य की कमी के कारण विवाह-विच्छेद होते पाये जाते हैं। बढ़ते हुए विवाह-विच्छेद पारिवारिक जीवन की स्थिरता में बाधक बनते जा रहे हैं।
5. धार्मिक दृष्टि से ईसाइयों में विधवा-विवाह उचित नहीं माना गया है। जो विधवा अपनी यौन-इच्छाओं का नियन्त्रित नहीं कर पाये, उसे पति की मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् विवाह करने की आज्ञा दी गयी है। वर्तमान समय में कोई भी विधवा पति की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात् ही पुनर्विवाह कर सकती है। ईसाइयों में **आजकल विधवा-पुनर्विवाह को प्रोत्साहित** किया जा रहा है।

इस सब परिवर्तनों के कारण, ईसाइयों में विवाह एक साधारण-सा समझौता मात्र रह गया है जिसे कभी भी समाप्त किया जा सकता है तथा कभी भी किसी भी स्त्री अथवा पुरुष से पुनर्विवाह किया जा सकता है। इनमें पारिवारिक अस्थिरता आज एक समस्या का रूप ग्रहण करती जा रही है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. वर्तमान में भारत में ········· विवाहों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।
2. कुछ समय पूर्व तक पति की तुलना में ········· की सामाजिक स्थिति काफी निम्न थी, परन्तु अब दोनों की स्थिति में समानता आती जा रही है।
3. अब विवाह का ········· होता जा रहा है।

16.3 सारांश (Summary)

- विवाह में आधुनिक परिवर्तन के लिए बहुत से कारण उत्तरदायी हैं, जैसे, औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य शिक्षा, समृद्धि महिला आंदोलन, नवीन कानून आदि।
- अब वैवाहिक अधिकारों में स्त्री-पुरुष के बीच समानता होने लगी है। बाल विवाह कम हो गया है, विधवा पुनर्विवाह अब बढ़ गया है।
- अंतर्जातीय विवाह तथा प्रेम विवाह में वृद्धि हुई है।
- स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता ने विवाह-विच्छेद को बढ़ा दिया है।

16.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **परीक्षा विवाह (Marriage by trial)**—कई समाजों में पत्नी प्राप्त करने के पूर्व उसे अपने साहस व शौर्य का प्रदर्शन करना होता है। भारत में यह विवाह भील तथा नागाओं में पाया गया है।
2. **परिवीला विवाह (Marriage by Probation)**—जनजातियों में विवाह से पूर्व कुछ समय लड़का-लड़की एक साथ रहते हैं, एक दूसरे को देखने समझने का अवसर दिया जाता है।

16.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. हिन्दू विवाह संस्था में होने वाले आधुनिक परिवर्तन पर प्रकाश डालें।
2. ईसाइयों के विवाह में होने वाले आधुनिक परिवर्तन पर विचार करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अन्तर्जातीय 2. पत्नी 3. सरलीकरण।

16.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी—शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।
2. भारत में समाज—विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।

नोट

इकाई–17: तलाक, विधवापन एवं पुनर्विवाह (Divorce, Widowhood and Remarriage)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 विवाह-विच्छेद की समस्या (Problem of Divorce)

17.2 विधवा पुनर्विवाह का निषेध (Restriction on Widow Remarriage)

17.3 सारांश (Summary)

17.4 शब्दकोश (Keywords)

17.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

17.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विवाह-विच्छेद की समस्या का अध्ययन।
- विधवा पुनर्विवाह के औचित्य की जानकारी।
- हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 की जानकारी।
- विवाह संबंध में न्यायिक पृथक्करण के आधारों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

सारे प्रमाणों से प्रकट होता है कि प्राचीन काल में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित थे। देवर शब्द का अर्थ भी दूसरे वर से लिया गया है, किन्तु धीरे-धीरे विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगी, नियोग को पुरातन नियमों का उल्लंघन माना गया और पुनर्विवाह करने वाली विधवा की स्थिति भी निम्न हो गयी। **वात्स्यायपन** 'पुनर्भ' का उल्लेख एक भोगनी स्त्री के रूप में करते हैं। **याज्ञवल्क्य** विधवा को फल-फूल एवं जड़ों पर जीवन बसर करने एवं पवित्र बने रहने को कहते हैं। ईसा के 600 वर्ष बाद स्मृतिकारों ने विधवा को निन्दनीय माना और अल्टेकर का मत है कि ग्यारहवीं सदी के बाद तो बाल-विधवाओं तक के पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गयी, किन्तु यह सब हिन्दू समाज के उच्च वर्गों में ही लागू था, अस्सी प्रतिशत हिन्दू जो निम्न वर्ग में आते हैं उनमें तो विधवा पुनर्विवाह प्रचलित रहे हैं।

17.1 विवाह-विच्छेद की समस्या (Problem of Divorce)

इसमें एक साथी दूसरे का मूल्यांकन कर लेता है और जिसे रद्द कर दिया जाता है वह अपने आपको अपमानित एवं कुचला हुआ महसूस करता है, उसके आत्मभिमान को चोट पहुँचाती है। यह एक वैधानिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या भी है।

हिन्दूओं में स्त्री के लिए पतिव्रत तथा सतीत्व के पालन की बात कही गयी है, अतः स्त्री द्वारा पति त्यागने की कल्पना नहीं की जा सकती और ऐसा करना उसके लिए सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया, यद्यपि वैदिक काल में विवाह-विच्छेद के कुछ उदाहरण हैं। मनु, नारद, वृहस्पति, पाराशर, आदि ने भी कुछ परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद को स्वीकृति प्रदान की है। मनु ने स्त्री बांझ होने, उसके बच्चे जीवित न रहने या केवल लड़कियाँ ही होने अथवा झगड़ालू होने पर दूसरा विवाह करने की बात कही है। कौटिल्य ने भी ऐसी अवस्थाओं में पति को दूसरा विवाह करने की स्वीकृति दी है।

पति के जीवित रहते दूसरा विवाह करने वाली स्त्री को 'पुनर्भू' कहा गया है। यदि पति दुश्चरित्र हो, बहुत समय से विदेश में हो, अपने बन्धु-बान्धवों के प्रति कृतघ्न हो, जाति से बहिष्कृत कर दिया गया हो, पुरुषत्वहीन हो या उससे पत्नी के जीवन को संकट उत्पन्न हो सकता है तो ऐसी स्थिति में कौटिल्य पति को त्यागने की बात कहते हैं। पारस्परिक शत्रुता के कारण भी विवाह-विच्छेद हो सकता था। नारद एवं पाराशर के पति के नपुंसक होने, अज्ञात होने, मर जाने, साधु हो जाने, जातिच्युत हो जाने की अवस्था में स्त्री को दूसरा पति ढूंढ़ने की स्वीकृति दी है। किन्तु ईसा काल के प्रारम्भ से ही नैतिकता की दुहाई देकर विवाह-विच्छेद को अधार्मिक, अपवित्र एवं घृणित कार्य समझा जाने लगा और उसके बाद तो विवाह-विच्छेद लगभग समाप्त ही हो गये। ईसा के 1000 वर्ष बाद तो यह धारणा दृढ़ हो गयी कि कन्यादान सिर्फ एक ही बार किया जाता है और पति चाहे कितना ही दुश्चरित्र एवं अत्याचारी क्यों न हो, उसे नहीं छोड़ा जा सकता। विवाह-विच्छेद की स्वीकृति भी आठ प्रकार के विवाहों में से अन्तिम चार में दी गयी थी। प्रथम चार प्रकार के विवाहों को 'धर्म्य' माना गया है और उनमें विवाह-विच्छेद सम्भव नहीं था। विवाह-विच्छेद की समस्या का सम्बन्ध हिन्दुओं की उच्च जातियों से ही है। निम्न जातियों में तो आज भी विवाह-विच्छेद होते हैं। हिन्दुओं में पुरुष को तो विवाह-विच्छेद की स्वीकृति दी गयी है, किन्तु स्त्रियों को नहीं। इसका कारण समाज में पुरुषों की प्रधानता एवं स्त्रियों की निम्न सामाजिक स्थिति है।

नोट्स सामाजिक एवं कानूनी रूप से पति-पत्नी के विवाह सम्बन्धों की समाप्ति ही विवाह-विच्छेद कहलाता है। विवाह-विच्छेद पति-पत्नी के वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन में असामंजस्य एवं असफलता का सूचक है। इसका अर्थ यह है कि जिन उद्देश्यों को लेकर विवाह किया गया वे पूर्ण नहीं हुए हैं। यह एक दुःखद घटना है, विश्वास की समाप्ति है, प्रतिज्ञा एवं मोह भंग की स्थिति है।

विवाह-विच्छेद के कारण (Causes of Divorce)

शास्त्रकारों के विवाह-विच्छेद के लिए पति के नपुंसक होने, स्त्री के बांझ होने, केवल लड़कियाँ ही होने, दुश्चरित्र होने एवं झगड़ालू होने की स्थिति में स्वीकृति दी है जो विवाह-विच्छेद के कारण हैं। दामले, फोनसेका तथा चौधरी ने विवाह-विच्छेद के अपने अध्ययनों में इसके कारणों को भी ज्ञात किया है।

दामले के अनुसार पारिवारिक सामंजस्य में कमी (जिसमें पति-पत्नी के झगड़े, पति द्वारा दुर्व्यवहार एवं ससुराल वालों से झगड़े सम्मिलित हैं), पत्नी का बांझपन, पति या पत्नी का अनैतिक व्यवहार, बीमार या स्वाभाव के कारण पति द्वारा परिवारिक दायित्वों का निर्वाह न करना, पति को सजा होना, आदि विवाह-विच्छेद के प्रमुख कारण रहे हैं।

फोनसेका ने पाया कि विवाह-विच्छेद के लिए परित्याग और क्रूरता (69.1%), पर-व्यक्तिगमन (20%), नपुंसकता, (8.3%), आदि प्रमुख कारण हैं।

चौधरी ने अपने अध्ययन में विवाह-विच्छेद के लिए अवैध सम्बन्ध, अपर्याप्त गृह जीवन, शारीरिक प्रहार, गरीबी, पत्नी का रोजगारमय जीवन, भूमिका संघर्ष, चिड़चिड़ा स्वभाव, असाध्य रोग, नपुंसकता, आयु में अधिक अन्तर एवं रौब जमाने वाला स्वभाव, आदि को उत्तरदायी माना है।

विवाह-विच्छेद के विपक्ष में तर्क (Arguments against Divorce)

कई लोग विवाह-विच्छेद को उचित नहीं मानते। वे इसके विपक्ष में जो तर्क देते हैं, वे इस प्रकार से हैं–(*i*) **धर्म विरोधी–**हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार और जन्म-जन्मान्तर का बन्धन है। इसे तोड़ना अक्षम्य अपराध है। (*ii*) **पारिवारिक विघटन–**इससे पारिवारिक विघटन में वृद्धि होगी। (*iii*) **स्त्रियों के भरण-पोषण की समस्या–**विवाह-विच्छेद से स्त्रियों के भरण-पोषण की समस्या पैदा हो जायेगी क्योंकि वे आर्थिक दृष्टि से पति पर ही निर्भर हैं। (*iv*) **बच्चों की समस्या–**इससे बच्चों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, उनके लालन-पालन की समस्या पैदा हो जायेगी और उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पायेगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... ने पाय कि विवाह-विच्छेद के लिए परित्याग और क्रूरता (69.1%), पर-व्यक्तिगमन (20%), नंपुसकता (8.3%) आदि प्रमुख कारण हैं।
2. हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक .... और जन्म-जमान्तर का बंधन है।
3. स्त्रियों को विवाह-विच्छेन का .... मिलने पर उनकी परिवारिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

विवाह-विच्छेद का औचित्व (Justification of Divorce)

1. **समानता का अधिकार–**वर्तमान में स्त्री-पुरुषों को सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्रदान किये गये हैं, ऐसी स्थिति में विवाह-विच्छेद का अधिकार केवल पुरुषों को ही नहीं वरन् स्त्रियों को भी प्राप्त होना चाहिए।
2. **पारिवारिक संगठन को सुदृढ़ बनाने के लिए–**सुखी वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन के लिए विवाह-विच्छेद का अधिकार दोनों ही पक्षों को समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। संयुक्त परिवार में तो स्त्री परिवार के अन्य लोगों पर भी निर्भर थी, किन्तु वर्तमान समय में एकाकी परिवारों में पति-पत्नी एवं बच्चे ही होते हैं। ऐसी स्थिति में पति के दुराचारी होने या वैवाहिक दायित्व न निभाने पर पत्नी व बच्चों का कोई अन्य सहारा नहीं होता। ऐसी दशा में स्त्री व बच्चों की रक्षा के लिए एवं परिवार को सुसंगठित बनाने के लिए विशिष्ट परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद की स्वीकृति दी जानी चाहिए।
3. **स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए–**स्त्रियों को विवाह-विच्छेद का अधिकार मिलने पर उनकी पारिवारिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी, पुरुष के स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन होगा, पति-पत्नी में अविश्वास के भाव समाप्त होंगे और **अन्तर्जातीय** प्रेम बढ़ेगा, साथ ही पुरुषों की मनमानी पर भी अंकुश लगेगा। फिर प्राचीन काल में भी स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त था तो वर्तमान में क्यों न हो?
4. **वैवाहिक समस्याओं से मुक्ति पाने के लिए–**वर्तमान में हिन्दू विवाह से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ पायी जाती हैं; जैसे–बाल-विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, विधवा विवाह निषेध, आदि। इन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए विवाह-विच्छेद का अधिकार दिया जाना चाहिए।
5. **सामाजिक जीवन को सन्तुलित बनाने के लिए–**वर्तमान समय में हमारे सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन आये हैं। स्त्रियों ने शिक्षा ग्रहण की है, वे आर्थिक, राजनितिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में

पुरुषों के समकक्ष कार्य कर रही हैं। ऐसी दशा में उन्हें विवाह के क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार न देने से समाज व्यवस्था में असन्तुलन पैदा होगा। इस स्थिति से बचने के लिए एवं माननीय दृष्टिकोण से भी स्त्रियों को विवाह-विच्छेद का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (Hindu Marriage Act, 1955)

18 मई, 1955 से जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में निवास करने वाले हिन्दुओं जिनमें जैन, बौद्ध एवं सिख भी सम्मिलित हैं, 'हिन्दू विवाह अधिनियम' लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा विवाह से सम्बन्धित पूर्व में पास किये गये सभी अधिनियम रद्द कर दिये गये और सभी हिन्दूओं पर एक समान कानून लागू किया गया। इस अधिनियम में हिन्दू विवाह की प्रचलित विभिन्न विधियों को मान्यता प्रदान की गयी है। साथ ही सभी जातियों के स्त्री-पुरुषों को विवाह एवं तलाक के अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

विवाह की शर्तें (Conditions of Marriage)

किन्हीं दो हिन्दू स्त्री-पुरुषों के बीच विवाह के लिए निम्नांकित शर्तें रखी गयी हैं–

(*i*) स्त्री एवं पुरुष दोनों में से किसी का विवाह के समय दूसरा जीवन-साथी जीवित न हो। (*ii*) वर-वधू दोनों में से कोई भी विवाह के समय पागल या मूर्ख न हो। (*iii*) विवाह के समय वर की आयु 18 वर्ष और वधू की आयु 15 वर्ष से कम न हो, किन्तु मई 1976 में इस अधिनियम में संशोधन कर वर की आयु 21 वर्ष तथा वधू की आयु 18 वर्ष कर दी गयी है। (*iv*) दोनों पक्ष निषेधात्मक नातेदारी सम्बन्धों में न आते हों अर्थात् जिन प्रथाओं से वे नियन्त्रित होते हैं उनके विपरीत न हों। (*v*) दोनों पक्ष सपिण्डी न हों यदि उनकी परम्परा के अनुसार सपिण्ड विवाह मान्य है तो ऐसे विवाह को मान्यता दी जायेगी। (*vi*) यदि वधू की आयु 18 वर्ष से कम है तो उसके अभिभावकों की स्वीकृति ज़रूरी है, अभिभावक न होने पर ऐसी अनुमति के बिना भी विवाह वैध है।

विवाह-सम्बन्ध की समाप्ति (Void of Marriage)

निम्नांकित दशाओं में विवाह होने पर भी उसे रद्द किया जा सकता है–

(*i*) विवाह के समय दोनों पक्षों में से किसी एक का भी जीवन-साथी जीवित हो और उससे तलाक न हुआ हो। (*ii*) विवाह के समय एक पक्ष नपुंसक हो। (*iii*) विवाह के समय कोई भी एक पक्ष जड़ बुद्धि या पागल हो। (*iv*) विवाह के एक वर्ष के अन्दर यह प्रमाणित हो जाय कि प्रार्थी अथवा उसके संरक्षक की स्वीकृति बलपूर्वक या कपट से ली गयी थी। (*v*) विवाह के एक वर्ष के भीतर यह प्रमाणित हो जाय कि विवाह के समय पत्नी किसी अन्य पुरुष से गर्भवती थी और प्रार्थी इस बात से अनभिज्ञ था।

न्यायिक पृथक्करण (Judicial Separation)

इस अधिनियम की धारा 10 में कुछ आधारों पर पति-पत्नी को अलग रहने की आज्ञा दी जा सकती है। यदि पृथक् रहकर वे मतभेदों को भुलाने में सफल हो जाते हैं तो वैवाहिक सम्बन्धों की पुनर्स्थापना की जा सकती है। न्यायिक पृथक्करण के आधार निम्नांकित हैं–

(*i*) बिना कारण बताये प्रार्थी को दूसरे पक्ष ने प्रार्थना-पत्र देने के दो वर्ष पूर्व से छोड़ रखा हो। (*ii*) प्रार्थी के साथ दूसरे पक्ष द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया जाता हो। (*iii*) प्रार्थना-पत्र देने के एक वर्ष पूर्व से दूसरा पक्ष असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित हो। (*iv*) दूसरे पक्ष को कोई ऐसा संक्रामक यौन रोग हो जो प्रार्थी के संसर्ग से नहीं हुआ हो। (*v*) यदि दूसरा पक्ष प्रार्थना-पत्र देने के एक वर्ष पूर्व से पागल हो। (*vi*) यदि दूसरे पक्ष ने विवाह होने के बाद अन्य व्यक्ति के साथ सम्भोग किया हो।

नोट

न्यायिक पृथक्करण की आज्ञा मिलने के बाद दो वर्ष के भीतर भी वे अपने सम्बन्धों को सुधारने में असफल रहते हैं तो वे तलाक के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं जो कि धारा 13 के अनुसार स्वीकृत किया जा सकता है।

विवाह-विच्छेद (Divorce)

निम्नांकित आधारों पर न्यायालय विवाह-विच्छेद की स्वीकृति दे सकता है–

(*i*) दूसरा पक्ष व्यभिचारी हो। (*ii*) दूसरे पक्ष ने धर्म-परिवर्तन कर लिया हो और हिन्दू न रह गया हो। (*iii*) प्रार्थना-पत्र दिये जाने के तीन वर्ष पहले से दूसरा पक्ष असाध्य कुष्ठया संक्रामक रोग से पीड़ित हो। (*iv*) दूसरा पक्ष संन्यासी हो गया हो। (*v*) पिछले सात वर्षों से दूसरे पक्ष के जीवित होने के बारे में न सुना गया हो। (*vi*) दूसरे पक्ष ने न्यायिक पृथक्ककरण के दो वर्ष या उससे अधिक अवधि के बाद तक पुन: सहवास न किया हो। (*vii*) दूसरे पक्ष ने दाम्पत्य अधिकारों के पुन: स्थापना हो जाने के दो वर्ष बाद तक उस पर अमल न किया हो। (*viii*) पति बलात्कार, गुदा मैथुन (Sodomy) अथवा पशुगमन (vestiality) का दोषी हो।

इस अधिनियम से स्पष्ट है कि **न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद** दो भिन्न बातें हैं। पृथक्करण की आज्ञा देकर न्यायालय दोनों पक्षों को समझौते के अवसर प्रदान करता है। यदि फिर भी वे साथ रहने को सहमत न हों तो विवाह भंग करने की स्वीकृति प्रदान की जाती है। कुछ परिस्थितियों में ही विवाह-विच्छेद की सीधी अनुमति दी जा सकती है। इस अधिनियम में पति अथवा पत्नी के लिए निर्वाह धन (alimony) की व्यवस्था भी की गयी है। यह राशि उस समय तक दी जायेगी जब तक निर्वाह धन प्राप्त करने वाला दूसरा विवाह न कर ले। इस अधिनियम के द्वारा पृथक्करण एवं विवाह-विच्छेद प्राप्त करना उतना सरल नहीं है जितना सोचा जाता है।

17.2 विधवा पुनर्विवाह का निषेध (Restriction on Widow Remarriage)

विधवा वह स्त्री है जिसके पति की मृत्यु हो गयी हो और जिसने दूसरा विवाह नहीं किया हो। ऐसी स्त्री का पुन:विवाह करना ही विधवा पुनर्विवाह कहलाता है। हिन्दुओं में पत्नी की मृत्यु पर पति को तो दूसरा विवाह करने की छूट दी गयी है क्योंकि पत्नी के बिना वह धार्मिक कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता, किन्तु दूसरी ओर पति की मृत्यु होने पर पत्नी को दूसरा विवाह करने की मनाही है, उसे कई सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है, वह अच्छा भोजन नहीं कर सकती, अच्छे वस्त्र, तेल, फूल, इत्र एवं सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकती। इसी प्रकार विवाह की यह सुविधा एकपक्षीय है जो पुरुष ने अपने लिए तो रखी पर स्त्री को इससे वंचित कर दिया।

वैदिक काल में विधवा-विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऋग्वेद में दाह-संस्कार सम्बन्धी ऋचा में मृत पति की चिता के पास बैठी उसकी विधवा से यह कहा गया है कि उठ खड़ी हो और जीवितों के संसार में आ। "वह जिसके पास तुम पड़ी हो निर्जीव है, आओ इस पति के प्रति तुम्हारा पत्नीत्व, जिसने तुम्हारा हाथ पकड़ा और प्रेम किया, पूर्ण हो चुका है।" **अथर्ववेद** में यह जोड़ दिया गया, "उसके निकट जाओ जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुम्हें प्रेम करता है। तुम उससे पति-पत्नी के सम्बन्ध में प्रविष्ट हो चुकी हो।" **'वृहद्देवंता'** नामक ग्रन्थ में छोटा भाई बड़े भाई की पत्नी को चिता पर चढ़ने से रोकता है। **अश्वलायन** के अनुसार पति के प्रतिनिधि के रूप में उसका भाई, शिष्य अथवा कोई प्रौढ़ सेवक उसे वहां से उठाये। **ऋग्वेद** में एक स्थान पर एक उपमा इस प्रकार दी गयी, "जैसे कोई विधवा अपने पति के भाई को अपनी शय्या पर आमन्त्रित करती है।" **महाभारत काल** में विधवा-विवाह प्रचलित थे। महामुनि व्यास को विचित्रवीर्य की विधवा से सन्तान पैदा करने के लिए आमन्त्रित किया गया। **रामायण** में भी उल्लेख है कि बालि की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी से उसके छोटे भाई सुग्रीव ने तथा विभीषण ने अपने भाई की विधवा स्त्री से विवाह किया था। **कौटिल्य** स्त्री को निर्देश देते हैं कि जब पति बाहर चला जाय और उसको उसके पति या उसके छोटे भाई से भरण-पोषण प्राप्त न हो, पति साधु हो जाय या मर जाय तो सात मासिक धर्म तक तथा बालक हो तो एक वर्ष तक प्रतीक्षा के बाद अपने पति के भाई से विवाह कर लेना चाहिए। इसी प्रकार से प्राचीन समय में 'नियोग' की प्रथा थी जिसमें पति की मृत्यु हो जाने पर पुत्र-प्राप्ति के लिए पत्नी को पति के

भाई या निकट सम्बन्धी से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की छूट दी गयी है। स्मृति एवं काम-सूत्र में ऐसी स्त्री को **'पुनर्भू'** और उसकी सन्तान को **'पुनर्भवा'** कहा गया है। स्तृति में दो परिस्थितियों में पुनर्विवाह की स्वीकृति दी गयी है–(*i*) जब किसी स्त्री का विवाह जबरन किया गया हो, (*ii*) विवाह की पूर्णता से पूर्व ही पति की मृत्यु हो गयी हो।

विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध लगे तो सती-प्रथा को बल मिला। राजा राममोहन राय, आदि के प्रयत्नों से 1929 में सती-प्रथा पर रोक लगा दी गयी। अब विधवाओं का जीवन और भी दयनीय हो गया। अब उन्हें अनेक प्रकार के कष्टों एवं प्रलोभनों का सामना करना पड़ा, उनका जीवन अभिशाप हो गया, वे जीवित रहते हुए भी मृतक की तरह रहने लगीं, किसी भी शुभ कार्य में उनकी उपस्थिति अपशकुन समझी जाने लगी, उन्हें शृंगार करने की स्वीकृति नहीं दी गयी, उन्हें बाल कटवाने होते और उन्हें पति की सम्पत्ति से वंचित कर दिया गया। इस कष्टमय स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों से 1856 में 'विधवा पुनर्विवाह अधिनियम' बना।

टास्क विधवा पुनर्विवाह निषेध का वर्णन करें।

क्रुक ने लिखा है कि पिछली सदी के अन्त में उत्तर प्रदेश में 24% जातियाँ विधवा पुनर्विवाह निषेध का पालन करती थीं। **मेन** का मत है कि दक्षिणी भारत की अधिकांश जातियों तथा गूजर, अहीर, कुरमी और गड़रिया, आदि में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित है। उत्तरी बिहार में ब्राह्मण, कायस्थ, राजपूत एवं बनियों के अतिरिक्त जातियों में विधवा पुनर्विवाह प्रचलित है। **एस. एन. अग्रवाल** ने बताया कि ग्रामीण दिल्ली में 62% और पश्चिमी भारत में 41% जातियों में जो निम्न जातियाँ हैं, विधवा पुनर्विवाह पाया जाता है। ग्रामीण रोहतक में 54 ब्राह्मण विधवाओं में से तीन ने, 12 बनिया विधवाओं में से एक ने, क्षत्रिय अरोड़ा विधवा में से एक ने पुनर्विवाह किया तथा ग्रामीण दिल्ली की 19 ब्राह्मण विधवाओं में से एक ने भी पुनर्विवाह नहीं किया, जबकि निम्न जातियों में विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन है, किन्तु उच्च जातियों में नहीं और उनके लिए ही यह एक भयंकर समस्या बनी हुई है।

क्या आप जानते हैं वर्तमान में भारत में विधवाओं की संख्या करीब 3 करोड़ है जबकि निम्न जातियों में विधवा पुनर्विवाह का प्रचलन है।

विधवा विवाह के प्रतिकूल परिस्थितियाँ

विभिन्न धार्मिक-सामाजिक परिस्थितियों ने ही विधवाओं के विवाह पर रोक लगायी। वे परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं–

1. **कन्यादान का आदर्श**–भारत में कन्यादान को सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। एक बार दान की हुई वस्तु का पुनः दान नहीं हो सकता। अतः विधवा का पुनर्विवाह भी अनुचित माना गया।
2. **पवित्रता की धारणा**–हिन्दुओं में पवित्रता की धारणा में यौन पवित्रता को श्रेष्ठ माना गया है, प्रमुख रूप से स्त्री के लिए तो इसका कठोरता से पालन करने पर ज़ोर दिया गया है। यही कारण है कि विधवाओं को पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं दी गयी है।
3. **धार्मिक व सामाजिक निषेधों के प्रति श्रद्धा**–विधवाओं के विवाह पर सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से रोक लगा दी गयी जिसका पालन भारत में धर्मभीरु जनता से अक्षरशः किया और विधवाओं को पुनर्विवाह से वंचित कर दिया।
4. **रक्त-शुद्धता की धारणा**–बाह्य आक्रमणकारी और प्रमुख रूप से मुसलमान हिन्दू विधवाओं से भी विवाह कर लेते थे। रक्त-शुद्धता एवं धर्म की रक्षा के लिए हिन्दू विधवाओं पर पुनर्विवाह की रोक कड़ी कर दी गयी।

नोट

5. **भाग्यवादिता**–भारत के लोग सामान्यत: भाग्यवादी हैं। कई लोग यह मानते हैं कि विधवा एक अभागिन स्त्री है, यदि उसका दूसरा विवाह कर दिया जाता है तो भी वह सुखी नहीं रह सकती और नये पति को भी उसके दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ सकता है। अत: उससे सामान्यत: कोई विवाह नहीं करना चाहता।
6. **विवाह जन्म-जन्मान्तर का बन्धन**–हिन्दुओं में विवाह को जन्म-जन्मान्तर का बन्धन माना गया है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। विधवा को अपना यह जीवन समाप्त कर स्वर्ग में इन्तजार कर रहे पति से शीघ्र मिलने का प्रयास करना चाहिए।
7. **स्त्रियों में अशिक्षा**–साधारणत: स्त्रियां शिक्षा के अभाव के कारण भी रूढ़िवादी एवं धर्मभीरु हैं अत: धार्मिक नियमों का पालन करना वे अपना परम दायित्व समझती हैं।
8. **पराश्रिता**–स्त्रियों में शिक्षा का अभाव होने और आर्थिक दृष्टि से पुरुषों पर निर्भर होने के कारण उन्हें पुरुषों द्वारा उनके लिए बनाये गये नियमों का पालन करना पड़ता है।
9. **जातीय प्रतिबन्ध**–भारत में जाति एक शक्तिशाली संस्था रही है। जो विधवा पुनर्विवाह कर लेती है उसे जाति से बहिष्कृत किया जाता रहा है। इस प्रकार जातीय बन्धन भी विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगाते हैं।
10. **सतीत्व की धारणा**–सतीत्व की धारणा के कारण भी विधवा पति की मृत्यु होने के बावजूद भी दूसरा विवाह नहीं करती है।

विधवा विवाह के लिए अनुकूल परिस्थितियां

वर्तमान समय में विधवा विवाह को सामाजिक स्वीकृति दिलाने में निम्नांकित कारकों ने योग दिया है–

1. **आर्य समाज व ब्रह्म समाज के प्रयत्न**–आर्य समाज व ब्रह्म समाज दोनों ने ही विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए भरसक प्रयत्न किये और उसके कई अच्छे परिणाम भी निकले।
2. **स्त्री आन्दोलन**–स्त्रियों द्वारा स्वयं की सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को सुधारने के लिए किये गये प्रयत्नों ने भी विधवा विवाह को सम्भव बनाया।
3. **शिक्षा का प्रसार**–शिक्षा के प्रसार के कारण भी विधवा के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है।
4. **धर्म का घटता प्रभाव**–वर्तमान में धर्म का प्रभाव कम हुआ है। अत: धार्मिक नियमों की अवहेलना की जाने लगी और विधवाओं के भी विवाह होने लगे हैं।
5. **सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि** के कारण भी युवक एवं युवतियाँ परस्पर सहमति से विवाह करने लगे हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति यदि किसी विधवा से प्रेम करता है तो वह उसे विवाह के रूप में परिवर्तित कर सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. शिक्षा के प्रसारण के कारण भी ········ के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है।
5. कष्टमय जीवन से मुक्ती पाने के लिए अनेक ········ ने धर्म परिवर्तन कर लिया।
6. दु:खी वैधव्य से मुक्ति पाने के लिए कई बार विधवाएँ ········ तक कर लेती हैं।

विधवा विवाह के निषेध के परिणाम (Consequences of Widow Remarriage Prohibition)

विधवा विवाह के निषेध के अनेक दुष्परिणाम निकले हैं–(*i*) इसके कारण **सती-प्रथा का जन्म हुआ।** (*ii*) **पारिवारिक संघर्ष** पैदा हुए और विधवाओं का पारिवारिक जीवन कष्टमय हो गया, उसे अनेक प्रकार की यातनाएं

नोट

दी जाने लगीं। (*iii*) कष्टमय जीवन से मुक्ति पाने के लिए अनेक विधवाओं के अपना **धर्म परिवर्तित कर लिया** और वे मुसलमान या ईसाई बन गयीं। (*iv*) संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करने के अभाव में कुछ विधवाएं अनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं इससे भ्रष्टाचार पनपता है एवं अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है। (*v*) भरण-पोषण के अभाव में काम-इच्छा की पूर्ति के लिए कई विधवा स्त्रियाँ **वेश्यावृत्ति** तक अपना लेती हैं। (*vi*) दु:खी वैधव्य से मुक्ति पाने के लिए कई बार विधवाएँ **आत्महत्या** तक कर लेती हैं। इस प्रकार यह समाज में अपराधों के लिए भी उत्तरदायी है।

विधवा पुनर्विवाह का औचित्य (Justification of Widow Remarriage)

विधवा पुनर्विवाह के औचित्य को सिद्ध करने के लिए निम्नांकित तर्क दिये जाते हैं–

1. **विधवाओं की हृदयस्पर्शी अवस्था**–समाज में विधवाओं को अनेक सुविधाओं से वंचित किया गया है और उन पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लागू किये गये हैं; जैसे, वे अच्छे वस्त्र तथा आभूषण नहीं पहन सकतीं, श्रृंगार नहीं कर सकतीं, शुभ कार्यों में उनकी उपस्थिति अपशकुन मानी जाती है, उन्हें परिवार में अनेक यातनाएं दी जाती हैं। इन सभी परिस्थितियाँ से मुक्ति दिलाने के लिए नैतिकता का तकाज़ा है विधवाओं को पुनर्विवाह की छूट दी जाय।
2. **यौन-सम्बन्धी नैतिकता का दोहरा मापदण्ड**–पुरुष को तो स्त्री की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह करने की समाज ने छूट दी है, किन्तु स्त्री को नहीं। यौन सम्बन्धी इस दोहरे मापदण्ड को समाप्त करने के लिए विधवा पुनर्विवाह होने चाहिए।
3. **आत्म-संयम: एक विडम्बना**–हिन्दू धर्मशास्त्रों में स्त्री से संयमित जीवन व्यतीत करने की आशा की गयी जो सम्भव नहीं है। काम पूर्ति एक प्राकृतिक आवश्यकता है, इसके अभाव में कई शारीरिक एवं मानसिक रोग पैदा होते हैं। अत: विधवा पुनर्विवाह आवश्यक है।
4. **व्यभिचार को रोकने के लिए**–यौन अनाचार को रोकने के लिए आवश्यक है कि विधवाओं को पुनर्विवाह की स्वीकृति दी जाय।
5. **वेश्यावृत्ति एवं धर्म-परिवर्तन** को रोकने के लिए भी विधवा पुनर्विवाह आवश्यक है क्योंकि भरण-पोषण एवं यौन इच्छाओं की पूर्ति के अभाव में कई विधवाएं वेश्या बन जाती हैं या ईसाई, मुसलमान, आदि बन जाती हैं। इसका कारण यह है कि ईसाइयों एवं मुसलमानों में विधवाओं को पुनर्विवाह की छूट रही है।
6. **अपराध रोकने हेतु**–विधवा पुनर्विवाह स्वीकृत होने पर यौन अपराध, भ्रूण हत्या एवं आत्महत्याओं की संख्या घटेगी।
7. **व्यक्तित्व के विकास के लिए**–विधवा स्त्रियों एवं उनके बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है कि उनका पुनर्विवाह कराया जाय।
8. **समाज के एक बड़े अंग की समस्या**–यह समस्या समाज के लगभग ढाई करोड़ विधवाओं की समस्या है जिसे हल करना मानवता का तकाज़ा है।
9. **धर्मशास्त्रों की स्वीकृति**–प्राचीन धर्मशास्त्रों में भी विधवाओं के पुनर्विवाह की स्वीकृति दी गयी है। वशिष्ठ, कोटिल्य तथा नारद, आदि ने भी विधवा पुनर्विवाह की आज्ञा दी है। केवल मध्ययुग में इस पर रोक लगा दी गयी थी।
10. **बहुमत की पुकार**–समाज के अधिकांश व्यक्ति विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में हैं। कपाड़िया ने 513 छात्रों का साक्षात्कार लिया, उनमें से 345 ने विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में अपनी राय प्रकट की। अत: जनमत का आदर किया जाना चाहिए।

नोट

11. **मानवता की मांग**–मानवता की मांग है कि स्त्री व पुरुष को सभी अधिकार समान रूप से दिये जाएँ। विधवाओं को भी जीवित रहने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए। जीने का अधिकार एक सार्वभौमिक मौलिक अधिकार है।

विधवाओं की समस्याओं से द्रवित होकर और इसके औचित्य के कारण ही कई समाज-सुधारकों तथा आर्य समाज, ब्रह्म समाज एवं सर जे. सी. ग्राण्ट, आदि ने विधवा पुनर्विवाह के लिए अनेक प्रयास किये, परिणामस्वरूप 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम बना। लेकिन मात्र कानून बनने से ही समस्या का समाधान नहीं हो जाता है जब तक कि समाज ऐसे विवाहों को स्वीकृति प्रदान न करे और ऐसे विवाह करने वालों को सम्मान न दे। वर्तमान में स्त्रियों की शिक्षा एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि, जातीय नियन्त्रण की शिथिलता, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, आदि के साथ-साथ विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में जनमत बढ़ रहा है और ऐसे विवाहों की संख्या बढ़ी है, किन्तु इसमें युवकों को रचनात्मक भूमिका निभानी होगी, उन्हें आगे आना होगा और समाज की रूढ़िवादी मान्यताओं को तोड़ना होगा। समाज-सुधारकों, सरकार एवं जातीय संगठनों को ऐसे विवाहों को प्रोत्साहन देना होगा तभी यह भीषण समस्या हल हो सकती है।

हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 (Hindu Widow Remarriage Act, 1856)

सन् 1856 से पूर्व विधवाओं को न तो पुनर्विवाह की स्वीकृति थी और न उन्हें अपने मृत पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार ही था। बाल-विवाह एवं बेमेल-विवाह के कारण समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ गयी थी तथा उनकी दशा बड़ी दयनीय थी। कई विधवाएं तो धर्म-परिवर्तन कर मुसलमान या ईसाई बन गयी थीं। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा राजा राममोहन राय ने सरकार का इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया। उनके प्रयासों से 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम बना। इस अधिनियम द्वारा हिन्दू विधवाओं की पुनर्विवाह की कानूनी बाधाओं को समाप्त कर दिया गया। इस अधिनियम की मुख्य बातें इस प्रकार हैं–(1) यदि दूसरे विवाह के समय किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो चुकी हो, तो यह विवाह वैध माना जायेगा। (2) इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तानें भी वैध मानी जायेंगी। (3) यदि पुनर्विवाह के समय विधवा नाबालिग है और पहले पति से उनका सम्बन्ध नहीं हुआ है तो पुनर्विवाह के लिए पिता, दादा, बड़े भाई या नज़दीक के किसी रक्त सम्बन्धी की स्वीकृति लेना आवश्यक है। (4) यदि विधवा बालिग है और विधवा होने से पूर्व पति से यौन-सम्बन्ध स्थापित कर चुकी हो तो वह किसी सम्बन्धी की स्वीकृति के बिना भी पुनर्विवाह कर सकती है। (5) पुनर्विवाह करने वाली स्त्री को अपने मृत पति की सम्पत्ति में अधिकार नहीं होगा। (6) यदि मृत पति ने उसके लिए कोई वसीयतनामा लिखा हो या परिवार के सदस्यों से कोई समझौता हो गया हो तो पुनर्विवाह कर लेने पर भी उसे अपने पूर्व पति की सम्पत्ति पर अधिकार होगा। (7) पुनर्विवाह के बाद स्त्री को नये परिवार में वे सारे अधिकार मिलेंगे जो पहली बार विवाह करने पर उसे प्राप्त होते हैं।

नोट्स वैदिक काल में भी विधवा विवाह का प्रचलन था। वशिष्ठ कौटिल्य तथा नारद, आदि ने भी विधवा पुनर्विवाह की आज्ञा दी है। केवल मध्य युग में इस पर रोक लगा दी गयी थी। अत: विधवा विवाह धर्म सम्मत है।

17.3 सारांश (Summary)

- सामाजिक एवं कानूनी रूप से पति-पत्नी के विवाह संबंधों की समाप्ति ही विवाह-विच्छेद कहलाता है।
- मनु ने स्त्री के बांझ होने, केवल लड़कियाँ होने, झगड़ालू होने पर दूसरा विवाह करने की बात कही है।

- हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 में न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद दो अलग बातें हैं। न्यायिक पृथक्करण के अंतर्गत कुछ आधारों पर पति-पत्नी को अलग रहकर मतभेदों को भुलाने की आज्ञा दी जा सकती है। यदि वे मतभेदों को भुलाने में सफल हो जाते हैं तो वैवाहिक संबंधों की पुनर्स्थापना की जा सकती है।
- हिन्दुओं में पति को पत्नी की मृत्यु होने पर दूसरा विवाह करने की छूट दी गई है किन्तु पत्नी को पति की मृत्यु होने पर दूसरा विवाह करने की मनाही है। उसे कई सुविधाओं से वंचित कर दिया जाता है।

17.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **नारीवाद (Feminism)**—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर स्त्रियों के अधिकारों के समर्थन को नारीवाद का नाम दिया गया है।
2. **विवाह-विच्छेद के कारण (Causes of Divorce)**—पत्नी का बांझपन, पति या पत्नी का अनैतिक व्यवहार, बिमार या स्वभाव के कारण इत्यादि विवाह-विच्छेदन का कारण है।

17.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विवाह-विच्छेद के कारण क्या हैं?
2. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 में क्या-क्या बातें कही गई हैं?
3. विधवा विवाह के निषेध के परिणाम क्या होते हैं?
4. विधवा पुनर्विवाह का औचित्य बताएँ?
5. हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. फोनसेका
2. संस्कार
3. अधिकार
4. विधवा
5. विधवाओं
6. आत्महत्या।

17.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार—के. एम. कपाड़िया।
2. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ—डॉ. आर. एन. सक्सेना।

नोट

इकाई–18: निवास के नियम : पितृस्थानीय, मातृस्थानीय, नवस्थानीय एवं जन्मस्थानीय निवास (Rules of Residence : Virilocal, Uxorilocal, Neolocal and Natolocal Residence)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
18.1 आवास (निवास) के नियम (Rules of Residence)
18.2 सारांश (Summary)
18.3 शब्दकोश (Keywords)
18.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
18.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- नातेदारी व्यवस्था के आवास के नियमों की जानकारी।
- आदिम समाजों में नातेदारी के नियमों को निवास के नियम द्वारा नियंत्रित करना।

प्रस्तावना (Introduction)

खून का रिश्ता या शादी के बन्धन लोगों को एक दूसरे से जोड़ते हैं। इस प्रकार के जुड़ाव को नातेदारी कहते हैं। नातेदारी को समझने के लिए हम एक बहुत ही जाने-पहचाने जैविकीय तथ्य से बात शुरू कर सकते हैं। औरत और मर्द के परस्पर सहवास से बच्चे पैदा होते हैं। हम लोग एक दूसरी बात पर भी विचार कर सकते हैं। मुनष्य को प्रकृति से जिस प्रकार की स्मरण शक्ति और भाषा मिली है उसके कारण रक्त सम्बन्ध हमेशा दिमाग में बने रहते हैं और उन्हें हम माँ, बच्चे, पिता, मामा आदि सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करते हैं। रक्त-सम्बन्ध के आधार पर स्थापित सम्बन्ध को हम समरक्त नातेदारी या समरक्तता पर आधारित नातेदारी (कसैंग्विनियस किनशिप) कहते हैं और इस प्रकार के रिश्तेदारों को सगे संबंधी कहते हैं।

18.1 आवास (निवास) के नियम (Rules of Residence)

आदिम समाजों में नातेदारी के नियमों को निवास के नियम भी नियन्त्रित करते हैं। सामान्यत: पति-पत्नी और बच्चे साथ-साथ रहते हैं और उन्हें किसी स्थान पर निवास बनाकर रहना होता है। विवाह के बाद नव-विवाहित जोड़ा कहाँ निवास करता है इसी आधार पर निवास के नियम बने होते हैं। निकटाभिगमन निषेध के कारण विवाह-साथियों में से किसी एक को अपना परिवार छोड़कर दूसरे परिवार में निवास करना पड़ता है, यद्यपि यह पूर्णत: स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

मरडॉक ने 6 प्रकार के निवासों का उल्लेख किया है–

1. पितृस्थानीय (Patri-local), 2. मातृस्थानीय (Matri-local), 3. मातृ-पितृ स्थानीय (Matri-Patri-local), 4. नव-स्थानीय (Neo-local), 5. मामा स्थानीय (Avuncu-local), 6. द्वि-स्थानीय (Bio-local)।

हम इन सभी का यहाँ उल्लेख करेंगे–

विवाह के बाद यदि लड़का अपनी पत्नी सहित पिता के साथ या पिता के क्षेत्र में रहता है तो उसे **पितृस्थानीय** (Patri-local) निवास कहते हैं और यदि वह पत्नी की माता के साथ या माता के क्षेत्र में रहता है तो वह **मातृस्थानीय** (Matri-local) निवास कहलाता है।

जर्मन-आस्ट्रेलियन मानवशास्त्री एडम (Adam) ने इनके स्थान पर पत्नी-स्थानीय (Uxori-local) और पति-स्थानीय (Viri-local) शब्द सुझाये जिससे पीढ़ियों का भ्रम पैदा न हो, किन्तु **मरडॉक** का मत है कि पति-स्थानीय में पति के पिता के साथ निवास तथा पति के माता के भाई के साथ निवास में भेद प्रकट नहीं होता है और न ही पति द्वारा निर्मित निवास ही स्पष्ट होता है। अत: ये शब्द भी उपयुक्त नहीं है।

मिशा टिटिव (Micha Titiev) ने एक स्थानीय (Uni-local) निवास की अवधारणा दी जिसमें नवविवाहित जोड़ा दोनों में से किसी के भी पूर्व स्थित निवास में जाकर रहता है। इस आधार पर हम एक स्थानीय (Uni-local), मातृस्थानीय (Matri-local), एक-स्थानीय पितृस्थानीय (Uni-local Patri-local) निवास कह सकते हैं। इसे ही शुद्ध (Neat) मातृ एवं पितृस्थानीय निवास (Matri and Patri-local Residence) भी कह सकते हैं, जब नवविवाहित जोड़ा अपने माता-पिता में से किसी एक के पास निवास बनाकर रहे। टिव (Tiv) लोगों में एक लड़का विवाह करके अपनी पत्नी को माँ के निवास में ले जाता है, किंतु सन्तान होने पर पति उसके लिए पृथक् घर बना देता है। जो माँ के घर के पीछे होता है।

मरडॉक ने पत्नी-स्थानीय तथा पति-स्थानीय शब्दों की अलोचना की और उनके स्थान पर मातृस्थानीय तथा पितृस्थानीय शब्दों को बनाये रखने की बात कही। जब एक-दम्पति को माता एवं पिता में से किसी एक के पास रहने की छूट होती हो तो ऐसे निवास को **द्वि-स्थानीय** (Bio-local) कहते हैं। यह प्रथा स्वीडन के 'लैप्प' (Lapp) लोगों में पायी जाती है। विवाह के बाद नव-दम्पत्ति जब नया घर बनाकर रहें तो उसे **नव-स्थानीय** (Neo-local) निवास कहेंगे। नाइजीरिया के हौसा (Hausa) लोगों में यह प्रथा है। यदि विवाहित दम्पति वधू की माता के भाई के पास रहते हैं तो इसे **मामा-स्थानीय** (Avuncu-local) निवास कहेंगे। यह स्थानीय ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में पायी जाती है। कुछ समाजों में विवाह के बाद दम्पति सन्तान होने तक वधू के माता-पिता के पास रहते हैं और उसके बाद वर के माता-पिता के पास। ऐसे निवास को मरडॉक **मातृ-पितृ स्थानीय** (Matri-Patri-local residence) कहते हैं। कई बार यह स्पष्ट नहीं होता है कि विवाह के बाद दम्पति कहाँ रहेंगे तब तक यह निवास **संदिग्ध-स्थानीय** (Ambi-local) कहलाता है। जब विवाह के बाद पति अपने पिता के यहाँ तथा पत्नी अपनी माँ के यहाँ अर्थात् दोनों ही अपने जन्म के परिवारों में ही रहते हैं तो उसे **जन्म-स्थानीय निवास** (Nato-Local Residence) कहते हैं। भारत के नायर लोगों में ऐसा ही निवास पाया जाता है।

विभिन्न प्रकार के निवास के नियमों को जन्म देने लिए निकटाभिगमन निषेधा, कृषि का महत्त्व, स्त्री एवं पुरुष का महत्त्व, पशु-चारण, सम्पत्ति वितरण, आदि प्रमुख आधार हैं। लेप्प लोगों में दम्पति कहां रहेंगे, यह इस बात पर निर्भर है कि दोनों के परिवारों में से सम्पत्ति, कृषि योग्य भूमि तथा रैंडियर पशु किसके पास अधिक हैं, किस परिवार में सदस्यों की संख्या कम और किस में अधिक है तथा व्यक्तियों की आवश्यकता किस परिवार की अधिक है, किस के माता-पिता की सामाजिक प्रतिष्ठा ऊँची है, दोनों में से अपने-अपने परिवार में कौन बड़ा है, किस परिवार के पास चरागाह भूमि अच्छी है, आदि।

नोट

नोट्स परिवार में सदस्यों की संख्या, लिंग, व्यवसाय, स्त्री एवं पुरुष का महत्त्व, सम्पत्ति, पदोत्तराधिकार, आदि के कारण भी निवास के निवास के नियम प्रभावित होते हैं।

भारत में नातेदारी व्यवस्था (Kinship Organisation in India)

अब हम यहाँ भारतीय नातेदारी व्यवस्था पर विचार करेंगे। परिवार विवाह एवं नातेदारी को लेकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अध्ययन किए गए हैं, जैसे, ए. सी. नय्यर तथा मदान ने उत्तरी क्षेत्र का ई. के. गफ तथा मैकोमेक ने दक्षिणी-क्षेत्र का अध्ययन किया है, परन्तु ये अध्ययन एक गाँव या प्रदेश तक ही सीमित है। हाल ही में श्रीमत् लीला दुबे ने 'Sociology of Kinship' नामक पुस्तक की रचना की और उसमें विभिन्न अध्ययनों पर टिप्पणी की है। लुई ड्यूमा (Lue Dumont) ने उत्तरी व दक्षिणी क्षेत्र कुछ गाँवों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन विभिन्न अध्ययनों के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत की नातेदारी का व्यवस्थित उल्लेख करने का श्रेय श्रीमती इरावती कार्वे को है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत में बन्धुत्व संगठन' में नातेदारी का उल्लेख भौगोलिक एवं भाषायी दृष्टि से विस्तापूर्वक किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. श्रीमत् लीला दुबे ने ……… नामक पुस्तक की रचना की और उसमें विभिन्न अध्ययनों पर टिप्पणी की है।
2. लुई ड्यूमा ने उत्तरी व दक्षिणी क्षेत्र कुछ गाँवों का ……… अध्ययन प्रस्तुत किया है।
3. उन्होंने अपनी पुस्तक ……… में नातेदारी का उल्लेख भौगोलिक एवं भाषायी दृष्टि से किया है।

इरावती कार्वे ने भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर सम्पूर्ण भागों में विभक्त किया है, जो निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट होता है–भारत की बन्धुत्व व्यवस्था के चार और भाषायी आधार पर तीन है–

भौगोलिक आधार

- **उत्तरी क्षेत्र** (हिमालय से विन्ध्याचल तक सिन्ध, पंजाब, कश्मीर, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, असोम, नेपाल)
- **मध्य क्षेत्र** (राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र, आदि)
- **दक्षिणी क्षेत्र** (कर्नाटक, मालाबार, तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, पश्चिमी उड़ीसा व दक्षिणी बिहार)
- **पूर्वी क्षेत्र** (म्यांमार, तिब्बत, असोम एवं पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र)

भाषायी आधार

- **भारोपीय परिवार** (पंजाबी, सिन्धी, बिहारी, हिन्दी, बंगाली, असमी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया एवं कोंकणी)
- **द्रविड़ परिवार** (तेलुगू, कन्नड़, तमिल, मलयालम, तूलू, टोडा, कोडागू, कोलामी, गोण्डी)
- **आग्नेय एशियाटिक परिवार** (मुण्डी, सओरा, संथाली, खासी गडबा, भूमिया, ज्वांग, बोड़ों, आदि।)

नोट

18.2 सारांश (Summary)

- विवाह के बाद विवाहित जोड़ा कहाँ रहता है इसी आधार पर निवास के नियम बने होते हैं।
- मरडॉक ने 6 प्रकार के निवासों का उल्लेख किया है।
- विवाह के बाद लड़का-लड़की के साथ अपने पिता के साथ रहता है उसे पितृस्थानीय निवास कहते हैं।
- विवाह के बाद लड़का-लड़की की माता के साथ रहता है तो उसे मातृस्थानीय निवास कहते हैं।
- 'टिव' लोगों में लड़का विवाह के बाद अपनी माँ के पास रहता है। किंतु संतान होने के बाद पति उसके लिए अलग घर बना देता है जो माँ के घर के पीछे होता है।

18.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **मातुल स्थानियता**–कहीं-कहीं दम्पति पति के माँ के भाई (मामा) के पास जाकर रहने लगते हैं, यह व्यवस्था मातुल स्थानीयता के नाम से जानी जाती है।
2. **मातृ-पितृ स्थानीयता**–कुछ समाजों में दम्पति को यह छूट रहती है कि वह पति अथवा पत्नी दोनों में से किसी के परिवार वालों के साथ रहे।

18.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आदिम समाजों में नातेदारी नियमों को आवास के नियम किस प्रकार नियंत्रित करते हैं?
2. मरडॉक ने कितने प्रकार के आवास के नियमों का उल्लेख किया है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. 'Sociology of kinship' 2. तुलनात्मक 3. 'भारत में बन्धुत्व संगठन'।

18.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सोलह संस्कार–स्वामी अवधेशन, मनोज पब्लिकेशन।
2. भारत में परिवार की सैर–ट्रेमवोर अलिक, कल्पज पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–19: वंशावली विधि (The Geneological Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 वंशावली विधि (Geneological Method)

19.2 विभिन्न एथनिक समुदायों में प्रचलित विवाह की पद्धतियाँ (Method of Marriage Found among Different Ethnic Communities)

19.3 हिन्दू विवाह (Hindu Marriage)

19.4 सारांश (Summary)

19.5 शब्दकोश (Keywords)

19.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

19.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वंशावली का निर्धारण करने वाले प्रमुख नियमों को जानना।
- वंशावली विधि के पीछे स्थित विभिन्न एथनिक समुदायों में विवाह की प्रचलित पद्धतियों की जानकारी होना।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय समाज में यदि परिवार एक सबसे छोटी और महत्त्वपूर्ण इकाई है तो इसका अस्तित्व विवाह द्वारा ही रहता है। विवाह की संस्था सभी समाजों में होती है। इसका मूल है प्रजनन द्वारा मनुष्य जाति की बिरादरी को बनाये रखना। यदि प्रजनन ही न हो तब सम्पूर्ण मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पहुँच जाता है। जीवन-साथी अथवा पति या पत्नी को प्राप्त करने के प्रत्येक समाज में कुछ वैध तौर-तरीके होते हैं। इन तरीकों को समाज अपनी स्वीकृति देता है। भारत एक बहु-सांस्कृतिक (Ethnic) समाज है। इसमें कई जातियाँ हैं; कई भाषाएँ हैं; कई धर्म हैं; कई सांस्कृतिक

क्षेत्र हैं। विवाह का सम्बन्ध इन सबके साथ होता है। जहाँ तक वैधता का प्रश्न है, समाज इसे देता है। हाल में जहाँ धर्म निरपेक्ष राज्य है, वहाँ राज्य भी विवाह को वैधता देता है। यदि भावी पति-पत्नी चाहें तो अदालत में जाकर भी 'सिविल' विवाह कर सकते हैं। जात-पाँत को तोड़ने वाला आर्य समाज भी इसी तरह के 'सिविल' विवाह में अपनी अगुआई करता है।

19.1 वंशावली विधि (Geneological Method)

वंशावली विधि के अन्तर्गत अनेक नियम एवं व्यवहार शामिल हैं, जिनमें निम्न उल्लेखनीय हैं–

अन्वय (डीसेंट) के नियम

वह सिद्धांत या सिद्धांतों की वह समष्टि जिसके आधार पर किसी के रिश्तेदारों का निर्धारण होता है तकनीकी रूप से अन्वय या **उत्तराधिकार** के नियम कहलाते हैं। अन्वय (डीसेंट) के मूलत: तीन नियम हैं– पितृवंशीय, मातृवंशीय और उभयवंशीय।

पितृवंशीय अन्वय के नियम के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपने पिता के समरक्त नातेदारी समूह का सदस्य बन जाता है परन्तु वह माँ के समरक्त नातेदारी समूह का सदस्य नहीं होता।

मातृवंशीय अन्वय में व्यक्ति अपनी माँ के समरक्त नातेदारी समूह का सदस्य बन जाता है पर पिता के समरक्त समूह का सदस्य नहीं बन पाता।

द्विवंशीय या उभयवंशीय प्रणाली में एक व्यक्ति अपने पिता के वंश के कुछ रक्त-संबंधियों का उत्तराधिकारी होता है पर सभी का नहीं और इसी प्रकार अपनी माँ के तद्नुरूपी रक्त-संबंधियों का भी उत्तराधिकार प्राप्त करता है। ठोस सचाई तो यह है कि शायद कोई भी समाज द्विवंशीज अन्वय पर पूर्णत: आधारित नहीं है। इसी प्रकार कोई भी समाज पूर्णत: एक वंशीय भी नहीं है अगर हम एक वंशीय शब्द का मतलब यह समझते हैं कि एक पक्ष को (मातृपक्ष या पितृपक्ष) दूसरे पक्ष की बिना पर अनदेखा कर दिया जाय। अगर एक बिना पर पूर्वज के आधार पर कुछ लोग रिश्ते में बंधे हों तो उन्हें रक्त-सम्बन्धी (कोग्नेट्स) कहते हैं। अगर उनका पूर्वज कोई पुरुष हो तो वे पैतृक या पितृवंशीय कहे जाते हैं। दूसरी तरफ औरत को, पूर्वज को, मातृक या मातृवंशीय नातेदार कहे जाते हैं। वे नातेदार जो एक दूसरे से अन्वय द्वारा सीधे-सीधे जुड़े हों, घनिष्ठ सम्बन्धी (लीनियल किन) कहलाते हैं और वे जो शाखा के रूप में होते हैं (जैसे–चाचा, भतीजे आदि) एक ही खानदान के सम्बन्धी (कोलैटरल किन) तो कहलायेंगे पर घनिष्ठ सम्बन्धी नहीं कलायेंगे।

नातेदारी की कोटियाँ

नजदीकी और दूरी के आधार पर नातेदारों को जिन कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है वे इस प्रकार हैं– 1. प्राथमिक नातेदार, 2. द्वितीयक नातेदार, 3. तृतीयक नातेदार।

वे रिश्तेदार जो एक ही परिवार के हैं प्राथमिक नातेदार कहलाते हैं। प्राथमिक नातेदार आठ हैं–पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, पिता-पुत्री, छोटे-बड़े भाई, छोटी-बड़ी बहनें, भाई-बहन। द्वितीयक नातेदार हमारे प्राथमिक नातेदारों के प्राथमिक नातेदारों के प्राथमिक नातेदार होते हैं। पिता के भाई, बहन के पति, भाई की पत्नी आदि इसी कोटि में आते हैं। मानवशास्त्रियों ने कुल मिलाकर तैंतीस द्वितीयक नातेदारों की पहचान की है।

हमारे तृतीयक नातेदार द्वितीयक नातेदारों के प्राथमिक नातेदार हैं। मानवशास्त्रियों ने 151 तृतीयक नातेदारों की खोज की है। तृतीयक नातेदारों के प्राथमिक नातेदार दूर के नातेदार कहे जाते हैं।

प्रत्येक समाज में अन्वय के नियम दो कारणों से महत्त्वपूर्ण होते हैं–

(*i*) यह प्रत्येक व्यक्ति को स्वत: एक सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान के स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। इसके अनुसार व्यक्ति साधिकार, सामाजिक प्रतिष्ठा की भूमिकाओं व जिम्मेदारियों में सहभागी बनता है। नातेदारी समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक आदान-प्रदान तथा सहयोग के अलावा अधिकार और जिम्मेदारियों से जुड़े ये लोग शादी-विवाह के नियमों का पालन करते हैं।

नोट

(ii) कानून या पूर्णत: स्थापित प्रथा अथवा रिवाज के अनुसार अन्वय के नियम उत्तराधिकार के कुछ प्रकारों को परिभाषित करते हैं। मसलन अधिकार जो जन्म से स्थापित होता है, इसके अनुसार सबसे बड़ा बेटा या सबसे छोटा बेटा या सभी बेटे और बेटियाँ मृतक की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं। उसी प्रकार शादी के आधार पर उत्तराधिकार होता है जिसके अनुसार पति के मरने पर सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी पत्नी होती है।

द्विपक्षीय समूह और एक पक्षीय समूह

परिवार नातेदारी के बंधन से अटूट रूप से बंधा होता है। यह एकता दो तरफ जाती है–पिता के परिवार के मूल की तरफ और माता के परिवार के मूल की तरफ। किसी न किसी कारण से किसी एक पक्ष पर ही ज़ोर दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए आधुनिक व्यवहार में हम माता के परिवार के कुलनाम को नकार देते हैं। इतना ही नहीं, शादी हो जाने के बाद लड़कियाँ अपने पति के नाम के आगे जुड़ने वाले कुलनाम को ग्रहण कर लेती हैं। पर परिवार दोनों में से किसी भी सहयोगी पक्ष को नहीं नकारता। इसीलिए इसे द्विपक्षीय समूह माना जाता है।

नातेदारी को एकता का आधार मानने वाले दूसरे प्रकार के समूह हैं जो द्विपक्षीय समूहों से भिन्न हैं क्योंकि वे एक सहयोगी पक्ष को पूरे तौर पर नकार देते हैं। ये सब एक पक्षीय समूह कहे जाते हैं।

वंश

एक पक्षीय समूह का सबसे सरल उदाहरण वंश है जिसमें एक ही वंश के सभी सम्भावित सम्बधियों को शामिल किया जाता है। वंश में एक ही खानदान के उत्तराधिकारी होते हैं चाहे वे पितृपक्षीय हों या मातृपक्षीय। वे अपने जन्मजात रिश्तेदारों को जानते हैं और एक दूसरे के प्रति दायित्वों को समझते हैं। वंश इस प्रकार छोटा, स्थानीकृत और ज्यादा क्रियाशील होता है।

गोत्र (Sib)

जब साधारण एक पक्षीय समूह जिसे वंश कहते हैं इतना विस्तृत हो जाता है कि इसके दायरे में एक सामान्य उत्तराधिकार के आधार पर परस्पर संबद्ध सभी समूह शामिल हो जाते हैं तो उसे एक कुल या गोत्र कहते हैं। इस प्रकार एक कुल या गोत्र कुछ वंशों के मिलने से बनता है। इनके पूर्वजों के जन्म को काल्पनिक पूर्वजों के साथ खोज कर जोड़ा जा सकता है जो या तो मनुष्य जैसे हों, या पशु, पौधे या निर्जीव हों। हिन्दुओं का गोत्र 'गोम' का उदाहरण है। स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि गोत्र शब्द ज्यादा व्यापक, भौगोलिक रूप से बिखरे हुए और लगभग निष्क्रिय एकपक्षीय समूह के लिए इस्तेमाल होता है।

गोत्र अक्सर एक सामान्य टोटेमिक नाम के जरिए एक-दूसरे से बंधे होते हैं। एक गोत्र के लोगों में टोटम वाले पशु के मांस का भक्षण करने के विरुद्ध रिवाजी तौर पर एक सामान्य निषेध का प्रचलन होता है। इस प्रकार की कहानियाँ अक्सर सुनाई जाती हैं कि गोत्र-सदस्य टोटेमिक प्रजातियों के किसी सामान्य पूर्वज की संतानें हैं।

भ्रातृभव (फ्रैटी)

जब गोत्रों का कोई समूह परस्पर एक-दूसरे के साथ घुल मिल जाता है तो इसे भ्रातृभाव से बना गोत्र (कुल) कहते हैं। कभी-कभी कोई गोत्र इतना विशाल हो जाता है कि अपने पूर्ववर्ती गोत्र के रिश्तों को छोड़े बिना भी टूट कर अलग हो जाता है। इस तरह के एक दूसरे में मिलने या टूटने के उदाहरण, उराँव और मुंडा जनजातियों में मिलते हैं।

अगर किसी गोत्र के सारे कबीले दो बिरादरियों में बँटे होते हैं, तो इस प्रकार के सामाजिक ढांचे का हम द्वैध संगठन कहते हैं, जो प्रत्येक बिरादरी गोत्र की आधी होती है।

नातेदारी का प्रसार-क्षेत्र

नातेदारी समूह को उसमें शामिल व्यक्तियों की संख्या के आधार पर विस्तृत प्रसारी या संकीर्ण प्रसारी समूह कहा जाता है। आधुनिक नातेदारी व्यवस्था संकीर्ण प्रसार क्षेत्र वाली व्यवस्था है जबकि आदि कालीन कबीला या सिब व्यापक क्षेत्र वाली व्यवस्था है। इसमें शामिल लोग के आपेक्षिक रूप से इतने बड़े क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं कि किसी-न-किसी मिथकीय पूर्वज को बीच में लाए बगैर उनके आपसी सम्बन्धों की पहचान मुश्किल है।

नातेदारी व्यवहार

नातेदारी व्यवहार दो प्रमुख कार्य सम्पादित करते हैं। प्रथम तो ये नातेदारों के विशिष्ट समूह निर्मित करते हैं। इस प्रकार विवाह के सामाजिक अन्वेषण से प्रत्येक माँ को एक पति निश्चित होता है जिससे पिता के बच्चे माँ के हो जाते हैं। इससे माता, पिता और बच्चों के विशिष्ट समूह बनते हैं जिसे हम परिवार कहते हैं। अतिरिक्त नियमों और सामाजिक परिपाटियों द्वारा विस्तृत नातेदारी समूहों का गठन होता है, जैसे विस्तृत परिवार या वंश या गोत्र या कबीला।

नातेदारी सम्बन्धी नियमों का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य नातेदारों के बीच भूमिका सम्बन्धों को अनुशासित करना है। नातेदारी एक प्रकार के सामाजिक 'ग्रिड' का गठन करता है। किसी भी समाज में लोग जन्मगत संबंधों या समान नातेदारी समूह की सदस्यता के कारण परस्पर संपृक्त होते हैं। नातेदारी के उपयोग से इन सामाजिक समूहों के लोग आपस में एक दूसरे के साथ मेल-जोल करते हैं। यह सम्बन्धों की उचित भूमिकाओं एवं रिश्तों को परिभाषित करता हैं, जैसे पिता और पुत्री के बीच सम्बन्ध, भाई-बहन के बीच सम्बन्ध, युवा दामाद तथा सास के बीच के सम्बन्ध आदि। अत: नातेदारी व्यवहार द्वारा सामाजिक जीवन नियमित होता है।

सामाजिक जीवन के नियामक के रूप में नातेदारी का महत्त्व तीन बातों पर आधारित है–

(*i*) उस हद तक जहाँ तक व्यक्ति अपने रक्त-सम्बंधियों से घिरा होता है। यदि एक ही वंश के लोग विस्तृत इलाकों में बिखरे हों तो नातेदारी व्यवहार की भूमिका सीमित होगी। (*ii*) प्रतिमानित नातेदारी व्यवहार के विकास का स्तर। कुछ सामाजिक लोगों में सम्बन्ध इतने प्रतिमानित होते हैं कि आकस्मिकता के लिए जगह बहुत कम होती है। कुछ समाजों में नातेदारी का निश्चित 'पैटर्न' नहीं होता जिससे व्यक्तिवादी व्यवहार बहुत ज्यादा होने की संभावना होती है। (*iii*) लोगों की भूमिकाएँ निश्चित करने के लिए वैकल्पिक विकास का स्तर। शहरी क्षेत्रों में हमारा अपना व्यवहार नातेदारी के नियमों से प्रभावित नहीं होता क्योंकि हम नातेदारों के साथ आमतौर पर अंत: क्रिया नहीं करते। यह स्थिति एक सामान्य किसान के गाँव के बिल्कुल विपरीत है, क्योंकि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति से सम्बद्ध होता है। परिणामत: कोई भी व्यक्ति अपने वंश के लोगों की उपस्थिति में ही कोई काम करता है। बिल्कुल छोटे समाज में, जहाँ भौगोलिक गतिशीलता की थोड़ी या बिल्कुल छोटे समाज में, जहाँ भौगोलिक गतिशीलता की थोड़ी या बिल्कुल भी संभावना नहीं होती नातेदारी व्यवहार ही सामाजिक व्यवहार को नियमित करते हैं।

प्रतिमानित नातेदारी व्यवहार दो भागों में बाँटे जा सकते हैं:–(*i*) अधिकारों और कर्तव्यों को निर्धारित करने वाले नियम (*ii*) आचार-विचार या तौर-तरीकों से संबंधित नियम।

अधिकार और कर्तव्य को निर्धारित करने वाले नियम

ये नियम वहाँ लागू होते हैं जहाँ नातेदार दूसरे प्रकार की सेवाओं या कर्त्तव्यों या विशेषाधिकारों से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए नातेदारों के बीच एक सामान्य आतिथ्य की भावना होती हैं। अगर कोई सम्बन्धी किसी दूसरे के घर जाने की इच्छा करता है तो वह साधिकार मुफ्त भोजन, सोने का स्थान, और दूसरे प्रकार के आतिथ्य-प्रतीकों की आशा करता है। उसकी आशायें या दावे इसलिए वैध लगते हैं कि वह एक स्वजन है। उत्तराधिकार के नियम दूसरे उदाहरण प्रदान करते हैं। ये नियम यह निर्धारित कर सकते हैं कि मृतक की सम्पत्ति या तो उसकी पत्नी या सबसे बड़े बेटे या सबसे छोटे बेटे या उसके बच्चों के बीच बाँट दी जाएगी। वंशगत उपयोग के और उदाहरण माता-पिता द्वारा अपने बच्चों का लालन-पालन, भरण-पोषण, उन्हें जीवन के विषय में प्रशिक्षित करने और भारत जैसे समाज में इससे बढ़कर बेटियों के लिए दहेज जुटाने से संबंधित हैं। प्रचलित नातेदारी व्यवहार के आधार पर ही समाज विशेष में स्त्री-पुरुष के बीच जिम्मेदारियों का बँटवारा होता है। कुछ समाजों में ये अधिकार और जिम्मेदारियाँ बराबर बँटी होती हैं और इनमें तारतम्य होता है। कुछ में ये बिल्कुल असंगत होती हैं। एक पक्ष देता है तो दूसरा पाता है, एक के पास अधिकार हैं तो दूसरे के पास कर्तव्य। इस प्रकार की बातें अपने देश में स्त्री-पुरुष या माता-पिता तथा बच्चों के रिश्तों को निर्धारित करते हैं। बहुत लम्बे समय से भारतीय समाज में व्याप्त परम्पराओं

के मुताबिक एक पति से यह आशा नहीं की जा सकती कि घरेलू काम में अपनी पत्नी की मदद करें। दूसरी तरफ पत्नी से आशा की जाती है कि वह अपनी सर्वोत्तम योग्यता का परिचय देते हुए पति की सेवा करे। उसी प्रकार जब कोई भारतीय बच्चा काम करने की उम्र का हो जाता है तो उससे यह आशा की जाती है कि वह अपने माता-पिता की मृत्यु तक अच्छी तरह जिम्मेदारियों का निर्वाह करे।

19.2 विभिन्न एथनिक समुदायों में प्रचलित विवाह की पद्धतियाँ (Method of Marriage Found among Different Ethnic Communities)

वेस्टर मार्क ने दुनियाँ के विभिन्न समुदायों में विवाह की रस्म पूरी करने की जो पद्धतियाँ हैं उनका वर्णन किया है। हमारे यहाँ कोई ऐसा विवाह सम्बन्धी दस्तावेज़ नहीं है जो इन रस्मों को **कोटिकरण** (Codification) कर सके।

फिर भी **सी. एस. डब्ल्यू. आई.** (1974) कमेटी ने ऐसा एक लघु प्रयास किया है। यह कमेटी बताती है कि विभिन्न समुदायों में विवाह की विभिन्न रस्में अपनाई जाती हैं। इन सबमें एक बहुत बड़ी समानता यह है कि विवाह की रस्म पूरा करने के लिये किसी न किसी पुरोहित का होना आवश्यक है। यह पुरोहित पादरी हो सकता है, मौलवी हो सकता है या ब्राह्मण। पुरोहित ही विवाह की रस्म का अध्यक्ष होता है। विवाह की सभी रस्मों में धार्मिक विधियाँ अवश्य होती हैं। हम यहाँ देश के विभिन्न एथनिक समूहों जो विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं उनकी विवाह से जुड़ी हुई रस्मों का विवरण करेंगे। लेकिन रस्म तो केवल रस्म के लिये होती है। इनके पीछे विवाह के नियम होते हैं। इन नियमों का पालन करना प्रत्येक एथनिक समूह के लिये आवश्यक है। इनका पालन न करने पर विवाह की वैधता समाप्त हो जाती है। विवाह से जुड़ा हुआ दूसरा मसला **विवाह की उम्र** (Age at Marriage) का है। मतलब हुआ, सामान्यतया एक एथनिक समूह किस उम्र में लड़के-लड़की का विवाह करना पंसद करता है। विवाह से जुड़ी हुई तीसरी समस्या विवाह-विच्छेद की है। यहाँ हम विभिन्न एथनिक समूहों की विवाह पद्धतियों का इन्हीं बिन्दुओं पर विवरण देंगे।

नोट्स सभी समूहों में विवाह के दो नियम–बहिर्विवाह (Exogamy) और अन्तर्विवाह (Endogamy) महत्त्वपूर्ण हैं। विवाह से जुड़ा हुआ दूसरा मसला विवाह की उम्र का भी है।

19.3 हिन्दू विवाह (Hindu Marriage)

हिन्दू विवाह में जो धर्म विधियाँ होती हैं, उनसे स्पष्ट है कि पुरुष प्रधान है और स्त्री गौण। ये धर्म विधियाँ यह भी बताती हैं कि विवाह के बाद वधू अपने पति के घर चली जाती है। विवाह में निहित दो व्यक्तियों के जीवन भर साथ रहने पर बल देते हुए **ये बुनियादी विधियाँ पत्नी द्वारा पति का अनुकरण करने, उसकी इच्छाओं के अनुसार कार्य करने और निष्ठा और प्रेम में दृढ़ रहने पर ज़ोर देती है।** वास्तव में विवाह हिन्दू स्त्री के लिये पहला प्रमुख संस्कार है। पुरुष का इससे पहले यज्ञोपवित संस्कार होता है। संस्कृत शास्त्रकारों ने हिन्दू विवाह की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। इस अवसर पर व्यवहार में लाने वाली विधियों का विवरण भी उन्होंने दिया है। इस सम्बन्ध में **पिण्डारीनाथ प्रभु** की पुस्तक **हिन्दू सोशल ऑरगेनाइज़ेशन** (Hindu Social Organisation) एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें उन्होंने संस्कृत ग्रंथों के आधार पर यह स्थापित किया है कि **हिन्दू विवाह एक धार्मिक कृत्य है** (Hindu Marriage is a Sacrament)। प्रभु की इस स्थापना को **कपाड़िया** ने दोहराया है। वे भी ऐसी धर्म विधियों का उल्लेख करते हैं कि जो स्थापित करती है कि हिन्दू विवाह एक धार्मिक कार्य है। यहाँ हम सबसे पहले हिन्दू विवाह को परिभाषित करेंगे–

के. एम. कपाड़िया (K. M. Kapadia)

मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया (Marriage and Family in India, 1955) कपाड़िया की एक शास्त्रीय पुस्तक है। इसमें वे **हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानते हैं।** वे कहते हैं कि हिन्दुओं में विवाह जन्म-जन्मान्तर तक चलते हैं। यह एक ऐसा अटूट सम्बन्ध है जो सामान्यतया टूटता नहीं है। कपाड़िया ने हिन्दू विवाह को इस भाँति परिभाषित किया है–

विवाह प्राथमिक रूप से कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए होता है, इसलिये विवाह का मौलिक उद्देश्य धर्म हैं। हिन्दुओं में काम-वासना को कभी भी महत्त्व नहीं दिया जाता है जैसा कि पश्चिम के समाजों में होता है। हिन्दू विवाह में धर्म का स्थान प्रथम है, पुत्र प्राप्ति का द्वितीय और काम वासना (रति) का तृतीय। हिन्दुओं में विवाह एक अत्यावश्य धार्मिक संस्कार एवं कर्त्तव्य माना गया है।

मेधातिथी के अनुसार (According to Medhatithi)

हिन्दु विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिये एक निश्चित से किया जाने वाला, अनेक विधियों से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण संस्कार है, जिसकी अंतिम विधि सप्तर्षिदर्शन है।

हिन्दू विवाह की वैधता धार्मिक विधियों को पूरा करके प्राप्त होती है। चलचित्रों में जब कोई नायक लड़की को भगाकर ले जाता है तो उसके नायिका के साथ यौन सम्बन्धों की वैधता विवाह द्वारा होती है। और यह फिल्मी नायक और नायिका वीरान जंगल में स्थित किसी देवी-देवता की मूर्ति के सामने माल्यापर्ण करके विवाह सम्पन्न करते हैं। हिन्दू विवाह किसी न किसी के समक्ष किया जाता है और यही इसकी परिभाषा है।

टास्क हिन्दू विवाह का विधिवत उल्लेख करें।

हिन्दू विवाह के नियम (Rules of Hindu Marriage)

प्रत्येक हिन्दू जाति में विवाह के निश्चित नियम होते हैं ऐसा नहीं होता कि कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष के साथ या पुरुष स्त्री के साथ विवाह कर लें। जाति द्वारा सम्मत कुछ नियम होते हैं और इनके अनुसार विवाह साथी को चुना जाता है। सामान्यतया विवाह के ये नियम अन्तर्विवाह, अनुलोम विवाह, प्रतिलोम विवाह, और बहिर्विवाह के नाम से जाने जाते हैं। जाति कोई भी हो, थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी में विवाह के नियम लागू होते हैं। यहाँ हम इनका उल्लेख करेंगे–

1. अन्तर्विवाह (Endogamy)

इस विवाह के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपनी जाति में ही विवाह कर सकता है, इससे बाहर नहीं। अन्तर्विवाह का मतलब होता है **अपनी ही जाति के अन्दर विवाह।** उदाहरण के लिये माहेश्वरी या अग्रवाल जाति का सदस्य अपनी ही जाति में विवाह करेगा। हमारे यहाँ अनेक जातियाँ हैं और ये जातियाँ उपजातियों में बँटी हुई हैं। ये उपजातियाँ उपवर्गों में बँटी हुई हैं तथा इनमें से प्रत्येक उपवर्ग अन्तर्विवाही होता है। कई हिन्दू उपजातियों के लिये अन्तर्विवाही इकाई में बिल्कुल सीमित भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले नातेदारों के समूहों की श्रेणियाँ आती हैं। क्षेत्रीय जाति, वर्ग और धर्म के सम्बन्ध में अन्तर्विवाह प्रथा के नियम का महत्त्व स्पष्ट होता है।

दक्षिण भारत में कई जातियों में कुछ सम्बन्धियों के साथ विवाह करने को प्राथमिकता दी जाती है। मलियालम, तेलुगू, तमिल और कन्नड़ भाषी क्षेत्रों में फुफेरे/ममेरे भाई-बहिनों (पिता की बहिन के बच्चे अथवा माता के भाई के बच्चे) को वरीयता दी जाती है। उत्तर भारत में न तो चचेरे/मौसेरे न ही ममेरे/फुफेरे भाई-बहिन आपस में विवाह कर सकते हैं। उत्तर भारत में तो प्रायः अपने गाँव से बाहर या तेरह किलोमीटर की परिधि वाले गाँवों में शादी ब्याह तय होते हैं। विवाह के क्षेत्र की सीमित करने वाली स्थानिक और सामाजिक सीमाएँ प्रत्येक क्षेत्र में अलग-अलग होती हैं।

2. अनुलोम विवाह (Hypergamous Marriage)

इस विवाह के नियम के अनुसार पति का स्थान पत्नी के स्थान से हमेशा ऊँचा होता है। वे लोग जो इस नियम का पालन करते हैं **अपनी पुत्रियों के लिये उन व्यक्तियों को ढूँढ़ते हैं जिनकी सामाजिक प्रस्थिति उनकी अपनी सामाजिक प्रस्थिति से ऊँची हो।** यह एक ऐसा नियम है **जिसके द्वारा निम्न सामाजिक स्तर की लड़की और उच्च सामाजिक स्तर के लड़के के बीच अपनी उपजाति में विवाह होना अपेक्षित है।** यह नियम विभिन्न जातियों के बीच पाये जाने की अपेक्षा जाति अथवा उपजाति के विभिन्न उप-वर्गों में प्रचलित है। लगभग सभी जातियों में अनुलोम विवाह की परम्परा प्रचलित है। यह विवाह सामाजिक स्तरीकरण को प्रभावित करता है।

यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि हिन्दू शास्त्रकारों ने भी इस विवाह को वरीयता दी है। शास्त्रकार कहते हैं कि किसी भी लड़की को अपने से उच्च जाति/उपजाति के लड़के से विवाह कर लेना चाहिए। ऐसा लगता है कि प्राचीन काल में चतुर्वर्ण व्यवस्था में वर्णों के बीच अनुलोम विवाह की अनुमति थी। आज भी विवाह का यह नियम देश के कई भागों और जातियों में प्रचलित है। उदाहरण के लिये राजपूत और जाट, जो प्रायः उत्तर भारत में हैं अनुलोम विवाह कर लेते हैं। विवाह का यह नियम गुजरात के अनाविल ब्राह्मणों और पाटीदारों, बिहार के मैथिल ब्राह्मणों, बंगाल के राढ़ी ब्राह्मणों और उत्तर प्रदेश के कान्य कुब्ज तथा सरयूपारी ब्राह्मणों में प्रचलित है। उधर दक्षिण भारत में यह नियम नायरों, क्षत्रियों और अम्बावासियों में लागू होता है। उन क्षेत्रों में जहाँ अनुलोम विवाह का नियम व्यवहार में आता है, गोत्र और वंश परम्पराएँ असमान प्रस्थिति की होती हैं। जाट और राजपूतों में अनुलोम विवाह हत्या का मुख्य कारण समझा जाता था। विवाह के इस नियम में दहेज की माँग आमतौर पर अधिक होती है। बंगाल की कुलीन उपजाति के पुरुष (उदाहरण के लिए राढ़ी ब्राह्मण) एक साथ प्रायः कई औरतों से विवाह कर लेते थे और साथ ही बहुत सारा दहेज भी माँगते थे। ऐसा इसलिय था कि उन्हें सबसे ऊँची उपजाति का दर्जा प्राप्त था और इस समूह की औरतों को उसी समूह में विवाह करना पड़ता था।

3. प्रतिलोम विवाह (Hypogamy Marriage)

इस विवाह में लड़की का विवाह निम्न जाति/उपजाति के लड़के से होता है। शास्त्रकारों के अनुसार प्रतिलोम विवाह का नियम उचित नहीं है। सामान्यता उच्च जाति या उपजाति के लोग अपनी लड़की को निम्न उपजाति में विवाह में नहीं देते। लेकिन कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती है कि उच्च जाति के लड़के को निम्न उपजाति की लड़की लाने के लिये बाध्य होना पड़ता है। प्रतिलोम विवाह के कई कारण हैं। कभी-कभी उच्च जाति के लड़के को अपनी जाति में ही लड़की नहीं मिलती और उसे निम्न जाति से विवाह में लड़की लाना पड़ता है। आजकल शिक्षा ने प्रतिलोम विवाह के प्रचलन को बढ़ा दिया है। यह कई बार होता है कि उच्च जाति के लड़के को अपनी ही जाति में शिक्षित लड़की नहीं मिलती और वह उपजाति की ओर लड़की ढूँढ़ता है। कई बार एक निश्चित जाति में जब पुरुष और स्त्री का अनुपात बिगड़ जाता है तब भी व्यक्ति को प्रतिलोम विवाह करने के लिये बाध्य होना पड़ता है वैसे हिन्दू धारणा के अनुसार प्रतिलोम विवाह आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता।

4. बहिर्विवाह (Exogamy)

बहिर्विवाह का अर्थ है अपने गोत्र, पिण्ड और प्रवर से बाहर के समूहों में विवाह करना। सिद्धान्त यह है कि अपने ही रक्त समूह में विवाह करना संतति को विघटन की ओर ले जाता है। रक्त की शुद्धता के आधार पर मिस्र के राजा अपने ही गोत्र में विवाह करते थे। लेकिन जीव वैज्ञानिकों का कहना है कि एक ही रक्त समूह में विवाह करना उचित नहीं है। **हिन्दू विवाह अधिनियम** भी बहिर्विवाह को मान्यता देता है। देखा जाए तो बहिर्विवाह के नियम अन्तर्विवाह के नियमों के ही पूरक हैं। विवाह का यह नियम निषेधात्मक है। यह निषेध कहीं-कहीं इतना संकीर्ण होता है कि इसमें केवल प्रथम परिवार (अर्थात् भाई और बहिन, माता-पिता और संतान के बीच विवाह) के सदस्य निहित होते हैं। कहीं-कहीं यह इतना व्यापक होता है कि इसमें वे व्यक्ति भी शामिल होते हैं जिनके साथ **वंशावली** (Lineage) में नातेदारी का सम्बन्ध होता है। कई समूहों में नातेदारी के कुछ सम्बन्धों वाले व्यक्तियों के बीच निषिद्ध यौन सम्बन्ध **कोटुम्बिक-व्यभिचार** (Incest) कहलाता है। प्रायः सभी समूहों में भाई और बहिन में विवाह और यौन सम्बन्धों को व्याभिचारात्मक अवैध सम्बन्ध माना जाता है। **किन्तु बहिर्विवाह के समूह का निर्धारण धर्म और क्षेत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप से होता है।**

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. अन्तर्विवाह का मतलब है कि अपनी ही ……… जाति के अन्दर विवाह।
2. जाति द्वारा सम्मत कुछ ……… होते हैं और इनके अनुसार विवाह साथी को चुना जाता है।
3. दक्षिण भारत में कई जातियों कुछ ……… के साथ विवाह करने की प्राथमिकता दी जाती है।

उत्तर भारत में गाँव में पैदा हुई लड़की को पूरे गाँव की लड़की समझा जाता है और इस कारण वह अपने गाँव के किसी लड़के से विवाह नहीं कर सकती। इस विवाह को **गाँव बहिर्विवाह** (Village Exogamy) कहते हैं। दक्षिण भारत में स्थिति दूसरी है। वहाँ व्यक्ति की अपनी पीढ़ी में बहिर्विवाह इकाई की परिभाषा में उस व्यक्ति के अपने बहिन-भाई तथा सगे तथा वर्गात्मक चचेरे/मौसेरे भाई/बहिन आते हैं। मतलब हुआ इन लोगों के साथ विवाह निषेध होता है।

बहिर्विवाह के दो और नियम हैं–1. बहिर्गोत्र विवाह, और 2. बहिर्सपिण्ड विवाह।

बहिर्गोत्र विवाह–विवाह का यह नियम वस्तुत: बहिर्विवाह है। इसका मतलब है अपने गोत्र से बाहर विवाह करना। एक ही पूर्वज आमतौर पर ऋषि अथवा मुनि से चले वंश के वंशजों में विवाह निषिद्ध है। **स्पष्ट रूप से एक गोत्र के लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते। पी. एन. प्रभु** ने गोत्र का अर्थ गायों के समूह से लिया है। एक ही समूह के लोग भाई-बहिन हैं। ऐसी स्थिति में समूह के लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते। **एक ही गोत्र के सभी सदस्य एक ही पूर्वज के वंशज समझे जाते हैं और इस कारण वे एक-दूसरे के भाई-बहिन हो जाते हैं और उनके बीच विवाह की अनुमति नहीं होती।**

उदाहरण के लिए हिन्दू जातियों में चार गोत्रीय नियम अथवा चार गोत्रीय बहिर्विवाह का नियम प्रचलित है। "इस चार गोत्रीय नियम के अनुसार कोई भी व्यक्ति 1. अपने पिता के गोत्र, 2. अपनी माता के गोत्र, 3. अपनी दादी के गोत्र अर्थात् अपने पिता की माता के गोत्र, और 4. अपनी नानी के गोत्र अर्थात् अपनी माता की माता के गोत्र की किसी भी लड़की से विवाह नहीं कर सकता।" इरावती कर्वे ने इस नियम की व्याख्या की हैं वे कहती हैं कि उत्तरी भारत की सभी जातियों में चचेरे/मौसेरे/फुफेरे भाई-बहिनों के बीच विवाह नहीं हो सकता।

बहिर्सपिण्ड विवाह–विवाह का यह नियम भी निषेधात्मक है। सपिण्ड का अर्थ है**: जीवित सदस्यों और उनके दिवंगत पूर्वजों के बीच सम्बन्ध।** सपिण्ड का शाब्दिक अर्थ है: उसी शरीर के अंश। मतलब हुआ वे लोग जो उसी दिवंगत पूर्वजों को पिण्ड अथवा पके चावलों के गोले (पिण्ड) अर्पित करते हैं। हिन्दू जातियों में नातेदारी समूहों के सम्बन्ध में कोई समान परिभाषा नहीं मिलती है, जिससे यह पता चल सके कि किन-किन समूहों में विवाह नहीं हो सकता। **कुछ लोग यह मानते हैं कि पिता पक्ष की सात पीढ़ियों के सदस्यों और माता पक्ष की पाँच पीढ़ियों के सदस्यों के बीच विवाह नहीं होना चाहिए। कुछ अन्य लोगों ने पिता पक्ष की पाँच पीढ़ियों तक और माता पक्ष की तीन वर्जित पीढ़ियों के सदस्यों के बीच विवाह का निषेध किया है। दक्षिण भारत में कुछ और नियम है।** वहाँ ममेर/फूफेरे (पिता की बहिन की संतान अथवा माँ के भाई की संतान के साथ व्यक्ति का विवाह) संतानों के विवाह की अनुमति है।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में पिता पक्ष की पाँच पीढ़ियों और माता पक्ष की तीन पीढ़ियों में विवाह की अनुमति नहीं है। फिर भी जहाँ रीति-रिवाज हों वहाँ यह ममेरे/फुफेरे भाई-बहिनों के विवाह की अनुमति देता है। हिन्दुओं में पितृवंशीय परिवार एक महत्त्वपूर्ण बहिर्विवाही इकाई है। यह इस तथ्य से बिल्कुल स्पष्ट है कि पिता पक्ष की पाँच पीढ़ियों में विवाह का निषेध सर्वव्यापी रूप से पाया जाता है ईसाइयों व मुसलमानों में प्रथम अथवा एकाकी परिवार बहिर्विवाही इकाई है। नायरों में जो कि मातृवंशीय समूह के हैं, लड़की अपनी माता के भाई से कभी भी विवाह नहीं कर सकती जबकि दक्षिण भारत में अनेक समूहों में इस समूह को वरीयता मिलती है।

नोट

19.4 सारांश (Summary)

- अन्वय (डीसेंट) के आधार पर किसी के नातेदारों का निर्धारण किया जाता है।
- डीसेंट (descent) के मूलत: तीन नियम हैं–पितृवंशीय, मातृवंशीय और उभयवंशीय। इन्हीं तीन मूल नियमों से तीन और नियमों का उद्भव होता है, जिससे कुल मिलाकर डीसेंट के छ: नियम प्रचलित रहते हैं।

19.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **वंशावली विधि (Geneological Method)**–मानवशास्त्रीय क्षेत्र की एक कार्यविधि जिसमें वंशावलियों का संकलन कर व्यवस्थित किया जाता है। इस विधि का प्रयोग नातेदारी व्यवस्था, वैवाहिक प्रणाली, सामाजिक संगठन के रूप में, वंशानुक्रम एवं उत्तराधिकार की गणना के तरीकों का जानने के लिए किया जाता है।
2. **प्रतिलोम विवाह (Hypogamy Marriage)**–इस विवाह में लड़की का विवाह निम्न जाति/उपजाति के लड़के से होता है।

19.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वंशावली विधि से आप क्या समझते हैं?
2. भारत में प्रचलित प्रमुख वंशावली विधि का विस्तार में वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. जाति 2. नियम 3. सम्बन्धियों।

19.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी–शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।
2. परिवार का समाजशास्त्र–डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

नोट

इकाई–20: परिवारः परिवार एवं कुटुम्ब (गृहस्थी), परिवार की परिभाषा, परिवार की प्रकृति (Family: Family and Household, Definition of Family, Nature of Family)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 परिवार का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकृति (Meaning Definition and Nature of Family)

20.2 मुस्लिम परिवार (Muslim Family)

20.3 ईसाई परिवार (Christian Family)

20.4 सारांश (Summary)

20.5 शब्दकोश (Keywords)

20.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

20.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परिवार का अर्थ एवं विशेषता की जानकारी।
- मुस्लिम परिवारों की विशेषता का अध्ययन।
- ईसाई परिवारों की विशेषता का अध्ययन।

प्रस्तावना (Introduction)

प्राणीशास्त्रीय सम्बन्धों के आधार पर बने हुए समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। प्रत्येक मनुष्य किसी-न-किसी परिवार का सदस्य रहा है या है। "समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समूह है।" मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहे उन्हें उन्नत

कहा जाए या निम्न किसी-न-किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यत: पाया जाता है। शारीरिक आवश्यकताओं एवं कामवासना की पूर्ति ने ही परिवार को जन्म दिया। परिवार ही नवजात शिशुओं एवं गर्भवती माताओं की देखभाल करता है, यौन सम्बन्धों एवं सन्तानोत्पत्ति का नियमन कर उन्हें सामाजिक मान्यता प्रदान करता है। यह भावात्मक घनिष्ठता का वातावरण प्रदान कर बच्चे के समुचित लालन-पालन, समाजीकरण और शिक्षण में योग देता है। यही नहीं, बल्कि परिवार अपने सदस्यों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी योग देता है।

20.1 परिवार का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकृति (Meaning Definition and Nature of Family)

परिवार नये प्राणियों को जन्म देकर मृत्यु से रिक्त होने वाले स्थानों को भरता है तथा समाज की निरन्तरता बनाये रखता है। यही कारण है कि परिवार मानव के साथ प्रारम्भ से ही है। मैलिनोवस्की कहते हैं कि "परिवार ही एक ऐसा समूह है जिसे मनुष्य पशु अवस्था से अपने साथ लाया है।" मरडॉक ने 250 आदिम परिवारों का अध्ययन करने पर पाया कि कोई भी समाज ऐसा नहीं था जिसमें परिवार रूपी संस्था अनुपस्थित हो। परिवार की अवधारणा को स्पष्ट समझने के लिए हम उसके अर्थ एवं परिभाषा पर यहाँ विचार करेंगे।

'Family' शब्द का उद्‌गम लैटिन शब्द 'Famulus' से हुआ है, जो एक ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसमें माता-पिता, बच्चे, नौकर और दास हों। साधारण अर्थों में विवाहित जोड़े को परिवार की संज्ञा दी जाती है, किन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवार शब्द का सही उपयोग नहीं है। परिवार में पति-पत्नी एवं बच्चों का होना आवश्यक है। इनमें से किसी भी एक के अभाव में हम उसे परिवार न कहकर गृहस्थ (Household) कहेंगे। यह सम्भव है कि परिवार एवं गृहस्थ के सदस्य एक ही हों। प्रत्येक परिवार एक गृहस्थ भी है, किन्तु सभी गृहस्थी परिवार नहीं हैं। परिवार की परिभाषाओं में यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी। विभिन्न विद्वानों ने परिवार को इस प्रकार से परिभाषित किया है–

मैकाइवर एवं **पेज** के अनुसार, "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं लालन-पालन की व्यवस्था करता है।"

डॉ. दुबे के अनुसार, "परिवार में स्त्री और पुरुष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती है, उनमें से कम-से-कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति रहती है और उनके संसर्ग से उत्पन्न सन्तान परिवार का निर्माण करते हैं।"

मरडॉक के अनुसार, "परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग और जनन हैं। इसमें दो लिंगों के बालिग शामिल हैं जिनमें कम-से-कम दो व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत यौन सम्बन्ध होता है और जिन बालिग व्यक्तियों में यौन सम्बन्ध है, उनके अपने या गोद लिये हुए एक या अधिक बच्चे होते हैं।"

लूसी मेयर के अनुसार, "परिवार एक गृहस्थ्य समूह है जिसमें माता-पिता और सन्तान साथ-साथ रहते हैं। इसके मूल रूप में दम्पति और उसकी सन्तान रहती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विद्वानों ने परिवार को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। परिवार एक समूह, एक संघ और एक संस्था के रूप में समाज में विद्यमान है। प्रत्येक समाज में परिवार के दो पक्ष स्पष्ट हैं एक संरचनात्मक (Structural) एवं दूसरा प्रकार्यात्मक (Functional)। अपने मूल रूप में **परिवार की संरचना** पति-पत्नी और बच्चों से मिलकर बनी होती है। इस दृष्टि से प्रत्येक परिवार में कम-से-कम तीन प्रकार के सम्बन्ध विद्यमान होते हैं–

(*i*) पति-पत्नी के सम्बन्ध (Husband-wife relations)
(*ii*) माता-पिता एवं बच्चों के सम्बन्ध (Parents-children relations)
(*iii*) भाई-बहिनों के सम्बन्ध (Siblings relations)

प्रथम प्रकार का सम्बन्ध वैवाहिक सम्बन्ध (affinal relation) होता है जबकि दूसरे एवं तीसरे प्रकार के सम्बन्ध रक्त सम्बन्ध (blood relation) होते हैं। इसी आधार पर परिवार के सदस्य परस्पर नातेदार भी हैं। स्पष्ट है कि एक परिवार में वैवाहिक एवं रक्त सम्बन्धों का पाया जाना आवश्यक है। इन सम्बन्धों के अभाव में परिवार का निर्माण सम्भव नहीं है।

प्रकार्यात्मक दृष्टि से परिवार का निर्माण कुछ मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। परिवार का उद्देश्य यौन सम्बन्धों का नियमन करना, सन्तानोत्पत्ति करना, उनका लालन-पालन, शिक्षण व समाजीकरण करना एवं उन्हें आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संरक्षण प्रदान करना है। इन प्रकार्यों की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य परस्पर अधिकारों एवं कर्तव्यों से बंधे होते हैं। परिवार की सांस्कृतिक विशेषता यह है कि परिवार समाज की संस्कृति की रचना, सुरक्षा, हस्तान्तरण एवं संवर्धन में योग देता है।

नोट्स **परिवार को जैविकीय सम्बन्धों पर आधारित एक सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसमें माता-पिता और बच्चे होते हैं तथा जिसका उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग, यौन-सन्तुष्टि और प्रजनन, समाजीकरण और शिक्षण, आदि की सुविधाएं जुटाना है।**

परिवार की विशेषताएं (Characteristics of the Family)

मैकाइवर एवं पेज ने परिवार की कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख किया है जो सभी समाजों में सार्वभौमिक रूप से पायी जाती हैं—

(*i*) **विवाह सम्बन्ध**—प्रत्येक परिवार विवाह के बाद ही अस्तित्व में आता है।

(*ii*) **विवाह का एक स्वरूप**—प्रत्येक समाज में विवाह का एक स्वरूप प्रचलित होता है जो एक-विवाह, बहुपत्नी विवाह या बहुपति विवाह, आदि हो सकता है।

(*iii*) **वंशनाम**—परिवार में बच्चों के नामकरण की भी एक व्यवस्था होती है। बच्चे या तो पिता के नाम से जाने जाते हैं या माता के नाम से।

(*iv*) **अर्थव्यवस्था**—प्रत्येक परिवार में अपने सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कोई-न-कोई आर्थिक क्रिया अवश्य सम्पन्न की जाती है।

(*v*) **सामान्य निवास**—प्रत्येक परिवार के सदस्य एक स्थान पर निवास करते हैं, जिसे वे 'घर' कहते हैं।

मैकाइवर एवं पेज ने परिवार की कुछ विशिष्ट विशेषताओं का उल्लेख भी किया है जो इस प्रकार हैं—

(*i*) **सार्वभौमिक**—परिवार रूपी संस्था सभी कालों एवं सभी स्थानों पर पायी जाती हैं।

(*ii*) **भावात्मक आधार**—परिवार के सदस्यों में परस्पर भावात्मक सम्बन्ध होते हैं, उनमें प्रेम, सहयोग, बलिदान एवं सहिष्णुता के भाव पाये जाते हैं।

(*iii*) **रचनात्मक प्रभाव**—बच्चा परिवार में ही अच्छी और बुरी बातें सीखता है। उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने में परिवार का प्रभाव सर्वोपरि है।

(*iv*) **केन्द्रीय स्थिति**—सामाजिक संरचना में परिवार की केन्द्रीय स्थिति है। कई परिवारों से मिलकर ही वंश, गोत्र, उपजाति, जाति, समुदाय एवं समाज बनता है।

(*v*) **सदस्यों का उत्तरदायित्व**—अन्य संघों एवं संस्थाओं की अपेक्षा परिवार का अपने सदस्यों के प्रति अधिक एवं महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है।

(*vi*) **सीमित आकार**—परिवार की सदस्यता जैविक होने के कारण परिवार के सदस्यों की संख्या सीमित होती है, अन्य संगठनों की तरह हजारों में नहीं होती।

(*vii*) **सामाजिक नियमन**–प्रथाओं एवं परम्पराओं द्वारा प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है और समाज व्यवस्था को बनाये रखने में सहयोग देता है।

(*viii*) **परिवार की स्थायी और अस्थायी प्रकृति**–संस्था के रूप में परिवार स्थायी है, आदि काल से चला आ रहा है, किन्तु संघ या समिति के रूप में व्यक्तिगत परिवार सदस्यों की मृत्यु होने पर समाप्त भी होते रहते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. प्रत्येक परिवार में अपने सदस्यों के ········ के लिए कोई न कोई आर्थिक उपार्जन जरूरी है।
2. परिवार रूपी ········ सभी कालों और सभी स्थानों पर पायी जाती है।
3. बच्चा अपने परिवार में ही अच्छी बुरी ········ सीखता है।

20.2 मुस्लिम परिवार (Muslim Family)

मुस्लिम सामाजिक संगठन एवं जीवन का एक मुख्य आधार परिवार है जिसकी स्थापना 'निकाह' द्वारा होती है। मुस्लिम परिवार पितृसत्तात्मक और पितृवंशीय है जिसमें स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक महत्त्व दिया गया है। मुस्लिम परिवार में मुखिया की सत्ता ही सर्वोपरि होती है। पुरुष सन्तान के न होने पर इनमें लेने की प्रथा पायी जाती है। विवाह की भाँति मुस्लिम परिवार का आधार भी कुरान ही है। अतः इस पर धर्म का प्रभाव भी है। पारिवारिक संगठन, सदस्यों के पारस्परिक कर्तव्य एवं सम्बन्ध, सम्पत्ति के उत्तराधिकार के नियम, आदि सभी को धार्मिक आधार पर स्पष्ट किया गया है। लम्बे समय तक हिन्दू और मुसलमानों का भारत में सह-निवास होने से मुस्लिम समाज, परिवार एवं विवाह पर हिन्दुओं का प्रभाव भी पड़ा है। हिन्दुओं की भांति मुसलमानों में भी इकलौती पुत्री होने पर उसके पति को 'घर जंवाई' रख लिया जाता है।

मुसलमानों पर हिन्दुओं के प्रभाव का उल्लेख करते हुए **डॉ. कपाड़िया** लिखते हैं, 'भारतीय मुसलमानों को अधिकांश भाग अरब देश अथवा संसार के अन्य किसी देश के इस्लामी बन्धुओं की अपेक्षा हिन्दुओं से अधिक समानता रखता है। जिन हिन्दुओं ने इस्लाम स्वीकार किया उन्होंने इस्लाम को मानते हुए भी अपने मूल धार्मिक विश्वासों और सामाजिक प्रथाओं को नहीं छोड़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका धार्मिक जीवन हिन्दू प्रथाओं और विश्वासों से भरा पड़ा है।' मुसलमानों में पाया जाने वाला संयुक्त परिवार हिन्दुओं के प्रभाव का ही प्रतिफल है।

टास्क मुस्लिम परिवार की प्रमुख विशेषताएँ क्या-क्या हैं? उल्लेख करें।

मुस्लिम परिवार की विशेषताएँ (Characteristics of Muslim Family)

मुस्लिम परिवार को स्पष्ट समझने के लिए हम यहाँ उनकी विशेषताओं का उल्लेख करेंगे–

1. **संयुक्त परिवार** (Joint Family)—हिन्दुओं की भाँति मुसलमानों में भी संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन है। कुरान ऐसे परिवारों को श्रेष्ठ मानता है। इस्लाम में वयोवृद्ध पुरुषों को सम्माननीय माना गया है। अतः संयुक्त परिवार के सभी सदस्य 'कर्ता' अथवा मुखिया के आदेशों का पालन करते हैं। इस्लाम में एक पुरुष को चार तक पत्नियाँ रखने की छूट दी गयी है। अतः स्वाभाविक रूप से परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ जाती है। मुस्लिम परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे तथा बच्चों की पत्नियों के अतिरिक्त स्त्री पक्ष के सम्बन्धी और अन्य रिश्तेदार भी होते है, इस कारण से परिवार के आकार में वृद्धि हो जाती है। मुस्लिम संयुक्त परिवार के सदस्यों का निवास, सम्पत्ति, आय और रसोई सामूहिक होती हैं।

नोट

2. **पुरुष प्रधान परिवार** (Dominance of Male in the Family)—मुस्लिम परिवार पुरुष प्रधान है इसकी पुष्टि कई आधारों पर होती है। उदाहरणार्थ, मुस्लिम परिवार पितृसत्तात्मक और पितृवंशीय हैं। पुत्र वंशनाम पिता से ही ग्रहण करता है और विवाह के बाद स्त्री पति के पिता के निवास स्थान पर ही रहती है। सम्पत्ति में भी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक अधिकार हैं। पुरुष ही परिवार का मुखिया होता है। और पारिवारिक अधिकारों का अधिक हकदार है। विवाह-विच्छेद में भी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक अधिकार प्राप्त है।
3. **सदस्यों की पारिवारिक स्थिति में असमानता** (Disparity in the Status of Family Members)— मुस्लिम परिवार के सभी सदस्यों को समान नहीं माना है। इस असमानता को आयु, लिंग एवं अधिकारों के आधार पर देखा जा सकता है। जैसे स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को अधिक आदर एवं अधिकार प्राप्त हैं। पुरुष ही सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते हैं, विवाह-विच्छेद में भी विशेषाधिकार प्राप्त हैं और वे ही परिवार के मुखिया का पद धारण करते हैं। परिवार के महत्त्वपूर्ण मामलों में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की राय ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। परिवार में पिता के बाद माँ और पति के बाद पत्नी का स्थान माना गया है। लड़कों में भी सबसे बड़े लड़के का ऊँचा स्थान माना गया है।

क्या आप जानते हैं मुस्लिम परिवार में छोटी आयु के सदस्यों की तुलना में बड़ी आयु के सदस्यों को अधिक आदर और अधिकार प्राप्त है।

4. **बहु-पत्नी प्रथा** (Polygynous System)— इस्लाम में बहु-पत्नीत्व को स्वीकार किया गया है और एक पुरुष को चार तक पत्नियाँ रखने की छूट दी गयी है। एकाधिक पत्नियाँ रखना समाज में सम्मान और प्रतिष्ठा का सूचक माना गया है। अत: सम्पन्न घरानों में बहुपत्नीत्व अधिक पाया जाता है। परिवार में एकाधिक स्त्रियाँ होने पर पुरुष से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सभी पत्नियों के साथ समान व्यवहार करे।
5. **पर्दा-प्रथा** (Purdah System)—मुसलमानों में स्त्रियों को पुरुषों से पृथक् रखने के लिए पर्दा-प्रथा का प्रचलन है। घर में दरवाजों एवं खिड़कियों के पर्दे और चिक लगे होते हैं। स्त्रियाँ पुरुषों से खुले मुँह बात नहीं करती हैं। वे घर से बाहर आने-जाने पर घुंघट और बुर्के का प्रयोग करती हैं। घर में भी स्त्री व पुरुषों के निवास के लिए 'ज़नानखाना' व 'मर्दानखाना' अलग-अलग होते हैं। मोहम्मद साहब स्त्रियों को सार्वजनिक स्थानों पर आने-जाने तथा सामाजिक व्यवहार में स्वतन्त्रता देने के पक्षपाती नहीं थे।
6. **परिवार का धार्मिक आधार** (Religious Basis of Family)—मुस्लिम परिवार कुरान में बताये गये नियमों पर आधारित है और कुरान मुसलमानों का धार्मिक ग्रन्थ है। कुरान में प्रकट किये गये विचार सदस्यों को पारस्परिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के निर्वाह की प्रेरणा देते हैं, उनके सम्बन्धों को निर्धारित एवं नियन्त्रित करते हैं तथा पारिवारिक दृढ़ता को बनाये रखने में योग देते हैं, कुरान परिवार के लोगों को नमाज पढ़ने, रोजा रखने, हज करने एवं दान देने का आदेश भी देता है। इस प्रकार मुस्लिम परिवार में धर्म की प्रधानता पायी जाती है।
7. **परिवार में स्त्रियों की निम्न स्थिति** (Low Status of Women in the Family)—यदि हम सैद्धान्तिक दृष्टि से देखें तो मुस्लिम स्त्री को हिन्दू स्त्रियों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु व्यवहार में मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति दयनीय है। पर्दा-प्रथा, अशिक्षा एवं संयुक्त परिवार के कारण के प्रगति नहीं कर सकी हैं। उनका जीवन 'ज़नानखाने' तक ही सीमित है। परिवार में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को ही अधिक अधिकार प्राप्त हैं।
8. **परम्पराओं की प्रधानता** (Prominence of Traditions)—मुसलमान परम्परावादी हैं। अपनी भाषा, रीति-रिवाज, खान-पान, जीवन पद्धति, आदि जो इन्हें अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं, को मानने एवं बनाये रखने में वे अपना गौरव महसूस करते हैं।

नोट

9. **संस्कारों की प्रधानता** (Prominence of Rites)—मुस्लिम परिवार में संस्कारों की भी प्रधानता है। ये संस्कार निम्नांकित हैं–

सतवां–स्त्री के गर्भ-धारण करने के सातवें महीनें में 'सतवां' नामक संस्कार किया जाता है। इस अवसर पर अपने इष्ट मित्रों, नातेदारों को आमन्त्रित कर दावत दी जाती है और नाच-गाने के कार्यक्रम होते हैं।

हकीका–यह संस्कार पुत्र के पैदा होने के बाद सातवीं रात को मनाया जाता है। मुल्ला इसी दिन बच्चे का नामकरण संस्कार करता है। इस अवसर पर नमाज पढ़ी जाती और फकीरों को दान दिया जाता है।

चिल्ला–यह संस्कार सन्तान पैदा होने के चालीसवें दिन सम्पन्न किया जाता है। इस दिन बच्चे की माँ को स्नान कराकर उसे नये वस्त्र धारण कराये जाते हैं। रिश्तेदारों द्वारा इस अवसर पर उपहार भी दिये जाते हैं। नमाज पढ़ी जाती है और अल्लाह से दुआ माँगी जाती है तथा खैरात बाँटी जाती है।

बिसमिल्ला–इस संस्कार का सम्बन्ध विद्यारम्भ से है। इस दिन मुल्ला बच्चे को बिसमिल्ला शब्द का उच्चारण करवाता है और पाटी पर लिखवाता है।

खतना–यह संस्कार बच्चे की पाँच से सात वर्ष की आयु में सम्पन्न किया जाता है। इस संस्कार के बाद ही बच्चा धार्मिक कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ करता है। खतना में नाई लड़के की लिंग की आगे की चमड़ी काट देता है। इस अवसर पर बच्चा कुछ शपथ लेता है, कुरान की कुछ आयतें पढ़ता है। बच्चे को इस अवसर पर उपहार दिये जाते हैं और भोज का आयोजन किया जाता है।

निकाह–निकाह का अर्थ है। विवाह। मुसलमानों में गवाहों की उपस्थिति में वर एवं वधू की स्वीकृति से विवाह सम्पन्न होता है। मुस्लिम विवाह का हम पृथक् से अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं।

मैयत–मृत व्यक्ति का संस्कार किया जाता है मरने पर नाई व्यक्ति की हजामत बनाता है, उसे स्नान कराता है और उसे नये वस्त्र पहनाये जाते हैं। चादर ओढ़ा कर मुर्दे को मस्जिद में ले जाया जाता है और जहाँ मृतात्मा की शान्ति के लिए जनाजा पढ़ा जाता है। फिर मुर्दे को लोग शन्तिपुर्वक ले जाकर कब्र में दफना देते हैं। कब्र पर फातिहा पढ़ा जाता है। इसके बाद व्यक्ति का तीजा, दसवां, चालीसवां एवं बरसी, आदि मृत्यु से सम्बन्धित संस्कार किये जाते हैं।

20.3 ईसाई परिवार (Christian Family)

अन्य परिवारों के समान ही ईसाई परिवार में भी विवाह-सम्बन्ध (Mating relationship) पाया जाता है और विवाह द्वारा ही परिवार का जन्म होता है। परिवार में वंश-नाम प्राप्त करने की एक व्यवस्था भी होती है। इनमें वंश-नाम की पितृवंशीय व्यवस्था पायी जाती है, परन्तु मालाबार के कुछ ईसाई परिवारों में मातृवंशीय वंश-नाम की परस्पर है अर्थात् बच्चे माता से वंश-नाम प्राप्त करते हैं। प्रत्येक परिवार के लिए कोई न कोई आर्थिक व्यवस्था (Economic provision) भी होती है जिसके माध्यक से सदस्य अपनी आवश्यकता पूर्ति और बच्चों का पालन-पोषण करते हैं। प्रत्येक ईसाई परिवार के लिए एक घर या सामान्य निवास स्थान (A common habitation) की व्यवस्था भी होती है। इनमें पितृस्थानिक (Patrilocal) व्यवस्था पायी जाती है अर्थात् विवाह के पश्चात् वधू अपने पति के परिवार में निवास करती है। ईसाई परिवार में मुख्यत: निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं–

1. **पितृसत्तात्मक व्यवस्था**–ईसाइयों में पितृसत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं। परिवार में कर्त्ता के रूप में पुरुष की महत्त्वपूर्ण स्थिति होती है, परिवार की सम्पत्ति पर उसी का नियन्त्रण पाया जाता है। ऐसे परिवार में वंश-परम्परा भी पिता के नाम पर ही चलती है। प्रत्येक व्यक्ति के नाम में पिता के नाम का प्रथमांश जुड़ा रहता है।
2. **सम्मिलित आय का अभाव**–ईसाइयों में अधिकांशत: एकाकी परिवार होने के कारण सम्मिलित आय का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ अनेक भाई अपने माता-पिता के साथ ही रहते हैं, वे अलग-अलग व्यवसाय में

लगे होते हैं, व्यक्तिगत रूप से कमाई करते हैं और उसे अपनी पत्नी तथा बच्चों पर अपनी इच्छानुसार खर्च करते हैं। ऐसे परिवार में सामान्य खर्च चलाने हेतु प्रत्येक अपनी आय का कुछ निश्चित भाग पिता को दे देता है। आय पर व्यक्तिगत अधिकार होने के कारण इन लोगों में अचल सम्पत्ति कम ही होती है।

3. **सम्मिलित सम्पत्ति का अभाव**–ईसाइयों में एकाकी परिवार पाये जाने के कारण सम्मिलित सम्पत्ति का साधारणत: अभाव पाया जाता है। जहाँ बहुत-से भाई अपने माता-पिता के साथ इकट्ठे रहते भी हैं, वहाँ वे उनकी मृत्यु के पश्चात् शीघ्र ही सम्पत्ति के विभाजन की माँग करते हैं। माता-पिता की सम्पत्ति पर सब बच्चों का समान रूप से अधिकार होता है।
4. **परिवार का छोटा आकार**–ईसाई परिवारों का आकार प्राय: छोटा होता है। विवाह के पश्चात् पति-पत्नी स्वयं नया परिवार बसा लेते हैं।
5. **व्यक्तिवादी आधार**–ईसाई परिवार व्यक्तिवाद पर आधारित है। व्यक्ति सम्पूर्ण परिवार के हितों को महत्त्व न देकर व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की प्राप्ति में लगा रहता है। व्यक्तिवादी विचारों से ओत-प्रोत सदस्य व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के सम्बन्ध में अधिक सोचते हैं उनकी दृष्टि से परिवार अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होता। व्यक्तिवादी भावना के कारण ही ईसाई परिवार में सम्मिलित आय और सम्मिलित सम्पत्ति का अभाव पाया जाता है।
6. **समानता के सिद्धान्त पर आधारित**–ईसाई परिवार में पारिवारिक सम्बन्ध समानता पर आधारित होते हैं। ऐसे परिवार का मुखिया कोई पुरुष सदस्य अवश्य होता है, परन्तु वह निरंकुश शासक के रूप में नहीं होता। पारिवारिक मामलों में स्त्री और बच्चों को भी महत्त्व दिया जाता है। परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण तथा एक-दूसरे को समझने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
7. **स्त्रियों की स्थिति**–ईसाई परिवार में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की स्थिति पुरुषों के समान ही है। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं में पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ भी भाग ले सकती हैं और लेती हैं। लड़कियों को भी लड़कों के समान ही शिक्षा-प्राप्ति और व्यक्तित्व विकास का अवसर दिया जाता है।

ईसाई परिवार के उद्देश्य (Aims of Charistian Family)

श्री एम. पी. जॉन ने ईसाई परिवार के चार उद्देश्य बतलाये हैं–

1. **सन्तानोत्पत्ति**–सभी समाजों में सन्तानोत्पत्ति परिवार का महत्त्वपूर्ण कार्य है। परिवार और समाज की निरन्तरता इसी पर आधारित है।
2. **व्यभिचार से बचाव**–साधारणत: प्रत्येक प्राणी यौन-इच्छाओं की सन्तुष्टि चाहता है। यदि विवाह और परिवार के दायरे से बाहर लोगों को अपनी यौन-इच्छओं को सन्तुष्ट करने की आज्ञा दी जाये, तो समाज में व्यभिचार पनपने लगेगा।
3. **पारस्परिक सहयोग**–परिवार सदस्यों को पारस्परिक सहयोग करने का उचित अवसर देता है, उनमें से एक-दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति जाग्रत करता है।
4. **सुख-सुविधा में वृद्धि**–परिवार का एक मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना, उनमें वृद्धि करना और प्रत्येक को आरामदायक जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना है।

सार रूप में ईसाई परिवार भी ईसाई समाज के आदर्शों को व्यक्त करता है। यह व्यक्तियों की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति और यौन-सम्बन्धों को नियमित करता है, सन्तानोत्पत्ति और उसका पालन-पोषण करता तथा समाज के अस्तित्व और नैरन्तर्य को बनाये रखता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. इनमें ……… व्यवस्था पायी जाती है अर्थात् विवाह के पश्चात् वधू अपने पति के परिवार में निवास करती है।
5. परिवार की सम्पत्ति पर उसी का ……… पाया जाता है।
6. प्रत्येक व्यक्ति के नाम में पिता के नाम का ……… जुड़ा रहता है।

20.4 सारांश (Summary)

- मेकाइवर एवं पेज के अनुसार "परिवार पर्याप्त निश्चित यौन-संबंध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं पालन-पोषण की व्यवस्था करता है।"
- परिवार का उद्देश्य अपने सदस्यों के लिए निवास, आर्थिक सहयोग, यौन-संतुष्टि, समाजीकरण तथा शिक्षा आदि की व्यवस्था करना है।
- मुस्लिम परिवार पितृसत्तात्मक होता है तथा पुरुषों की प्रधानता है। इसमें भी संयुक्त परिवार प्रथा है।
- इस्लाम में बहु-पत्नीत्व को स्वीकार किया गया है। एक पुरुष को चार पत्नियाँ तक रखने की छूट दी गई है।
- ईसाइयों में भी पितृस्थानीय परिवार पाए जाते हैं। ईसाई परिवार में पारिवारिक संबंध समानता पर आधारित होते हैं।

20.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **स्वायत्तामूलक परिवार**–एक ऐसा परिवार जिसमें पति व पत्नी दोनों को अलग-अलग रूप में बराबर संख्या में निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त होता है। यह समतावादी आधुनिक परिवार का एक रूप है।
2. **ईसाई परिवार (Christian Family)**–इनमें पितृस्थानिक व्यवस्था पायी जाती है। विवाह के पश्चात् वधू अपने पति के परिवार में निवास करती है।

20.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परिवार का अर्थ एवं विशेषताओं को बताएँ।
2. मुस्लिम परिवार की विशेषता क्या है?
3. ईसाई परिवार की विशेषता तथा उद्देश्य क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. भरण-पोषण 2. संस्था 3. बातें
4. पितृस्थानिक 5. नियंत्रण 6. प्रथमांश।

20.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार–के. एम. कपाड़िया।
2. सोसियोलोजी–टी.वी. बोटोमोर।
3. सोलह संस्कार–स्वामी अवधेशन, मनोज पब्लिकेशन।
4. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी–शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–21: परिवार के प्रकार और कार्य
(Forms and Function of Family)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
21.1 भारत में परिवार के प्रकार (Types of Family in India)
21.2 परिवार के प्रकार्य (Functions of the Family)
21.3 सारांश (Summary)
21.4 शब्दकोश (Keywords)
21.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
21.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विभिन्न आधारों पर परिवार के प्रकारों की जानकारी।
- परिवार के कार्यों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

परिवार मानव जाति के आत्म-संरक्षण वंशवर्धन और जातीय जीवन की निरन्तरता बनाये रखने का प्रमुख साधन है। मनुष्य मरणशील है, किन्तु मानव जाति अमर है। मृत्यु और अमृत्व इन दो विरोधी अवस्थाओं का समन्वय परिवार में ही हुआ है। मानव में सदैव जीवित रहने की इच्छा होती है। इसके लिए उसने अनन्त काल से अनेक उपाय किये, जड़ी-बूटियां ढूंढ़ी, रसायन और अमृत की खोज की, अनेक परीक्षण भी किये, किन्तु वह परिवार के अतिरिक्त इसका कोई अन्य हल नहीं खोज पाया। विवाह द्वारा परिवार का निर्माण कर सन्तानों के माध्यम से व्यक्ति का विस्तार होता है और वह मर कर भी अमर बना रहता है। मनुष्य को एक तरफ अपनी मृत्यु का दुःख है तो दूसरी तरफ उसे यह भी सन्तोष है कि वह परिवार द्वारा अपने वंशजों के रूप में अनन्त काल तक जीवित रहेगा। हमारे जीवन में जो कुछ

नोट

भी सुन्दरता है, परिवार ने उसकी सुरक्षा की है, उसी ने मानव को संस्कृतिक समृद्धि प्रदान की है। स्त्री और पुरुष दोनों ही परिवार के मूल हैं, नदी के दो तटों के समान हैं, जिनके बीच जीवन रूपी धारा का लगातार प्रवाह हो रहा है।

21.1 भारत में परिवार के प्रकार (Types of Family in India)

मानव समाज के विकास के साथ-साथ परिवार के भी अनेक रूप अस्तित्व में आये हैं। प्रत्येक स्थान की भौगोलिक, आर्थिक एवं संस्कृतिक परिस्थितियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की परिवार-व्यवस्था को जन्म दिया है। सदस्यों की संख्या, विवाह का स्वरूप, स्त्री-पुरुष की सत्ता, निवास, वंशनाम, आदि के आधार पर परिवार का वर्गीकरण किया जाता है। भारत में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के परिवारों का वर्गीकरण इस प्रकार से है–

1. **संख्या के आधार पर–**
   - (क) केन्द्रीय परिवार या नाभिक परिवार
   - (ख) संयुक्त परिवार
   - (ग) विस्तृत परिवार।
2. **निवास के आधार पर–**
   - (क) पितृ-स्थानीय परिवार
   - (ख) मातृ-स्थानीय परिवार
   - (ग) नव-स्थानीय परिवार
   - (घ) मातृ-पितृ स्थानीय परिवार
   - (च) मामा स्थानीय परिवार
   - (छ) द्वि-स्थानीय परिवार।
3. **अधिकार के आधार पर–**
   - (क) पितृ-सत्तात्मक परिवार
   - (ख) मातृ-सत्तात्मक परिवार।
4. **उत्तराधिकार के आधार पर–**
   - (क) पितृ-मार्गी परिवार
   - (ख) मातृ-मार्गी परिवार।
5. **वंशनाम के आधार पर–**
   - (क) पितृ-वंशीय परिवार
   - (ख) मातृ-वंशीय परिवार
   - (ग) उभयवाही परिवार
   - (घ) द्वि-नामी परिवार।
6. **विवाह के आधार पर–**
   - (क) एक-विवाही परिवार
   - (ख) बहु-विवाही परिवार।

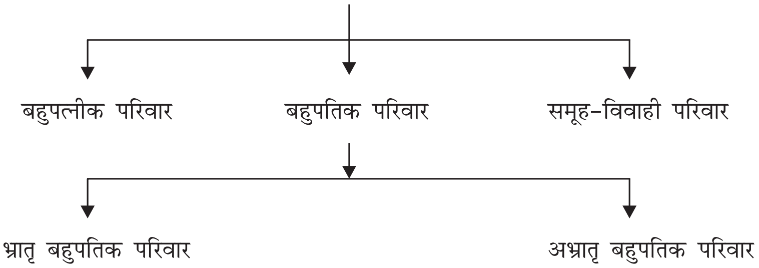

7. **अन्य रूप–**
   - (क) जन्म मूलक परिवार
   - (ख) प्रजनन मूलक परिवार
   - (ग) समरक्त परिवार
   - (घ) विवाह सम्बन्धी परिवार
   - (ङ) ग्रामीण परिवार
   - (च) नगरीय परिवार।

(I) संख्या के आधार पर परिवार (On the Basis of Numbers)

(क) केन्द्रीय परिवार या नाभिक परिवार (Nuclear Family)– इस प्रकार के परिवार आधुनिक औद्योगिक समाजों की प्रमुख विशेषता है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के बढ़ने के साथ-साथ इस प्रकार के परिवारों की संख्या बढ़ती ही रही है। जहाँ कृषि प्रधान समाजों में संयुक्त परिवार व्यवस्था की प्रधानता पायी जाती रही है, वहीं औद्योगिक समाजों में केन्द्रीय या नाभिक परिवारों की। आज की बदली हुई परिस्थितियों में परिवार की संयुक्तता को बनाये रखना कठिन हो गया है। आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति के प्रसार तथा भौतिकवादी एवं व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के विकास ने एकाकी परिवारों को बढ़ाने में विशेष योग दिया है। आज व्यक्ति नाते-रिश्तेदारों की दृष्टि से विशेष न सोचकर अपनी पत्नी तथा बच्चों के दृष्टिकोण से ही सोचता है। यही कारण है कि संयुक्त परिवार में रहने वाले बहुत से लोग आज भी एकाकी या नाभिक परिवार स्थापित करने की दृष्टि से सोचते हैं।

केन्द्रीय या नाभिक परिवार का सबसे छोटा रूप है जो एक पुरुष, स्त्री तथा उनके आश्रित बच्चों से मिलकर बना होता है। इस प्रकार के परिवार में अन्य रिश्तेदारों को सम्मिलित नहीं किया जाता। इसमें बच्चे भी अविवाहित रहने तक ही रहते हैं। विवाह के बाद वे अपना स्वयं का नाभिक परिवार बना लेते हैं। इस प्रकार की परिवार व्यवस्था अनेक जनजातियों में भी देखने को मिलती है। ऐसे परिवार में सदस्य भावात्मक आधार पर एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े होते हैं। ऐसे परिवारों का आकार बहुत ही सीमित होता है और इनका बच्चों के जीवन पर काफी रचनात्मक प्रभाव पड़ता है। आज अधिकांश देशों में परिवार में परिवर्तन की प्रवृत्ति संयुक्तता से नाभिकता की ओर है। भारत में हुए विभिन्न अध्ययन भी इसी बात की पुष्टि करते हैं।

(ख) संयुक्त परिवार (Joint Family)– एक संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य साथ-साथ एक ही घर में निवास करते हैं, उनकी सम्पत्ति सामूहिक होती है, वे एक ही रसोई में बना भोजन करते हैं, सामूहिक पूजा में भाग लेते हैं, और परस्पर किसी-न-किसी नातेदारी व्यवस्था से सम्बन्धित होते हैं। संयुक्त परिवार के सदस्य अधिकारों व दायित्वों को निभाते हैं। दुबे कहते हैं, "यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हों और उनमें निकट का नाता हो, एक स्थान पर भोजन करते हों और एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों तो उन्हें उनके सम्मिलित रूप में संयुक्त परिवार कहा जा सकता है"। एक संयुक्त परिवार में दादा-दादी, माता-पिता, चाचा-चाची, चचरे भाई एवं उनकी पत्नियाँ व बच्चे, विधवा बहनें एवं बेटियाँ होती हैं। हिन्दुओं में और प्रमुखतः ग्रामों में संयुक्त परिवार का प्रचलन अधिक है। **जे. डी. मैन** ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम' (*Hindu Law and Custom*) में मालाबार के नायरों में प्रचलित संयुक्त परिवार जिसे 'थारवाड' कहते हैं को इस व्यवस्था का एक पूर्णतया उदाहरण माना है। संयुक्त परिवार के सविस्तार उल्लेख के लिए अगला अध्याय देखिए।

नाभिक (एकल) एवं संयुक्त परिवार की तुलना

(Comparison between Nuclear and Joint Family)

(*i*) नाभिक परिवार में केवल पति-पत्नी एवं अविवाहित बच्चों के ही होने के कारण परिवार का आकार छोटा एवं सीमित होता है जबकि संयुक्त परिवार में तीन या तीन से अधिक पीढ़ियों के सदस्य होने से इसका आकार बड़ा होता है।

(*ii*) नाभिक परिवार में साधारणतः सदस्यों पर **पारिवारिक नियन्त्रण कठोर नहीं होता** जबकि संयुक्त परिवार में परिवार के मुखिया अथवा **कर्ता का कठोर नियन्त्रण होता है।** कर्ता के कठोर नियन्त्रण के कारण ही सदस्य साधारणतः व्यवहार के स्वीकृत प्रतिमानों के विपरीत आचरण नहीं कर पाते, किन्तु कभी-कभी कर्ता की स्वेच्छाचारिता के कारण संयुक्त परिवार में तनाव की स्थिति भी पैदा हो जाती है।

(*iii*) नाभिक परिवार में बच्चों के **व्यक्तित्व के समुचित विकास के अधिक अवसर होते हैं।** इसका कारण यह है कि ऐसे परिवार में माता-पिता और सन्तानों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं और माता-पिता अपने साधनों के अनुरूप बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की पूर्ण व्यवस्था करते हैं जबकि संयुक्त परिवार में सभी सदस्यों के साथ सिद्धान्त

नोट

रूप में समान व्यवहार किये जाने के कारण प्रतिभाशाली **बालकों के व्यक्तित्व के विकास पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता** जितना दिया जाना चाहिए।

(*iv*) डॉ. एस. एस. गोरे ने परिवार सम्बन्धी अपने अध्ययन में नाभिक एवं संयुक्त परिवार में भेद का एक नवीन आधार अपनाया है। उनके अनुसार एकाकी परिवार में **पति एवं पत्नी के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं** जबकि संयुक्त परिवार में **मां एवं बच्चों के सम्बन्धों में घनिष्ठता होती है।**

(*v*) नाभिक परिवार में **महत्त्वपूर्ण निर्णयों में पत्नी एवं बच्चों को भी सम्मिलित किया जाता है।** इस दृष्टि से ऐसे परिवारों में पत्नी एवं बच्चों का अधिक महत्त्व होता है जबकि संयुक्त परिवार में **सभी निर्णय स्वयं कर्ता के द्वारा ही लिये जाते हैं।** अधिक-से-अधिक पुरुष सदस्यों की राय जान ली जाती है, निर्णयों में स्त्रियाँ एवं बच्चों को सम्मिलित नहीं किया जाता है।

(*vi*) नाभिक परिवार आधुनिक **औद्योगिक एवं नगरीय समाजों में अधिक पाये जाते हैं,** जबकि संयुक्त परिवार **कृषि प्रधान एवं ग्रामीण समाजों में।**

नोट्स संयुक्त एवं नाभिक परिवार में भेद होते हुए भी एक प्रकार के परिवार से दूसरे प्रकार के परिवार में परिवर्तन की प्रक्रिया समाज में चलती ही रहती है। संयुक्त परिवार टूटकर अनेक नाभिक परिवारों में बदल जाते हैं और नाभिक परिवारों में जब विवाह के बाद भी लड़के अपने माता-पिता के परिवार में ही बने रहते हैं तो ऐसे परिवार संयुक्त परिवार का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

(ग) विस्तृत परिवार (Extended Family)–इस प्रकार के परिवार में सभी रक्त सम्बन्धी एवं कुछ अन्य सम्बन्धी भी सम्मिलित होते हैं। ये एकपक्षीय (मातृपक्ष या पितृपक्ष) या द्वि-पक्षीय भी हो सकते हैं। ऐसे परिवारों में सम्बन्ध व रिश्तेदारी का भी ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसे परिवारों के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है। इन सभी सदस्यों का निवास स्थान और कार्य एक ही होता है और वे परिवार के मुखिया को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। दुबे के अनुसार विस्तारित परिवार की संज्ञा उस परिवार संकुल को दी जाती है जो वंशानुक्रम से सम्बद्ध होते हुए भी अपनी भिन्न-भिन्न इकाइयों के रूप में परिवारों में बँटा हुआ हो।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ऐसे परिवार में सम्बन्ध और रिश्तेदारी का ठीक-ठाक ········ नहीं हो पाता।
2. दुबे के अनुसार ········ परिवार की संज्ञा उस परिवार संकुल को दी जाती है जो वंशानुक्रम से सम्बद्ध होते हुए भी अपनी भिन्न-भिन्न इकाइयों के रूप में परिवारों में बँटा हुआ हो।
3. विवाह के बाद पत्नी अपने पति एवं पति के माता-पिता के साथ रहने लगती है तो हम उसे ········ परिवार कहते हैं।

(II) निवास के आधार पर (On the basis of Residence)

विवाह के बाद दम्पति का निवास-स्थान कहाँ हो, इस आधार पर भी परिवारों का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार से है–

(क) पितृ-स्थानीय (Patrilocal) **परिवार–** यदि विवाह के बाद पत्नी अपने पति एवं पति के माता-पिता के साथ रहने लगती हो तो उसे हम पितृ-स्थानीय परिवार कहते हैं। हिन्दुओं में, मुसलमानों में, एवं भील, खड़िया तथा कई पितृ-वंशीय परिवारों में यह प्रथा पायी जाती है।

(ख) मातृ-स्थानीय (Matrilocal) **परिवार–** इसके विपरीत जब विवाहोपरान्त पति पत्नी के साथ पत्नी के माता-पिता के निवास-स्थान पर रहने लगता है तो उसे मातृ-स्थानीय परिवार कहते हैं। इस प्रकार के परिवार भारत में मालाबार के नायरों, खासी व गारो जनजातियों में देखने को मिलते हैं।

(ग) नव-स्थानीय (Neolocal) **परिवार–** परिवार में पति-पत्नी विवाह के बाद न तो पति पक्ष के लोगों के साथ और न पत्नी पक्ष के लोगों के साथ ही रहते हैं वरन् अपना अलग नया घर बना कर रहते हैं, उसे नव-स्थानीय परिवार कहते हैं।

(घ) मातृ-पितृ स्थानीय (Biolocal) **परिवार–** कई समाजों में नवविवाहित दम्पति पति या पत्नी में से किसी एक के भी साथ रहने को बाध्य नहीं होते वरन् दोनों में से किसी के भी साथ रहते हैं। ऐसे परिवार को मातृ-पितृ स्थानीय परिवार कहते हैं।

(ङ) मामा-स्थानीय (Avanculocal) **परिवार–** जिसमें नवविवाहित दम्पति पति की माँ के भाई अर्थात् मामा के परिवार में जाकर रहने लगते हैं। ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में यह प्रथा प्रचलित है कि विवाह के बाद भान्जा अपनी पत्नी सहित मामा के यहाँ रहने चला जाता है। भारत में मातृ-वंशीय परिवारों में कभी इस प्रकार के परिवार का प्रचलन था।

(च) द्वि-स्थानीय (Dualocal) **परिवार–** कुछ स्थानों पर ऐसे भी परिवार हैं जहाँ विवाह के बाद पति-पत्नी अपने-अपने जन्म के परिवारों में ही रहते हैं। लक्षद्वीप, केरल और अशांटी जनजाति में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। पति रात्रि को अपनी पत्नी के घर जाता है, परन्तु दिन वह अपने जन्म के परिवार में ही व्यतीत करता है।

(III) अधिकार के आधार पर (On the basis of Authority)

परिवार में माता-पिता में से किसकी सत्ता चलती है या किसे अधिक अधिकार प्राप्त हैं, इस आधार पर परिवारों को दो भागों में बाँटा गया है–

(क) पितृ-सत्तात्मक (Patriarchal) **परिवार–** ऐसे परिवारों में सत्ता एवं अधिकार पिता व पुरुषों के हाथ में होते हैं, ये ही परिवार का नियन्त्रण करते हैं।

(ख) मातृ-सत्तात्मक (Matriarchal) **परिवार–** ऐसे परिवारों में पितृ-सत्तात्मक के विपरीत माता में या स्त्री में ही अधिकार तथा सत्ता निहित होती है, वही पारिवारिक नियन्त्रण बनाये रखने का कार्य करती है। कभी-कभी कोई पुरुष भी उसकी तरह से यह कार्य कर सकता है। कहीं पर स्त्रियों को ये अधिकार वास्तविक हैं तो कहीं नाममात्र के। भारत में नायर, खासी, गारो, आदि लोगों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं।

टास्क भारत में परिवार के प्रकार की व्याख्या करें।

(IV) उत्तराधिकार के आधार पर (On the basis of Succession)

अधिकार की तरह एक ही परिवार में सन्तानों को पद, आदि दिये जाने का क्रम भी पितृपक्ष से पुत्रों को या मातृपक्ष से लड़कियों को दिया जा सकता है। इस आधार पर भी परिवार दो प्रकार के पाये जाते हैं–

(क) पितृमार्गी (Patrilateral) **परिवार–**ऐसे परिवार में उत्तराधिकार के नियम पितृपक्ष के आधार पर तय किये जाते हैं।

(ख) मातृमार्गी (Matrilateral) **परिवार–** इसमें उत्तराधिकार के नियम मातृपक्ष के आधार पर तय किये जाते हैं।

(V) वंशनाम के आधार पर (On the basis of Lineage)

परिवारों का वर्गीकरण वंशनाम के आधार पर भी किया जाता है। वंशनाम के नियम एक व्यक्ति को जन्म से ही किसी विशिष्ट सम्बन्धी समूह से सम्बद्ध करते हैं।

(क) पितृ-वंशीय परिवार (Patrilineal Family)–ऐसे परिवारों में वंश परम्परा पिता के नाम से चलती है, पुत्रों को पिता का ही वंशनाम प्राप्त होता है। हिन्दुओं में परिवार पितृ-वंशीय हैं।

(ख) मातृ-वंशीय परिवार (Matrilineal Family)– ऐसे परिवार में वंश परम्परा माँ के नाम से चलती है, और माँ से पुत्रियों को वंशनाम मिलते हैं। मालाबार के नायरों में यही प्रथा है।

(ग) उभयवाही परिवार– कुछ परिवारों में वंश परिचय वंशानुगत सम्बन्ध पर निर्भर न होकर सभी निकट के सम्बन्धियों पर समान रूप से आधारित होता है। ऐसे समाजों में पैतृक व मातृक दानों वंशनाम परम्पराएं साथ-साथ चलती हैं। उभयवाही परिवारों में एक व्यक्ति अपने दादा-दादी एवं नाना-नानी चारों सम्बन्धियों से समान रूप से सम्बद्ध रहता है।

(घ) द्विनामी परिवार– ऐसे परिवारों में एक व्यक्ति एक ही समय में अपने दादा और नानी से सम्बद्ध रहता है। अन्य दो सम्बन्धी (दादी और नाना) छोड़ दिये जाते हैं। यह भी उभयवाही वंश का ही एक रूप है।

(VI) विवाह के आधार पर (On the basis of Marriage)

किसी समाज में प्रचलित विवाह की रीति के आधार पर निर्मित परिवारों को हम प्रमुखत: दो भागों में बाँट सकते हैं–**प्रथम,** एक-विवाही परिवार एवं **द्वितीय,** बहु-विवाही परिवार। इसके भी उपभाग हैं, जिनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है–

(क) एक-विवाही परिवार (Monogamous Family)–एक-विवाही परिवार एक पुरुष व एक स्त्री के सम्मिलन से बनता है। इसमें पति-पत्नी एवं उनके अविवाहित बच्चे होते हैं। एक-विवाही परिवार में पुरुष को एक समय में विवाह तो एक ही स्त्री से करने दिया जाता है, किन्तु पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुष व पुरुष की मृत्यु के बाद स्त्री पुन: विवाह की स्वीकृति मिल जाती है।

(ख) बहु-विवाही परिवार (Polygamous Family)–ऐसे परिवारों में एक समय में एक से अधिक जीवन-साथी स्वीकृत होते हैं। इसके अनेक रूप हैं–

(*i*) **बहु-पत्नीक परिवार** (Polygynous Family)–जब एक पुरुष को एक समय में एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करने की स्वीकृति होती है तो उसे बहु-पत्नीक परिवार कहते हैं। मुसलमानों में एक पुरुष को चार तक पत्नियां रखने की स्वीकृति है। भारत में नागा, बैगा तथा गोंड जनजातियों में बहु-पत्नीक परिवार पाये जाते हैं।

(*ii*) **बहुपति-विवाही परिवार** (Polyandrous Family)–जहाँ एक स्त्री एक समय में एक से अधिक पुरुषों से विवाह करती हो तो उसे बहुपति-विवाही परिवार कहते हैं। इसके भी दो रूप हैं–एक वह जिसमें सभी भाई मिलकर एक स्त्री से विवाह करते हैं, इसे भ्रातृ बहुपतिक परिवार (Adelphic Polyandrous Family) कहते हैं। द्वितीय, अभ्रातृ बहुपतिक परिवार (Non-adelphic Polyandrous Family) वह है जिसमें पति एक दूसरे के भाई न होकर अन्य रिश्तेदार भी हो सकते हैं। इस प्रकार के परिवार जौनसार बाबर के खस, नीलगिरी के टोडा एवं मालाबार के नायर लोगों में तथा तिब्बत में पाये जाते हैं।

(*iii*) **समूह-विवाही परिवार** (Punaluan Family)–जब कई भाई या कई पुरुष मिलकर स्त्रियों के एक समूह से विवाह करें और सब पुरुष सब स्त्रियों के समान रूप से पति हों तो वह समूह-विवाही परिवार कहलाता है।

(VII) परिवार के अन्य कुछ स्वरूप (Some other Forms of Family)

(क) जन्म मूलक परिवार (Family of Origin or Orientation)–वह परिवार जिसमें एक व्यक्ति जन्म लेता है, तथा उसका पालन-पोषण होता है, जन्म मूलक परिवार कहा जाता है। ऐसे परिवार में व्यक्ति के माता-पिता एवं अविवाहित भाई-बहिन आदि होते हैं।

(ख) प्रजनन मूलक परिवार (Family of Procreation)–ऐसे परिवार का निर्माण व्यक्ति विवाह के बाद स्वयं करता है। इसमें एक पुरुष, उसकी पत्नी एवं उसके अविवाहित बच्चे होते हैं।

(ग) समरक्त परिवार (Consanguine Family)–लिण्टन ने परिवार के दो प्रकार बताये हैं–समरक्त परिवार एवं विवाह सम्बन्धी परिवार। समरक्त परिवार में सभी सदस्य रक्त से सम्बन्धित होते हैं और कोई भी विवाह सम्बन्धी

नोट

उसमें नहीं रहता। उदाहरण के लिए, नायर परिवार जो कि मातृ-सत्तात्मक है, में पति यदा-कदा ही अपनी पत्नी के यहाँ आकर रहता है। अधिकांशत: एक स्त्री के सभी वंशज ही उसमें रहते हैं।

(घ) विवाह सम्बन्धी परिवार (Affinal Family)–ऐसे परिवारों में रक्त सम्बन्धी एवं विवाह सम्बन्धी दोनों ही साथ-साथ रहते हैं, किन्तु मुख्य जोर विवाह सम्बन्ध पर ही दिया जाता है।

(ङ) ग्रामीण परिवार (Rural Family)–ग्रामीण एवं नगरीय परिवारों में भी भेद पाया जाता है। ग्रामीण परिवार ग्रामीण पर्यावरण और कारकों से प्रभावित होते हैं। कृषि की प्रधानता एवं प्रकृति पर निर्भरता ग्रामीण समाज की मूल विशेषताएँ हैं जो परिवार को भी प्रभावति करती हैं। ग्रामीण परिवार का सबसे छोटा रूप पति-पत्नी और बच्चों से मिलकर बनता है। समाज के विकास के साथ-साथ परिवार के अनेक रूप प्रकट हुए हैं। डॉ. रिवर्स का मत है कि आखेट (शिकार) एवं भोजन संग्रह की अवस्था में गोत्र का प्रचलन रहा होगा। पशुपालन और खुरपी कुदाली कृषि (Hoe Agriculture) की अवस्था में मातृ-स्थानीय संयुक्त परिवार रहे होंगे। जब पशुपालन के साथ-साथ हल से कृषि कार्य किया जाने लगा तो पितृ-स्थानीय संयुक्त परिवार का उदय हुआ। वर्तमान औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था ने केन्द्रीय अथवा नाभिक परिवार जिसमें माता, पिता और अवयस्क बच्चे होते हैं, को जन्म दिया है।

विश्व के सभी कृषि-प्रधान समाजों में परिवार का संयुक्त रूप देखने को मिलता है। इसमें केन्द्रीय परिवार की तुलना में सदस्यों की संख्या अधिक होती है और दो-तीन पीढ़ियों के सदस्य साथ-साथ रहते हैं। ग्रामीण पर्यावरण ने ग्रामीण परिवारों के प्रभावित कर उन्हें एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है। यही कारण है कि ग्रामीण परिवार की विशेषताएँ अन्य परिवारों से भिन्न हैं।

नोट्स ग्रामीण परिवार अधिकांशत: पितृ-स्थानीय, पितृ-वंशीय एवं पितृ-सत्तात्मक होते हैं। ऐसे परिवारों में सम्पत्ति का हस्तान्तरण पिता से पुत्र को होता है, बच्चों का वंश परिचय पिता के परिवार द्वारा दिया जाता है और विवाह के बाद पत्नी पति के घर पर आकर निवास करती है।

(च) नगरीय परिवार (Urban Family)– नागरीय परिवार ग्रामीण परिवारों से संरचना एवं प्रकार्य की दृष्टि से भिन्नता लिये हुए होते हैं। वर्तमान औद्योगिक एवं पूंजीवादी व्यवस्था ने नगरों में केन्द्रीय अथवा नाभिक परिवारों को जन्म दिया है जिसमें माता-पिता और उनके अवयस्क बच्चे होते हैं।

21.2 परिवार के प्रकार्य (Functions of the Family)

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। मानव ने अनेक आविष्कार किये हैं, किन्तु कोई भी ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाया है जो परिवार का स्थान ले सके। इसका मूल कारण यह है कि परिवार द्वारा किये जाने वाले प्रकार्य अन्य संघ एवं संस्थाएं करने में असमर्थ हैं। हम यहाँ परिवार के कार्यों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे–

(I) प्राणीशास्त्रीय कार्य (Biological Functions)

परिवार के प्राणीशास्त्रीय कार्य निम्नांकित हैं–

(अ) यौन इच्छाओं की पूर्ति (Sexual Satisfaction)– मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि भी महत्त्वपूर्ण है। परिवार की वह समूह है जहाँ मानव समाज द्वारा स्वीकृत विधि से व्यक्ति अपनी यौन इच्छा की पूर्ति करता है। कोई भी समाज यौन सम्बन्ध स्थापित करने की नियमहीन एवं निर्बाध स्वतन्त्रता नहीं दे सकता क्योंकि यौन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप सन्तानोत्पत्ति होती है, नातेदारी व्यवस्था जन्म लेती है। पदाधिकारी एवं उत्तराधिकार, वंशनाम, आदि की व्यवस्थाएं भी इससे जुड़ी रहती हैं।

(ब) सन्तानोत्पत्ति (Reproduction)– यौन सन्तुष्टि एक दैहिक क्रिया के रूप में ही समाप्त नहीं होती वरन् इसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति के रूप में भी होता है। मानव समाज की निरन्तरता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि मृत्यु को प्राप्त होने वाले सदस्यों का स्थान नवीन सदस्यों द्वारा भरा जाये। परिवार ही समाज के इस महत्त्वपूर्ण कार्य को निभाता है। परिवार के बाहर भी सन्तानोत्पत्ति हो सकती है, किन्तु कोई भी समाज अवैध सन्तानों को स्वीकार नहीं करता। वैध सन्तानों को ही पदाधिकार (Succession) एवं उत्तराधिकार (Inheritance) प्राप्त होता है।

(स) प्रजाति की निरन्तरता (Race Perpetuation)–परिवार ने ही मानव जाति को अमर बनाया है। यही मृत्यु और अमृत्व का संगम-स्थल है। नयी पीढ़ी को जन्म देकर परिवार ने मानव की स्थिरता एवं निरन्तरता को बनाये रखा है। **गुडे** लिखते हैं, "यदि परिवार मानव की प्राणीशास्त्रीय आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त व्यवस्था न करे तो समाज समाप्त हो जायेगा।"

(II) शारीरिक कार्य (Physical Functions)

(अ) शारीरिक रक्षा (Bodily Care)–परिवार अपने सदस्यों को शारीरिक संरक्षण प्रदान करता है, वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना, असहाय अवस्था, अपाहिज होने, आदि की अवस्था में परिवार ही अपने सदस्यों की देख-रेख एवं सेवा करता है। गर्भवती माता एवं नवजात शिशु की शारीरिक रक्षा का भार भी परिवार पर ही होता है।

(ब) बच्चों का पालन-पोषण (Nurture of Children)–मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसका शैश्व काल अन्य प्राणियों की तुलना में लम्बा होता है। इस अवधि में उसका लालन-पालन परिवार द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान समय में शिशुओं के लालन-पालन के लिए अनेक संगठनों का निर्माण किया गया है, किन्तु जो भावात्मक पर्यावरण बच्चों के विकास के लिए आवश्यक है, वह केवल परिवार ही प्रदान कर सकता है।

(स) भोजन का प्रबन्ध (Provision for Food)–परिवार अपने सदस्यों के शारीरिक अस्तित्व के लिए भोजन व्यवस्था करता है। आदिकाल से ही अपने सदस्यों के लिए भोजन जुटाना परिवार का प्रमुख कार्य रहा है। आदिम समाजों में जहाँ भोजन जुटाना एक सामूहिक क्रिया है वहाँ तो परिवार का यह मुख्य कार्य है। मानव के जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है और जीवित रहकर ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण करने में समर्थ हो पाता है।

(द) निवास एवं वस्त्र की व्यवस्था (Provision for Shelter and Clothing)–परिवार अपने सदस्यों के लिए निवास की भी व्यवस्था करता है। घर ही वह स्थान है जहाँ पहुँचकर मानव को पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है। सर्दी-गर्मी वर्षा से रक्षा के लिए परिवार ही अपने सदस्यों को वस्त्र एवं शरण-स्थान प्रदान करता है।

(III) आर्थिक कार्य (Economic Functions)

(अ) उत्तराधिकार का निर्धारण (Inheritance Determination)– प्रत्येक समाज में सम्पत्ति एवं पदों के पुरानी पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को हस्तान्तरण की व्यवस्था पायी जाती है और यह कार्य परिवार को ही करना होता है। वंशगत सम्पत्ति के हस्तान्तरण के प्रत्येक समाज के अपने नियम हैं। पितृ-सत्तात्मक परिवार में उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है जबकि मातृ-सत्तात्मक परिवार में माता से पुत्री या मामा से भान्जे को।

(ब) उत्पादक इकाई (Productive Unit)–परिवार उपभोग एवं उत्पादन करने वाली इकाई है। आदिम समाजों में तो अधिकांश उत्पादन का कार्य परिवार के द्वारा ही किया जाता है। मानव समाज की आदिम अवस्थाओं में जैसे, शिकार, पशुपालन एवं कृषि अवस्थाओं में परिवार द्वारा ही सम्पूर्ण उत्पादन का कार्य किया जाता था। प्राचीन उद्योगों में भी निर्माण का कार्य परिवार के द्वारा ही होता था। वर्तमान में भी अविकसित और अपूर्ण औद्योगिक अवस्था वाले समाजों में निर्माण का कार्य परिवार के स्त्री-पुरुषों एवं बच्चों द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार परिवार उत्पादन की एक सहकारी उत्पादक इकाई (Co-operative productive unit) है।

(स) श्रम-विभाजन (Division of labour)–परिवार में श्रम-विभाजन का सबसे सरल रूप देखा जा सकता है जहाँ पुरुष, स्त्री एवं बच्चों के बीच कार्य का विभाजन होता है। परिवार में कार्य-विभाजन का आधार यौन एवं आयु दोनों हैं। स्त्रियाँ गृह-कार्य करती हैं तो पुरुष बाह्य कार्य तथा बच्चे छोटा-मोटा कार्य। शक्ति के कार्य पुरुषों द्वारा किये जाते हैं। परिवार के सदस्यों में श्रम-विभाजन आर्थिक सहयोग का प्रमुख कारक है।

(द) आय तथा सम्पत्ति का प्रबन्ध (Management of Income and Property)–परिवार की विशेषताओं के दौरान हम कह चुके हैं कि प्रत्येक परिवार के पास सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कोई-न-कोई अर्थव्यवस्था अवश्य होती है। इस अर्थव्यवस्था के द्वारा ही वह आय प्राप्त करता है। परिवार की गरीबी एवं समृद्धि का पता आय से ही ज्ञात होता है। अपनी आय को परिवार कैसे खर्च करेगा, यह भी परिवार का मुखिया ही तय करता है। प्रत्येक परिवार के पास जमीन, जेवर, औजार, नकद, सोना, पशु, दुकान, आदि के रूप में चल और अचल सम्पत्ति होती है। जिसकी देख-रेख और सुरक्षा भी वही करता है।

(IV) धार्मिक कार्य (Religious Functions)

प्रत्येक परिवार किसी-न-किसी धर्म का अनुयायी भी होता है। सदस्य को धार्मिक शिक्षा, धार्मिक प्रथाएँ नैतिकता, व्रत, त्यौहार, आदि का ज्ञान भी परिवार ही कराता है। ईश्वर पूजा एवं आराधना, पूर्वज पूजा, आदि कार्यों को एक व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों से ही सीखता है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, हिंसा-अहिंसा की धारणा भी एक व्यक्ति परिवार से ही ग्रहण करता है।

(V) राजनीतिक कार्य (Political Functions)

परिवार राजनीतिक कार्य भी करता है। आदिम और सरल समाजों में जहाँ प्रशासक या जनजाति का मुखिया परिवारों के मुखियाओं से सलाह लेकर कार्य करता है वहाँ तो परिवार द्वारा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभाई जाती है। भारत में संयुक्त परिवार में कर्ता ही परिवार का प्रशासक होता है, वही परिवार के झगड़ों को निपटाने एवं न्याय करने वाला जज एवं ज्यूरी है वही परिवार का अन्य परिवारों से सम्बन्ध तय करता है, वही ग्राम पंचायत एवं जाति पंचायत में अपने परिवार का प्रतिनिधित्व करता है।

(VI) समाजीकरण का कार्य (Function of Socialisation)

परिवार में ही बच्चे का समाजीकरण प्रारम्भ होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया से जैविक प्राणी सामाजिक प्राणी बनता है। वहीं उसे परिवार और समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, रूढ़ियों और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है। धीरे-धीरे बच्चा समाज की कार्यकारी इकाई (Function Unit) बन जाता है। परिवार ही समाज की संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करता है। परिवार में ही ज्ञान का संचय, संरक्षण एवं वृद्धि होती है।

(VII) शिक्षात्मक कार्य (Educational Functions)

परिवार ही बच्चे की प्रथम पाठशाला है जहां उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। परिवार के द्वारा दी गयी शिक्षाएँ जीवन-पर्यन्त आत्मसात होती रहती हैं। महापुरुषों की जीवनियां इस बात की साक्षी हैं कि उनके व्यक्तित्व निर्माण में परिवार की प्रमुख भूमिका रही है। आदिम समय में जब आज की तरह शिक्षण संस्थाएं नहीं थीं तो परिवार ही शिक्षा की मुख्य संस्था थी। परिवार में ही बालक दया, स्नेह, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, बलिदान, आज्ञा-पालन, कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ता है।

(VIII) मनोवैज्ञानिक कार्य (Psychological Functions)

परिवार अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा और सन्तोष प्रदान करता है। परिवार के सदस्यों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति और सद्भाव पाया जाता है। वही बालक में आत्मविश्वास पैदा करता है। जिन बच्चों को माता-पिता का प्यार एवं स्नेह नहीं मिल पाता, वे अपराधी एवं विघटित व्यक्तित्व वाले बन जाते हैं। माता-पिता में से किसी की मृत्यु, तलाक, पृथक्करण, घर से अनुपस्थिति, आदि के कारण बच्चों को स्नेह एवं मानसिक सुरक्षा नहीं मिल पाने पर उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

(IX) सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)

परिवार ही समाज की संस्कृति की रक्षा करता है तथा नयी पीढ़ी को संस्कृति का ज्ञान प्रदान करता है। परिवार ही संस्कृति का हस्तान्तरण कर संस्कृति की निरन्तरता एवं स्थायित्व बनाये रखता है।

(X) मानव अनुभवों का हस्तान्तरण (Transmission of Human Experiences)

पुरानी पीढ़ी द्वारा संकलित ज्ञान एवं अनुभव का संरक्षण एवं हस्तान्तरण कर परिवार समाज को अपना अमूल्य योगदान होता है। इसके अभाव में समाज की प्रत्येक पीढ़ी को ज्ञान की नये सिरे से खोज करनी पड़ेगी।

(XI) मनोरंजन का कार्य (Function of Recreation)

परिवार अपने सदस्यों के लिए मनोरंजन का कार्य भी करता है। छोटे-छोटे बच्चों की प्यारी बोली एवं उनके पारस्परिक झगड़े तथा दाम्पत्य प्रेम परिवार के मनोरंजन के केन्द्र हैं। परिवार में मनाये जाने वाले त्यौहार, उत्सव, धार्मिक कर्मकाण्ड, विवाह उत्सव, श्राद्ध भोज, भजन-कीर्तन, आदि भी परिवार में मनोरंजन प्रदान करते हैं।

(XII) पद निर्धारण (Placement in the Society)

परिवार अपने सदस्यों का समाज में स्थान-निर्धारण का कार्य भी करता है। एक व्यक्ति का समाज में क्या स्थान होगा, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसका जन्म किस परिवार में हुआ है? राजतन्त्र में राजा का सबसे बड़ा पुत्र ही राजा बनता है। प्रदत्त पदों पर आधारित समाज व्यवस्था में जहाँ जन्म का व्यक्ति के गुणों की तुलना में अधिक महत्त्व होता है, परिवार का व्यक्ति के पद निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

(XIII) सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

परिवार का मुखिया अपने सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है तथा उन्हें गोत्र, जाति एवं समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों एवं कानूनों के अनुरूप आचरण करने को प्रेरित करता है। ऐसा न करने पर वह उन्हें ताड़ना देता है, डांट-डपट करता है या परिवार से बहिष्कार की धमकी देता है। परिवार का वातावरण ही कुछ ऐसा होता है कि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य एवं दायित्वों का निर्वाह करता है। वहां शक्ति द्वारा नियन्त्रण के अवसर कम ही आते हैं।

क्या आप जानते हैं परिवार के विभिन्न कार्यों के उल्लेख से स्पष्ट है कि परिवार समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है। आज अनेक संघ एवं संस्थाएँ परिवार के कार्यों को ग्रहण कर रहे हैं, किन्तु फिर भी किसी-न-किसी रूप में समाज में परिवार का अस्तित्व बना हुआ है और बना रहेगा।

21.3 सारांश (Summary)

- सदस्यों की संख्या, विवाह का स्वरूप, स्त्री-पुरुष की सत्ता, निवास, वंशनाम आदि के आधार पर परिवार का वर्णीकरण किया जाता है।
- संख्या के आधार पर परिवार के तीन प्रकार है– केंद्रिय परिवार या नाभिक परिवार, संयुक्त परिवार तथा विस्तृत परिवार।
- अधिकार के आधार पर परिवार के दो प्रकार हैं– पितृसत्तात्मक तथा मातृसत्तात्मक।

नोट

- वह परिवार जिसमें एक व्यक्ति जन्म लेता है तथा उसका पालन-पोषण होता है जन्म मूलक परिवार कहा जाता है। ऐसे परिवार में व्यक्ति के माता-पिता तथा उसके भाई-बहन होते हैं।
- परिवार के कार्यों का विभाजन अनेक प्रकार से किया गया है, जैसे-प्राणिशास्त्रीय कार्य, मनोवैज्ञानिक कार्य, आर्थिक कार्य, शारीरिक कार्य, धार्मिक कार्य, राजनीतिक कार्य, समाजीकरण कार्य आदि।

21.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **संरचनात्मक परिवार (Institutional Family)**–वर्गेस द्वारा इंगित परिवार का एक ऐसा रूप जिसमें सदस्यों का व्यवहार लोकाचार तथा जनरीतियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है।
2. **सामाजिक नियंत्रण (Social Control)**–ऐसी विधियों से है जिसके द्वारा किसी सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, आंकाक्षाओं और व्यवहार को नियमित किया जाता है।

21.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संस्था के आधार पर परिवार के प्रकारों का वर्णन करें।
2. निवास के आधार पर परिवार के प्रकारों का वर्णन करें।
3. विवाह के आधार पर परिवार के प्रकारों को बताएँ।
4. परिवार के कार्यों की विवेचना करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. ज्ञान 2. विस्तारित 3. पितृस्थानीय

21.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार–के. एम. कपाड़िया।
2. द सोसाइटी–मैसीभर एवं पेज।

नोट

इकाई–22: भारत में परिवार का विकास-चक्र (Development Cycle of Family in India)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
22.1 परिवार की उत्पत्ति (Origin of Family)
22.2 परिवार: एक प्रक्रिया के रूप में (Family: As a Process)
22.3 पश्चिमी और भारतीय परिवार (Western and Indian Family)
22.4 परिवार के स्वरूप (Forms of Family)
22.5 संयुक्त परिवार के बदलते स्वरूप (Changing Forms of Joint Family)
22.6 सारांश (Summary)
22.7 शब्दकोश (Keywords)
22.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
22.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भारत में परिवार की उत्पत्ति की जानकारी।
- भारत में परिवार के विकास-चक्र को बताना।
- भारत में संयुक्त परिवार के बदलते स्वरूप को बताना।

प्रस्तावना (Introduction)

परिवर्तन एक सार्वभौमिक तथ्य है। समाज और उसका कोई भी अंग परिवर्तन के प्रभाव से बच नहीं सका है। 18वीं सदी के अन्त से ही यूरोप में और भारत में 19वीं सदी से ही जबकि **औद्योगीकरण** एवं **नगरीकरण** में वृद्धि हुई;

परिवार में अनेक परिवर्तन प्रारंभ हुए। औद्योगीकरण से पूर्व परिवार एक उत्पादनशील इकाई था, किन्तु औद्योगीकरण होने पर उत्पादन कारखाने में होने लगा; पति, पत्नी और बच्चे सभी कारखानों में काम पर जाने लगे। इससे बच्चों की उपेक्षा हुई, पिता का परिवार पर नियंत्रण शिथिल हुआ एवं सदस्यों की स्वतंत्रता एवं व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई। औद्योगीकरण ने **स्त्रियों को आर्थिक** स्वतंत्रता प्रदान की। वे पुरुष की आर्थिक दासता से मुक्त हुईं। अब स्त्री घर की चारदीवारी से बाहर आयी और घर अस्त-व्यस्त हुआ। स्त्री-पुरुषों में समानता की माँग हुई। **राज्य एवं उसके कार्यों के विस्तार** ने भी परिवार के कई कार्य हथिया लिये। **नगरीकरण** के कारण लोग गाँव छोड़कर शहरों में जाने लगे। शहरों में एकाकी परिवारों की बहुतायत पायी जाती है तथा वहाँ परिवार में स्त्री-पुरुषों को अधिक स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त हैं। **आधुनिक चिकित्सा एवं औषधि विज्ञान** ने भी परिवार कल्याण कार्यक्रम में सहयोग देकर परिवार के आकार को छोटा किया है। पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति, व्यक्तिवादी विचार, यातायात से नवीन साधनों एवं विभिन्न प्रकार के संघों एवं संगठनों के निर्माण ने भी परिवार की संरचना एवं प्रकार्यों को प्रभावित किया है और उसमें अनेक परिवर्तन लाने में योग दिया है।

22.1 परिवार की उत्पत्ति (Origin of Family)

परिवार की ऐतिहासिक उत्पत्ति को समझाने के लिए कई नृतत्वीय अनुसंधानों और अटकलों ने काम किया है। यूं समाज-विज्ञान का विद्यार्थी इन दिनों उत्पत्तिजनक प्रश्नों में रुचि नहीं रखता। किन्तु नृतत्वीय अध्ययनों के आरंभ में डार्विन और स्पेंसर के उद्‌विकासीय सिद्धांत के प्रभावस्वरूप इतिहासमूलक अध्ययनों का ही बोलबाला था। उद्‌विकास को एकरेखीय विकास की सामान्य प्रक्रिया माना गया था और सामाजिक संस्थाओं के प्रारंभ को प्राय: समकालीन पश्चिमी यूरोप में प्रचलित ऐसी ही संस्थाओं के स्वरूप का विलोम मान लिया जाता था। वैसे इस विचार की पुष्टि पूर्ण स्थापित जैविक साम्यता द्वारा नहीं हो पाई थी।

त्योहारों के अवसर पर स्वेच्छाचारी, पत्नी विनिमय, पत्नी-उधारी, एक ही स्वजन शब्द (जैसे पिता) को कई व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त करने जैसे प्रमाणों के आधार पर लेविस मोर्गन ने निष्कर्ष निकाला कि साधारणतम और असभ्यतम लोगों में परिवार नहीं पाया जाता था। **मोर्गन** ने आदिम समाज का जो चित्र प्रस्तुत किया, वह परमाण्विक इकाई जैसा था, अर्थात् इनमें केवल **सिब** ही एकमात्र समूह होता था। मोर्गन ने यह भी बताया कि यौन-स्वाच्छंद तथा पितृत्व की अज्ञानता के कारण इन समाजों में पिता महत्त्वहीन था और मातृ-सिब ही प्रारंभिक समूह थे।

मोर्गन के उद्‌विकासीय आलेख का अब मात्र ऐतिहासिक महत्त्व बच रहा है। इस बात का संकेत पहले ही किया जा चुका है कि एक समिति के रूप में परिवार के इतने प्रकार होते हैं कि एक जल्दबाज या एकांगी विद्यार्थी इन्हें देखने में असफल रह सकता है।

नोट्स

मोर्गन की स्थापनाएं सही ही थीं, किन्तु ये किसी भी रूप में सार्वभौम नहीं थीं। इसके अतिरिक्त, मोर्गन के निष्कर्ष तर्कपूर्ण तथा विद्वत्तापूर्ण अधिक थे और वास्तविक तथा ऐतिहासिक कम। मोर्गन ने परिवार के क्रमिक विकास की अभिधारणा भी प्रस्तुत की।

मोर्गन के समय से ही इस बात पर प्राय: ज़ोर दिया जाता रहा है कि प्रसार की स्वीकृत तथ्यात्मकता को देखते हुए संस्थाओं का ऐसा अनम्य क्रमिक और एकरेखीय उद्‌विकास एक स्वीकरणीय प्रस्तावना नहीं है।

मोर्गन ने परिवार के उद्‌विकास के पाँच क्रमिक रूप बताए हैं। इनमें से प्रत्येक अपने से मेल खाने वाले विशिष्ट विवाह-प्रकार से जुड़ा हुआ है। यह क्रम इस प्रकार है–

1. समरक्त (रक्तमूलक) परिवार: यह परिवार अपने ही सदस्यों के बीच अंतर्विवाह पर आधारित समूह होता है। ये सदस्य परस्पर सहोदर होते हैं या समोदर (कोलेटरल-सपिंड), अर्थात् भाई-बहिन और चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई-बहिन।

2. समूह-विवाह परिवार (पूनालूआन परिवार): यह परिवार कई बहिनों सहोदर एवं समोदर के, एक-दूसरे के पतियों के साथ अंतर्विवाह पर आधारित समूह होता है। इसमें यह जरूरी नहीं होता कि सभी पति आपस में एक-दूसरे से संबंधित हों। ऐसा ही परिवार कई भाइयों—सहोदर एवं समोदर के, एक दूसरे की पत्नियों के साथ अंतर्विवाह पर आधारित समूह के रूप में भी होता है। इसमें भी यह जरूरी नहीं होता कि पत्नियाँ आपस में एक-दूसरे से संबंधित हों। तथापि, वास्तविकता यह है कि एक समूह के रूप में सभी पत्नियों के लिए, अपने समूह में, आपस में स्वजन होना आवश्यक होता है। इन्हें हर हालत में, एक समूह के रूप में, अपने से भिन्न लिंगीय सदस्यों के समूह के साथ विवाह करना पड़ता है।

3. युगल परिवार (सिंडेस्मियन परिवार): ऐसा परिवार एकाकी युगल (एक पति-एक पत्नी) के बीच विवाह पर आधारित होता है। इसमें युग्म के किसी एक सदस्य को अन्य सदस्य के साथ सहवास का एकाधिकार नहीं दिया जाता। अत: इस प्रकार का विवाह आपसी रजामंदी होने तक ही निभ पाता है।

4. पितृसत्तात्मक परिवार: यह परिवार एक व्यक्ति के साथ कई पत्नियों के विवाह पर आधारित होता है। ऐसे परिवार में प्रत्येक पत्नी को अन्य पत्नियों से अलग-अलग रखा जाता है।

5. एक विवाही परिवार: यह परिवार भी एकाकी युगल (एक पति-एक पत्नी) के बीच विवाह पर आधारित होता है, किन्तु इसमें पति-पत्नी को अपने बीच सहवास का एकाधिकार प्राप्त रहता है।

इस वर्गीकरण के साथ ही मोर्गन ने प्राचीन और आधुनिक समाजों में समरक्तता की विभिन्न पद्धतियों का उल्लेख किया है।

मोर्गन की संयोजना (स्कीम) तथा विशेषत: इसके आधार का प्रथम उल्लेखनीय खंडन वेस्टरमार्क द्वारा किया गया है। वेस्टरमार्क ने विवाह नामक संस्था के विस्तृत अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि परिवार की उत्पत्ति पुरुष स्वत्वात्मकता और ईर्ष्या तथा संपत्ति-उत्पादन एवं संपत्ति-बोध से हुई है। इस तरह परिवार के विकास में पुरुष का, न कि स्त्री का, केन्द्रीय महत्त्व रहा है। यूं यह भी सही है कि मोर्गन ने भी परिवार की उन्नति को संतानोत्पत्ति में मनुष्य की भूमिका का पता चलने, संपत्ति के अधिकार का हस्तांतरण उसकी स्वयं अपनी संतान को, न कि अपनी बहिन या माँ की संतान को करने की मान्यता तथा स्वीकृति मिलने के साथ ही जोड़ा है।

वेस्टरमार्क की संयोजना भी संस्थाओं के विकास के प्रति उद्‌विकासीय अभिवृत्ति की परिचायक मानी गई है। उन्होंने इसे काफी एकांगी भी बना दिया है। एक विवाह की उत्पत्ति को उन्होंने स्तनधारी प्राणियों तथा चिड़ियों से प्रारंभ कर समझाना चाहा और अपना मत प्रकट किया कि मनुष्य द्वारा किया गया उद्‌विकास, विवाह संस्था में नहीं, किन्तु इससे संबंधित नैतिक विचारों के स्तर पर ही मुख्यत: हो पाया है। वेस्टरमार्क के इन विचारों की ठूंठता (रिजिडिटी) अपने ही मूल पर प्रहार करती है।

ब्रिफॉ ने मोर्गन से प्रेरणा ग्रहण की और वेस्टरमार्क के विचारों को अस्वीकार्य बताते हुए इनका खंडन किया। ब्रिफॉ ने परिवार की उत्पत्ति एक अन्य संस्था **मातृ-अधिकार**, अर्थात् माँ की सर्वोपरि सत्ता से मानी। पितृसत्तात्मक और एक-विवाही परिवारों को उन्होंने काल और विकास की दृष्टि से बाद का बताया।

परिवार के आधुनिक अध्येताओं ने इसकी उत्पत्तिमूलक उलझनपूर्ण समस्याओं से कोई वास्ता नहीं रखा है। ऐसा उन्होंने इसलिए नहीं किया कि पूर्ववर्ती लेखकों की असफलता से वे निराश हो गए, या इसलिए कि ऐतिहासिक उपागम पूरी तरह से विस्थापित कर दिया गया, किन्तु इसलिए कि कुछ लेखकों ने इन अध्ययनों को तुलनात्मक रूप में व्यर्थ और अनुपयोगी माना है। अध्यवसायी अन्वेषणकर्ताओं द्वारा संसार के सभी भागों और संस्कृति के सभी स्तरों से संकलित की गई सामग्री से सर्वत्र परिवार के प्रचलन के प्रमाण मिले हैं। इसके विपरीत, प्रागैतिहासिक पुनर्निर्माणों

से किसी निश्चित महत्त्व के प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। प्रारंभिक नेतृत्ववेत्ताओं ने आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों को आदिमतम करार दे दिया था, लेकिन आज यह पूर्ण स्वीकृत तथ्य है कि अंडमान निवासी इनसे अधिक आदिम हैं। इनमें तथा आस्ट्रेलियाई मूल निवासियों में परिवार का प्रचलन एक तात्त्विक और सामाजिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण समूह के रूप में है ही। भारत उपमहाद्वीप में भी, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से सबसे पिछड़ी जनजातियों तक में परिवार संगठन पाए ही जाते हैं। ये जनजातियाँ हैं—कादर पनियान, मालापंतारम, चेचू, बिरहोर आदि। मोर्गन ने असभ्यतम स्तर पर जिस सिब के प्रचलन की बात कही है, वैसे ही सिब किसी-न-किसी प्रकार की कृषि पर आश्रित जनजातियों में विकसित पाए गए हैं। अंडमान-निवासियों और कादर जैसी असभ्यतम जनजातियों में सिब नहीं पाए जाते, जबकि टोडा और खासी जनजातियों में सिब एक व्यापक संगठन का प्रतिनिधित्व करता है। परिवार सामान्य और स्पष्ट तथ्यों पर आधारित होता है। इसमें केवल उन सदस्यों को मान्यता मिलती है, जो एक-दूसरे से सतत् शारीरिक सामीप्य, सहयोग, संवेगात्मक संसर्ग और रक्त-सूत्रों से संबंधित होते हैं। इसमें जटिल विभेदन या चयन का स्थान नहीं होता, जैसा कि सिब में होता है। आधारभूत निर्धारक अंतर्नोदों (ड्राइव्स) की दृष्टि से, जिनकी संतुष्टि केवल परिवार जैसा समूह ही संभव करता है और अतीत में भी करता रहा होगा, यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि परिवार मानव संस्कृति के समवयस्क रूप में सदैव अस्तित्ववान रहा होगा। इसी तरह यह भी स्पष्ट है कि विभिन्न संदर्भों में विकसित होने के कारण परिवार ने कई रूप ग्रहण कर लिये। यौन और भूख की चाह, आर्थिक विवशताओं और सांस्कृतिक परंपराओं ने सर्वत्र परिवार के अस्तित्व की मान्यता को सैद्धांतिक औचित्य प्रदान किया है। जहां कहीं यौन संबंधों में कुछ स्थायित्व आता है और आर्थिक उद्यम सहकारी रूप ले लेता है, वहीं परिवार स्वत: अस्तित्व ग्रहण कर लेता है। संतानोत्पत्ति पारिवारिक जीवन को सुदृढ़ और संगठित बनाती है। यद्यपि परिवार हमारे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, प्राकृतिक और पर्यावरणगत परिवेश की चुनौतियों का उत्तर है, किन्तु इस तथ्य का बखान बढ़ा-चढ़ाकर नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वयं परिवार भी सर्वत्र स्थानीय सांस्कृतिक परंपराओं द्वारा ही निर्धारित होता है और शायद इन्हीं विविध सांस्कृतिक स्थितियों ने इस संस्था के प्रारंभिक विद्यार्थियों को धोखा दिया है। यूं कहने के लिए किसी समाज में चाहे एक ही प्रकार का परिवार संगठन प्रचलित हो, फिर भी व्यवहारत: इसके अनेक रूप-भेद पैदा हो सकते हैं। इसीलिए एक ही सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में कई प्रकार के परिवार-समूह पाए जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. परिवार के आधुनिक अध्येताओं ने इसकी ……… उलझनपूर्ण समस्याओं से कोई वास्ता नहीं रखा है।
2. अध्यवसायी ……… द्वारा संसार के सभी भागों और संस्कृत के सभी स्तरों से संकलित की गयी सामग्री से सर्वत्र परिवार के प्रचलन के परिणाम मिले हैं।
3. अस्ट्रेलियाई मूल निवासियों में परिवार का प्रचलन एक ……… और सामाजिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण समूह के रूप में है।

परिवार के मूल स्रोत

प्राणी-जगत का एक सदस्य होने के नाते मनुष्य का जीवन कतिपय निर्धारक स्थितियों से प्रभावित रहता है। श्वास लेना, खाना, पीना, सोना, संतानोत्पत्ति, मल-मूत्र-त्याग आदि मानव-प्रकृति की अपरिहार्य विशेषताएँ बताई गई हैं। उपरोक्त कामों में से कुछ काम (प्रथम और किसी हद तक अंतिम) मनुष्य अकेला स्वयं कर सकता है, किन्तु दूसरे काम ऐसे हैं जिन्हें वह दूसरों के साथ संबंध स्थापित किए बिना नहीं कर सकता। शारीरिक क्षमताओं की दृष्टि से मनुष्य स्वयं समर्थ नहीं है। तथापि, उन्नत मस्तिष्क के कारण संगठित प्रयासों द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में वह संलग्न अवश्य रहा है। इस प्रकार जो समूह मनुष्य ने बनाए उनके कारक और संगठन सिद्धांत कई रहे हैं। इनमें से सब से सरल तथा स्पष्ट सिद्धांत **स्वजन व्यवस्था** का है, अर्थात्, वंशानुक्रम और विवाह के आधार पर परिवार

नोट

के सदस्यों के बीच बनने वाले संबंध। इस प्रकार के संबंध की त्रिमुखी प्रकृति है। यथा, पति-पत्नी के बीच, माता-पिता और संतानों के बीच तथा सहोदरों के बीच संबंध। यह जरूरी नहीं है कि दूसरे और तीसरे प्रकार के संबंध पूर्णतः रक्त से जुड़े हुए ही हों क्योंकि प्रायः संतान गोद ली हुई भी होती है। तात्पर्य यह है कि परिवार की परिभाषा मनुष्य की जैविक प्रकृति के आधार पर नहीं की जा सकती। उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है।

टास्क परिवार के मूल स्रोत क्या-क्या हैं?

22.2 परिवारः एक प्रक्रिया के रूप में (Family: As a Process)

परिवार को समझने के दो तरीके हैं। मानव-समाज को एक सार्वभौम और स्थायी संस्था मानते हुए परिवार का अध्ययन किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, परिवार एक प्रकार्यक इकाई है जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। परिवार के अध्ययन का दूसरा तरीका यह है कि इसे एक समूह माना जाए या जान-बूझकर रची गई समिति। ऐसी स्थिति में परिवार के स्वरूप और अंतर्वस्तु का अध्ययन करना पड़ेगा।

यह बात पहले ही बता दी गई है कि परिवार का एक जैविक पक्ष होता है। गर्भवती माता और शिशु को परिवार के संरक्षण की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। तथापि, केवल माँ और शिशु से ही परिवार नहीं बनता, चाहे माँ के सहवासी पुरुष और इनके बच्चों से परिवार की प्रारंभिक सदस्यता की संपूर्ति होती हो। पति-पत्नी और इनकी संतानों की इस आधारभूत समूह रचना को कई नामों से जाना जाता है। यथा, **केंद्रक, निकटस्थ** या **प्राथमिक** परिवार। यूं इन सभी शब्दों का अभिप्राय एक समान है। अर्थात्, सभी प्रकार के परिवारों के केन्द्र की रचना उन व्यक्तियों से होती है जो संतानोत्पत्ति की लालसा से एक-दूसरे से आबद्ध होते हैं और अपनी संतानों के साथ मिलकर एक सुरक्षात्मक उत्पादक समिति का रूप ग्रहण करते हैं।

अन्य नज़दीकी संबंधियों के योग से यदि इस केन्द्र का विस्तार हो जाता है, जैसा कि प्रायः होता है, तब इसे **विस्तृत परिवार** कहा जाता है। विस्तृत परिवार कई प्रकार के होते हैं। पहले वे, जिनका विकास केन्द्र के इर्द-गिर्द होता है तथा दूसरे वे, जिनका इससे भी अधिक विस्तार होता है। यह विस्तार स्वजन सिद्धांत के फैलाव का परिणाम होता है। जैसे, हिन्दू **संयुक्त परिवार।**

पति-पत्नी की परिधि तथा इसके केन्द्र में स्थित रक्त-संबंधियों से बनने वाले परिवार को **रक्तमूलक परिवार** कहा जाता है। जन्म से संबंधित सदस्यों से इसकी रचना होती है और व्यक्तिगत चयन की इसमें कोई गुंजाइश नहीं होती। फलतः यह अधिक स्थाई होता है। बच्चों के वयस्क हो जाने या विवाह संबंधों के टूट जाने से रक्तमूलक परिवार नष्ट नहीं होता। रक्तमूलक परिवार अपने सदस्यों की हर आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है किन्तु इनकी कामेच्छा की पूर्ति परस्पर इनके ही बीच नहीं होने देता, तभी तो निकट संबंधियों के बीच विवाह सार्वभौम रूप में वर्जित है। इसी तथ्य के कारण परिवार के सदस्यों के लिए पति अथवा पत्नी की पूर्ति बाहर से करनी पड़ती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि रक्तमूलक परिवारों में रक्त संबंधों पर विशेष ज़ोर दिया जाता है न कि विवाह संबंधों पर। कहा जाता है कि मलाबार के नायरों में इस शताब्दी के आरंभ तक ऐसे ही परिवार का प्रचलन था। इनमें पति को कोई सामाजिक मान्यता नहीं दी जाती थी और न पिता को ही।

हम अपने समाज में जिस प्रकार के परिवार से परिचित हैं, अर्थात् जिसके केन्द्र में पिता-माता (दंपती) और इनकी संतानों की स्थिति होती है तथा इनके इर्द-गिर्द कुछ अन्य संबंधियों की, उसे **दांपत्यकमूलक परिवार** कहा जाता है। ऐसा परिवार कई जनजातियों में भी पाया जाता है, जैसे खरिया। इस परिवार में दांपत्य संबंधों पर जोर दिया जाता है, इसलिए इस प्रकार के परिवार का स्थायित्व उन समाजों में नहीं रह पाता जिनमें विवाह संबंध अविच्छेद्य नहीं

नोट

माने जाते। इस प्रकार के परिवार में सदस्यता की गत्यात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि प्रत्येक सदस्य (पुरुष या स्त्री) का अपने जन्म के परिवार के प्रति लगाव उसके विवाह के बाद बदल जाता है। ऐसे परिवर्तन के अंशों की पर्याप्त भिन्नता भी हो सकती है। जैसे, पितृस्थानी परिवार में बाहर से आने वाली वधू के संबंध अपने जन्म के परिवार से प्राय: टूट जाते हैं जबकि उसके प्रति के संबंध अपने जन्म के परिवार से नहीं टूटते।

क्या आप जानते हैं व्यक्ति जिस परिवार में जन्म लेता है उसे **जन्म या प्रबोधन का परिवार** कहते हैं तथा विवाह के पश्चात् जिस परिवार की वह रचना करता है, उसे **प्रजनन का परिवार** कहा जाता है।

परिवार के विस्तार के कुछ अन्य प्रकार भी हो सकते हैं, जिनमें ऐसे व्यक्तियों को सम्मिलित किया जा सकता है, जिन्हें प्राथमिक परिवार में स्थान देना संभव न हो! परिवार का ऐसा एक प्रकार **बहुपत्नी परिवार** है जिसमें एक व्यक्ति एक से अधिक पत्नियों से विवाह करता है। इस प्रकार की विवाह-व्यवस्था जनजातीय भारत में आम तौर से प्रचलित है। ऐसे परिवार का एक अन्य प्रकार **बहुपति परिवार** है, जिसमें एक स्त्री के एक से अधिक पति होते हैं। उत्तर प्रदेश के जोनसार बाबर क्षेत्र के खस में ऐसे परिवार का चलन है। इनमें कई भाई मिलकर एक पत्नी से विवाह करते हैं तथा कोई एक भाई ही एकमात्र रूप से सहवास का अधिकारी नहीं होता। एक रोचक स्थिति तब पैदा होती है जब परिवार गठन के उपरोक्त दोनों प्रकारों का संयोग हो जाता है। टोडाओं में हाल ही में ऐसे ही परिवार का विकास हुआ है, जो समूह विवाह पर आधारित है।

संयुक्त परिवार, परिवार का एक अन्य प्रकार है। यह भारत में बहुप्रचलित है तथा परंपरा, इतिहास, छद्म-इतिहास, मिथक एवं धर्म द्वारा पोषित और स्वीकृत है। यह निकट रक्त-संबंध और संयुक्त आवास पर आधारित एक से अधिक प्राथमिक परिवारों का संगठन होता है। परिणामत: इसके दो प्रकार हो सकते हैं। **मातृस्थानी संयुक्त परिवार** (जैसे नायर में प्रचलित) और **पितृस्थानी संयुक्त परिवार** (जैसे हिन्दुओं और मध्यक्षेत्र की जनजातियों में प्रचलित)। इन दोनों प्रकार के परिवारों में संतानें (मातृस्थानी परिवारों में स्त्री लिंगीय और पितृस्थानी परिवारों में पुल्लिंगीय) बतौर एक सामान्य नियम, अपने विवाह के बाद अपने जन्म का परिवार नहीं छोड़तीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त परिवार एक ऐसा सम्मिश्रण है जो, अन्यथा, जन्म और प्रजनन के कई परिवारों में बंट सकता है। संयुक्त परिवार के ऐसे सदस्य जिन्हें अपने विवाह के बाद जन्म का परिवार छोड़ना पड़ता है। (पितृस्थानी परिवारों में पुत्रियाँ और मातृस्थानी परिवारों में पुत्र), अपने मूल परिवार की सदस्यता से पूर्णत: वंचित नहीं हो जाते। इससे एक द्वैध सदस्यता पैदा होती है। केन्द्रक और विस्तृत परिवारों का रेखा-चित्रांकन इस प्रकार किया जा सकता है–

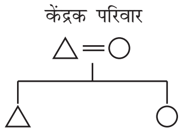

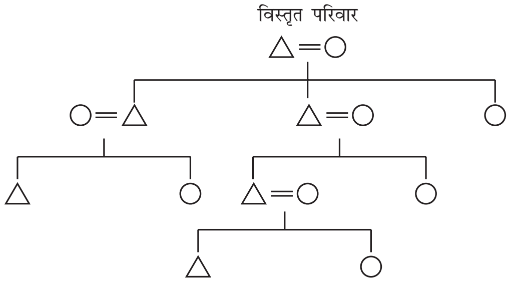

ऊपर हमने परिवार को प्रकार्यक और रचनामूलक दृष्टियों से देखते हुए इन पर आधारित संरचनात्मक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। तथापि, परिवार का स्वरूप और संरचना केवल इसी बात से निर्धारित नहीं होते कि कौन और कितने इसके सदस्य हैं, बल्कि इस बात से भी कि पति-पत्नी प्रारंभ में कैसे इसके सदस्य बनाए जाते हैं। इस तरह, विभिन्न आधारों पर, परिवारों को प्राथमिक (या एकाकी) और विस्तृत (या संयुक्त) में वर्गीकृत करने के अतिरिक्त **एकविवाही,**

बहुपत्नीविवाही, बहुपतिविवाही और **समूहविवाही** प्रकारों में भी वर्गीकृत किया गया है। अधिकार या प्रभुत्व की दृष्टि से परिवार को **पितृप्रभुत्व, मातृप्रभुत्व** या **मातुलप्रभुत्व** रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। परिवार के नामकरण, संपत्ति के उत्तराधिकार, वंश निर्धारण तथा प्रस्थिति और पद-प्राप्ति की दृष्टि से परिवार के दो प्रकार बनते हैं–**पितृरेखीय** और **मातृरेखीय** परिवार। इसी तरह, निवास के आधार पर परिवार को **मातृस्थानी, पितृस्थानी** और **मातुलस्थानी** प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है।

22.3 पश्चिमी और भारतीय परिवार (Western and Indian Family)

समकालीन पश्चिमी समाज की कई विशेषताओं में से एक यह भी है कि सभी प्राथमिक समूहों (परिवार सहित) का महत्त्व यहाँ घटता जा रहा है और द्वितीयक समूह इनका प्रतिस्थापन कर रहे हैं। परिवार के कई कार्य अब अनेक व्यावसायिक और राज्य द्वारा संचालित संस्थाओं द्वारा संपादित किए जाने लगे हैं।

नोट्स ऐसी संस्थाओं में शिशुगृह, किंडरगार्टन, स्कूल, ट्रेड-यूनियन, क्लब, होटल, रेस्त्रां आदि प्रधान हैं। परिवार के विघटन को मुक्त यौन संबंधों द्वारा भी बढ़ावा मिला है जो आदर्शों के प्रति बदलते हुए विचारों और जन्म-निरोध तकनीकों के परिणाम हैं।

धर्म की अवनति के साथ ही परिवार और विवाह से जुड़ी हुई धार्मिक अनुशास्तियां भी क्षीण हो रही हैं, जिससे परिवार का विघटन (या दांपत्य विच्छेदन) आसान हो गया है। महिलाओं की प्रस्थिति (स्टेटस) और कार्य (रोल) के संबंध में बदले हुए दृष्टिकोण ने भी परिवार के विखंडन में योग दिया है। व्यक्तिवाद सभी समकालीन संस्कृतियों का आधार है। व्यक्तिगत सुख प्राय: पूरे परिवार की कीमत पर ही संभव हो सकता है। व्यक्ति की दृष्टि से देखने पर तलाक एक ऐसा **सेफ्टी वाल्व** है जो मानसिक तनावों का निवारण और व्यक्तिगत खुशी की रक्षा करता है।

कई समकालीन समाजशास्त्रियों ने पश्चिमी समाज में प्रचलित सामाजिक और वैयक्तिक मनस्ताप (न्यूरोसिस) का कारण परिवार का विघटन माना है। परिवार का भावनात्मक आधार प्रेम, सहयोग और सुरक्षा जैसी प्रधान प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व करता है तथा यही वयस्क के लिए शिक्षक और उपदेशक की भूमिका के पीछे भी विद्यमान रहता है जो शिक्षार्थी बालक को अनावश्यक तनावों और दुश्चिंताओं से बचाता है। इसी से पूर्ण सुगठित और सुरक्षित व्यक्ति-संरचना की सुदृढ़ आधारशिला रखी जाती है। परिवार के सुरक्षित एवं भावनापूर्ण वातावरण का अन्य कोई विकल्प नहीं हो सकता। परिवार के विघटन का अर्थ हुआ व्यक्तिवाद का विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व का ह्रास। यों आत्मपरकता (स्वार्थपरता) सामाजिक और सामूहिक हितों पर हावी होती जा रही है।

अधिनायकवादी समाजों में परिवार को खतरा व्यक्तिवाद से नहीं, राज्य से है, जो परिवार को बच्चे के प्रति शिक्षात्मक एवं अन्य कार्य करने से वंचित रखता है। चीन की तुलना में, जहाँ कनफ्यूशियस और लिओत्से की शिक्षाओं का उत्कर्ष शताब्दियों से बना रहा है, और इससे कुछ कम अंशों में भारत को छोड़, संसार का कोई ऐसा समाज नहीं रहा है जहाँ परिवार को आदर्श समूह माना जाता रहा हो। किन्तु इधर हाल ही में चीन से जो खबरें आ रही हैं उनसे इन शिक्षाओं के विरुद्ध छेड़े गए आंदोलन के संकेत मिलते हैं, क्योंकि सामाजिक-आर्थिक संरचना में लाए जाने वाले आमूल परिवर्तनों के रास्ते में इन्हें रोड़ा माना गया है।

भारतीय जनजातियों में कोई एक परिवार संरूप प्रचलित नहीं है, सुदूर पूर्व में नागा एकविवाही तथा बहुपत्नीविवाही, पितृसत्तात्मक और पितृरेखीय हैं। इनकी तुलना में इनकी पड़ोसी खासी जनजाति का परिवार-जीवन भिन्न है। इसी

तरह की भिन्नता नायर समाज में भी देखने को मिलती है। टोडा, कादर और खस मातृक-पितृक संयुक्त संकुल के प्रतिनिधि हैं। मध्यभारत की जनजातियां अधिकांशतः समर्थ पुरुष प्रभाव की परिचायक हैं।

हिन्दू समाज एक-सी परिवार-व्यवस्था प्रदर्शित करता है। हिन्दुओं में परिवार एक पवित्र संस्था है जो धर्म तथा प्राचीन सामाजिक परंपराओं द्वारा स्वीकृत और छद्म इतिहास, मिथक, पौराणिक अनुश्रुति आदि से समर्थित है। ऐसे लाखों-करोड़ों लोग, जो महाकाव्य रामायण की व्यापक लोकप्रियता, राम के पुत्रोचित आदर्श और आज्ञाकारिता, सीता के पतिव्रत्य और अनुराग, लक्ष्मण की भ्रातृभक्ति एवं इतना तक कि, वानर-मानव (हनुमान) सेवक की अपने मानव स्वामी (राम) के प्रति अटूट भावभक्ति से अवगत हैं, वे हिन्दू सामाजिक संगठन की रचना एवं संरक्षण में रहे मिथकों एवं अनुश्रुतियों के योगदान का न्यूनांकन नहीं कर सकते। हिन्दू परिवार **विस्तृत परिवार** की श्रेणी में आता है। जिसे संयुक्त परिवार कहा जाता है। पिता की सत्ता इसमें सर्वोपरि होती है। वंशानुक्रम पुरुष-रेखा में निर्धारित होता है। स्त्रियों को यहाँ महाकाव्यों और पुराणों ने कितना ही गौरवान्वित क्यों न किया हो, किन्तु यथार्थ यह है कि इनकी प्रायः न कोई प्रतिष्ठा है और न सुखद स्थिति ही। स्त्रियाँ प्रायः कोल्हू के बैल जैसा जीवन जीती हैं और अपने पतियों के उपांगवत रहती हैं, विशेषतः अर्ध-नगरीकृत निम्न मध्यम वर्गों में। गाँवों में स्त्रियों को काफी सत्ता और स्वतंत्रता उपलब्ध होती है, हालांकि यहाँ भी प्रभुत्व पुरुषों का रहता है एवं स्त्रियों की संपत्ति का अंशमात्र भी नहीं दिया जाता। नगरों में दो बातें एक साथ दृष्टिगोचर होती है। एक तरफ शनैः शनैः महिला-जागृति हो रही है, जिससे महिलाएं अनेक प्रकार के व्यवसायों और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी क्रियाओं में संलग्न हो रही है, तो दूसरी तरफ पश्चिमी समाज के तौर-तरीकों का दुर्भाग्यपूर्ण अंधानुकरण भी, जिसके पीछे उद्देश्य क्या है, कोई नहीं बता सकता। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार विवाह अविच्छेद है, जिसे धार्मिक संस्कार तथा स्थायी संबंध माना जाता है।

गत कुछ दशकों में यह अनुभव किया जाता रहा है कि धर्मशास्त्रों द्वारा स्थापित हिन्दू परिवार जीवन संबंधी क़ानूनों में, समकालीन सामाजिक जीवन और परिवर्तनों की आवश्यकता को देखते हुए, संशोधन ज़रूरी है। गोत्र बहिर्विवाह नियम में ढील देने की आवश्यकता का संकेत पीछे दिया जा चुका है। 1950 के बाद, जब से नया संविधान लागू हुआ, लगभग पाँच-छः वर्ष तक भारतीय विधायक हिन्दू कोड बिल पर विवाद करते रहे है। इस बिल को लेकर काफी विवाद छिड़ गया। इसका समर्थन हुआ तो निंदा भी। नतीजा यह हुआ कि मुख्य बिल को कई टुकड़ों में बांटकर क़ानून बनाने पड़े। इस बिल के मुख्य उद्देश्य तलाक को कानूनी स्वीकृति देना, धार्मिक आयोजन के रूप में संपादित विवाह की तरह ही कानूनी रजिस्ट्रेशन के रूप में किए गए विवाह की मान्यता देना, पुत्रियों को संपत्ति का उत्तराधिकार प्रदान करना आदि हैं। इनसे पैदा हो सकने वाली समस्याओं (जैसे, अंतर-धर्मवलंबियों के बीच विवाह से उत्पन्न संतानों की धार्मिक तथा लौकिक स्थिति का निर्धारण–खासतौर से उस स्थिति में जब माता-पिता में से किसी ने भी अपना धर्म न बदला हो) के निराकरण के तरीकों पर विचार किया गया। विधवा-विवाह को अधिकांश हिन्दू एक वांछित नवाचार के रूप में स्वीकार कर ही चुके हैं। यूं प्रसिद्ध समाज-सुधारक ईश्वरचंद्र विद्यासागर के महती प्रयासों के फलस्वरूप विधवा-विवाह कानून काफी पहले 1856 में ही बन गया था।

भारत में मुसलमान भी लगभग एक-सी परिवार-व्यवस्था को प्रदर्शित करते हैं, जो इस्लामी-कानून और हिन्दू-प्रभाव के बीच अंतक्रिया का परिणाम है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारत में मुसलमानों में, खासकर शिया संप्रदाय में, एक जाति संरचना का विकास हुआ है। मुसलिम परिवार भी, हिन्दू परिवार की तरह, पितृनामी और पितृस्थानी हैं। सबसे बुजुर्ग पुरुष परिवार का संचालन करता है और औरतें, जो प्रायः परदे में रहती हैं, घर का कामकाज करती हैं। किन्तु हिन्दुओं की तरह इनमें संपत्ति को संयुक्त रूप में नहीं रखा जाता और उत्तराधिकार एक निश्चित क़ानून के अनुसार, कई छोटी-मोटी बातों को देखकर तय होता है। कुल मिलाकर, मुसलिम उत्तराधिकार कानून एक सशक्त पितृरेखीय विशेषता ग्रहण कर लेता है। इनमें दत्तक-ग्रहण का यह अर्थ नहीं माना जाता कि दत्तक को उत्तराधिकार के अधिकार दे दिए गए हैं। हिन्दू परिवार की तरह मुस्लिम परिवार भी विस्तृत (संयुक्त) होता है। किन्तु इसमें दूर के संबंधी प्रायः सम्मिलित नहीं किए जाते।

22.4 परिवार के स्वरूप (Forms of Family)

परिवार को न केवल एक स्थाई प्रकार्यक संस्था और एक सर्वकाल-सक्रिय प्रभावकारी समिति के रूप में ही, अपितु एक प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है। परिवार प्रक्रिया को, भारत में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर, तीन या चार परिभाषित अवस्थाओं में बांटा जा सकता है। पहली अवस्था **विकास-अवस्था** है। इसमें बच्चे को वयस्कता कार्यों के लिए तैयार किया जाता है ताकि वह समाज का एक जिम्मेदार सदस्य बन सके। इसके बाद की अवस्था **विवाह-अवस्था** है। भारतीय ग्रामीण सामाजिक सरंचना में बाल-विवाह का विशेष स्थान रहा है। नगरों में भी कुछ अंशों तक इसका प्रचलन पाया जाता है। भारतीय जनजातियों में, पश्चिम समाज के सदृश, विकास-अवस्था और विवाह-अवस्था के बीच एक **विवाह-पूर्व-अवस्था** भी पाई जाती है। मध्य भारत की जनजातियों एवं कुछ नागा कबीलों में यह **विवाह पूर्व अवस्था** एकलिंगीय या द्विलिंगीय युवा-गृहों में बिताई जाती है जहाँ व्यक्ति युवावस्था की सभी क्रियाओं, यौनाचार सहित का प्रशिक्षण प्राप्त करता है। इसी अवस्था में, जैसा कि मुरिया, गोंड और कोनयाक नागाओं में देखा गया है, आपसी संपर्क का विकास होता है और आसक्ति भी बढ़ती है, जिसकी परिणति समारोहपूर्वक किए गए विवाह में होती है। ग्रामीण और नगरीय समाजों में, जहाँ विवाह माता-पिता द्वारा तय किया जाता है और कोर्टशिप का चलन नहीं होता, इस प्रकार की विवाह-पूर्व-अवस्था नहीं पाई जाती।

नोट्स विवाह के बाद संतानोत्पत्ति होती है। इस अवस्था को **विवाहेतर अवस्था** कहा जाता है। संपूर्ण समाज की दृष्टि से यह अवस्था सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। बच्चों की बढ़ती हुई पीढ़ी अपनी आयु के अनुसार परिवार की इसी प्रक्रिया से गुजरती है। इस प्रकार परिवार एक सदाप्रवाही प्रक्रिया है। इसकी निर्विघ्न निरंतरता और स्थायित्व पर ही समाज की सततता निर्भर करती है।

परिवर्तन इस प्रकार हैं–

1. अब परिवार केवल एक **उपभोग की इकाई** ही रह गया है, निर्माण एवं उत्पादक इकाई नहीं।
2. परिवार का **आकार छोटा हो गया है**। माता-पिता और बच्चों के अतिरिक्त परिवार में अन्य संबंधी साधारणत: नहीं रहते। परिवार में बच्चों की संख्या घटी है। अब निर्बाध गति से बच्चों को जन्म देना उचित नहीं माना जाता।
3. परिवार के कार्यों में परिवर्तन हुआ है। पहले परिवार उत्पादन एवं उपभोग की इकाई था। सारा निर्माण कार्य परिवार में ही होता था। परिवार में ही व्यक्ति की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती, शिक्षा-दीक्षा, लालन-पालन, बीमारी एवं वृद्धावस्था में सेवा सुश्रूषा होती थी, किन्तु अब परिवार के इन कार्यों को अन्य संस्थाओं ने ग्रहण कर लिया है। लालन-पालन का कार्य अब नर्सरी में तथा शिक्षा प्रदान करने का कार्य स्कूलों में होता है। अनाथों एवं वृद्धों के लिए अनाथालय, पुअर होम एवं रैनबसेरों का प्रबंध किया गया है। खाने के लिए होटल एवं रेस्तरां तथा वस्त्र धोने के लिए लाउण्ड्री का उपयोग बढ़ा है। चिकित्सा तथा शिशु एवं मातृ-कल्याण का कार्य अस्पताल आदि कर रहे हैं।
4. परिवार के सहयोगी आधार में कमी आयी है। अब परिवार का सदस्य अन्य सदस्यों की तुलना में स्वयं के बारे में ही अधिक सोचने लगा है। वह व्यक्तिवादी होता जा रहा है।
5. पति-पत्नी के संबंधों में परिवर्तन हुआ है। अब पति परमेश्वर की धारणा के स्थान पर मित्र एवं साथी के भाव पनपे हैं। स्त्री अब पुरुष के पाँव की जूती नहीं समझी जाती और न ही पति निरंकुश शासक।
6. **विवाह और यौन-संबंधों में परिवर्तन:** अब विवाह एक धार्मिक संस्कार न रहकर समझौता मात्र रह गया है जिसे जब चाहे तोड़ा जा सकता है। अब अन्तर्जातीय विवाह व प्रेम विवाह होने लगे हैं। जीवन-साथी का चयन अब माता-पिता के स्थान पर स्वयं लड़के-लड़की करने लगे हैं।

7. परिवार में पिता के अधिकारों में ह्रास हुआ है और पारिवारिक निर्णयों में परिवार के अन्य सदस्यों की भी सलाह ली जाने लगी है।
8. स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार मिला है। इससे पूर्व केवल पुरुष ही परिवार की सम्पत्ति में उत्तराधिकारी थे।
9. स्त्रियों को गृह-बंधन से मुक्ति मिली है, वे आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से स्वतंत्र हुई हैं। अब पत्नियाँ एवं पुत्रियों को पिता व पति से स्वतंत्र धनोपार्जन की छूट मिली है।
10. परिवार में विघटन कुछ बढ़ा है। दिन-प्रतिदिन तलाकों में वृद्धि होने लगी है।
11. नातेदारी का महत्त्व घटा है और लोग रिश्तेदारों से दूर भागने लगे हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक परिवार परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। उसकी संरचना और प्रकार्यों को आधुनिक परिवर्तनकारी शक्तियों ने परिवर्तित किया है फिर भी उसकी समाप्त होने की कोई संभावना नहीं है।

22.5 संयुक्त परिवार के बदलते स्वरूप (Changing Forms of Joint Family)

संयुक्त परिवार के ढाँचे में पिछले कुछ दशकों में बहुत बड़े परिवर्तन आये हैं। कुछ समाजशास्त्री कहते हैं कि ये परिवर्तन संरचनात्मक हैं, मूल्यों से जुड़े हुए हैं, व्यक्तिवाद आ गया है, स्त्रियों में महिलावादी आंदोलन खड़ा हो गया है और ऐसे ही कई कारक हैं जिन्होंने संयुक्त परिवार को बदल दिया है। कुछ अन्य समाजशास्त्री हैं जो इस परिवर्तन को संयुक्त परिवार के लिए **विघटनकारी** (Disorganisational) कहते हैं। वे तो यह मानकर चलते हैं कि संयुक्त परिवार भारतीय समाज की एक सांस्कृतिक धरोहर है और इनमें जब परिवर्तन आता है तो यह विघटनकारी ही है। संयुक्त परिवार का विघटन होना या इसमें परिवर्तन आना, दृष्टिकोण के अन्तर को बताता है। इन दोनों संदर्शों के बीच में तात्विक बात यह है कि संयुक्त परिवार का जो स्वरूप शास्त्रीय या प्राच्य विद्या में निहित था, वह आज निश्चित रूप से नहीं है।

संयुक्त परिवार की संरचना में जो परिवर्तन या विघटन आया है यहाँ हम उसका निम्न बिन्दुओं में उल्लेख करेंगे–

1. मुद्रा का चलन (Circulation of Money)

ब्रिटिश शासन से पहले संयुक्त परिवार में मुद्रा का चलन नहीं था। सभी लोगों के अपने मुख्य व्यवसाय कृषि से जुड़े थे। वस्तुओं का विनिमय परंपराओं से होता था। जजमानी प्रथा थी और इसके माध्यम से लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अंग्रेजों के आने से पहले उत्पादन की इकाई संयुक्त परिवार था। जब अंग्रेजों ने मुद्रीकरण या वस्तुओं और सेवा के बदले नकद भुगतान की पद्धति को चला दिया तब लोग संयुक्त परिवार से बाहर जाकर उत्पादन करने लगे। अंग्रेजों ने सरकारी नौकरियों में रोज़गार के द्वार खोल दिये और रुचिकर बात यह है कि वे लोग जो थोड़े बहुत पढ़-लिख गये थे उन्होंने सरकारी नौकरियों में काम करना प्रारंभ कर दिया। कुछ लोगों को कारखानों में भी काम धंधा मिलने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग संयुक्त परिवार छोड़कर घर से बाहर निकल पड़े। ये लोग अगर विवाहित थे तो कभी-कभी अपनी पत्नी-बच्चों और यहाँ तक कि अपने एक-दो दूसरे रिश्तेदारों को वे साथ ले गये। **ब्रिटिश युग में संयुक्त परिवार के टूटने का यह एक मुद्रा से जुड़ा हुआ या आर्थिक कारक था।**

2. व्यवसायों का विविधीकरण (Diversification of Occupations)

अंग्रेजों के समय में देश में लोगों के धंधे बहुत सीमित थे। बहुसंख्यक लोग कृषि में लगे थे और शेष लोग कारीगर थे, दस्तकार थे और अपने पुश्तैनी धंधों को करते थे। प्रत्येक जाति के अपने निश्चित धंधे थे और लोग अपने आप इन्हीं धंधों में जुट जाते थे। अंग्रेजों के आने के बाद कई नये व्यवसाय आये। कल-कारखाने चले; बाज़ारों का विस्तार हुआ और इन नई वस्तुओं ने परंपरागत आर्थिक व्यवस्था में विविधीकरण कर दिया। इस विविधीकरण ने संयुक्त परिवार को बहुत बड़ा झटका दिया। अब संयुक्त परिवार उत्पादन की इकाई बहुत थोड़ी मात्रा में ही रहे। वास्तव में

नोट

उत्पादन कारखानों में आ गया। जहाँ वस्तुओं का विनिमय परिवार के परिसर में होता था, अब वह बाज़ार में आ गया। जहाँ तक व्यवसायों का प्रश्न है, संयुक्त परिवार की सांस फूलने लगे।

3. स्त्रियों को रोजगार (Employment to Women)

अभी हम ब्रिटिश काल में संयुक्त परिवार में जो परिवर्तन आया उसका उल्लेख कर रहे हैं। वैचारिक दृष्टि से अंग्रेज प्रजातांत्रिक थे। उनके प्रशासन का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ा। जहाँ तक रोज़गार का प्रश्न है, ब्रिटिश भारत में पुरुष और स्त्री को समान दृष्टि से देखा जाने लगा। इधर आज़ादी की लड़ाई ने भी स्त्रियों की भागीदारी को बढ़ावा दिया। अब संयुक्त परिवार में पहली बार स्त्रियाँ रोजगार पाने की सम्भावना के कारण और आजादी की लड़ाई में भागीदारी के कारण अपनी शक्ति को समझने लगी। इस तरह के बदलाव का परिणाम यह हुआ कि जिन परिवारों में पुरुष और स्त्री दोनों काम पर बाहर जाने लगे थे, वहाँ परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच परस्पर संबंध प्रभावित हुए।

4. शैक्षिक कारण (Educational Factor)

जब अंग्रेजी शासन ने शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किया तब इसका प्रभाव संयुक्त परिवार पर पड़ा। जिन लोगों को अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला, उन्होंने देश में बाल विवाह, स्त्री शिक्षा, स्त्रियों को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित रखना, विधवा के साथ बुरा व्यवहार करना आदि से सम्बन्धित हिन्दी रीति-रिवाजों को जारी रखने का विरोध किया। शिक्षित युवक पारिवारिक परंपरा के विरुद्ध न केवल बड़ी आयु में विवाह करने लगे बल्कि उन्होंने पढ़ी-लिखी लड़कियों को जीवन साथी बनाना शुरू कर दिया। परिवार के मामलों में अशिक्षित या कम पढ़ी-लिखी महिलाओं की अपेक्षा पढ़ी-लिखी महिलाओं का विशेष प्रभाव पड़ा। जब **पणिक्कर** कहते हैं कि संयुक्त परिवार ने स्त्रियों को बराबर दबाकर रखा तब अंग्रेजी शासन में पहली बार स्त्रियों ने व्यक्तिवादी विचारधारा को बढ़ावा दिया। अब वहू की सास से ठन गयी। एक पढ़ी-लिखी थी और दूसरी अनपढ़। इस तरह के व्यक्तिवादी विचारों ने संयुक्त परिवार को बहुत अधिक प्रभावित किया।

5. क़ानून का प्रभाव (Impact of law)

ब्रिटिश हुकूमत से लेकर स्वतंत्र भारत की अवधि में सामाजिक विधान ने कानूनी तौर पर संयुक्त परिवार को सबसे अधिक प्रभावित किया। यह अवश्य है कि अंग्रेजों ने संयुक्त परिवार से जुड़े हुए मसलों के निर्णय के लिए कुछ क़ानून बनाये। आज़ादी के बाद तो यह तय हो गया कि परिवार में स्त्रियों को अधिक समय तक शोषण का शिकार नहीं बनाया जा सकता। अगर हम अंग्रेजी काल से लेकर आज तक के सामाजिक विधान की पड़ताल करें तो ज्ञात होगा कि ऐसे कई क़ानून बने हैं जिन्होंने संयुक्त परिवार को बहुत अधिक प्रभावित किया है।

कर्मचारियों के लाभ के लिए, अंग्रेजी शासन काल में ही भारतीय कामगार प्रतिपूर्ति अधिनियम, 1923 बना था। आज़ादी के तुरन्त बाद 1948 में **न्यूनतम मजदूरी अधिनियम** ने सदस्यों के लिए संयुक्त परिवार पर आर्थिक निर्भरता को समाप्त कर दिया। सन् 1930 में **हिन्दू विद्या धन अधिनियम** पारित किया गया। इसके द्वारा यह घोषणा की गयी कि अगर कोई हिन्दू अपनी शिक्षा के माध्यम से कोई सम्पत्ति बनाता है तो उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति होगी। चाहे उसकी शिक्षा का खर्च संयुक्त परिवार ने ही उठाया हो। इसी समय अपनी कमाई हुई सम्पत्ति और संयुक्त परिवार के बीच भेद किया गया। सन् 1937 में ब्रिटिश शासन काल के दौरान एक क़ानून बनाया गया जिसके द्वारा पत्नी को अपने पति की सम्पत्ति पर सीमित अधिकार प्राप्त हुआ। वह पति की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार और पति के जीवित रहते हुए सीमित अधिकार की भागीदार थी। लेकिन पत्नी की मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति पति के वारिशों की ही होती थी।

सन् 1929 में **शारदा एक्ट** ने बाल विवाह पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके अनुसार लड़के और लड़कियों के विवाह की निम्नतम आयु क्रमशः 18 और 14 निर्धारित कर दी गयी। इस अधिनियम के कई उद्देश्य थे, लेकिन बहुत बड़ा

उद्देश्य लड़के और लड़की को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना था। इस अधिनियम ने संयुक्त परिवार में पारस्परिक संबंधों को निर्णायक स्तर पर प्रभावित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नेहरू जी की यह मंशा थी कि **हिन्दू कोड बिल** को तैयार किया जाए। अगर यह क़ानून बन जाता तो इससे संयुक्त परिवार की संरचना में बहुत बड़ा अन्तर आ जाता। लेकिन क़ानून नहीं बन पाया। नेहरू जी ने कोड बिल में जो मुद्दे थे उनमें से टुकड़े-टुकड़े, में कई क़ानून बना दिये। उदाहरणार्थ, **उत्तराधिकार अधिनियम, 1956** पारित हुआ। इसमें लड़के व लड़कियों को पिता की सम्पत्ति पर समान अधिकार दिये गये। इन कानूनों ने इस अधिनियम को पारित करने से पूर्व संयुक्त परिवार में चल रहे विरासत के ढाँचे को और परिवार में स्त्रियों की दूसरों पर निर्भर रहने की स्थिति को चुनौती दी।

6. शहरीकरण (Urbanisation)

यदि हम शहरों के इतिहास को देखें तो तुरन्त ज्ञात हो जायेगा कि सभ्यताओं का विकास हमेशा शहरों के इर्द-गिर्द हुआ है। कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई और दिल्ली जैसे शहरों ने अपने विकास को सभ्यता के संदर्भ में किया है। यह हमेशा से हुआ है कि लोग गाँवों से शहरों की ओर मुड़े हैं। इसका अर्थ यह होता है कि लोग कृषि और कारीगरी को छोड़कर अन्य व्यवसायों की ओर मुड़ते हैं। शहरी जीवन में जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है, इस जनसंख्या में विषमता होती है, व्यवसायों में बहुत बड़ी विविधता होती है और इस सबके परिणामस्वरूप लोग शहरों की ओर प्रवास करते हैं। परिणाम होता है—संयुक्त परिवार का विघटन। शहरी जीवन की एक और विशेषता यह है कि इसमें रहने के लिए सीमित स्थान उपलब्ध होता है।

अगर आज़ादी के बाद के वर्षों को देखें तो ज्ञात होता है कि केवल रोज़गार के लिए ही नहीं, उच्च शिक्षा, व्यवसाय आदि के लिए भी लोग गाँव छोड़कर शहर में आ जाते हैं। यह देखा गया है कि एक व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों को शहर ले जाकर मूल परिवार की स्थापना कर सकता है तो दूसरा उन्हें संयुक्त परिवार में छोड़कर, शहर में जाकर बस जाता है। अनेक अध्ययनों से यह पता चलता है कि गाँवों और कस्बों से शहरों में स्थानान्तरण से बड़े परिवार की इकाई का तेजी से विघटन हुआ है। ये निष्कर्ष जनगणना से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित हैं। इसके अनुसार शहरों में मूल परिवारों का प्रतिशत बहुत अधिक है। शहरों में आवास योजना एक जटिल समस्या है। अगर जगह मिलती है तो वह बहुत कम होती है। इतनी कम जगह में औसत शहरी के लिए बड़े परिवार का भरण-पोषण मुश्किल हो जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

सही विकल्प चुनिए—

4. .... शासन से पहले संयुक्त परिवार में मुद्रा का चलन नहीं था।

   (क) ब्रिटिश (ख) मुगल (ग) हिन्दू

5. .... के समय में धंधे बहुत सिमित थे।

   (क) अंग्रेजों (ख) मुगल शासन (ग) हिन्दू शासन

6. .... शासन ने शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किया तब इसका प्रभाव संयुक्त परिवार पर पड़ा।

   (क) मुगल (ख) अंग्रेजी (ग) हिन्दू

22.6 सारांश (Summary)

- मोर्गन ने परिवार की उत्पत्ति के बारे में निष्कर्ष निकाला कि साधारणतम और असभ्यतम लोगों में परिवार नहीं पाया जाता था।
- मोर्गन ने परिवार के क्रमिक विकास की अवधारणा भी प्रस्तुत की।
- मोर्गन के अनुसार आदिम समाज में 'सिब' ही एकमात्र समूह होता था।
- परिवार के क्रमिक विकास के अन्तर्गत अब परिवार के कार्यों में परिवर्तन हुआ है। ये परिवर्तन संरचनात्मक है। मूल्यों से जुड़े हुए हैं, व्यक्तिवाद आ गया है।

22.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **संयुक्त परिवार (Joint family)**– संयुक्त परिवार एक ऐसा घर है जिसमें तीन या अधिक पीढ़ी के लोग एक साथ रहते हैं जिसके सदस्य संपत्ति, आय, अधिकार, कर्तव्य द्वारा एक दूसरे से आबद्ध रहते हैं।
2. **शहरीकरण (Urbanisation)**–शहरों में मूल परिवारों का प्रतिशत बहुत अधिक है।

22.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मोर्गन के अनुसार परिवार की उत्पत्ति किस प्रकार हुई?
2. भारत में परिवार के विकास चक्र के अंतर्गत संयुक्त परिवार के बदलते स्वरूप को बताएँ?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. उत्पत्तिमूलक
2. अन्वेषण कर्ताओं
3. तात्त्विक
4. (क) ब्रिटिश
5. (क) अंग्रेजों
6. (ख) अंग्रेजी।

22.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी–शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।
2. भारत में परिवार की सैर–ट्रेमवोर अलिक, कल्पज पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–23: संयुक्त परिवार : प्रकार एवं कार्य (Joint Family: Types and Function)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 संयुक्त परिवार का अर्थ (Meaning of Joint Family)

23.2 संयुक्त परिवार की प्रमुख विशेषताएँ (Main Features of Joint Family)

23.3 संयुक्त परिवार के प्रकार (Types of Joint Family)

23.4 संयुक्त परिवार के प्रकार्य (गुण) (Functions (Merits) of Joint Family)

23.5 संयुक्त परिवार की समस्याएँ (दोष) (Problems (Demerits) of Joint Family)

23.6 सारांश (Summary)

23.7 शब्दकोश (Keywords)

23.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- संयुक्त परिवार की अवधारणा को समझना।
- संयुक्त परिवार के प्रकारों की जानकारी।
- संयुक्त परिवार के कार्य क्या-क्या हैं? इसे बताना।
- संयुक्त परिवार के महत्त्व को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय सामाजिक संरचना की एक विशेषता के रूप में यहाँ संयुक्त परिवार का प्राचीन काल से ही महत्त्व रहा है। हिन्दुओं के अलावा अहिन्दू लोगों में भी संयुक्त प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था पायी जाती रही है। सामान्यतः

संयुक्त परिवार हिन्दुओं का विशिष्ट लक्षण माना जाता है। वास्तव में यह भारतवर्ष में सर्वत्र ही प्रचलित है, क्योंकि यह हिन्दुओं की भांति अनेक अहिन्दू समुदायों में भी पाया जाता है। वह पारिवारिक संगठन जिसका हम यहाँ वर्णन करना चाहते हैं, कुछ समुदायों में पितृ-सत्तात्मक है तथा अन्य में मातृ-सत्तात्मक अथवा मातृ-वंशीय है। भारत में परिवार का शास्त्रीय स्वरूप संयुक्त परिवार रहा है। ऐसा हिन्दुओं की कुछ पवित्र पुस्तकों में उल्लिखित है तथा सदियों पुरानी इस भूमि पर यह स्वरूप प्रचलित रहा है। भारतीयों के लिए परिवार का वही अर्थ है जो अंग्रेजी के 'जोइण्ट फैमिली' (Joint Family) से लिया जाता है, नाभिक परिवार भारतीय अवधारणा नहीं है। कर्वे का भी मत है कि "यहाँ (भारत में) परिवार का अर्थ संयुक्त परिवार से ही है।" भारतीय धर्म, दर्शन, अर्थव्यवस्था, जाति प्रथा, वर्णाश्रम व्यवस्था यहाँ के सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इन सभी में परिवार एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। यह हिन्दू संस्कृति का संचालक सूत्र रहा है। हिन्दुओं में विवाह एवं परिवार को धर्म का अंग माना गया है। गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों का मूल कहा गया है। हमारे धर्मशास्त्र में जहाँ एक ओर संन्यासी जीवन एवं संसार त्याग की बात कही गयी है, वहीं गृहस्थ जीवन की उपयोगिता के भी गुणगान किये गये हैं। वैदिक काल से लेकर अब तक भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली रही है।

वैदिक युग में कृषि ही महत्त्वपूर्ण व्यवसाय था और इस कार्य को करने के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी जिसे परिवार के संयुक्त रूप ने ही निभाया। प्राचीन वैदिक परिवार पितृ स्थानीय, पितृवंशीय एवं पितृ-सत्तात्मक होते थे। **मैक्स मूलर** ने संयुक्त परिवार को भारत की 'आदि परम्परा' कहा है जो भारतीयों को वर्षों से सामाजिक परम्परा के रूप में मिलता रहा है। **पणिक्कर** ने कहा है कि सैद्धान्तिक रूप से असम्बन्धित होते हुए भी ये दोनों संस्थाएँ जाति और संयुक्त परिवार व्यावहारिक रूप में एक-दूसरे से इस प्रकार गुंथी हुई हैं कि वे एक सामान्य संस्था हो गयी हैं। हिन्दू समाज की इकाई व्यक्ति न होकर संयुक्त परिवार है। **कीथ** एवं **मैक्डॉनल** का मत है कि संयुक्त परिवार प्रणाली भारत में अति प्राचीन है। अनेक वैदिक मंत्र भी इस बात की पुष्टि करते हैं। विवाह के समय पुरोहित वर-वधू को आशीर्वाद देते हुए कहता है, "तुम यहीं इस घर में रहो, वियुक्त मत होओ, अपने घर में पुत्रों और पौत्रों के साथ खेलते हुए और आनंद मनाते हुए सारी आयु का उपभोग करो तथा तू सास, ससुर, देवर, ननद पर शासन करने वाली रानी बन।" भारतीय सामाजिक जीवन को समझने के लिए यहाँ की परिवार व्यवस्था को समझना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीमती कर्वे की भी मान्यता है कि यदि हम भारत में किसी भी सांस्कृतिक तथ्य को समझना चाहते हैं तो तीन बातों का ज्ञान आवश्यक है। ये हैं—भाषायी क्षेत्र में संरचना, जाति संस्था और पारिवारिक संगठन। इन तीनों कारकों में से प्रत्येक दूसरे दो से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है तथा तीनों मिलकर ही भारतीय संस्कृति के अन्य सभी पहलुओं को आधार प्रदान करते हैं एवं अर्थपूर्ण बनाते हैं।

23.1 संयुक्त परिवार का अर्थ (Meaning of Joint Family)

विभिन्न विद्वानों ने संयुक्त परिवार को इस प्रकार से परिभाषित किया है—

इरावती कर्वे के अनुसार, "एक संयुक्त परिवार ऐसे व्यक्तियों का एक समूह है जो सामान्यत: एक ही घर में रहते हैं, जो एक ही रसोई में बना भोजन करते हैं, जो सम्पत्ति के सम्मिलित स्वामी होते हैं व जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं और जो किसी-न-किसी प्रकार से एक-दूसरे के रक्त सम्बन्धी हों।"

आई. पी. देसाई के अनुसार, "हम उस गृह को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार से अधिक पीढ़ियों (अर्थात् तीन या अधिक) के सदस्य रहते हैं और जिसके सदस्य एक-दूसरे से सम्पत्ति, आय और पारस्परिक अधिकारों तथा कर्तव्यों द्वारा सम्बद्ध हों।"

नोट

बी. आर. अग्रवाल ने संयुक्त परिवार को परिभाषित करते हुए लिखा है, "संयुक्त परिवार के सदस्य परिवार और धर्म, पूंजी के सामूहिक विनियोग, लाभ के सामूहिक उपयोग आदि के लिए परिवार के वयोवृद्ध सदस्य की सत्ता के अधीन होते हैं तथा जन्म, विवाह और मृत्यु के अवसर पर सामूहिक कोष में से खर्च किया जाता है।"

डॉ. दुबे के अनुसार, "यदि कई मूल-परिवार एक साथ रहते हों और उनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हों और एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों, तो उन्हें उनके सम्मिलित रूप में संयुक्त परिवार कहा जा सकता है।" **जौली** (Jolly) के अनुसार, "न केवल माता-पिता तथा सन्तान, भाई तथा सौतेले भाई सामान्य सम्पत्ति पर रहते हैं, बल्कि कभी-कभी इनमें कई पीढ़ियों तक की सन्तानें, पूर्वज तथा समानान्तर सम्बन्धी भी सम्मिलित रहते हैं।" **बुलेटिन ऑफ दी क्रिश्चियन इन्स्टीट्यूट फॉर दी स्टडी ऑफ सोसाइटी** ने लिखा है, "संयुक्त परिवार से हमारा अभिप्राय उस पविार से है, जिसमें कई पीढ़ियों के सदस्य एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य-परायणता के बंधन में बंधे रहते हैं।"

नोट्स संयुक्त परिवार से हमारा तात्पर्य ऐसे परिवार से है जिसमें कई पीढ़ियों के लोग एक साथ निवास करते हैं अथवा एक ही पीढ़ी के सभी भाई अपनी पत्नियों, विवाहित बच्चों तथा अन्य संबंधियों के साथ सामूहिक निवास करते हैं जिनकी संपत्ति सामूहिक होती है। परिवार के सभी सदस्य भोजन, उत्सव, त्यौहार और पूजन में सामूहिक रूप से भाग लेते हैं और परस्पर अधिकारों और कर्तव्यों से बंधे होते हैं।

23.2 संयुक्त परिवार की प्रमुख विशेषताएँ (Main Features of Joint Family)

संयुक्त परिवार के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ उसकी विशेषताओं का उल्लेख करेंगे–

1. सामान्य निवास (Common Residence): संयुक्त परिवार में कई छोटे-छोटे परिवार होते हैं और इसके सदस्य एक ही निवास स्थान पर रहते हैं जिसे वे 'बड़ा घर' कहते हैं। प्रत्येक छोटे परिवार के लिए एक या दो कमरे अलग हो सकते हैं, परन्तु रसोई और पूजा आदि के लिए सामान्य कमरा ही होता है। जब कभी सदस्यों की संख्या अधिक हो जाती है तो कोई भी पुत्र अपने बच्चों सहित पैतृक निवास के पास ही अलग घर बनाकर रहने लगता है, किन्तु वे अपने को 'बड़े घर' के सदस्यों से अलग नहीं समझते। पूजा, त्यौहार एवं उत्सव आदि के अवसर पर सभी सदस्य पैतृक घर में ही एकत्रित होते हैं जो सदस्य अर्थोपार्जन के लिए शहर चले जाते हैं वे भी पेंशन होने पर अथवा बीच में छुट्टियों में लौटने पर अपने गाँव के घर में ही रहते हैं।

2. सामान्य रसोईघर (Common Kitchen): संयुक्त परिवार के सभी सदस्य एक ही रसोईघर में बना भोजन करते हैं। कर्ता या अन्य बड़े पुरुष की पत्नी अन्य स्त्रियों की रसोई के कार्यों में देखभाल करती है। ऐसे परिवार में भोजन करने की भी कुछ प्रथाएँ होती हैं जो बच्चों के समाजीकरण में योग देती हैं। किस अवसर पर क्या भोजन बनेगा, इसका निर्धारण भी परिवार की वयोवृद्ध स्त्री करती है। सबसे पहले बच्चों को भोजन खिलाया जाता है, उनके बाद पुरुष और तब स्त्रियाँ सबसे बाद में भोजन करती हैं। विवाहित स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने पति की थाली में ही भोजन करें।

3. सामान्य सम्पत्ति (Common Property): संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों की एक सामान्य सम्पत्ति होती है जिसमें सभी पुरुष जो एक पूर्वज के वंशज होते हैं, हिस्सेदार होते हैं। सभी सदस्य कमाकर परिवार के सामान्य कोष में देते हैं तथा विवाह, उत्सव, मृत्यु और जन्म आदि के अवसर पर सामूहिक कोष में से ही खर्च किया जाता है। परिवार का सबसे बड़ा पुरुष ही इस अर्थव्यवस्था को संभालता है।

4. सामान्य पूजा या धार्मिक कर्तव्य (Common Worship and Religious Duties): हिन्दुओं में परमेश्वर के अनेक रूप माने गये हैं। प्रत्येक परिवार का कोई-न-कोई देवी-देवता होता है, पितर होते हैं जो उस परिवार के सदस्यों की रक्षा करते हैं। हिन्दुओं में धर्म एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। जीवन की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ धार्मिक कार्यों से ही प्रारंभ होती हैं। धार्मिक कार्य पैतृक सम्पत्ति में उत्तराधिकार की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। मृत व्यक्ति का पिण्ड-दान, श्राद्ध और तर्पण करने वाला ही उसका उत्तराधिकारी होता है। हिन्दुओं में अग्नि पूजा का भी विशेष महत्त्व है। वह घर की रक्षा करती है। पुत्र और सम्पत्तिदायिनी है। वेदों में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि 'हे अग्नि! हमें पुत्रों से फलता-फूलता घर दे।' इस प्रकार अग्नि पूजा और पितर पूजा परिवार को संयुक्त बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. पूजा, त्यौहार एवं उत्सव आदि के ········ पर सभी सदस्य पैतृक घर में एकत्रित होते हैं।
2. किस अवसर पर क्या बनेगा इसका भी फैसला परिवार की ········ स्त्री करती है।
3. सभी सदस्य कमा कर परिवार के ········ में देते हैं, शादी, उत्सव, मृत्यु इत्यादि के समय पर सामूहिक कोष से ही खर्च किया जाता है।

5. रक्त सम्बन्ध से सम्बन्धित (Related to Kindred): परिवार के सभी सदस्य परस्पर रक्त सम्बन्धी होते हैं, किन्तु पत्नियाँ विवाह सम्बन्धी होती हैं। पितृ-सत्तात्मक परिवारों में सम्बन्धी की गणना पितृपक्ष से की जाती है तथा मातृ-सत्तात्मक परिवार में मातृपक्ष से। एक संयुक्त परिवार में तीन या अधिक पीढ़ी के लोग सामूहिक रूप से निवास करते हैं।

6. बड़ा आकार (Large Size): एक संयुक्त परिवार में कई छोटे-छोटे परिवार होते हैं तथा तीन या अधिक पीढ़ियों के लोग साथ-साथ रहते हैं। अत: इसका आकार नाभिक परिवारों से बड़ा होता है। कभी-कभी तो इसके सदस्यों की संख्या 50-60 तक हो जाती है। गाँवों में शहर की अपेक्षा बड़े आकार वाले संयुक्त परिवार देखने को मिलेंगे। ऐसे परिवारों में पितामह, पिता एवं पुत्र तथा उनकी पत्नियाँ एवं अविवाहित लड़कियाँ तथा विधवा और परित्यक्ता बहिनें या बेटियाँ भी होती हैं।

7. अधिकार और दायित्व (Rights and Obligations): देसाई का मत है कि संयुक्त परिवार के सदस्य परस्पर अधिकार और कर्तव्यों से जुड़े होते हैं। परिवार में छोटा बड़ों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करता है तो बड़ा अपने अधिकारों का प्रयोग करता है, बीमारी, वृद्धावस्था और दुर्घटना के अवसर पर सेवा-सुश्रुषा की जाती है। जन्म, विवाह एवं मृत्यु के अवसर पर एक-दूसरे को आर्थिक सहयोग प्रदान किया जाता है। जब एक भाई अर्थोपार्जन के लिए शहर में निवास करता है तो वह शिक्षा-दीक्षा के लिए अपने पास दूसरे भाइयों के बच्चों को भी रखता है। इस प्रकार परिवार के सदस्य एक-दूसरे के प्रति अपने अधिकारों और दायित्वों का निर्वाह करते हैं।

8. सामान्य सामाजिक प्रकार्य (Common Social Functions): कपाड़िया ने संयुक्त परिवार में सामान्य सामाजिक कार्यों को महत्त्वपूर्ण माना है अर्थात् सभी सामाजिक कार्यों के लिए परिवार को एक व्यक्ति माना जाता है और उनका एक प्रतिनिधि ही सारे परिवार की तरफ से भाग लेता है जो अधिकांशत: मुखिया होता है चाहे वह जाति पंचायत की सभी हो या किसी के यहाँ विवाह, मृत्यु भोजन या उत्सव आदि में सम्मिलित होना हो।

नोट

9. परिवार का मुखिया (Head of the Family): संयुक्त परिवार में कर्ता का मुख्य स्थान है। हिन्दुओं में वह परिवार का वयोवृद्ध पुरुष होता है। वही विवाह उत्सव, सम्पत्ति, घर के महत्त्वपूर्ण एवं बाहरी कार्यों का निर्धारण करता है। उसकी आज्ञा का सभी पालन करते हैं एवं वही अनुशासन और एकता बनाये रखता है। उसकी सत्ता निरंकुश है, परन्तु वह सभी के साथ प्रेम, समानता एवं स्नेह का व्यवहार करता है क्योंकि इसी आधार पर संयुक्तता बनी रहती है।

10. सहयोगी व्यवस्था (Co-operative System): संयुक्त परिवार पारस्परिक सहयोग पर निर्भर करता है। इसके अभाव में सदस्यों का विभाजन हो जाता है। प्रत्येक सदस्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करे। साथ ही उसे उसकी आवश्यकता के अनुसार परिवार से प्राप्त होता रहता है। संयुक्त परिवार में **'एक सब के लिए और सब एक के लिए'** वाला सिद्धांत लागू होता है। इस तरह से यह एक समाजवादी व्यवस्था है।

11. सदस्यों में एक निश्चित संस्तरण (A definite Hierarchy): संयुक्त परिवार में सदस्यों को विभिन्न पद और अधिकार प्राप्त होते हैं। इन पदों में संस्तरण पाया जाता है। इस संस्तरण में सर्वोच्च स्थान कर्ता का होता है और उसके बाद कर्ता की पत्नी, फिर क्रमश: कर्ता के भाई, कर्ता के सबसे बड़े पुत्र, छोटे पुत्र-पुत्रियों, पत्नियों आदि का होता है। परिवार में सबसे निम्न स्थान विधवा स्त्रियों का होता है।

12. तुलनात्मक स्थायित्व (Comparative Permanency): संयुक्त परिवार अन्य परिवारों की तुलना में अधिक स्थायी होता है, क्योंकि इसकी सदस्य संख्या अधिक होती है। अत: कुछ सदस्यों के अलग हो जाने तथा मर जाने पर भी परिवार में स्थायित्व बना रहता है। सदस्य परस्पर अपने दायित्वों का निर्वाह कर परिवार की स्थिरता को बनाये रखते हैं। ऐसे परिवार में आर्थिक सहयोग होने के कारण भी स्थिरता बनी रहती है। साथ ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी पारम्परिक संस्कृति का हस्तान्तरण भी होता रहता है। अत: संयुक्त परिवार अन्य परिवारों की तुलना में अधिक स्थिर और स्थायी है।

23.3 संयुक्त परिवार के प्रकार (Types of Joint Family)

भारत में संयुक्त परिवार के अनेक रूप विद्यमान हैं। सत्ता, वंश, स्थान, पीढ़ियों की गहराई व सम्पत्ति में अधिकार आदि की दृष्टि से परिवार के निम्नांकित रूप पाये जाते हैं–

(I) सत्ता, वंश एवं स्थान के आधार पर

1. पितृ-सत्तात्मक, पितृ-वंशीय एवं पितृ-स्थानीय परिवार (Patriarchal, Patrilineal and Patrilocal Family): उपर्युक्त प्रकार के संयुक्त परिवार में पिता ही परिवार का केन्द्र-बिन्दु होता है अर्थात् इस प्रकार के परिवारों में पिता का स्थान प्रमुख होता है तथा वंश परंपरा का चलन उसी के नाम के आधार पर होता है। ऐसे परिवारों में पत्नियाँ अपने पति के घर पर ही आकर निवास करती हैं एवं पुरुष पक्ष के तीन-चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ निवास करते हैं। ऐसे परिवारों का हस्तान्तरण पिता द्वारा पुत्र को होता है। भारतवर्ष में हमें अधिकतर हिन्दुओं में इसी प्रकार के संयुक्त परिवार देखने को मिलेंगें।

2. मातृ-सत्तात्मक, मातृ-वंशीय एवं मातृ-स्थानीय परिवार (Matriarchal, Matrilineal and Matrilocal Family): इस प्रकार के परिवारों में हमें माता का प्रमुख स्थान देखने को मिलेगा। परिवार की सम्पत्ति पर माँ का स्वामित्व होता है एवं उत्तराधिकार माता से पुत्रियों को ही मिलता है। वंश परंपरा के चलन का आधार भी माता होती है अर्थात् 'वंशनाम' माता से पुत्रियों को मिलता है। इस प्रकार के संयुक्त परिवार में हमें एक स्त्री, उसके भाई, उसकी बहनें तथा परिवार की सभी स्त्रियों के बच्चे निवास करते हुए मिलेंगे। नायर, गारो एवं खासी लोगों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। हम यहाँ नायर लोगों में पाये जाने वाले मातृ-सत्तात्मक परिवार का उल्लेख करेंगे।

3. नायर परिवार: तारवाड़: नायर संयुक्त परिवार को मलयालम में तारवाड़ कहते हैं। एक नायर तारवाड़ परिवार एक स्त्री, उसके पुत्र एवं पुत्रियों, उसकी पुत्रियों के पुत्र एवं पुत्रियों द्वारा मिलकर बना होता है। इस प्रकार इन परिवारों में एक स्त्री के वंश की पीढ़ियाँ निवास करती हैं। पुत्रों की सन्तानें उनकी स्त्रियों के तारवाड़ों की सदस्य होती हैं तथा माता के साथ निवास करती हैं। तारवाड़ की सम्पत्ति अविभाज्य सम्पत्ति होने के कारण कोई सदस्य बंटवारे की माँग नहीं कर सकता है। परिवार का वयोवृद्ध सदस्य जो कर्णवान कहलाता है सम्पत्ति का प्रबंधक होता है। उसकी मृत्योपरान्त ही दूसरा उसका स्थान ग्रहण करता है। सिद्धांतत: सदस्यों की अनुमति से सम्पत्ति का बंटवारा हो सकता है, परन्तु तारवाड़ के किसी सदस्य के विरोध करने पर यह विभाजन रुक सकता है। इस प्रकार तारवाड़ की अविभाज्यता बनी रहती है। जब तक सदस्य परिवार में रहता है, तब तक ही वह भरण-पोषण की सुविधाएँ प्राप्त कर सकता है–(1) कर्णवान की अनुमति प्राप्त हो गयी हो। (2) कर्णवान का व्यवहार अनुचित प्रमाणित हो गया हो।

प्रबंधक के रूप में कर्णवान स्वेच्छा से न तो सम्पत्ति को गिरवी रख सकता है और न ही बेच सकता है। नियमों का उल्लंघन करने पर उसे पदच्युत किया जा सकता है, परन्तु व्यवहार में कर्णवान इतना शक्ति-सम्पन्न होता है कि उसे हम निरंकुश कह सकते हैं।

कपाड़िया के अनुसार वर्तमान में नायरों में 'तावझी' अर्थात् एकाकी परिवार (Nuclear family) का विकास हो रहा है तथा तारवाड़ का विघटन हो रहा है। क़ानून भी इनको प्रोत्साहन प्रदान कर रहा है। नये क़ानून के अनुसार तारवाड़ के किसी सदस्य की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति के स्वामी निकटस्थ वंशज होंगे। इस प्रकार सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त होने से तावझी की नींव दृढ़ हो रही है। तावझी के अस्तित्व में आने के पश्चात् सदस्य का सम्पत्ति पर से अधिकार समाप्त हो जाता है, परन्तु वंशज संबंध बने रहते हैं। इसलिए वे अपने आपको तारवाड़ का सदस्य मानते हुए तारवाड़ बहिर्विवाह का पालन करते हैं। किसी सदस्य के मृत्योपरान्त तावझी के सदस्य भी स्वयं को 14 दिन तक अशुद्ध मानते हैं।

(II) पीढ़ियों की गहराई के आधार पर

(अ) संयुक्त परिवार का उदग्र (Vertical) प्रारूप: इस प्रकार के संयुक्त परिवारों में एक ही वंश के कम-से-कम तीन पीढ़ियों के लोग एक साथ निवास करते हैं, जैसे, दादा, पिता, अविवाहित पुत्री और पुत्र। डॉ. आई.पी. देसाई ने ऐसे ही परिवार को संयुक्त परिवार माना है।

(ब) संयुक्त परिवार का क्षैतिज (Horizontal) प्रारूप: इस प्रकार के परिवारों में भाई का संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण है अर्थात् ऐसे परिवारों में दो से अधिक भाइयों के एकाकी परिवार एक साथ निवास करते हैं।

(स) संयुक्त परिवार का मिश्रित (Mixed) प्रारूप: संयुक्त परिवार का एक रूप उपर्युक्त दोनों प्रकार के परिवार का मिश्रित रूप है जिसमें दो या तीन पीढ़ियों के सभी भाई सम्मिलित रूप से निवास करते हैं।

(III) सम्पत्ति में अधिकार की दृष्टि से

सम्पत्ति में अधिकार की दृष्टि से हिन्दू संयुक्त परिवार को मिताक्षरा एवं दायभाग दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(*i*) मिताक्षरा संयुक्त परिवार विज्ञानेश्वर द्वारा लिखित 'मिताक्षरा टीका' के नियमों पर आधारित है। बंगाल और असम को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में मिताक्षरा संयुक्त परिवार पाये जाते हैं। इस प्रकार के परिवारों की मुख्य विशेषताएं हैं–(क) पुत्र को जन्म से ही पिता की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हो जाता है। (ख) स्त्रियों को सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं होता है। (ग) एक व्यक्ति की मृत्यु होने पर यदि उसके कोई पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र नहीं है तो उसकी सम्पत्ति उसके भाई आपस में बांट लेंगे। स्त्री को स्त्री धन के अतिरिक्त कोई सम्पत्ति नहीं दी जायेगी। (घ) पुत्र पिता के जीवित रहते हुए भी कभी भी अपने हिस्से की माँग कर सकते हैं। (च) सम्पत्ति पर पिता का सीमित अधिकार

नोट

है, वह विशेष ऋणों एवं धार्मिक कार्यों के लिए संयुक्त सम्पत्ति को बेच सकता है, किन्तु दूसरे साझेदार अपने अन्य साझेदारों को पूछे बिना सम्पत्ति का स्वेच्छा से विनियोग नहीं कर सकते।

***(ii)* दायभाग संयुक्त परिवार** के नियम जीमूतवाहन द्वारा लिखित दायभाग ग्रंथ पर आधारित हैं। इस प्रकार के परिवार बंगाल एवं असम में पाये जाते हैं। इनकी मुख्य विशेषताएं हैं–(क) पिता के मरने के बाद ही पुत्र का सम्पत्ति पर अधिकार होता है। (ख) पिता के जीवित रहते पुत्र सम्पत्ति के बंटवारे की माँग नहीं कर सकता। (ग) पिता सम्पत्ति का निरंकुश अधिकारी होता है। वह अपनी सम्पत्ति को मनमाने ढंग से खर्च कर सकता है। पुत्रों का उसमें भरण-पोषण के अतिरिक्त कोई अधिकार नहीं होता है। (घ) पिता के मरने पर पुत्र न होने पर उसकी सम्पत्ति उसकी पत्नी को मिलती है। (च) इसमें पुरुष के साथ-साथ स्त्रियाँ भी सम्पत्ति में उत्तराधिकारिणी होती हैं।

इस प्रकार सम्पत्ति की दृष्टि से इन दो प्रकार के परिवार में **अन्तर** है–(1) मिताक्षरा में पुत्र का जन्म से ही सम्पत्ति पर अधिकार होता है जबकि दायभाग में पिता के मरने पर; (2) मिताक्षरा में स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार नहीं होता है जबकि दायभाग में होता है; (3) मिताक्षरा में पिता की सम्पत्ति में सीमित अधिकार है जबकि दायभाग में असीमित। एक लम्बे समय से सम्पत्ति की दृष्टि से हिन्दू संयुक्त परिवार इन दो भागों में बंटा हुआ था, किन्तु सन् 1956 के **'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम'** ने यह भेद समाप्त कर सारे देश में एक-सी व्यवस्था लागू कर दी है और स्त्री-पुरुषों को सम्पत्ति में समान अधिकार प्रदान किये हैं।

टास्क संयुक्त परिवार कितने प्रकार के होते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

23.4 संयुक्त परिवार के प्रकार्य (गुण) (Functions (Merits) of Joint Family)

संयुक्त परिवार भारतीय समाज की अत्यन्त प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण संस्था है। यह संस्था भारतवर्ष में एक लम्बे समय से चली आ रही है। किसी भी संस्था का एक लंबे समय से प्रचलन इस बात का द्योतक है कि वह संस्था समाज के लिए उपयोगी है। यह संस्था प्रमुखतया कृषि प्रधान एवं ग्रामीण समाजों में तो बहुत ही उपयोगी रही है। कर्वे इसे एक छोटी-मोटी दुनिया मानती हैं, जिसके सदस्यों में पारस्परिक सहयोग रहा है। भारतीय समाज में संयुक्त परिवार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। संयुक्त परिवार के महत्त्वपूर्ण कार्य इस प्रकार हैं–

1. शासन संबंधी: भारतीय गाँवों का सामाजिक संगठन जटिल नहीं है। यहाँ पर व्यक्ति की अपेक्षा परिवार को अधिक महत्त्व दिया जाता है और परिवार का प्रतिनिधित्व 'परिवार का कर्ता' (Head of the family) करता है। एक प्रकार से कर्ता परिवार का शासक है, कर्ता का परिवार एक एकाधिकार होता है। परिवार के समस्त कार्य उसी के द्वारा निर्देशित होते हैं।

2. धार्मिक कार्य: प्रत्येक परिवार की अपनी कुल देवी या देवता होते हैं, और गुरु अथवा पुरोहित होते हैं। सभी सदस्यों का उनमें अगाध विश्वास होता है। वे यथायोग्य उनकी पूजा-उपासना करते हैं। इस प्रकार आध्यात्मवाद को प्रोत्साहन मिलता है। धार्मिक अनुष्ठानों की पूर्ति तथा त्यौहारों व धार्मिक उत्सवों को मनाने हेतु सभी सदस्यों का सम्मिलन होता है। एक परिवार ईश्वर के सम्मुख एक इकाई है। प्रत्येक घर में ईश्वर के लिए एक स्थान होता है जो सारे परिवार की रक्षा करता है। **ऑपलर** ने यू.पी. के सेनापुर गाँव में परिवार के द्वारा किये जाने वाले 40 वार्षिक संस्कारों का उल्लेख किया है, जिनमें से 25 परिवार की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों से सम्बन्धित थे। इस प्रकार धर्म भी हमें परिवार से ही प्राप्त होता है।

3. मार्ग-दर्शन: संयुक्त परिवार में सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष निवास करते हैं। परिवार में वयोवृद्ध व्यक्तियों का विशेष स्थान होता है, क्योंकि उनके जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आये होते हैं और वे युवा सदस्यों की अपेक्षा

अधिक अनुभवी होते हैं। वे अपने अनुभवों के आधार पर भावी पीढ़ी को निर्देशित करते हैं। विकट परिस्थिति में जब युवा सदस्य अपना धैर्य खो बैठते हैं और निराशा के घोर अंधकार में गोते लगाते हैं तब वे अनुभवी सदस्य ही उनके पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करते हैं।

4. मनोरंजन: संयुक्त परिवार में सदस्यों की अधिकता के कारण यह मनोरंजन की सस्ती व उपयुक्त स्थली है। सारे समय परिवार में मनोरंजन का वातावरण व चहल-पहल बनी रहती है। कर्वे कहती हैं कि संयुक्त परिवार में हर समय कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। कभी किसी लड़के या लड़की की शादी है तो कभी नामकरण संस्कार का उत्सव हो रहा है। कभी नयी दुल्हन से पहली बार भोजन बनवाने की रस्म करवायी जा रही है तो कभी परिवार में व्रत और श्राद्ध हैं तो कभी किसी का जन्मदिन मनाया जा रहा है। ऐसे परिवार में अतिथियों का आवागमन भी बना रहता है। कभी बहू को लेने उसका भाई आया हुआ है तो कभी लड़की को मैके बुलाने के लिए भी जाना पड़ता है। देवर-भाभी की हंसी-मजाक, ननद-भौजाई की नोंक-झोंक, बच्चों की किलकारियां, देवरानी-जिठानी के प्रतिस्पर्द्धात्मक झगड़े आदि मनोरंजन का वातावरण प्रस्तुत करते हैं।

5. बच्चों के लालन-पालन में योगदान: संयुक्त परिवार बच्चों के लालन-पालन हेतु एक उचित स्थान है। संयुक्त परिवार में वयोवृद्ध स्त्री-पुरुष बच्चों की देख-रेख में सहयोग प्रदान करते हैं तथा उनके समाजीकरण एवं शिक्षण में योग देते हैं। सद्‌गुण, सेवा, त्याग, सहानुभूति प्रेम, सहयोग और परोपकार आदि भावनाओं को बच्चा परिवार में ही सीखता है। वर्तमान में उन परिवारों की जहां पति-पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं और बच्चे नौकरों की देख-रेख में रहते हैं की स्थिति अधिक भयानक है क्योंकि वहा कई बार बच्चों में सद्‌गुणों का विकास नहीं हो पाता।

6. धन का उचित उपयोग: संयुक्त परिवार में एक सामान्य कोष होता है। सामान्य कोष में से ही सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार चाहे वह कमाता हो अथवा नहीं, धन खर्च किया जाता है। कर्ता के नियंत्रण के द्वारा अनावश्यक खर्चों से बचा जाता है। परिवार में आय और सम्पत्ति पर किसी सदस्य का विशेषाधिकार नहीं होता है। इसीलिए सभी सदस्य समान रूप से लाभ के भागीदार होते हैं। वे अपनी क्षमतानुसार आय प्रदान करते हैं।

7. सम्पत्ति का विभाजन से बचाव: संयुक्त परिवार में चूंकि सभी सदस्य सम्मिलित रहते हैं, इसलिए वहाँ सम्पत्ति के विभाजन का प्रश्न ही नहीं उठता है। इस प्रकार संयुक्त सम्पत्ति का उपयोग व्यापार अथवा किसी धन्धे में करके सम्पत्ति में और अधिक बढ़ोत्तरी की जा सकती है। संयुक्त परिवार कृषि के लिए और भी अधिक उपयोगी प्रमाणित हुए हैं, क्योंकि इन्होंने भूमि के विभाजन पर रोक लगाकर उत्पादकता को बढ़ाने में सहयोग दिया है। संयुक्त सम्पत्ति होने के कारण अनावश्यक खर्चों पर भी रोक लगी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त परिवार में सम्पत्ति की सुरक्षा ही होती है।

8. श्रम-विभाजन: इरावती कर्वे के अनुसार विशाल संयुक्त परिवार एक व्यक्ति के पद और उसके आर्थिक क्रिया-कलाप को निश्चित कर देता है और उसे सुरक्षा प्रदान करता है। संयुक्त परिवार में श्रम-विभाजन दो आधारों पर किया जाता है—**प्रथम**, यौन के आधार पर एवं **द्वितीय,** आयु के आधार पर। परिवार के पुरुषों पर बाह्य कार्य एवं परिवार की स्त्रियों पर आन्तरिक कार्यों की ज़िम्मेदारी होती है। परिवार के प्रत्येक सदस्य अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार कोई-न-कोई कार्य अवश्य ही करते हैं।

9. संकट का बीमा: सुख और दु:ख जीवन के दो पहलू हैं जिनके बिना यह जीवन अधूरा-सा है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सुख के साथ-साथ दु:ख भी पाये जाते हैं। ये दु:ख किसी भी प्रकार के हो सकते हैं, जैसे, कोई दुर्घटना, बीमारी, शारीरिक अथवा मानसिक अस्वस्थता, नौकरी छूट जाना, वैधव्य आदि। इन सभी अवस्थाओं में संयुक्त परिवार एक सहारे के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। संयुक्त परिवार अनाथ बच्चों, विधवाओं तथा वृद्ध व्यक्तियों की शरण स्थली है जो अपने सदस्यों को यथासंभव आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर चिन्ता से मुक्ति दिलाता है। इस प्रकार संयुक्त परिवार अपने सदस्यों के लिए एक संकटकालीन बीमा है। इसीलिए **अनन्त शयन आयंगर** का कहना है कि

"संयुक्त परिवार हमारे समाज का वह अभूतपूर्व किला है, जिसमें श्रम योग्य वयस्कों से काम लिया जाता है और असमर्थ वृद्धों तथा अपरिपक्व बालकों की रक्षा होती है।"

10. संस्कृति की रक्षा: भारतीय संस्कृति की निरन्तरता एवं स्थायित्व के लिए संयुक्त परिवार एक महत्त्वपूर्ण कड़ी रहा है। संयुक्त परिवार में ही वह प्रेरक शक्तियाँ विद्यमान रही हैं जो व्यक्ति को प्राचीन प्रथाओं एवं परंपराओं, रूढ़ियों तथा सामाजिक मान्यताओं के अनुसार अनुसरण करने को प्रेरित करती हैं। भारतीय संयुक्त परिवार परिवर्तन और नवीनीकरण के प्रारंभ से ही विरोधी रहे हैं, इसलिए इन्होंनें इन सांस्कृतिक विशेषताओं को ज्यों-का-त्यों भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर संस्कृति की स्थिरता बनाये रखने में अपना विशेष योग दिया है।

11. अनुशासन एवं नियंत्रण: संयुक्त परिवार में कर्ता का प्रमुख स्थान है। परिवार के समस्त कार्य उसी से ही निर्देशित होते हैं। अत: परिवार के सभी सदस्य उसके नियंत्रण में रहते हैं और इस प्रकार परिवार में अनुशासन भी बना रहता है। कर्ता अपनी शक्तियों के माध्यम से परिवार के सदस्यों के स्वच्छन्द आचरण पर रोक लगाता है। इस प्रकार परिवार के कर्ता एवं वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा परिवार में नियंत्रण एवं अनुशासन बना रहता है जबकि एकाकी परिवार में हमें इसका अभाव मिलता है।

12. राष्ट्रीय एकता एवं देश-सेवा: संयुक्त परिवार की संरचना ही कुछ इस प्रकार की है कि व्यक्ति उसमें स्वत: ही त्याग, प्रेम, सहानुभूति, सहयोग आदि सीखता है। इन भावनाओं के कारण राष्ट्रीय एकता को बल मिलता है। संयुक्त परिवार में रहकर कुछ सदस्य अपना जीवन देश-सेवा में भी लगा सकते हैं क्योंकि परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने से वे पारस्परिक दायित्वों से मुक्त हो सकते हैं। वे सार्वजनिक कल्याणकारी कार्य, समाज-सेवा और देश-सेवा यहाँ तक कि युद्धकालीन परिस्थितियों में अपने प्राणों की आहुति देने से भी नहीं चूकते हैं।

13. सामाजिक सुरक्षा: संयुक्त परिवार व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। भारत में हिन्दुओं में बाल-विवाह के प्रचलन के कारण जब तक वर-वधू आत्म-निर्भर नहीं होते तब तक उनका भरण-पोषण संयुक्त परिवार द्वारा ही किया जाता है। संयुक्त परिवार अनाथों, वृद्धों एवं विधवाओं और परित्यक्ताओं की एक उत्तम शरण स्थली है जो उन्हें उचित सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। संकटकालीन परिस्थितियों में परिवार के सदस्यों की देख-रेख व भरण-पोषण का कार्य संयुक्त परिवार का नैतिक दायित्व है।

नोट्स संयुक्त परिवार अपने आप में एक ऐसा समुदाय है जो एक व्यक्ति की सभी भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। हमारे समाज में संयुक्त परिवार का इतना अधिक महत्त्व है कि इसके सम्मुख अन्य नागरिक इकाइयाँ (विशेषकर राज्य भी) महत्त्वहीन हो जाती हैं। कर्वे के अनुसार एक व्यक्ति की पाप की सारी कमायी, चाहे दूसरे व्यक्तियों से राज्य से गबन की गयी हो, विशाल संयुक्त परिवार अथवा बृहत्तर बांधव समूह पर ही खर्च होती है।

23.5 संयुक्त परिवार की समस्याएँ (दोष) (Problems (Demerits) of Joint Family)

संयुक्त परिवार के अनेक लाभ होते हुए भी कुछ दोषों के कारण यह व्यवस्था दिन-प्रतिदिन कमज़ोर होती जा रही है। इसके प्रमुख दोष इस प्रकार हैं–

1. **अकर्मण्य व्यक्तियों की वृद्धि:** संयुक्त परिवार में सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार होता है, चाहे व्यक्ति काम कर रहा हो अथवा नहीं, उसका भरण-पोषण होता है और सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। ऐसी दशा में बेकार व्यक्ति कोई कार्य करने को आतुर अथवा उत्सुक नहीं होता है। यहाँ परिश्रम करने वाले व्यक्ति को कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिलता है। इसलिए वह भी अपने कार्य के प्रति उदासीन होने लगता है। इस प्रकार उसकी कार्य-कुशलता का ह्रास होता है। इस तरह संयुक्त परिवार दरिद्रों व बेकारों की समस्या हल करने की अपेक्षा अकर्मण्य व दूसरों पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि करता है।

2. **व्यक्तित्व के विकास में बाधक:** संयुक्त परिवार व्यक्तित्व के विकास में बाधक सिद्ध हुआ है, क्योंकि यहाँ प्रतिभाशाली व मूर्ख, कर्मण्य व अकर्मण्य आदि सभी के साथ समान व्यवहार होता है। परिवार के वयोवृद्ध व्यक्तियों के कठोर नियंत्रण व अनुशासन के कारण प्रतिभाशाली व्यक्ति न तो अपने विचारों को प्रकट ही कर सकता है और न ही अपनी योग्यता का समुचित उपयोग कर सकता है। पारिवारिक हित के समक्ष उसकी समस्त आशाओं व आकांक्षाओं को निर्ममता से कुचल दिया जाता है।

3. **स्त्रियों की दुर्दशा:** संयुक्त परिवार में स्त्रियों की स्थिति बड़ी अजीबो-गरीब होती है। नव-वधू का प्रथम पति-गृह प्रवेश एक लक्ष्मी के रूप में होता है। सास, ननद व अन्य स्त्रियाँ उसकी बलाएँ लेती हैं, स्वागत गान गाती हैं, परन्तु यह केवल एक दिखावा मात्र होता है। वास्तव में उसकी स्थिति परिवार में एक दासी के समान होती है, उसका जीवन खाना बनाने, बच्चों को जन्म देने या उनकी देखभाल करने एवं अन्य सदस्यों की सेवा में ही व्यतीत होता है। उसे मनोरंजन का साधन समझा जाता है। उसे सास एवं ननद के उलाहने, गालियाँ एवं प्रताड़ना का शिकार बनना पड़ता है, शिक्षा एक बाह्य जगत से उसका कोई नाता नहीं रह पाता है।

4. **कलह का केन्द्र:** संयुक्त परिवार में बच्चों, सम्पत्ति एवं स्त्रियों के व्यवहार को लेकर आये दिन कलह होते रहते हैं। इससे परिवार की शान्ति खतरे में पड़ जाती है। वैयक्तिक व्यय एवं बच्चों को लेकर स्त्रियों में आपसी द्वेष एवं मनमुटाव पैदा हो जाता है और पारिवारिक सहयोग एवं स्नेह संघर्ष व कटुता में बदल जाता है। संघर्ष एवं कलह का अन्तिम परिणाम होता है परिवार का विभाजन।

5. **अधिक सन्तानोत्पत्ति:** संयुक्त परिवार में न तो प्रत्येक सदस्य का स्वावलंबी होना आवश्यक है और न ही किसी को अपने भरण-पोषण हेतु चिन्ता करने की आवश्यकता है। संयुक्त परिवार अपने प्रत्येक सदस्य का समान रूप से भरण-पोषण करता है। इसलिए व्यक्ति अपने धार्मिक विधि-विधानों की पूर्ति हेतु व स्वर्ग प्राप्ति की लालसा में पुत्र प्राप्ति की कामना में कई पुत्रियों को जन्म देता है। इस प्रकार संतानों की संख्या में वृद्धि होती है जिसका भार संयुक्त परिवार को वहन करना पड़ता है।

6. **कुशलता में बाधक:** संयुक्त परिवार ने कर्मण्य व्यक्ति को शोषण व अकर्मण्य व्यक्ति को प्रोत्साहन दिया है। संयुक्त परिवार में सभी व्यक्तियों के हितों का ध्यान रखा जाता है व समान रूप से उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है, चाहे कोई व्यक्ति कमाता हो अथवा नहीं। परिणामस्वरूप कमाने वाले व्यक्ति पर अधिक भार होने से व उसको प्रोत्साहन न मिलने के कारण उसकी कार्य-कुशलता में कमी आती है, उसके स्वास्थ्य का ह्रास होता है तथा उसका जीवन-स्तर निम्न होता चला जाता है।

7. **गतिशीलता में बाधक:** व्यक्ति की परिभाषा के प्रति एक गहन आसक्ति होती है। व्यक्ति के मन में यह धारणा होती है कि "आँख से दूर हुए तो दिल से भी दूर हुए।" इस धारणा के वशीभूत हो व्यक्ति अपना परिवार छोड़कर कहीं बाहर अन्य स्थान पर जाना पसंद नहीं करता है। व्यक्ति को अपने परिवार से जो प्रेम व सुविधाएँ मिलती हैं, अन्यत्र मिलना कठिन हैं। इसलिए कोई भी व्यक्ति परिवार से बाहर जाकर नौकरी अथवा व्यवसाय करना पसंद नहीं करता है, चाहे वह घर में बेकार ही क्यों न बैठा हो।

8. **गोपनीय स्थान का अभाव:** संयुक्त परिवार में सदस्यों का जमघट देख कर एक छोटे-मोटे मेले का आभास होने लगता है क्योंकि परिवार के सदस्यों की संख्या में तो बढ़ोत्तरी होती है, परन्तु आवास उतना ही रहता है। संयुक्त

परिवार अपने सदस्यों की चहचहाट से 24 घण्टे गुंजायमान होता रहता है। वहाँ शान्ति और एकांत का नितांत अभाव होता है। ऐसी परिस्थितियाँ विवाहित जोड़ों के लिए बड़ी विकट स्थिति उत्पन्न कर देती है। वैसे भी अपने बुजुर्गों के सामने पति-पत्नी का वार्तालाप और अपने बच्चों से अधिक बातचीत करना, उन्हें स्नेह करना व उनकी सुख-सुविधाओं का अधिकाधिक ध्यान रखना सदस्य के आचरण, बड़ों की मान-मर्यादा व परिवार के आदर्शों के विरुद्ध समझा जाता है। ऐसी परिस्थिति में पति-पत्नी एक-दूसरे के सहयोगी होने की अपेक्षा अजनबी अधिक होते हैं। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि "संयुक्त परिवार में पति-पत्नी इतनी कृत्रिम और अस्वाभाविक परिस्थितियों में मिलते हैं कि उनमें प्रेम का विकास तो दूर की बात है, मामूली परिचय भी नहीं होता है।" गोपनीय स्थान का अभाव बच्चों के लिए भी दुखदायी सिद्ध होता है, क्योंकि कभी-कभी वे ऐसी अवांछित घटनाओं को देखते हैं जिनका प्रभाव उन पर हानिकारक सिद्ध होता है।

9. कर्ता की स्वेच्छाचारिता: परिवार में कर्ता का मुख्य स्थान होता है। परिवार के समस्त कार्य उसी से ही निर्देशित होते हैं एवं कर्ता की इच्छा ही सर्वोपरि होती है। कर्ता की इच्छा के समक्ष परिवार के अन्य सदस्यों की इच्छाओं का दमन हो जाता है। इस प्रकार कर्ता परिवार का निरंकुश शासक होता है। वर्तमान समय में कर्ता की यह स्थिति विस्फोटक प्रमाणित हुई है क्योंकि नयी विचारधाराओं में पल्लवित युग पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की स्वेच्छाचारिता के साथ सामंजस्य स्थापित करने को तत्पर नहीं है, फलस्वरूप वह विरोधी प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होती है। यह स्थिति परिवार की संयुक्तता के लिए घातक सिद्ध हो रही है।

10. सामाजिक समस्याओं के पोषक: संयुक्त परिवार अनेक रूढ़िवादी परंपराओं व अनुपयोगी धार्मिक कर्मकाण्डों की स्थली रहा है। संयुक्त परिवार के माध्यम से कई समाजव्यापी समस्याएँ जैसे, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, विधवा-विवाह पर रोक, परदा-प्रथा, जाति अन्तर्विवाह, जनसंख्या की समस्या, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव में वृद्धि, स्त्रियों का शोषण आदि उत्पन्न हुई हैं। यद्यपि इन समस्याओं के और भी अनेक कारण हैं, परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण कारण संयुक्त परिवार का ज्ञान-शून्य वातावरण और सदस्यों का कठपुतली के समान किया गया व्यवहार है जो व्यक्ति को उचित और अनुचित में भेद उत्पन्न करने में बाधा डालता है। संयुक्त परिवार में नयी विचारधारा व प्रगति को हतोत्साहित कर इन समस्याओं को यथावत उपस्थित रहने में योग दिया है।

11. शुष्क एवं नीरस वातावरण: संयुक्त परिवार के सदस्यों की अधिकता के कारण उनके पारस्परिक संबंधों में दृढ़ता व आत्मीयता का अभाव दृष्टिगोचर होता है। परिवार के सदस्यों के मधुर संबंध औपचारिकता में परिवर्तित हो रहे हैं। अब संयुक्त परिवार में मनमुटाव व पारिवारिक द्वेष की भावना अधिक प्रबल होती जा रही है। परिवार के सदस्य स्वार्थी होते जा रहे हैं, फलस्वरूप उनके हितों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हुई है। यह टकराव ही झगड़े का रूप धारणा कर संयुक्त परिवार की जड़ें खोखली कर रहा है। ऐसी स्थिति में घर का वातावरण शुष्क और नीरस होना स्वाभाविक है।

क्या आप जानते हैं संयुक्त परिवार के सदस्यों की अधिकता के कारण मनमुटाव और द्वेष की भावना बढ़ती है। सदस्य स्वार्थी होते जा रहे हैं। सदस्यों में टकराव और झगड़े के कारण संयुक्त परिवार की जड़ें खोखली होती जा रही हैं।

23.6 सारांश (Summary)

- संयुक्त परिवार से तात्पर्य उस परिवार से है जिसमें कई पीढ़ियों के सदस्य एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य परायणता के बंधन में बंधे रहते हैं।

- संयुक्त परिवार का आकार बड़ा होता है तथा इनके बीच सहयोगी व्यवस्था होती है।
- सत्ता, वंश, स्थान, संपत्ति के अधिकार आदि की दृष्टि से संयुक्त परिवार के अनेक रूप पाए जाते हैं।
- शासन संबंधी, मार्गदर्शन, मनोरंजन, बच्चों के लालन-पालन में योगदान, धन का उचित उपयोग, संपत्ति के विभाजन से बचाव आदि संयुक्त परिवार के कार्य हैं।
- भारत में परिवार का शास्त्रीय रूप संयुक्त परिवार रहा है। वैदिक काल से लेकर अब तक भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली रही है।

23.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **धरोअरधारी परिवार (Trusteeship Family)**—कार्ल जिमरमेन ने एक ऐसे परिवार को धरोअरधारी परिवार कहा है जिसमें संपूर्ण परिवार के कल्याण की बलिबेदी पर व्यक्तिगत स्वार्थों एवं हितों को न्यौछावर कर दिया जाता है।
2. संयुक्त परिवार दरिद्रों व बेकारों की समस्या हल करने की अपेक्षा अकर्मण्य व दूसरों पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि करता है।

23.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. संयुक्त परिवार का अर्थ तथा विशेषताओं को बताएँ।
2. संयुक्त परिवार के प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
3. मिताक्षरा तथा दायभाग में संयुक्त परिवार के बारे में क्या लिखा गया है?
4. संयुक्त परिवार के कार्यों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. अवसर　　2. वयोवृद्ध　　3. सामान्य कोश।

23.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ—डॉ. आर. एन. सक्सेना।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–24: संयुक्त परिवार पर औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण का प्रभाव (Impact of Industrialisation, Urbanisation and Modernisation on Joint Family)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
24.1 औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण का परिवार पर प्रभाव (Impact of Industrialisation, Urbanisation and Modernisation on Family)
24.2 भारतीय परिवार में परिवर्तन (Changes in Indian Family)
24.3 सारांश (Summary)
24.4 शब्दकोश (Keywords)
24.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
24.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- औद्योगीकरण का संयुक्त परिवार पर प्रभाव।
- नगरीकरण का संयुक्त परिवार पर प्रभाव।
- आधुनीकीकरण का संयुक्त परिवार व्यवस्था पर प्रभाव।
- नवीन सामाजिक विधानों का संयुक्त परिवार पर प्रभाव की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय परिवार एक प्रकार का समाजवादी समुदाय है एवं संयुक्त परिवार प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक संरचना की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता के रहा है। जबकि लोगों में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण काफी मात्रा में विकसित हो चुका है, तब भी संयुक्त परिवार यहाँ के सामाजिक जीवन के समविष्टवाद के आदर्श को प्रकट करता हुआ समाज में एक मौलिक संस्था के रूप में दिखलाई पड़ता है। पाश्चात्य देशों में पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों से मिलकर जो समूह बनता है, उसे 'परिवार' कहा जाता है। जब पति-पत्नी और उनके अवयस्क बच्चों वाले समूह को 'परिवार' की संज्ञा दी जाती है, तब जहाँ एक से अधिक दम्पति अपने बेटों, पोतों और कुछ अन्य रिश्तेदारों के साथ एक साथ रहते हों तो ऐसे परिवार को 'विस्तृत' अथवा संयुक्त परिवार कहना उपयुक्त होगा। हिन्दू आदर्श तत्वों को व्यक्त और समूह कल्याण के सुन्दर आदर्श को प्रस्तुत करता है।

24.1 औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण का परिवार पर प्रभाव (Impact of Industrialisation, Urbanisation and Modernisation on Family)

संयुक्त परिवार को परिवर्तित करने में अनेक कारकों का योग रहा है। **बाटोमोर** की मान्यता है कि संयुक्त परिवारों का विघटन केवल औद्योगीकरण में संबंधित विभिन्न दशाओं का ही परिणाम नहीं है, बल्कि इसका प्रमुख कारण यह है कि संयुक्त परिवार आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल सिद्ध हो चुके हैं। **डॉ. कपाड़िया** का कथन है कि नवीन न्याय-व्यवस्था, शिक्षा-प्रसार एवं परिवर्तित मनोवृत्तियों ने संयुक्त परिवारों को विघटित करने में विशेष भूमिका निभायी है यद्यपि सैकड़ों वर्षों तक संयुक्त परिवार भारतीय समाज में महत्त्वपूर्ण कार्य और व्यक्ति को सब प्रकार से सुरक्षा प्रदान करता रहा है, तथापि आज की बदलती हुई परिस्थितियों में इसमें अनेक परिवर्तन आ रहे हैं। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार की संरचना में पारिवारिक दायित्वों, महत्त्वपूर्ण निर्णयों एवं सदस्यों के आपसी संबंधों और बच्चों के सामाजीकरण से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। आधुनिक शिक्षा ने स्त्रियों को अनेक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया है। वे शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करने लगी हैं। उनकी प्रस्थिति और भूमिका में अन्तर आया है। अनेक कारकों ने नाभिक परिवारों का स्थापना में योग दिया है। इन सब परिवर्तनों ने नवीन मूल्यों और मनोवृत्तियों को जन्म दिया है जो व्यवहार की परम्परागत सहिता को समर्थन प्रदान करते हैं। संयुक्त परिवार को परिवर्तित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं–

1. औद्योगीकरण

संयुक्त परिवार उत्पादन और उपभोग, दोनों के ही केन्द्र रहे हैं। न केवल परिवार के सभी सदस्य एक ही खेत पर सम्मिलित रूप से खेती करते थे बल्कि गृह-उद्योग में भी एक साथ मिलकर ही काम करते थे। उस समय संयुक्त परिवार देश की आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप थे, परन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ है। प्रत्येक समाज की आर्थिक व्यवस्था उसकी संरचना का एक आधार है और यदि अर्थव्यवस्था बदलती है तो उससे सम्बन्धित सामाजिक संस्थाएँ भी बदलती हैं। भारतीय आर्थिक व्यवस्था-परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार परिवर्तित होने लगा और जैसा कि साधारणत: लोगों का मत है, विघटित होने लगा। पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था औद्योगीकरण के फलस्वरूप बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना हुई, जहाँ मशीनों की सहायता से कार्य होने लगा। भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने, कुटीर उद्योगों के नष्ट होने तथा नए-नए व्यवसायों के पनपने से लोग ग्रामों से नगरों की ओर बढ़ने लगे। वे नगर में अकेले अथवा अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ रहने लगे। नगरीय क्षेत्र में मकानों के अभाव के कारण संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों को वहाँ ले जाना संभव नहीं था।

औद्योगीकरण के फलस्वरूप स्त्रियों को भी आर्थिक क्षेत्र में नौकरी करने की सुविधा प्राप्त हुई। उनकी प्रस्थिति और भूमिका में परिवर्तन हुआ, उनमें आत्म-निर्भरता बढ़ी और वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। परिणाम यह हुआ कि वे संयुक्त परिवार के प्रति विद्रोह को व्यक्त करने लगी, इस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने लगीं और एकाकी परिवारों की स्थापना में सक्रिय योग देने लगीं। औद्योगीकरण ने नकद मज़दूरी प्रणाली को लागू करने, संयुक्त परिवार सदस्यों का अपने श्रम के परिणाम को नकद के रूप में आँकने का मौका दिया। संयुक्त परिवार का वह सदस्य जो अधिक कमाने लगा, इस बात से असंतुष्ट रहने लगा कि उसके द्वारा कमाया हुआ रूपया परिवार के सभी सदस्यों पर चाहे कोई कमाता हो या चाहे कोई नहीं कमाता हो, चाहे कोई कम कमाता हो या अधिक, समान रूप से खर्च किया जाए। परिणाम यह हुआ कि सदस्यों में व्यक्तिवादी भावना पनपने लगी और वे अपने कमाये हुए धन को अपने स्त्री-बच्चों पर ही खर्च करने की इच्छा रखने लगे। परिवार की अन्य सस्दयों पर अपने कमाये हुए धन को, खर्च करने के बजाय उसे जोड़ना अधिक उचित समझने लगे क्योंकि औद्योगीक व्यवस्था के अन्तर्गत धन का विशेष महत्त्व पाया जाता है। धन के आधार पर व्यक्ति को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इस सारी परिस्थिति ने व्यक्ति को संयुक्त परिवार से अलग रहकर जीविकोपार्जन करने और एकाकी परिवार की स्थापना के लिए अवसर एवं प्रेरणा प्रदान की।

2. नगरीकरण

पश्चिमी वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी, औद्योगीकरण और यातायात वे साधनों के विकास ने नगरीकरण की प्रक्रिया को गति दी है। एक ओर नए नगरों का विकास हुआ है तथा दूसरी ओर छोटे नगर बड़े नगरों में परिवर्तित हुए है। नगरों में व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग-धंधों का विकास हुआ है, नौकरियों के अवसर बढ़े है, ग्रामों से लाखों लोग नौकरी हेतु नगरों में पहुँचे हैं, जहाँ वे नाभिक परिवारों में रहने लगे हैं। नगर में विभिन्न विचारधाराएँ, आदर्श एवं सामाजिक मूल्य पाये जाते हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्त एवं नगरी सभ्यता में पले युवक-युवतियाँ जीवन के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण रखते है। इनमें व्यक्तिवादिता अधिक पाई जाती है। ये लोग नवीनता प्रिय होते हैं। इनका झुकाव आधुनिकता की ओर होता है जबकि माता-पिता परम्पराओं से चिपके रहना चाहते हैं। नगरीय क्षेत्रों में माता-पिता अपने पुत्रों एवं बहुओं से यह आशा करते हैं कि वे अपने परिवार की मान्यताओं, रीति-रिवाजों तथा रूढ़ियों के अनुसार व्यवहार करें, परन्तु युवा पुत्र एवं बहुएँ अपने पसंद के अनुसार रहना और व्यवहार करना चाहते हैं। ऐसी दशा में माता-पिता तथा परिवार के अन्य युवा सदस्यों में विचारों, आदर्शो एवं सामाजिक मूल्यों संबंधी भिन्नता के कारण तनाव पाया जाता है। घर में सास चाहती है कि उसकी बहू पर्दा करे, जबकि बहू अपने पति के साथ स्वतंत्रता पूर्वक घूमना चाहती है। ऐसी स्थिति में एक और माता-पिता से पुत्र से कुछ अपेक्षाएँ रखते हैं, और दूसरी ओर पत्नी और बच्चे कुछ अन्य अपेक्षाएँ रखते हैं, उनकी अपेक्षाओं में विरोध पाया जाता है और पुत्र अपने आपको द्वनद्वात्मक स्थिति में पाता है। जिसका उसके मानसिक स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह सारी स्थित संयुक्त परिवार में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायक है, एकाकी परिवार के निर्माण में प्रेरक है। नगरीय क्षेत्रों में व्यक्तिगत उपलब्धि का विशेष महत्त्व पाया जाता है। यहाँ व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करना चाहता है, परन्तु संयुक्त परिवार में व्यक्ति को ऐसा करने के लिए उचित अवसर एवं प्रोत्साहन नहीं मिल पाता है। नगरीय पर्यावरण ने संयुक्त परिवार के रूपान्तरण में निश्चित रूप से योग दिया है।

3. पाश्चात्य संस्कृति एवं शिक्षा का प्रभाव

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के पश्चात् भारतवासियों ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ किया। उनके विचारों, मनोवृत्तियों और सामाजिक मूल्यों पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा है। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से यूरोपीय सभ्यता के अनेक तत्व भारतीय समाज में समाहित होने लगे और परिवार संबंधी मान्यताएँ बदलने लगी। फलस्वरूप भारतीय संयुक्त परिवार परिवर्तित होने लगे। स्त्री-पुरुष की समानता को यहाँ भी महत्त्व दिया जाने लगा, संवैधानिक सुधारों के लागू होने पर भारतीय स्त्रियों को मताधिकार का राजनीतिक अधिकार प्राप्त हो गया। इस काल में अनेक

नारी-सुलभ पेशे, नर्सिंग, डाक्टरी, शिक्षण कार्य, स्टैनोटाइपिंग तथा क्लर्की आदि अस्तित्व में आये इन पेशों से स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता मिली। संततिनिग्रह के उपकरणों के भारतीय नारी को मातृत्व के निरन्तर भार से मुक्त किया। अब वह घर के बाहर विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने लगी। पश्चिम की उदारवादी विचारधारा और प्रगतिवादी दर्शन स्त्री-पुरुष की समानता की धारणा को विकसित और स्वतंत्र, स्वाभाविक एवं वैयक्तिक प्रेम की धारणा को प्रोत्साहित किया। यौन-संतुष्टि को सहज आवश्यकता बतलाया गया और विवाह को स्वाभाविक प्रेम पर आधारित एक समझौता माना गया। परिणाम यह हुआ कि प्रेम विवाह और सिविल मैरिज की धारणा विकसित हुई। ये वैचारिक परिवर्तन जितनी तेजी से हुए, उतनी तेजी से परम्परागत सामाजिक मान्यताएँ नहीं बदल पाई। ऐसी प्रस्थिति में रूमानी विचारधारा का अंग्रेजी साहित्य पर प्रभाव पड़ा। यह विचारधारा सामाजिक बंधनों के प्रति विद्रोह और अतृप्त अभिलाषाओं की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकट होने लगी। इसका प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पड़ा। यहाँ भी कविता, उपन्यासों लेखों आदि में वैयक्तिकता, स्वाभाविक प्रेम एवं नारी-स्वतंत्र्य को महत्त्व दिया गया; परिवार और जाति के बन्धनों से व्यक्ति को मुक्त करने का प्रयत्न किया गया। इन वैचारिक परिवर्तनों का स्त्री-पुरुषों के संबंधों पर प्रभाव पड़ा है, जिसने संयुक्त परिवार को परिवर्तित करने में योग दिया है। ये नवीन विचार संयुक्त परिवार के आदर्शों के प्रतिकूल दिखाई पड़ते हैं। आज की नारी संयुक्त परिवार के बंधनों से मुक्त होकर ऐसे परिवार में रहना चाहती हैं यहाँ पति-पत्नी के संबंधों का विशेष महत्त्व हो, जहाँ वे एक दूसरे के अधिक निकट रह सके और अपनी इच्छानुसार अपनी बालकों का भरण-पोषण एवं शिक्षा आदि का प्रबंध कर सकें।

स्त्री-शिक्षा ने महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सजग किया, प्रबंध उनमें नव-जाग्रति का संचार किया और सामाजिक जहवन के नियमों का पुनर्परीक्षण करने का उन्हें अवसर दिया। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हुए, उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में अन्तर आया, इसी समय देश में नवजागरण हुआ। सती-प्रथा के विरुद्ध राजाराम मोहन राय ने आंदोलन किया और फिर धीरे-धीरे विधवा-विवाह, बाल-विवाह-विरोध अन्तर्जातीय-विवाह एवं विवाह-विच्छेद आदि को नवजाग्रति के प्रेणताओं ने वैधानिक आधार प्रदान करने की कोशिश की और साथ ही इन समस्याओं की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करते हुए स्वस्थ जनमत निर्माण का प्रयास किया। इन सब कारणों ने संयुक्त परिवार को परिवर्तित करने में योग दिया।

4. नवीन सामाजिक विधान

अंग्रेजों द्वारा स्थापित अदालतों में हिन्दू-प्रणाली का जिस प्रकार से प्रयोग किया गया, उसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार के सदस्य परिवार में निहित अपने उत्तराधिकारों की धीरे-धीरे माँग करने लगे। फल यह हुआ कि परिवार विभाजित होने लगे। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही देश में ऐसे क़ानून बनने लगे जिन्होंने संयुक्त परिवार के संयुक्त आधार को चोट पहुँचाई। संयुक्त परिवार की स्थिरता के बने रहने का एक मूल्य कारण यह था कि पारिवारिक सम्पत्ति में किसी सदस्य के वैयक्तिक अधिकार नहीं थे। अब क़ानून द्वारा कर्ज चुकाने के लिए कर्त्ता को सम्पत्ति बेचने का अधिकार दे दिया गया। “हिन्दू-उत्तराधिकार अधिनियम, 1929” के द्वारा सर्वप्रथम उन व्यक्तियों को परिवार की सम्पत्ति प्रदान किए गए, जो संयुक्त परिवार से पृथक् होकर रहना चाहते थे। “गेल्स ऑफ लर्निग एक्ट, 1930” के द्वारा व्यक्ति की स्वयं अर्जित सम्पत्ति की सीमा को काफी विस्तृत कर दिया गया। “हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्ति विषयक अधिकार अधिनियम, 1937” के द्वारा संयुक्त परिवार में सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार को स्वीकार किया गया। परिवार की सम्पत्ति में पति के समान पत्नी के अधिकार को मान लेने से संयुक्त परिवार परम्परागत पितृवंशी संयुक्त आधार ही टूट गया। सन् 1954 में “विशेष विवाह अधिनियम” को संशोधित कर किसी भी जाति एवं धर्म के स्त्री-पुरुषों को वैवाहिक संबंध स्थापित करने की आज्ञा प्रदान की गई। सन् 1955 में पारित “हिन्दू विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम” के द्वारा स्त्री-पुरुष को समान रूप से विवाह-विच्छेद संबंधी अधिकार प्रदान किए गए एवं वैवाहिक निर्योग्यताओं को दूर कर दिया गया। सन् 1956 में पारित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही सम्पत्ति संबंधी अधिकार दिए गए। “अवयस्क बच्चों की संरक्षता अधिनियम”

नोट

भी इसी वर्ष पास किया गया, जिसके द्वारा परिवार में नाबालिक बच्चों के आर्थिक हितों को संरक्षण प्रदान किया गया। इन सब सामाजिक क़ानूनों से संयुक्त परिवार में उन सब परिवर्तनों को पनपने का अवसर प्रदान किया जो नवीन सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के फलस्वरूप अंकुरित हुए थे।

5. पारिवारिक विवाद

पारिवारिक झगड़ों ने संयुक्त परिवार के रूपान्तरण में योग दिया है। एक संयुक्त परिवार में कई पीढ़ियों के सदस्यों के एक साथ रहने से उनमें विचारों मनोवृत्तियों एवं आदर्शों की दृष्टि से अन्तर पाया जा सकता है जो, कई बार आपसी तनाव और पारिवारिक झगड़ों का कारण बन जाता है। संयुक्त परिवार में साधारणत: स्त्रियों की ओर से झगड़े प्रारम्भ होते हैं क्योंकि सास-बहू या देवरानी जेठानी में विभिन्न मूल-परिवारों में से आने के कारण स्वभाव संबंधी अंतर पाए जाते हैं। अधिकतर झगड़े आय-व्यय को लेकर खड़े होते हैं। यदि एक सदस्य अधिक कमाता है और दूसरा सदस्य कम और यदि कम कमाने वाले के बच्चे अधिक हैं। तो उस दशा में अधिक कमाने वाले की पत्नी को समय-समय पर ताने मारती है इसके अतिरिक्त बच्चों अथवा पारिवारिक श्रम के वितरण को लेकर छोटी-छोटी बातों पर स्त्रियों में झगड़े हो जाते हैं। इन झगड़ों का प्रभाव पुरुष सदस्यों पर अनिवार्यत: पड़ता है। झगड़ों के बढ़ने से संयुक्त परिवार का वातावरण दूषित तथा सुख और शांति नष्ट हो जाती है। यदि परिवार के मुखिया का सब सदस्यों के साथ समान बर्ताव नहीं रहता और वह पक्षपात पूर्ण व्यवहार करता है, सभी सदस्यों की सुख-सुविधाओं का समान रूप से ध्यान नहीं रखता है तो परिवार के अन्य सदस्यों का उस पर से विश्वास उठ जाता है, फलत: संयुक्त परिवार टूटने लगता है। आज कई संयुक्त परिवारों में यह स्थिति देखने को मिलती है।

6. संयुक्त परिवार के कार्यों का घटना

आधुनिक समय में संयुक्त परिवार के बहुत से कार्य अन्य समितियों को हस्तान्तरित हो गये हैं। अब परिवार उत्पादन के केन्द्र नहीं रहे हैं। पहले परिवार के द्वारा व्यक्ति के लिए जो कुछ कार्य किए जाते थे, वे आजकल विभिन्न प्रकार के समूहों, कल्बों, संघों, शिक्षण समितियों आदि के द्वारा किए जाते हैं। वर्तमान में कपड़ों की धुलाई के लिए लॉन्ड्रियाँ, सिलाई के लिए टेलरिंग हाउस तथा अनाज को कूटने-पीसने के लिए फ्लोरिंग मील है। परिणामस्वरूप व्यक्ति की संयुक्त परिवार पर निर्भरता कम हुई है, इसके प्रति उनकी निष्ठा में कमी आई है। व्यक्ति यह महसूस करने लगा है कि संयुक्त परिवार से पृथक होकर भी वह जीवन में आगे बढ़ सकता है, अपनी उन्नति अधिक उत्तमता से कर सकता है।

पूर्वोक्त वितरण से स्पष्ट है कि अनेक आर्थिक-सामाजिक शक्तियों, पाश्चात्य आदर्शों और मूल्यों, आधुनिक शिक्षा और महिला जागृति, पारिवारिक कलह और सामाजिक कानूनों ने संयुक्त परिवार के आदर्श, संरचना और आधार पर चोट की है और उसमें अनेक आधारभूत परिवर्तन लाने में योग दिया है। वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भविष्य में संयुक्त परिवार को उसमें परम्परागत रूप से बनाए रखना संभव प्रतीत नहीं होता। परम्परागत संयुक्त परिवारों में प्राय: स्त्री का स्थान नीचा रहा है, परन्तु भविष्य में ऐसे परिवार का अस्तित्व, जहाँ स्त्री को निम्न समझा जाता हो संदिग्ध मालूम पड़ता है। चाहे ऐसे संयुक्त परिवार टूट कर एकाकी परिवार न बनें, परन्तु समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार इसकी संरचना और आदर्शों में कुछ मौलिक परिवर्तनों का आना निश्चित है।

संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तनों को देखकर साधारणत: यह कहा जाता है कि विघटन-प्रक्रिया में है। बहुत से शिक्षित लोग तो यह मानने लगे हैं कि पाश्चात्य संस्कृति के संघात से भारत में संयुक्त परिवार विघटित हो चुके हैं। ऐसे लोग संयुक्त परिवार को अप्रजातंत्रीय मानते हैं और उसकी सम्पत्ति के पक्ष में अपना मत प्रकट करते हैं। श्री के. एम. पन्नीकर की मान्यता यह है कि संयुक्त परिवार आदिवासी अवस्था को व्यक्त करता है, अत: उसे समाप्त होना ही चाहिए। उनका कथन है कि स्त्रियों द्वारा सामाजिक जीवन के सिद्धांतों का पुनर्परीक्षण वर्तमान हिन्दू समाज

नोट

के लिए एक महानतम चुनौती है, जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार, जाति एवं ग्राम जैसी समष्टिवादी संस्थाओं का विघटन हो रहा है। भारत में संयुक्त परिवार का विघटन न होकर रूपानतरण हुआ है। भारत में औद्योगीकरण, शहरीकरण और स्थानान्तरण जैसी परिवर्तनकारी शक्तियों का प्रवेश धीरे-धीरे हुआ है। इसी कारण, भारत की सामाजिक संस्थाएँ, एक ओर रूपान्तरित हुई हैं और दूसरी ओर ये परिवर्तनकारी शक्तियाँ और उनसे उत्पन्न होने वाला सामाजिक परिवर्तन, भारत की संस्थाओं से प्रभावित हुआ है।

24.2 भारतीय परिवार में परिवर्तन (Changes in Indian Family)

भारत में परिवार का परम्परागत प्रतिमान संयुक्त प्रकार का रहा है। संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के अनुकूल है और धर्म ने भी संयुक्त प्रकार की जीवन-व्यवस्था बनाये रखने में योग दिया है। **डेविस और वीरा मेस** ने लिखा है, "आजकल नागरिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं, जो पारिवारिक जीवन के प्रतिमान को प्रभावित कर रहे हैं।"

नोट्स वर्तमान समय में शिक्षा संबंधी सुविधाओं, नौकरी प्राप्त करने के अवसरों तथा सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के कारण भारत में पारिवारिक संरचना काफी प्रभावित हुई है।

डॉ. ए. आर. देसाई ने लिखा है, "परम्परागत संयुक्त परिवार और परिवारवादी ग्रामीण ढाँचे में गुणात्मक परिवर्तन आ रहे हैं। ग्रामीण संबंधों का आधार प्रस्थिति से समझौते की ओर बदल रहा है। प्रथा को हुकूमत क़ानून द्वारा बदली जा रही है। परिवार उत्पादन की इकाई से उपभोग की इकाई के रूप में बदल रहा है। परिवार को जोड़ने वाला बंधन सम-रक्त के स्थान पर दाम्पत्य के रूप में बदलता जा रहा है।" श्रीमती रास का कथन है, "शिक्षित महिलाओं के स्वीकृत" "पारिवारिक परम्पराओं" और "पारिवारिक लक्षणों" से अलग हो जाने और आत्माभिव्यक्ति के लिए अपने घरों से बाहर दृष्टि डालने से, भारतीय परिवार में एक शांत सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।"

वर्तमान समय में औद्योगीकरण और नगरीकरण के परिणामस्वरूप न केवल व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ी है बल्कि एक ही जाति और परिवार के लोगों के व्यवसाय और आय में काफी अन्तर पाया गया है। न केवल उनकी सामाजिक प्रस्थिति में, बल्कि उनके दृष्टिकोणों में भी निम्नलिखित कारकों के कारण विभिन्नता पाई जाती है।

1. नवीन विचार

नवीन विचारों को लोग धीरे-धीरे ग्रहण करते हैं और काफी समय के पश्चात् ये सामाजिक व्यवहार के प्रतिमानों को प्रभावित कर पाते हैं। एक पीढ़ी के लोग जब नवीन विचारों को ग्रहण कर लेते हैं। तब उनके व्यवहार प्रतिमानों में तो थोड़ा बहुत परिवर्तन आ जाता है, परन्तु उसके बाद वाली पीढ़ी में यह परिवर्तन तेजी से आता है। नवीन विचारों को लोग न्यूनाधिक मात्रा में ग्रहण करते हैं। जिन नवीन विचारों ने भारत में पारिवारिक प्रतिमानों को परिवर्तित करने में योग दिया है उनमें मुख्य हैं: प्रत्येक व्यक्ति को उसके विकास की पूर्ण स्वतंत्रता और अवसर प्राप्त हों। वर्तमान समय में यौन-संबंधी परम्परागत दृष्टिकोणों में अन्तर आया है, रोमान्टिक प्रेम को महत्त्व दिया जाने लगा है। आजकल धार्मिक परम्पराओं का महत्त्व कम हो रहा है और धर्म-निरपेक्षवाद की प्रक्रिया तीव्र हो रही है। लोग वैज्ञानिक, प्रजातांत्रिक और समाजवादी दृष्टिकोण को अपनाते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप समाज एक "पवित्र परिवार" से 'धर्म-निरपेक्ष परिवार' की ओर बढ़ रहा है। धर्म-निरपेक्ष परिवार में व्यक्ति परिवर्तनों को सुगमता से स्वीकार कर लेता है। आजकल पाश्चात्य सभ्यता के प्रति लोग उपयोगितावादी दृष्टिकोण रखने लगे है। वे पाश्चात्य मूल्यों को स्वीकार करना भौतिक दृष्टिकोण से अपने लिए लाभदायक समझते हैं।

नोट

2. नवीन सामाजिक अनुशास्ति

पिछले कुछ वर्षों में भारत में पारित अधिनियमों और अनेक नवीन सामाजिक प्रथाओं के कारण स्त्रियों को विभिन्न अधिकार मिले हैं। ये सिद्धान्त रूप में स्त्री और पुरुष को समान स्तर पर ले आए हैं। सन् 1955 एवं 56 में चार अधिनियम बनाए गए जिनके द्वारा विवाह और विवाह-विच्छेद के आधारों का निश्चित किया गया, सम्पत्ति के उत्तराधिकारी का निर्धारण, गोद लेते तथा भरण-पोषण संरक्षता संबंधी नियमों को तय किया गया। ये सब अधिनियम विवाह और परिवार के प्रतिमानों में परिवर्तन लाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे।

3. सामाजिक संरचना

औद्योगीकरण के साथ-साथ देश में नगरीकरण बढ़ता जा रहा है। आर्थिक 'संरचनाएँ' मुद्रीकरण की ओर कदम बढ़ा रही हैं और राजनीतिक 'संरचनाओं' का विस्तार होता जा रहा है। व्यावसायिक सुविधाओं के बढ़ने से एक ही परिवार के विभिन्न सदस्य अलग-अलग व्यवसायों में अलग-अलग स्थानों पर काम करने लगे हैं। उनकी आय में भी काफी असमानता पाई जाती है। परिणाम यह हुआ कि संयुक्त प्रकार के जीवन की विशेषताएँ समाप्त होने लगी हैं और एक ही परिवार के सदस्यों के हितों, दृष्टिकोणों तथा आय में विभेद पैदा हो गए हैं। शिक्षा-व्यवस्था के कारण माता-पिता और संतान तथा भाई-भाई के दृष्टिकोणों में अन्तर उत्पन्न हुआ है। जाति-संरचना में भी परिवर्तन हुए हैं; जातीय-बंधन कुछ शिथिलता होते जा रहे हैं तथा अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं। विभिन्न जाति के नव-विवाहित लड़के-लड़कियों के लिए संयुक्त परिवार में अपना अनुकूलना करना कुछ कठिन रहता है। ऐसी दशा में अन्तर्जातीय विवाहों के बढ़ने के साथ-साथ परिवार के प्रतिमान और सामाजिक संबंधों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन लाने में राज्य द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी जा रही है। राज्य सामाजिक आर्थिक विकास की दृष्टि से योजनाएँ बनाता जा रहा है। राज्य लोगों को सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील है। राज्य विभिन्न कार्यक्रमों एवं पंचायती राज्य संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण समुदायों के उत्थान की ओर प्रयत्नशील है। इसी प्रकार, जनसंख्या को सीमित करने की दृष्टि से परिवार-नियोजन की योजना भी चल रही है। ये सारे नियोजित प्रयास परिवार के प्रतिमान परिवर्तित करने में सक्रिय योग दे रहे हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. लोग वैज्ञानिक, प्रजातांत्रिक और समाजवादी ········ को अपनाने जा रहे हैं।
2. धर्म निरपेक्ष परिवार में व्यक्ति परिवर्तनों को सुगमता से ········ कर लेता है।
3. ये सब अधिनियम विवाह और परिवार के प्रतिमानों में ········ लाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

24.3 सारांश (Summary)

- औद्योगीकरण से कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे तथा ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर बढ़ने लगे।
- औद्योगीकरण के फलस्वरूप स्त्रियों को भी आर्थिक क्षेत्र में नौकरी करने की सुविधा प्राप्त हुई। उनमें आत्म-निर्भरता बढ़ी है।
- सबके नौकरी करने से संयुक्त परिवार में व्यक्तिवादी भावना पनपने लगी जो एकाकी परिवार को जन्म देने लगी।
- नगरों में व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग धंधे का विकास हुआ नौकरियों के अवसर बढ़े तथा ग्रामीण जनसंख्या नौकरी की तलाश में गाँव से शहर आने लगे।
- नगरीकरण तथा आधुनिकीकरण ने संयुक्त परिवार के रूपांतरण में निश्चित रूप से योगदान दिया है।

24.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **आधुनिकीकरण (Modernisation)**–आधुनिकीकरण राजनीतिक, सांस्कृतिक, एवं सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास की एक ऐसी मिली-जुली पारस्परिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथा समकालीन अविकसित समाज अपने आपको विकसित करने में संलग्न रहते हैं।
2. **पारिवारिक विवाद**– झगड़ों के बढ़ने से संयुक्त परिवार का वातावरण दूषित तथा सुख और शांति नष्ट हो जाता है।

24.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. औद्योगीकरण का संयुक्त परिवार पर क्या प्रभाव पड़ा है।
2. नगरीकरण ने संयुक्त परिवार को किस तरह परिवर्तित किया है?
3. आधुनिकीकरण ने संयुक्त परिवार में क्या-क्या परिवर्तन लाया?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. दृष्टिकोण 2. स्वीकार 3. परिवर्तन।

24.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. परिवार का समाजशास्त्र–डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. सोलह संस्कार–स्वामी अवधेशन, मनोज पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–25: परिवार का भविष्य: उभरते विकल्प– नाभिकीय परिवार, मार्क्सवादी एवं नारीवादी दृष्टिकोण (Future of Family: Emerging Alternatives– Nuclear Family, Marxist and Feminist Approaches)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 परिवार का भविष्य (Future of Family)

25.2 क्या नाभिकीय परिवार उद्योगवाद का नतीजा है?
(Is Nuclear Family a Result of Industrialisation?)

25.3 क्या नाभिकीय परिवार पारिवारिक संबंध का सार्वभौमिक रूप है?
(Is Nuclear Family a Universal Form of Family Relation?)

25.4 परिवार: एक मार्क्सवादी एवं नारीवादी दृष्टिकोण
(Family: A Marxist and Feminist Approach)

25.5 सारांश (Summary)

25.6 शब्दकोश (Keywords)

25.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परिवार के भविष्य के बारे में एक अनुमान।
- पूँजीवादी समाज में महिलाओं का प्रभुत्व।
- एकाकी अथवा नाभिकीय परिवार की विशेषता और उसका भविष्य के संबंध में जानकारी।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

विगत कुछ वर्षों में मानव समाज में तकनीकी एवं आर्थिक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए हैं जिससे सामाजिक अभिरुचियाँ एवं मूल्य प्रभावित हुए हैं। आय अर्जन की बढ़ती हुई शक्ति एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव के कारण माता-पिता और बच्चों में परिवार के प्रति भावनात्मक लगाव कम हो गया है। इस बदलती हुई सरंचना ने माता-पिता की भूमिका को भी अस्पष्ट बना दिया है। आधुनिक काल में परिवार का आकार सिकुड़कर छोटा हो गया है जिसे 'न्यूक्लियर' या 'एकीकृत' परिवार की संज्ञा दी गई है।

25.1 परिवार का भविष्य (Future of Family)

जार्ज पीटर मर्डोक ने 280 समाजों का जिनमें शिकारी और भोजन-संग्राहक टोलियों से लेकर व्यापक औद्योगिक समाज तक सभी शामिल थे, एक प्रतिदर्श प्रस्तुत किया और इसके आधार पर यह दावा किया कि हर समाज में परिवार किसी न किसी रूप में विद्यमान होता है और यह सार्वभौमिक हैं इसी तरह टाल्कोट पार्सन्स परिवार के अतिरिक्त ऐसी किसी संस्था की कल्पना नहीं कर सकते थे जो स्थिर या स्थायी मानव व्यक्तियों को पैदा व समायोजित करे।

मर्डोक और पार्सन्स दोनों की इस बात के लिए आलोचना की गई है कि वे परिवार के प्रकार्यात्मक विकल्पों को ढूंढ पाने में असफल रहे हैं। कुछ प्रकार्य आवश्यक रूप से परिवार से संबद्ध नहीं होते। यह तर्क दिया जाता है कि मर्डोक और पार्सन्स जैसे समाजशास्त्रियों के विचार मुख्य रूप से उनके विश्वासों से उपजे हैं जिनका संबंध इस बात से है कि परिवार को कैसा होना चाहिए। बैरिंगटन मूर का अवलोकन द्रष्टव्य है: "समाज वैज्ञानिकों में आजकल यह एक स्वयंसिद्ध-सी धारणा हो गई है कि परिवार एक सार्वभौमिक रूप से आवश्यक सामाजिक संस्था है और भविष्य में हमेशा यह इसी रूप में बरकरार रहेगा।...... मुझे यह महसूस करते हुए बड़ी बेचैनी होती है कि अपने श्रम-साध्य सिद्धान्तों और तकनीकी शोधों व अनुसंधानों के बावजूद लेखकगण एक अपवर्त्तक यथार्थ के रूप में कुछ मध्यमवर्गी आशाओं और आदर्शों को अभिवर्धित करने के सिवा और कुछ नहीं कर पाते हैं।"

अपनी पुस्तक 'द कमिंग वर्ल्ड ट्रान्सफार्मेशन' में फर्डिनेन्ड लुन्डबर्ग अपनी आशंका इन शब्दों में जताते हैं: "परिवार अपने पूर्ण विनाश के कगार पर है।" मनोवैज्ञानिक विलियम वुल्फ यह टिप्पणी करते हैं: "परिवार बच्चे के जन्म के एक या दो साल बाद तक जीवित रहता है और शेष समय के लिए पूरी तरह मर जाता है। यह इसका एक मात्र प्रकार्य है।" 'फ्यूचर शॉक' के लेखक एल्विन टाफ्लर ने अपनी पुस्तक के एक अध्याय का नाम खंडित परिवार रखा है। इस अध्याय में इन्होंने एक अत्यन्त सरल और कारगर परिवार का चित्र प्रस्तुत किया है जो अधिउद्योगवाद (सुपरइंडस्ट्रियलिज्म) के युग में विकसित हो सकता है। इस परिवार का वर्णन इन्होंने इन शब्दों में किया है: "उद्योगवाद का यह तकाजा था कि बड़ी संख्या में कामगार हमेशा तैयार रहें और रोजगार की तलाश में अपनी ज़मीन छोड़ने तथा जब कभी आवश्यक हो उस पर पुन: वापस आने में सक्षम हों। इस तरह विस्तृत परिवार ने धीरे-धीरे अपने अतिरिक्त भार को घटा लिया और तथाकथित नाभिकीय परिवार का जन्म हुआ जो एक ऐसा न्यूनीकृत और चलायमान पारिवारिक इकाई था जिसमें केवल माता-पिता और चंद बच्चे होते थे।

नोट्स नए प्रकार का परिवार जो परंपरागत विस्तृत परिवार से ज्यादा गतिशील था, सभी औद्योगिक देशों में एक तरह का मानक हो गया। पर पर्यावरण प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति के अगले चरण के रूप में अधिउद्योगवाद उच्चतर गतिशीलता की माँग करता है।

इस तरह हम भविष्य के अनेक लोगों से यह उम्मीद कर सकते हैं कि वे नि:संतान रहकर और पुरुष तथा स्त्री के रूप में इसके सबसे बुनियादी घटकों में परिवार को न्यूनीकृत कर सरलीकरण की प्रक्रिया की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाएंगे।" प्रसिद्ध मानवशास्त्री मर्ग्रेट मीड ने भी ऐसी ही संभावना जताई जब उन्होंने कहा कि "पितृत्व कमतर संख्या में परिवारों तक ही सीमित रहेगा जिसका मुख्य प्रकार्य बच्चे पैदा करना होगा और आबादी का शेष भाग इतिहास में पहली बार स्वतंत्र रूप में व्यक्तियों के रूप में काम करने की स्थिति में आ जाएगा।" ये संभावनाएँ आदर्शतिरेक पर आधारित नहीं हैं। लगभग एक या दो साल पहले एक ऐच्छिक संस्था की ओर से इंग्लैण्ड के अखबारों में एक 'गर्भ उधार देने' के संदर्भ में एक विज्ञापन जारी किया गया। प्रतिनियुक्त (सरोगेट) मातृत्व अब कपोल-कल्पित चीज नहीं है। दरअसल इस तरह के मातृत्व के कुछ मामले पहले ही प्रकाश में आ चुके हैं। कौन जानता है कि ऐसे मामले बड़ी संख्या में भविष्य में सामने नहीं आयेंगे।

इजराइल के किबुज लोगों में परिवार का जो स्वरूप विद्यमान है वह आजकल के नाभिकीय परिवार का विकल्प प्रस्तुत करता है। इजराइल की आबादी का लगभग 4% तकरीबन 240 किबुजुम बस्तियों में रहता है। यद्यपि एक किबुजुम व दूसरे किबुजुम के बीच बहुत अंतर है, परिवार की सामान्य प्रणाली का वर्णन इन शब्दों में किया जा सकता है। इनके बीच एक विवाह प्रचलित है। विवाहित जोड़ा एक शयनागार और रहने सहने के कमरे में एक साथ रहते हैं। बच्चे सामुदायिक शयनशालाओं में रहते हैं जहाँ माता-पिता से दूर शायनशालाओं में खाते रहते हैं और सोते हैं। प्रतिदिन एक या दो घंटे के लिए उन्हें अपने माता-पिता से मिलने का अवसर दिया जाता है। माता-पिता बच्चे से भेंट-मुलाकात के अवसरों पर उन्हें किसी तरह की शिक्षा नहीं देते। इन मुलाकातों को मनोरंजन की संज्ञा दी जाती है। इस तरह माता-पिता अपनी जिम्मेदारियाँ समुदाय को सौंप देते हैं। सभी बच्चों को किबुज के बच्चों के रूप में देखा जाता है। इसी रूप में इसका पालन-पोषण होता है। इसी तरह किबुज विशेषतौर पर माता-पिता की भूमिकाओं के संदर्भ में परिवार के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण का द्योतक है। किबुज में और भी ऐसे पहलू हैं जो परंपरागत पारिवारिक व्यवस्था के प्रति नकारात्मक रवैये के परिचायक हैं। विवाहित जोड़ों के बीच घरेलू दायित्वों में सहाभागिता या आर्थिक सहयोग जैसी कोई चीज नहीं दिखाई देती है। ये परिवार के लिए नहीं बल्कि किबुज के लिए काम करते हैं।

उन्हें किबुज से वह सब कुछ प्राप्त हो जाता है जो उनके लिए ज़रूरी होता है। ये साम्प्रदायिक भोजनालय में खाना खाते हैं। सबका खाना साथ बनता है। कपड़े धोने आदि जैसी आवश्यक सेवाएँ पूरे किबुज के लिए सामूहिक रूप से प्रदान की जाती है और इस संदर्भ में विवाहित जोड़े का कोई दायित्व नहीं होता।

जाहिर है इजरायली किबुज में एक बहुप्रकार्यात्मक इकाई के रूप में परिवार का कोई अस्तित्व नहीं होता। अत: कुछ लोग ये मानते हैं कि किबुज को एक व्यापक विस्तृत परिवार के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि यह उत्पादन, बच्चे के पालन-पोषण, किबुज-संस्कृति में उसके समाजीकरण तथा उपभोग और मनोरंजन की भी एक इकाई है। यही वजह है कि हंगरी के मार्क्सवादी लेखक वाजदा व हेलर कम्यून या सामूहिक परिवार को आधुनिक नाभिकीय परिवार प्रणाली के विकल्प के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार कम्यून के सारे वयस्क बच्चों की देखभाल के लिए ज़िम्मेदार हैं। वयस्कों में संबंध एक-विवाह से लेकर स्वच्छंद यौनाचार तक कुछ भी हो सकता है क्योंकि कम्यून में यौन-संबंधों के लिहाज से विशिष्ट मूल्य संदर्भ नहीं होते हैं। पर पारिवारिक कम्यून इजरायल के किबुज से इस अर्थ में भिन्न हैं कि इसके क्रिया-कलाप घरेलू और बच्चों की देखभाल से जुड़े संबंधों तक ही सीमित हैं और उनके दायरे में उत्पादन का अधिक व्यापक क्षेत्र नहीं आता जो व्यावसायिक भूमिकाओं के संगठन से सरोकार रखता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. इजराइल के ········ लोगों में परिवार का जो स्वरूप विद्यमान है वह आजकल के नाभिकीय परिवार का विकल्प प्रस्तुत करता है।
2. इस तरह माता-पिता अपनी ········ समुदाय को सौंप देते हैं।
3. विवाहित जोड़ों के बीच घरेलू दायित्वों में ········ या आर्थिक सहयोग जैसी कोई चीज दिखाई नहीं देती।

25.2 क्या नाभिकीय परिवार उद्योगवाद का नतीजा है? (Is Nuclear Family a Result of Industrialisation?)

उपर्युक्त सवाल पर चर्चा करते हुए हम तीन परस्पर विरोधी विचारों से टकराते हैं। सबसे पहला विचार जिसे बहुतों का समर्थन प्राप्त है यह है कि यूरोप के पूर्व औद्योगिक समाज में संयुक्त या विस्तृत परिवार का प्रचलन था। इस तरह का परिवार अपने सदस्यों को आर्थिक, शैक्षिक, मनाविनोदपरक, सामाजिक, सुरक्षा संबंधी आदि विभिन्न ज़रूरतों को पूरा करता था पर औद्योगीकरण के आगमन के साथ आधुनिक परिवार इन प्रकार्यों से वंचित हो गया और अपने भूतपूर्व पर्याप्त स्व की एक बीमार परछाई बनकर रह गया। अपने आदर्श रूप में आधुनिक परिवार "नाभिकीय परिवार समूह है जो अपने अन्य संबंधियों से स्वतंत्र होकर अपने ही घर तक सीमित रहता है और पति अथवा पिता के वेतन या पारिश्रमिक पर निर्भर है।" आगे यह भी कहा जाता है कि "कम होती जन्म दरें, विवाह-विच्छेद की घटना में वृद्धि, घर में भोजन तैयार करने, कपड़े बनाने आदि की प्रक्रियाओं में कमी, परिवार के रहन-सहन के स्तर में गिरावट और बढ़ते व्यक्तिवाद तथा भौतिक मूल्यों के प्रति रूझान का संकेत देता है।"

दूसरा विचार टाल्कोट पार्सन्स तथा अन्य समाजशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित किया गया है उनके अनुसार संयुक्त राज्य की शहरी दुनिया में विद्यमान परिवार-व्यवस्था अधिक सामान्य या स्वाभाविक परिवार-व्यवस्था का नग्न रूप नहीं है बल्कि स्वयं एक ऐसा अत्यन्त विशिष्ट रूप है जो काफी विभेदीकृत अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था तथा उन संस्थागत मूल्यों के अनुकूल होता है जो प्रदायन की अपेक्षा उपलब्धि पर ज्यादा बल देती है। पार्सन्स सामाजिक उद्विकास के अपने सिद्धान्त के आधार पर अलग-थलग नाभिकीय परिवार के उद्‌भव पर दृष्टिपात करते हैं। अत: यह आश्यचर्यजनक नहीं है कि परिवार और नातेदारी समूह बहुत से प्रकार्यों की निष्पादन नहीं करते हैं। इसके बजाय पाठशाला, चिकित्सालय, व्यावसायिक प्रतिष्ठान आदि परिवार के अनेक प्रकार्यों का निर्वहण विशिष्ट संस्थाओं के रूप में करने लगे हैं। पार्सन्स आगे यह विचार देते हैं कि अलग-थलग नाभिकीय परिवार और अर्थव्यवस्था के बीच भी औद्योगिक समाज के संदर्भ में एक प्रकार्यात्मक संबंध होता है। औद्योगिक समाज की आवश्यकताओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में विलगित नाभिकीय परिवार के लिए उपयुक्त अनुकूलन स्थापित करना आवश्यक होता है। यह विचार दिया जाता है कि अन्य नातेदारी बंधनों से परिवार का आपेक्षिक अलगाव और इसकी लघुता एक प्रकार का अनुकूलन है जो इसके सदस्यों की स्थानीय और प्रास्थितिक गतिशीलता को संभव बनाता है। यह गतिशीलता आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है। विशिष्ट कौशलों वाले व्यक्तियों के लिए उन जगहों पर जाना आवश्यक होता है। यहाँ उनकी माँग होती है। अपने विचार की पुष्टि में पार्सन्स एक ओर दृष्टान्त देते हैं। किसी औद्योगिक समाज में प्रस्थिति आरोपित नहीं होती बल्कि हासिल की जाती है। इसका अर्थ यह है कि विभिन्न व्यक्तियों के महत्त्व को उनके द्वारा प्राप्त की गई प्रस्थिति के आधार पर आँका जाता है। पार्सन्स के अनुसार मूल्यांकन उन सार्वभौमिक मूल्यों के आधार पर होता है जो समाज के सभी सदस्यों पर समान रूप से लागू होते

हैं। लेकिन परिवार के भीतर प्रस्थिति प्रदत्त होती हैं इस तरह का आरोपण व्यक्तिगत मूल्यों पर आधारित होता है जो व्यक्तिगत तौर पर परिवार के विभिन्न सदस्यों पर ही लागू होते हैं (सार्वभौमिक और व्यक्तिगत मूल्यों के लिए दूसरे अध्याय में सामाजिक क्रिया उपागम पर केन्द्रित खंड देखें)। पार्सन्स का तर्क है कि किसी विस्तृत परिवार में ये दो तरह के मूल्य परिवार के भीतर द्वन्द्व या संघर्ष के श्रोत हो सकते हैं। इस तरह अगर पिता किसी कारखाने का मैकेनिक और पुत्र डाक्टर या इंजीनियर है तो पारिवारिक जीवन के व्यक्तिगत मूल्य पिता को परिवार में अधिक ऊँची जगह और प्रस्थिति देते हैं। दूसरी ओर सार्वभौमिक मूल्यों के अनुसार पुत्र को उच्चतर सामाजिक प्रस्थिति हासिल होगी जिस कारण पिता की सत्ता उपेक्षित हो सकती है। इस कारण से पैदा होने वाला द्वन्द्व परिवार की मज़बूती को धक्का पहुँचा सकता है। विलगित नाभिकीय परिवार औद्योगिक समाज की आवश्यकता के लिए एक प्रकार का अनुकूलन है।

क्या आप जानते हैं समाज के उद्विकास में संरचनात्मक विभेदीकरण की प्रक्रिया निहित होती है। इसका अर्थ यह है कि उद्विकास की प्रक्रिया के दौरान ऐसी सामाजिक संस्थाओं का जन्म होता है जो कमतर प्रकार्यों के लिए विशिष्ट होते हैं।

तीसरा विचार भी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के इतिहासकार पैटर लैसलेट द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो पार्सन्स प्रदत्त नाभिकीय परिवार के महत्त्व की प्रकार्यात्मक व्याख्या को बहुत हद तक निरस्त कर देता है (द वर्ल्ड वी हेव लौस्ट, लंदन मैथ्वेन, 1965)। लैस्लेट की पुस्तक में इस बात का संकेत दिया गया है कि इंग्लैंड में पूर्व-औद्योगिक परिवार-व्यवस्था के अंतर्गत ऐसे विस्तृत परिवारों का अस्तित्व न था जिनके निवास स्थान एक ही हों। इसके विपरीत ऐसा लगता है कि नाभिकीय परिवार वाले घर में सामान्य प्रकार का निवास-समूह विद्यमान था। लैसलेट ने पाया कि 1564 ई. से 1821 ई. के बीच केवल लगभग 100 ही ऐसे परिवार थे जिनमें नाभिकीय परिवार से बाहर के संबंधी रहते थे। 1966 में इंग्लैण्ड में यह प्रतिशत बरकरार था। इस तरह के अजीबोगरीब रूप से कम प्रतिशत की एक वजह यह है कि पूर्व-औद्योगिक इंग्लैंड में लोग बहुत देर से शादी करते थे और आयु-सीमा छोटी थी। परिणामस्वरूप विवाह के कुछ ही वर्षों के भीतर विवाहित जोड़े के माता-पिता काल-कवलित हो जाते थे। कारण जो भी हो लैस्लेट को इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला कि पूर्व औद्योगिक इंग्लैण्ड में विस्तृत परिवार बड़ी तादाद में मौजूद थे जिन्होंने आधुनिक औद्योगिक समाज के छोटे नाभिकीय परिवार को जन्म दिया। अत: निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जाता है कि नाभिकीय परिवार के उद्भव के मूल में औद्योगीकरण नहीं था। इसके विपरीत सच ये हो सकता है कि नाभिकीय परिवार उन अनेक कारकों में से एक हो जिसने इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति के विकास को बढ़ावा दिया। तात्पर्य यह है कि अगर नाभिकीय परिवार अनेक शताब्दियों से यूरोपीय पारिवारिक ढाँचे का प्रमुख रूप रहा है, अगर यह औद्योगिक क्रांति से अधिक पुराना है और जनसंख्यात्मक अथवा अन्य अवरोधों के बजाय सामाजिक मूल्यों की ही पैदाइश है तो आधुनिक परिवार सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक वांछित रूप की निरंतरता मात्र भी हो सकती है।

टास्क क्या नाभकीय परिवार उद्योगवाद का परिणाम है?

25.3 क्या नाभिकीय परिवार पारिवारिक संबंध का सार्वभौमिक रूप है? (Is Nuclear Family a Universal Form of Family Relation?)

मर्डोक ने यह सलाह दी कि नाभिकीय परिवार पारिवारिक संबंध का सर्वात्रिक या सार्वभौमिक रूप है और यह "यौन, आर्थिक, प्रजनन-संबंधी और शैक्षिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रकार्यों का संपादन करता है।" वे इस विचार को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं: "नाभिकीय परिवार एक प्रकार का सार्वभौमिक मानव-समूह है। परिवार के एकमात्र प्रचलित प्रकार के रूप में जटिलतर पारिवारिक रूपों की आधारभूत संघटक इकाई के रूप में यह हर मानव समाज में बतौर एक विशिष्ट तथा मज़बूत प्रकार्यात्मक समूह विद्यमान होता है।" मर्डोक के विचार की अनेक कोणों से आलोचना की गई है। सबसे पहले कुछ लोगों ने यह स्पष्ट किया है कि मर्डोक द्वारा प्रस्तुत परिवार की रूपरेखा बहुत कुछ "बहुमुखी, अपरिहार्य, बालचर चाकू की तरह है।" चूँकि यह बहुप्रकार्यात्मक है, इसे अपरिहार्य और इसीलिए सार्वभौमिक माना गया है। ऐसा माना जाता है कि उत्साह के अतिरेक में मर्डोक इनमें से कुछ प्रकार्यों के निष्पादन के वैकल्पिक तरीकों की पहचान नहीं कर सके।

मार्ग न अपनी आलोचना के जरिए यह स्पष्ट करते हैं कि मार्डोक इस सवाल का कोई जवाब नहीं दे पाते कि "किसी सीमा तक ये बुनियादी प्रकार्य अपरिहार्य रूप से नाभिकीय परिवार की संस्था से जुड़े हुए हैं।"

मर्डोक के निष्कर्ष ने नाभिकीय परिवार की अपरिहार्यता और सार्वभौमिकता पर जिस तरह से बल दिया गया है उसके पक्ष में निर्णायक प्रमाणों का नितान्त अभाव है संभव है कि यूरो-अमेरिकी समाजों से आँकड़े एकत्र करने के कारण वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे। यह स्पष्ट किया गया है कि भारत में 'नायरों और मध्य घाना में' अशांति जनजाति के लोगों में जिस तरह के परिवारों का प्रचलन है उससे इस कथन की सत्यता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है।

मध्य घाना के बड़े-बड़े अशांति गाँवों में बच्चे अपनी माँ के घर से भोजन की टोकरियाँ उठाकर पिता के घर तक पहुँचते हैं। वे अपने पिता के साथ खाना खाते हैं। इसके बाद सोने के लिए वे उस घर में लौट आते हैं जहाँ उनकी माँ रहती हैं। माँ रात के समय अपने पति से मिलने के लिए जा सकती है। विभाजित आवास और आने-जाने की यह प्रणाली संभवत: इस कारण से विद्यमान है कि अशांति लोगों की परंपरागत सामाजिक व्यवस्था महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रयोजनों, जैसे भूमिका का उत्तराधिकार, पद-प्रतिष्ठा और राजनैतिक प्रस्थिति का उत्तराधिकार आदि दृष्टियों से मातृ वंशीय धारा पर आधारित होती है। स्त्रियाँ अक्सर अपने भाई के साथ संबंध को पति के साथ संबंध से भी ज्यादा या उतना ही महत्त्व देती हैं क्योंकि उनके बच्चे भाई से उत्तराधिकार ग्रहण करते हैं। चूँकि समाज में बच्चे का स्थान अपनी माँ और उसके मातृ-वंशीय संबंधियों से संबंध के द्वारा निर्धारित होती है, वैवाहिक बंधन का टूटना न तो पति-पत्नी के लिए और न ही बच्चों के लिए बहुत अधिक महत्त्व नहीं रखता है।

एक अन्य कारक जो विवाह वे बाद भी औरतों को अपने घर के अंदर रहने के लिए प्रेरित करता है, माँ और बच्चों और खासकर माँ तथा बेटियों के बीच नज़दीकी संबंध है। इससे यह जाहिर होता है कि नाभिकीय परिवार की संसक्तता में हितों और संबंधों का किसी तरह हस्तक्षेप हो सकता है यह स्पष्ट करना बहुत मुश्किल है कि अशांति लोगों में नाभिकीय परिवार सामान्य बात है या एक आवश्यक सह-इकाई। परिवार की उनकी अवधारणा यूरोप या अमेरिका या एशिया के लोगों की अवधारणा से पूरी तरह भिन्न है।

पारिवारिक संबंधों पर मातृवंशीय अन्वय (डीसेंट) के प्रभाव का सबसे चरम और श्रेष्ठतम उदाहरण अंग्रेजी राज्य के प्रभाव से पहले की अवधि में दक्षिण-भारत की नायर जाति में देखने को मिलता था। ऐसा प्रतीत होता है कि नायरों में वैवाहिक-संबंध सिर्फ एक प्रतीकात्मक स्तर तक ही सीमित था। यह उस समय अनुबंध का रूप ले लेता था जब कोई लड़की यौवन प्राप्त करती थी और उसके कुछ समय बाद रस्मी तरीके से तोड़ दिया जाता था। इसके बाद स्त्रियों को उन पुरुषों के साथ अनौपचारिक प्रेम-संबंध कायम करने की छूट होती थी जो रात के समय उसके घर पहुँचते थे। नायर-परिवारों में भाइयों और उनकी बहनों का समूह तथा बहनों के बच्चे होते थे। परिवार की किसी स्त्री को अगर कोई बच्चा पैदा होता था तो वह मातृवंशीय-परिवार का सदस्य बन जाता था। बच्चों को अपने पिता

नोट

या जनक में से किसी से कोई मजबूत संबंध कायम करने से रोका जाता था। यद्यपि यह तर्क देना असंभव होगा कि इस तरह की सामाजिक-व्यवस्था में पिता को कतई कोई भूमिका नहीं थी पर संपत्ति के हकदार मातृवंशीय समूह की संसक्तता के पक्ष में यह भूमिका स्पष्टत: काफी न्यूनीकृत हो जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि समाजीकरण और व्यक्तित्व के विकास के संदर्भ में आमतौर पर जो प्रकार्य पिताओं द्वारा निष्पादित होते हैं उनका निर्वाह मातृकुल के पुरुष सदस्यों द्वारा होता था।

इन दृष्टांतों ने रेडक्लिफ-ब्राउन सहित कुछ लेखकों को इस निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रेरणा दी है कि नातेदारी व्यवस्था की आधारभूत संरचनात्मक इकाई माँ और बच्चों की इकाई है। इस आधार पर नाभिकीय परिवार को अनेक युग्मित या युगल समूहों में विभक्त किया जा सकता है और विभिन्न समाजों में इस बात की पड़ताल की जा सकती है कि वे एक-दूसरे के साथ और अन्य समूहों के साथ तालमेल स्थापित कर पाते हैं अथवा इससे नाभिकीय परिवार समष्टि में सम्मिलित कोटियों के शिथिल पड़ने की संभावना पैदा होती है और उनके स्वतंत्र संपर्क-सूत्रों की खोज-बीन मुमकिन हो पाती है। जिन समाजों में पितृसत्तात्मकता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है उनमें भी माँ और बच्चों से मिलकर बनी इकाई बहुधा एक स्वतंत्र उपसमूह का निर्माण करती है और इसे एक विशेष पहचान हासिल होती है। साथ ही इसके सदस्यों में परस्पर अत्यंत निकटवर्ती भावनात्मक बंधन विद्यमान होते हैं। टाल्कोट पार्सन्स ने यह सलाह दी है कि माँ की भूमिका की "मुखर" या भावनात्मक विशेषता के विपरीत पिता की भूमिका हमेशा अपनी प्रकृति में "सहायक" होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. मध्य .... के बड़े-बड़े अशांति गाँवों में बच्चे अपनी माँ के घर से भोजन की टोकरियाँ उठाकर पिता के घर तक पहुँचते हैं।
5. माँ .... के समय अपने पति से मिलने के लिए जा सकती है।
6. .... अक्सर अपने भाई के साथ संबंध को पति के साथ संबंध से ज्यादा या उतना ही महत्त्व देती हैं।

जनजातीय समाजों में नातेदारी सामाजिक संबंधों और सामाजिक भूमिकाओं को समान रूप से निर्धारित करती है। परिवार को अन्य समूहों के साथ संपर्क में रहना पड़ता है और यह "नए नातेदारी बंधों की अनवरत उत्पत्ति के लिए एक तरह का मैकेनिज़्म हो जाता है।"

तीव्रतर श्रम-विभाजन वाली विभेदीकृत सामाजिक-व्यवस्थाओं में जहाँ एक साहित्यिक परंपरा तथा सुविकसित वर्ग या जाति व्यवस्था विद्यमान होती है और जिसके उदाहरण भारत या चीन में मिलते हैं, यह फिर भी सत्य है कि परिवार बड़ी व बहुप्रकार्यात्मक इकाइयाँ हो सकती हैं। यह बेशक नाभिकीय परिवार की अवधारणा के एकदम विपरीत है। पर्याप्त संपत्ति आधार की अनुपस्थिति परिपक्व पुत्रों को परिवार से अलग होने और स्वतंत्र घर बसाने की प्रेरणा देती है। "बड़े संयुक्त परिवार मुख्य रूप से भू-स्वामी और व्यापारी वर्गों में पाये जाते हैं जहाँ बेटों को विरासत में लगातार अपनी भौतिक दिलचस्पी बरकरार रखते हुए पैतृक करूणा को पुनजीर्वित तथा संपोषित करना पड़ता है। इस तरह के बड़े परिवार वस्तुत: अन्वय समूह (डिसेंट ग्रुप्स) ही होते हैं।

टास्क क्या नाभिकीय परिवार पारिवारिक संबंध का सार्वभौमिक रूप है?

25.4 परिवार: एक मार्क्सवादी एवं नारीवादी दृष्टिकोण (Family: A Marxist and Feminist Approach)

नोट

लेविस एच. मोर्गन की पुस्तक "एन एन्सिएंट सोसाइटी" 1877 में प्रकाशित हुई। मार्क्स ने इस किताब को पढ़ा एवं विस्तार से उस पर टिप्पणियाँ की। पर मार्क्स की मृत्यु के बाद 1884 ई. में एंगेल्स ने इस पर एक विस्तृत टीका प्रकाशित की जिसका नाम था "दी ओरिजीन आफ द फेमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एण्ड द स्टेट"। इस पुस्तक में सामाजिक और आर्थिक इतिहास पर मार्क्स के सामान्य सिद्धान्तों और नातेदारी से संबद्ध संस्थाओं पर मोर्गन द्वारा प्रस्तुत अनुमानित इतिहास का एक मिला-जुला रूप दिया गया है।

इस पुस्तक में एंगिल्स ने यह तर्क दिया कि मानव उद्विकास के आरंभिक चरणों के दौरान उत्पादन की शक्तियों पर समुदाय का स्वामित्व था और आजकल परिवार का जो रूप हमें दिखाई देता है उसका कोई अस्तित्व नहीं था।

क्या आप जानते हैं आदिम साम्यवाद के इस काल में स्वच्छंद यौनाचार का अस्तित्व था। जाहिर है यौन-संबंधों को विनियमित करने के लिए कोई निर्दिष्ट नियम नहीं थे। वस्तुत: पूरा समाज ही परिवार था।

इस तरह के अनुमानाधारित चिंतन के कारण एंगेल्स की आलोचना की गई है क्योंकि कुछ लोगों के अनुसार यह इस बात का प्रतीक था कि एंगेल्स स्वयं किसी भी प्रकार के पारिवारिक संबंध के खिलाफ थे और उनके अनुसार समाजवादी समाजों में परिवार नाम की संस्था को निर्मूल का देना चाहिए। मानवशास्त्री कैथलीन गाख कहती हैं कि एंगेल्स द्वारा जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह सच से बहुत दूर नहीं हो सकता। वे स्वच्छंद यौनाचारपरक समूहों में रहने वाले मनुष्य के निकटतम संबंधी चिम्पैंज के बीच प्रचलित यौन-जीवन को अपने विचारों का आधार बनाती हैं। उनका विश्वास है कि यह प्रणाली आरंभिक मनुष्य की जीवन-प्रणाली हो सकती है।

एंगेल्स की यह आलोचना कि उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से ही सही पर परिवार के उन्मूलन की तरफदारी की, असंगत प्रतीत होती है। एंगेल्स ने स्पष्ट तौर पर यह जताया कि पारिवारिक संबंधों में भावनात्मक और यौन परक तत्वों की महत्ता उसी समय सामने आती है जब धन-सपंदा का प्रदूषण संबंधों को प्रभावित नहीं करता। वे यह तर्क देते हैं कि सर्वहारा वैवाहिक संबंध आपसी आकर्षण व विकर्षण के आधार पर स्थापित करते और तोड़ते हैं तथा बूर्जुआ समाजों में वैवाहिक जोड़ा उस स्थिति में भी शादी के डोर से बंध जाता है जब पुरुष और स्त्री के मन में एक-दूसरे के लिए कोई प्रेम नहीं होता और अन्य उपलब्ध लोगों के साथ भी उनके यौन-संबंध होते हैं।

उस पुस्तक के आधार पर सबसे सामान्य निष्कर्ष जो सामने आता है वो यह है कि स्थायी और एक विवाह पर आधारित परिवार व्यवस्था जिसमें पुरुष की सत्ता का वर्चस्व होता है और जिसे वैधानिक निर्देश तथा समर्थन प्राप्त है, संपत्ति के निजी स्वामित्व की निरंतरता बनाए रखने के एक तरीके के रूप में ही वस्तुत: विकसित हुआ। एंगेल्स के शब्दों में ही, "यह पुरुष की श्रेष्ठता पर आधारित है और इसका स्पष्ट प्रयोजन निर्विवाद पितृत्व वाली संततियाँ पैदा करना है। इस तरह का पितृत्व जरूरी है क्योंकि आगे चलकर इन्हीं बच्चों को अपने पिता की संपत्ति का स्वाभाविक उत्तराधिकारी बनना पड़ता है।"

एंगेल्स द्वारा परिवार के उद्विकास की पूरी योजना इससे भी बहुत ज्यादा विस्तृत है। पर आधुनिक मानवाशास्त्री शोधों में यह पाया गया है कि इन वर्णनों में से अनेक गलत हैं। उदाहरण के लिए शिकार खेलने वाले और भोजन-संग्रह करने वाले अनेक जन-जातीय समूहों में एक विवाह और नाभिकीय परिवार प्रचलित है। यह कहा गया है कि मनुष्य अपने अस्तित्व का 99.9% हिस्सा शिकारी और भोजन-संग्राहक टोलियों में रहकर गुजारता था। अत: एंगेल्स ने एक विवाह पर आधारित नाभिकीय परिवार की जो रूपरेखा प्रस्तुत की है वह महज उनकी कल्पना की उपज भी हो सकती है। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यद्यपि नाभिकीय परिवार और एक विवाह लघु समाजों में विद्यमान होते हैं वे एक वृहत्तर नातेदारी समूह के एक अंश का संघटन करते हैं। जब विभिन्न व्यक्ति परस्पर विवाह करते हैं तो वे अपने जीवन-साथी के सगे-संबंधियों के प्रति विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्वों के बोझ का वहन करने लगते हैं। इस तरह विशाल विस्तृत परिवार का जन्म होता है।

नोट

नारीवादी दृष्टिकोण (Feminist Approach)

यह एक रोचक तथ्य है कि पूँजीवादी समाज में परिवार का मार्क्सवादी **विश्लेषण नारीवादी आंदोलन** के एक हिस्से के रूप में मुख्यत: 1960 के दशक के उत्तरार्ध में आविर्भूत हुआ। नारीवादी लेखकों ने मार्क्सवादी अवधारणा के आधार पर पुरुष प्रधान परिवार व्यवस्था को अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया। यह तर्क दिया गया कि पुरुष-प्रधान परिवार एक से अधिक दृष्टियों से पूंजीवादी समाज के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है। इस दृष्टि से सबसे पहली बात तो यह है कि परिवार श्रम के रूप में पूंजीवाद की बुनियादी जिन्स बड़े सस्ते रूप में उत्पादित करता है। उत्पादन सस्ता है क्योंकि बच्चों की पैदाइश तथा पालन-पोषण के लिए पूंजीवादियों को कुछ नहीं देना पड़ता है। पुन: बच्चे जनने और उनका पालन-पोषण करने के लिए पत्नी को कुछ भी हासिल नहीं होता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि घरेलू कामकाज करने वाली महिलाएँ श्रम का जो परिमाण प्रदान करती हैं वह बहुत ज़्यादा और उत्पादन के साधनों के मालिकों के लिए काफी फायदेमंद है। पत्नी पति की सेवा करती है जो पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मज़दूरी कमाने वाला श्रमिक होता है। अत: सिर्फ एक व्यक्ति को वेतन या पारिश्रमिक देकर पूंजीवादी दो व्यक्तियों की सेवा हासिल कर लेता है। ऐसा विचार दिया जाता है कि यह वस्तुत: एक तरह का शोषण ही है। तीसरी बात यह है कि प्रचलित परिवार व्यवस्था के अंतर्गत पति अपनी पत्नी व बच्चों को सहारा देने के लिए प्रतिबद्ध होता है। अत: जब उसके लिए अपने पूंजीवादी मालिक के विरुद्ध बगावत करने और अपना श्रम उसे बेचने से इन्कार करने के जायज कारण होते हैं तब यह बात उसके विद्रोह के रास्ते में रोड़ा अटकाती है। शायद इसीलिए नारीवादी लेखिका मार्गरेट बेन्सटन कहती हैं: "एक आर्थिक इकाई के रूप में नाभिकीय परिवार पूँजीवादी समाज में स्थिरता कायम करने वाली महत्त्वपूर्ण शक्ति है।" पुन: एक अन्य नारीवादी लेखिका फ्रेन ऐन्सली टाल्कोट पार्सन्स के इस विचार को सामने रखती हैं कि परिवार वयस्क व्यक्तियों को मार्क्सवादी ढाँचे में स्थायीकृत करने की प्रवृत्ति दर्शाता है। वे पत्नी द्वारा अपने पति को प्रदत्त भावनात्मक और ममतापूर्ण सहारे को हताशा के लिए एक सुरक्षावाल्व के रूप में देखती है। यह पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत काम करने के कारण पति के मन में पैदा हुई हताशा है। पत्नी अपने पति के प्रति कोमल, सहानुभूतिपूर्ण, आरामदेह और स्नेहपूर्ण होकर उसकी हताशा को सोखने की कोशिश करती है। एन्सली के शब्दों में, "चूँकि हर श्रमिक के पास अपने संभावित क्रांतिकारी आक्रोश को सीखने के लिए एक स्पंज होता है, मालिक स्वयं को अधिक सुरक्षित महसूस करता है।" अंतत: कुछ नारीवादी लेखकों ने परिवार में पुरुष के वर्चस्व की ओर इशारा किया है और इसे पूँजीवादी व्यवस्था के स्थायित्व से जोड़ा है। अपनी पत्नियों एवं परिवारों पर अधिकांश पुरुष जिस छिछले ढंग से शासन करते हैं वह उन्हें अपने गुस्से और आक्रोश को इस तरह व्यक्त करने का सामर्थ्य देता है कि व्यवस्था के लिए कभी कोई चुनौती पैदा नहीं होती।

जैसा कि इस खंड के प्रारंभिक अनुच्छोदों में हमने देखा, एंगेल्स ने निजी संपत्ति के आविर्भाव को स्त्रियों की अधीनता के रूप में स्वीकार किया। खासतौर पर उत्पादन की शक्तियों के निजी स्वामित्व के संदर्भ में यह सत्य है। यह एक दिलचस्प बात है कि मार्क्स और एंगेल्स दोनों 19वीं शताब्दी के पूँजीवादी समाज में महिला श्रम की बढ़ती माँग को नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत के रूप में देखते हैं। वे यह तर्क देते हैं कि स्त्रियों को मिलने वाला रोज़गार उन्हें अपने पतियों पर आर्थिक रूप से निर्भर होने की विवशता से बहुत हद तक मुक्ति दिलायेगा और इस तरह परिवार के अंदर उन पर काबिज पुरुष-वर्चस्व के शिकंजे को कम करेगा।

मार्क्स और एंगेल्स का विश्वास था कि दोनों लिंगों के बीच वास्तविक समानता सिर्फ समाजवादी समाज में ही स्थापित हो सकेगी क्योंकि घरेलू काम और मातृत्व के बोझिल दायित्वो को कोई अस्तित्व नहीं होगा और अलग-अलग स्त्रियों को इनका निर्वहन नहीं करना होगा। सारे काम समुदाय (कम्युनिटी) के अधीन होंगे। एंगेल्स के शब्दों में, "व्यक्तिगत रूप से घर का प्रबंध सामाजिक उद्योग में परिणत हो जाएगा और बच्चों की देखभाल तथा पैदाइश सार्वजनिक मुद्दा बन जाएगी।"

पूंजीवादी समाजों में श्रम बाज़ार में बड़े पैमाने पर स्त्रियों का प्रवेश हुआ है। पर स्त्रियों को पुरुष वर्चस्व से मुक्ति नहीं मिल पाई है जैसाकि इस खंड में ऊपर उल्लिखित नारीवादी लेखकों के लेखन से स्पष्ट है। कामकाजी पत्नियों

और चूल्हा-चौका करने वाली घरेलू औरतों के तुलनात्मक अध्ययनों से स्पष्ट है कि परिवार के भीतर शक्ति संबंध की प्रकृति में कोई बदलाव नही आया है। यह उन स्थितियों में भी नज़र आता है जहाँ महिलाएँ घर से बाहर काम करती हैं। कुछ नारीवादी लेखिकाएँ यहाँ तक कहती हैं कि पूँजीवादी समाज में स्त्रियों द्वारा मज़दूरी के आधार श्रम की आपूर्ति पूंजीवादी व्यवस्था को मज़बूत बनाती है क्योंकि बड़ी संख्या में महिला श्रमिकों का प्रवेश मज़दूरी को घटाता तथा मुनाफे को बढ़ाता है।

समाजवादी समाजों में भी सब कुछ उस तरह घटित नही हुआ है जिस तरह सौ वर्षों से भी पहले मार्क्स और एंगेल्स ने इसके बारे में भविष्यवाणी की थी। श्रम-बाजार में सोवियत संघ में औरतों की स्थिति में काफी सुधार आया है। 1922 ई. में वे समूची श्रम-शक्ति की 22% थी। 1973 में उनका प्रतिशत 91 हो गया। इस तथ्य के बावजूद कि आधी से ज्यादा श्रम-शक्ति स्त्रियों की है, घरेलू काम काज और बच्चों के देखभाल की प्राथमिक ज़िम्मेदारी अब भी नारियों के ही सिर पर है। डेविड लेन ने यह रिपोर्ट दी है कि सोवियत संघ में स्त्रियों के लिए अपनी घरेलू और व्यावसायिक भूमिकाओं का समावेश कर पाना मुश्किल है। खासतौर पर देहाती क्षेत्रों में परिवार के संदर्भ में औरतों के स्थान के बारे में परंपरागत दृष्टिकोण अब भी बदले नहीं हैं। डेविड सेन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उत्पादन की शक्तियों का सामूहिक स्वामित्व "नारी-मुक्ति के लिए अनिवार्य पर अपर्याप्त शर्त है।" वे यह भी कहते हैं कि सांस्कृतिक रूख पूर्णत: नहीं बल्कि सिर्फ आंशिक रूप से आर्थिक परिस्थितियों द्वारा परिभाषित एवं रूपायित होते हैं। लेन आगे यही कहते हैं, "स्त्रियों की अधीनता का हजार वर्षों से भी लंबा इतिहास पुरुषों द्वारा सीखी गई प्रवृत्तियों को प्रभावित करता है और जहाँ साम्यवादी सरकारें व्यापक ढंग से समाज के संस्थागत ढाँचे में बदलाव ला सकती हैं, वहाँ भी उन दृष्टिकोणों में बदलाव ला पाना बहुत मुश्किल है जिनके तहत पुरुषों के समकक्ष स्त्रियों को विभिन्न सत्तामूलक भूमिकाओं में स्वीकार किया जा सकता है।" 1948 से 1973 तक चेकोस्लोवाकिया में रह चुकी हिल्डा स्कॉट ने पूर्वी यूरोप के परिवारों में महिलाओं की स्थिति का सर्वेक्षण करने के बाद यह रिपोर्ट दी कि कामगार स्त्रियों के घरेलू दायित्व सोवियत संघ की महिलाओं के समान ही थे। उनके निष्कर्ष इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं: "मार्क्सवाद के प्रारंभिक अग्रदूतों ने यह महसूस नहीं किया कि इस सबके पीछे कहीं न कहीं चेतना की कमी एक कारक के रूप में मौजूद थी जिसे खत्म कर पाना श्रमिकों या अश्वेतों या अन्य अल्पसंख्यकों और दलित-उत्पीड़ित जन-समूहों के अधिकारों के लिए मान्यता हासिल करने से कहीं ज्यादा कठिन है क्योंकि स्त्रियों की हेयता में विश्वास ज़्यादा पुराना और गहरा है जिसके अंतर्गत समूची आबादी आती है। इसकी वजह यह है कि स्त्री स्वयं को उस आइने में बंद रखती है जो पुरुष के कब्जे में है।"

इन तथ्यों को देखते हुए अनेक नारीवादी लेखक इस बात से सहमत हैं कि मार्क्सवादी सिद्धान्त लिंगों के बीच असमानता की पर्याप्त व्याख्या करने में असमर्थ हैं। वे इस वायदे को अत्यंत सरल और इसीलिए अस्वीकार्य मानते हैं कि समाजवाद अंतत: स्त्रियों को मुक्ति दिला देगा। सुला स्मिथ फायर-स्टोन यह विचार देती हैं कि लैंगिक असमानता जैविकीय भेदों में निहित है और पुरुष तथा नारी अलग-अलग रूपों में पैदा हुए हैं। औरतें बच्चे पैदा करती हैं और इसीलिए वे पुरुषों पर निर्भर होती है। यह निर्भरता परिवार के अंदर असमान शक्ति संबंधों को जन्म देती है। अत: उनके अनुसार पुरुष और स्त्रियों के बीच असामनता निजी संपत्ति से शुरू नहीं हुई जैसा कि एंगेल्स कहते हैं बल्कि स्त्रियों के प्रजनन संबंधी प्रकार्यों से शुरू हुई।

नोट्स यह तर्क दिया जाता है कि स्त्रियाँ वस्तुत: उस समय मुक्त हो जाएँगी जब अपने जैविकीय गठन के प्रति उनकी दासता खत्म हो जाएगी। इस सवाल का जवाब केवल भरोसेमंद जन-नियंत्रण तकनीकों में ही नहीं बल्कि कृत्रिम-प्रजनन में भी निहित है। औरतें उसी समय स्वतंत्र हो सकती है जब शिशु गर्भ से बाहर पैदा हो और विकसित हो।

25.5 सारांश (Summary)

- परिवार के लिए प्रस्तावित संशोधनों और विकल्पों की जो रूपरेखा प्रस्तुत की गई है उसके अनुसार दुनिया बहुत तेजी से बदल गई है। आज पूरी दृढ़ता से यह संकेत दिलाना संभव नहीं है कि आने वाले समय में चीजों का स्वरूप क्या होगा पर हम बिना लाग-लपेट के यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि परिवार का स्वरूप ऐसा नहीं रह पाएगा जैसा आज है।
- कुछ समाजशास्त्रियों का विचार है कि मानव जाति पारिवारिक संबंधों की दृष्टि से एक स्वर्णिम युग में प्रवेश कर रहा है। भावनात्मक आधार पर वैवाहिक संबंध कायम करना, आर्थिक दबावों में कमी, और बच्चों का ऐच्छिक रूप से जन्म और पालन-पोषण आने वाले समय में टिकाऊ परिवार के लिए एक मज़बूत आधारशिला प्रदान करेंगे।

25.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **नाभिकीय परिवार (Nuclear Family)–** वह परिवार जिसमें पति-पत्नी तथा उनके अपने अथवा गोद लिए अविवाहित बच्चे शामिल हैं।
2. **नारीवादी दृष्टिकोण (Feminist Approach)–** पूँजीवादी समाज में परिवार का मार्क्सवादी विश्लेषण नारीवाद आंदोलन का एक हिस्से के रूप में मुख्यत: 1960 के दशक के उत्तरार्ध में आविभूत हुआ।

25.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. क्या नाभिकीय परिवार उद्योगवाद का नतीजा है? व्याख्या कीजिए।
2. क्या नाभिकीय परिवार पारिवारिक संबंध का सार्वभौमिक रूप है? विवेचना करें।
3. परिवार का भविष्य क्या होगा? इस पर अपने विचार प्रस्तुत करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. किबुज
2. जिम्मेदारियाँ
3. सहाभागिता
4. घाना
5. रात
6. स्त्रियाँ।

25.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मानव समाज–किंग्सले डेविस।
2. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी–शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–26: पारिवारिक समस्याएँ: परिवार में हिंसा, परित्याग एवं तलाक (Family Problems: Violence in Families, Desertion and Divorce)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, यौन शोषण एवं उत्पीड़न (Violence, Sexual Exploitation and Harassement against Women)

26.2 महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकन के उपाय: सुझाव (Measures to Check Violence Against Women: Suggestions)

26.3 विवाह-विच्छेद की समस्या (Problem of Divorce)

26.4 मुसलमानों में विवाह-विच्छेद (तलाक) (Divorce Among Muslims)

26.5 ईसाइयों में विवाह-विच्छेद (Divorce among Christians)

26.6 भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 (The Indian Divorce Act, 1869)

26.7 सारांश (Summary)

26.8 शब्दकोश (Keywords)

26.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

26.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परिवार में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का वर्गीकरण।
- हिन्दू, मुस्लिम तथा ईसाइयों में विवाह-विच्छेद की समस्या।

प्रस्तावना (Introduction)

महिलाएँ साधारणतया प्रत्येक समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं जिनकी संख्या लगभग पुरुषों के समान ही होती है। जहाँ तक भारतीय समाज का प्रश्न है, स्त्रियों की स्थिति काफी उच्च रही है, विशेषतयाँ हिन्दू समाज में पुरुष के अभाव में स्त्री को, स्त्री के अभाव में पुरुष को अपूर्ण माना गया है। इसी कारण हिन्दू समाज में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है। धीरे-धीरे स्मृतिकाल, धर्मशास्त्रकाल तथा मध्यकाल में इनके अधिकार छिनते गए और पुरुषों की तुलना में इनकी स्थिति में गिरावट आई। इन्हें परतन्त्र, निस्सहाय और निर्बल मान लिया गया। अंग्रेजी शासन काल में देश में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में जागृति आने लगी। समाज सुधारकों एवं नेताओं का ध्यान स्त्रियों की स्थिति को सुधारने की ओर गया। यहाँ पिछले कुछ वर्षों में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय महिलाओं में साक्षरता की दर 18.83 प्रतिशत (पुरुष साक्षरता 27.16 और महिला साक्षरता 8.86 प्रतिशत) थी। 2001 में भारत में साक्षरता की दर 64.8 प्रतिशत (पुरुष साक्षरता दर 75.3 और महिला साक्षरता दर 53.7) थी।

26.1 महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, यौन शोषण एवं उत्पीड़न (Violence, Sexual Exploitation and Harassement Against Women)

महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अपराध कोई आज के युग की ही घटना नहीं है वरन् प्रचीन भारत में भी इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। महाभारत काल में युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी द्रोपदी को जुए में दाँव पर लगा दिया था और दुर्योधन ने भरी सभा में उसका चीर-हरण कर अपमानित किया था। रामायण काल में रावण ने सीता का अपहरण किया था। विधवाओं को भारत में अनेक अधिकारों से वंचित किया जाता रहा तथा नाना प्रकार के कष्ट दिए जाते रहे हैं। दहेज को लेकर नारी को जला देने या हत्या कर देना आज के युग की सबसे बड़ी त्रासदी है। सतीत्व के नाम पर महिलाओं को इसी देश में जिन्दा जलाया जाता रहा है। हम आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में बलात्कार की घटनाएँ पढ़ते रहते हैं जिनमें से कुछ में तो पुलिस और प्रशासन भी शामिल होता है। इस प्रकार से महिलाओं का उत्पीड़न एवं शोषण, उनके साथ बलात्कार, उन्हें बहला फुसला कर भगा ले जाना एवं वेश्यावृत्ति के लिए उन्हें बेच देना, उनके साथ मारपीट एवं गाली-गलौज करना, उन्हें जला देना, उनकी हत्या कर देना आदि महिला अपराध के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं।

वर्तमान में समाजशास्त्र में महिलाओं के बारे में अध्ययन में रुचि का विकास हुआ है। रैडिकल समाजशास्त्री जो समाज के दलित एवं उपेक्षित वर्ग के अध्ययन में रुचि रखते हैं, भी महिलाओं के अध्ययन के प्रति काफी संवेदनशील हैं। समाज-सुधारकों, राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में स्थापित महिला अध्ययन प्रकोष्ठों, मनोरोग विशेषज्ञों, अपराधशास्त्रियों, आदि ने भी महिला अध्ययनों में रुचि दर्शायी है और महिलाओं से सम्बन्धित अनेक आयामों का अध्ययन किया जा रहा है। वर्तमान में कुछ लोग अपराध में महिलाओं की भूमिका एवं महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अपराध विषयों में भी रुचि लेने लगे हैं। महिलाओं के प्रति हिंसा से तात्पर्य है

महिलाओं के निकट रिश्तेदारों; जैसे माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, देवर, ननद, भाभी या परिवार के किसी भी सदस्य अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला हिंसात्मक व्यवहार एवं उत्पीड़न जो नारी को शारीरिक मानसिक आघात पहुँचाता है।

नन्दिता गाँधी एवं **नन्दिता शाह** ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है, "महिला के प्रति हिंसा के अन्तर्गत बलात्कार, दहेज हत्याएँ, पत्नी को यातनाएँ देने, यौनिक हतोत्साहन तथा संचार माध्यम में स्त्री को गलत ढंग से समाहित किया जा सकता है।"

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के एक वर्गीकरण में हिंसा को तीन भागों में विभक्त किया गया है–

1. **आपराधिक हिंसा;** जैसे बलात्कार एवं अपहरण, आदि।
2. **घरेलू हिंसा;** जैसे दहेज सम्बन्धी मृत्यु, पत्नी को पीटना, लैंगिक दुर्व्यवहार, आदि।
3. **सामाजिक हिंसा;** जैसे पत्नी एवं पुत्र-वधू को मादा भ्रूण की हत्या के लिए बाध्य करना, महिलाओं से छेड़-छाड़, विधवा को सती होने के लिए बाध्य करना, दहेज के लिए तंग करना एवं स्त्री को सम्पत्ति में हिस्सा न देना, आदि।

भारत में महिलाओं के प्रति किए जाने वाले अपराधों एवं हिंसा की जानकारी हमें गृह मन्त्रालय, पुलिस अन्वेषण विभाग तथा नेशनल इन्स्टीटयूट ऑफ सोशल डिफेन्स विभाग द्वारा प्रसारित आंकड़ों से होती है। दहेज सम्बन्धी हत्या में वृद्धि हुई है, जो वर्ष 2002 में 6,822 थी वह 2004 में बढ़कर 7,026 के स्तर पर पहुँच गई। वर्ष 2005 में सर्वाधिक दहेज हत्या के मामले उत्तर प्रदेश बिहार तथा मध्य प्रदेश में पाए गए हैं। भारत में प्रत्येक 33 मिनट में महिलाओं के प्रति एक अपराध की घटना होती है। महिलाओं के साथ किये जाने वाले अपराधों में से 2/3 अपराध भारत के पाँच राज्यों–मध्य प्रदेश (17.6%), उत्तर प्रदेश (15.7%), महाराष्ट्र (13.9%), आन्ध्र प्रदेश (7.9%), तथा राजस्थान (7.5%) में होते हैं। 37.4% महिला अपराध शेष भारत के सभी राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में होते हैं।

नोट्स महिलाओं के बारे में प्रदर्शित किए गए ये आंकड़े अपूर्ण हैं क्योंकि उनके प्रति किए गए सभी अपराधों को पुलिस में दर्ज नहीं कराया जाता है तथा नारी के प्रति घर में ही किए जाने वाले अपराधों को घरेलू मामला समझ कर पुलिस उनमें हस्तक्षेप नहीं करती और स्त्रियाँ भी उन्हें बाहर उजागर करना उचित नहीं मानतीं।

महिलाओं के प्रति होने वाले कुछ प्रमुख आपराधिक कृत्य निम्न प्रकार हैं–

बलात्कार (Rape)

भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) की धारा 376 के अनुसार बलात्कार एक दण्डनीय अपराध है जिसमें अपराधी को आजीवन कारावास तक हो सकता है। इस धारा के अनुसार जब कोई पुरुष किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध या सम्पत्ति के बिना या मृत्यु का भय दिखाकर सम्मति से संभोग करता है तो वह बलात्कारी कहलाता है। बलात्कार की समस्या सभी समाजों में पायी जाती है, किन्तु भारत की तुलना में पाश्चात्य देशों में ऐसी घटनाएँ अधिक घटित होती है। बलात्कार के सभी मामलों की जानकारी सम्भव नहीं है। केवल कुछ मामले ही पुलिस में दर्ज करवाए जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि सरकारी आँकड़ों की तुलना में वास्तविक बलात्कार की संख्या पाँच गुना से भी अधिक है। लंदन में 1,236 स्त्रियों का एक सर्वेक्षण किया गया तो पाया कि प्रत्येक 6 महिलाओं में से एक के साथ बलात्कार हुआ है। शेष पाँच में से एक ने उसके प्रति किए जाने वाले बलात्कार के प्रयत्न के

नोट

प्रति संघर्ष किया। बलात्कार के जितने मामले हुए, उनमें से आधे स्त्री के घर पर और आधे बलात्कारी के घर पर हुए। जिन महिलाओं के साथ बलात्कार हुए, उनमें से अधिकांश उस घटना को भुला देना चाहती हैं, वे अपना मेडिकल मुआयना करवाना एवं पुलिस व न्यायालय द्वारा जाँच करवाना नहीं चाहतीं क्योंकि कानूनी प्रक्रिया लम्बा समय लेने वाली एवं परेशानी पैदा करने वाली होती है। वकीलों द्वारा इस सन्दर्भ में पूछे जाने वाले प्रश्न भी नारी को पीड़ा पहुंचाने वाले होते हैं। पेशी का माहौल भी नारी में भय पैदा करता है तथा नारी को आरोपी से न्यायालय में आमना-सामना भी करना पड़ता है। न्यायालय भी नारी के प्रमाणों के आधार पर ही आरोपी को दण्डित नहीं करता है, उसे अन्य प्रमाण भी देने होते हैं जिन्हें जुटाना कठिन होता है। राजस्थान में आंगनवाड़ी में काम करने वाली महिला भंवरी बाई के साथ कुछ लोगों ने बलात्कार किया, किन्तु प्रमाणों के अभाव में बलात्कारियों के प्रति कोई ठोस कार्यवाही नहीं की जा सकी है। इसी प्रकार के उत्तराखण्ड की स्थापना की मांग को लेकर दिल्ली में प्रदर्शन करने जाने वाली महिलाओं के साथ भी पुलिस द्वारा बलात्कार किया गया, किन्तु दोषी पुलिस कर्मियों के प्रति कोई कठोर कार्यवाही नहीं की गई। बलात्कार किया गया है इसका प्रमाण जुटाना, बलात्कारी को पहचानना और यह सिद्ध करना कि बिना स्त्री की सहमति के यह घटना घटी है, एक कठिन कार्य है। निर्जन एवं रात्रि में अंधेरे स्थानों पर किए गए बलात्कार के प्रमाण जुटाना तो और भी कठिन हो जाता है।

पति द्वारा पत्नी के प्रति किए गए बलात्कार को कानूनी रूप से बलात्कार नहीं माना जाता है क्योंकि यह विवाह का एक प्रतिफल माना जाता है। जब तक तलाक न हो जाए स्त्री-पुरुष को पृथक्-पृथक् रहने की राजाज्ञा प्राप्त होने पर भी यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी से बलात्कार करता है तो उसे बलात्कार नहीं माना जाता। विवाह में बलात्कार को अवैध नहीं माना गया है। कुछ पश्चिमी देशों जैसे कनाडा, डेनमार्क, स्वीडन एवं नार्वे में विवाहित पुरुष यदि अपनी पत्नी के साथ बलात्कार करता है तो वह जुर्म है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. ऐसा माना जाता है कि सरकारी आंकड़ों के तुलना में वास्तविक बलात्कार की संख्या .... से भी अधिक है।
2. जिन महिलाओं के साथ बलात्कार हुए, उनमें से अधिकांश उस .... को भुला देना चाहती हैं।
3. न्यायालय भी नारी के प्रमाण पर आरोपी को .... नहीं करता, उसे अन्य प्रमाण भी देने होते हैं।

बलात्कार से सम्बन्धित सामान्य तथ्य इस प्रकार हैं—

1. अधिकांशतः बलात्कार गरीब महिलाओं के साथ हुए।
2. कामकाजी महिलाओं के साथ बलात्कार उनके ऑफिस के बॉस द्वारा किए जाते हैं।
3. फैक्ट्री में काम करने वाली श्रमिक महिलाओं के साथ बलात्कार उनके मालिकों द्वारा किए जाते हैं।
4. अस्पताल में मरीजों के प्रति बलात्कार अस्पताल के कर्मचारियों द्वारा किए जाते हैं।
5. जेल में महिला कैदियों के साथ बलात्कार जेल कर्मचारियों द्वारा किए जाते हैं।
6. आवारागर्दी करने वाली एवं संदिग्ध हाल में पायी जाने वाली स्त्रियों के साथ बलात्कार पुलिस कर्मियों द्वारा किए जाते हैं।
7. पागल, गूँगी, बहरी, अपंग एवं भिखारिन महिलाओं के साथ भी बलात्कार, किए जाते हैं।

नोट्स बलात्कार से पीड़ित महिलाएँ उनके प्रति किए गए अपराध को खामोशी से बर्दाश्त कर लेती हैं। विरोध करने पर उन्हें सामाजिक निन्दा एवं अपमान का डर होता है। साथ ही नौकरी छूट जाने का भय, बच्चों व परिवार का भरण-पोषण करने की चिन्ता भी उन्हें सब कुछ बर्दाश्त करने के लिए मज़बूर कर देती है।

डॉ. आहूजा ने राजस्थान में बलात्कार से पीड़ित महिलाओं का अध्ययन करने पर पाया कि बलात्कार की घटना सदैव अपरिचित लोगों में नहीं होती है। बलात्कार एक व्यक्ति द्वारा भी किया जा सकता है और एक से अधिक द्वारा समूह में भी। बलात्कार के लिए महिलाओं को आर्थिक प्रलोभन भी दिया जाता है और उन पर मौखिक दबाव भी डाला जाता है।

क्या आप जानते हैं सर्वाधिक बलात्कार 15 से 20 वर्ष की आयु की स्त्रियों के साथ हुए तथा सर्वाधिक बलात्कार 23 से 30 वर्ष की आयु समूह के पुरुषों द्वारा किए गए। इसका तात्पर्य है कि बलात्कार में आयु एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है और युवाअवस्था इसको प्रेरित करने में प्रमुख रही है।

सामाजिक अध्ययनकर्ताओं ने बलात्कार सम्बन्धी अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि–

1. यह धारणा गलत है कि यदि महिला विरोध करे तो उसके साथ बलात्कार नहीं हो सकता।
2. बलात्कार केवल सुन्दर स्त्रियों के साथ ही होता है, यह विचार त्रुटिपूर्ण है।
3. यह सोचना भी त्रुटिपूर्ण है कि जिन महिलाओं के साथ बलात्कार होता है, वे उसका आनन्द लेती हैं।
4. यह विचार सही नहीं है कि अधिकांश बलात्कारी मानसिक रूप से परेशान व्यक्ति होते हैं।
5. यह कहना भी सही नहीं है कि अधिकांश बलात्कार स्वत: होते हैं और उनकी अग्रिम योजना नहीं बनायी जाती।
6. यह कहना भी उचित नहीं है कि बलात्कार का सम्बन्ध पुरुष में अत्यधिक काम उत्तेजना की भावना तथा उच्चता एवं शक्ति की भावना से है।
7. मैथुन की तीव्र इच्छा एवं बलात्कार में कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों में पश्चिमी देशों में नारी संगठन बलात्कार के बारे में वैधानिक एवं जन सोच को बदलने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। वे इस बात पर बल देते रहे हैं कि बलात्कार को यौन अपराध न माना जाए वरन् इसे एक हिंसक अपराध (Violent Crime) माना जाए। यह मात्र एक शारीरिक आक्रमण ही नहीं वरन् यह व्यक्ति की निष्ठा और सम्मान पर भी आक्रमण है। इस अभियान का असर हुआ है और आज कई पश्चिमी देशों में बलात्कार को वैधानिक रूप से एक विशेष प्रकार की आपराधिक हिंसा के रूप में स्वीकार किया गया है।

अमेरिका में एक स्त्री संगठन ने बलात्कार से बचने के लिए कुछ उपाय सुझाएँ हैं। वे हैं–

1. अपने घर को अत्यधिक सुरक्षित बनाइए। घर के ताले, खिड़कियाँ एवं दरवाजे कार्य करने की स्थिति में होने चाहिए। यदि आप घर बदलें तो ताले भी बदल दीजिए।
2. यदि आप अकेले रह रहे हों तो ऐसा प्रकट करें कि यहाँ एक से अधिक व्यक्ति रहते हैं, यह बहाना करें कि घर में पुरुष भी है। जब कोई दरवाजा खटखटाए तो आप जोर से कहें कि दरवाजा मैं खोल रही हूँ तुम कमरे में ही रहो।
3. दरवाजे पर पूरा नाम लिखने के स्थान पर अपना छोटा नाम लिखें; जैसे सन्तोष कुमारी अग्रवाल के स्थान पर एस. के. अग्रवाल लिखें।

4. अजनबी से दूर रहें तथा अजनबी के आने पर दरवाजा न खोलें।
5. निर्जन मकानों में अकेले न रहें।
6. रात्रि में गलियों एवं विश्वविद्यालयों में अकेले न घूमें।
7. अपने पास हथियार, लाइटर, काँटे-छुरी एवं सीटी (Whistle) रखें। समूह में घूमें अकेले नहीं।
8. यदि आप कार चलाती हैं तो कार के दरवाजे बिना ताला लगाए न छोड़ें तथा कार में बैठने से पूर्व पीछे की सीट की जाँच कर लें।
9. आक्रमण होने पर बलात्कार-बलात्कार (Rape-Rape) न चिल्लाएं वरन् कहें गोली चलाओ-गोली चलाओ (Fire-Fire)।

टास्क सामाजिक अध्ययनकर्ताओं ने बलात्कार संबंधी अध्ययन करने पर क्या निष्कर्ष निकाला?

भगा ले जाना व अपहरण करना (Abduction and Kidnapping)

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 366 के अनुसार भगा ले जाने का तात्पर्य है किसी महिला को जबरदस्ती, कपटपूर्वक या धोखाधड़ी करके उसे बहला फुसला कर ले जाना तथा उसके साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित करना या उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह के लिए बाध्य करना जबकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 361 के अनुसार अपहरण का तात्पर्य है एक नाबालिक (18 वर्ष से कम आयु की लड़की व 16 वर्ष से कम आयु का लड़का) को उसके माता-पिता या वैधानिक संरक्षक की अनुमति के बिना ले जाना। अपहरण में जिसका अपहरण किया जाता है, उसकी सहमति का कोई महत्त्व नहीं होता जबकि भगा ले जाने में, जिसे भगया जाता है उसकी सहमति अपराधी को क्षमा कर देती है।

भारत में प्रतिवर्ष लगभग 1, 500 महिलाओं को भगाकर ले जाया जाता है अथवा उनका अपहरण किया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रतिदिन 42 लड़कियों को भगाने या अपहरण के मामलें होते हैं। दूसरे शब्दों में प्रति एक लाख जनसंख्या पर दो मामले भगा ले जाने या अपहरण के होते हैं। अपहरण के सर्वाधिक मामले उत्तर प्रदेश में (3, 099) तथा उसके बाद क्रमशः राजस्थान (2, 018), बिहार (1, 219) मध्य प्रदेश (1, 202) तथा असम (1, 010) में हुए हैं।

नोट्स जिन्हें भगाया जाता है उनमें से 54.8% महिलाएँ 18 से 30 वर्ष की आयु की, 35.3% 30 से 50 वर्ष की आयु की, 4.5% 18 वर्ष से कम आयु की तथा 5.4% 50 वर्ष से अधिक आयु की होती हैं।

डॉ. आहूजा द्वारा अपहरण और भगा ले जाने सम्बन्धी किए गए एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि (*i*) विवाहित की अपेक्षा अविवाहित लड़कियों को अधिक भगाया जाता है। (*ii*) भगाने वाला एवं भागने वाली दोनों ही एक दूसरे से परिचित होते हैं। (*iii*) इन दोनों का सम्पर्क उनके घरों अथवा पड़ोस के कारण होता है। (*iv*) अधिकांशतः भगा ले जाने में एक ही व्यक्ति का हाथ होता है। (*v*) भगा ले जाने का प्रमुख उद्देश्य मैथुन एवं विवाह होता है। 1/10 मामलों में आर्थिक उद्देश्य से भी ऐसा किया जाता है। (*vi*) भगा ले जाने के लिए माता-पिता के नियन्त्रण का अभाव, परिवार में स्नेहपूर्ण सम्बन्धों का अभाव, आदि प्रमुख कारण हैं। (*vii*) लगभग 80% मामलों में भगा ले जाने के बाद लड़की पर लैंगिक आक्रमण होता है।

हत्या (Murder)

हत्या के मामले स्त्री और पुरुष दोनों ही के साथ घटित होते हैं, किन्तु विश्व में सर्वत्र ही स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की ही हत्या अधिक होती है। अमेरिका में प्रति वर्ष कुल हत्या का 20 से 25 प्रतिशत भाग महिला हत्या का होता है जबकि भारत में यह प्रतिशत केवल 10 ही है। भारत में हत्या में सम्मिलित लोगों में 96.7 प्रतिशत पुरुष एवं 3.34 प्रतिशत महिलाएँ होती हैं।

पत्नी को पीटना: गृह हिंसा (Wife Battering: Domestic Violence)

भारत में पत्नी के रूप में नारी की प्रतिष्ठा रही है और उसे यहाँ गृह-लक्ष्मी की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है। पत्नी को पुरुष की अर्द्धांगिनी, सहधर्मचारिणी, धर्मपत्नी भी कहा जाता है, यहाँ पत्नी के अभाव में पति द्वारा किए गए धार्मिक कार्यों को निष्फल माना गया है, किन्तु यह तस्वीर का एक पहलू है। पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करने एवं उसे मारने-पीटने की घटनाएँ भी कई बार सुनने में आती हैं। विवाह के बाद पति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी पत्नी का भरण-पोषण करेगा, उसे प्रेम करेगा और संरक्षण प्रदान करेगा। भारत में पति के लिए 'भर्ता' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है भरण-पोषण करने वाला। सामान्य: यह माना जाता है कि घर नारी के लिए सुरक्षा एवं प्रसन्नता की दृष्टि से स्वर्ग है, किन्तु अनेक स्त्रियों के प्रति घर में हिंसा का व्यवहार किया जाता है। उन्हें लातों, घूसों, चाँटों व लकड़ियों से मारा जाता है, हड्डियाँ तक तोड़ दी जाती है। **पहल** ने अपने अध्ययन में पाया कि पतियों द्वारा अपनी पत्नियों को चाकुओं से गोदा गया। फर्नीचर फेंक कर मारा गया, सीढ़ियों से गिराया गया और कुछ स्त्रियों के तो पैरों में कीलें ठोकी गईं।

19वीं सदी के अन्त तक इंग्लैण्ड में ऐसा कोई क़ानून नहीं था जो पुरुष को अपनी पत्नी के साथ गाली-गलौज करने, चोट पहुँचाने या हत्या करने से रोके, किन्तु आज तो वहाँ नारी को अधिक कानूनी सुरक्षा प्राप्त है। कानूनी दृष्टि से आज नारी चाहे अच्छी स्थिति में क्यों न हो, किन्तु फिर भी स्त्रियाँ घर में उनके प्रति की गयी हिंसा के विरुद्ध पुलिस में शिकायत नहीं करतीं और क़ानून व न्यायालय की शरण नहीं लेती हैं। इस बारे में पुलिस का दृष्टिकोण भी असहयोगी ही होता है, वह इसे घरेलू मामला, पति-पत्नी का निजी मामला मानकर कोई कार्यवाही नहीं करते। जब कभी ऐसी स्थिति में पुलिस से मदद माँगी जाती है तो वह केवल झगड़े को शान्त करने तक ही हस्तक्षेप करती है, पुरुष पर दबाव डालने या उस पर आरोप लगाने में उसकी कोई रुचि नहीं होती है।

नारी की यह मज़बूरी है कि उसके साथ हिंसा का व्यवहार होने पर भी वह आर्थिक व सामाजिक कारणों, बच्चों के प्रति अपने दायित्वों एवं सामाजिक निन्दा से बचने, आदि कारणों से सब कुछ शान्त भाव से सहन करती रहती है। वह इसे ही अपना भाग्य मानती है, पूर्व जन्म के कर्मों का फल मानती है। समाज के लोग भी उसे सहिष्णु होने का ही उपदेश देते रहते हैं। उसे कहा जाता है–'पति के घर में डोली में बैठ कर आयी थी, अब तो यहाँ से तुम्हारी अर्थी ही उठेगी।' और वह बेचारी जहर के घूँट पीकर जिन्दा लाश की तरह घर में बनी रहती है।

डॉ. आहूजा ने अपने अध्ययन में पाया कि (1) 25 वर्ष से कम आयु की स्त्रियों के साथ पीटने की घटनाएँ अधिक होती हैं। (2) कम आय वाले परिवारों में ऐसी घटनाएँ अपेक्षतया अधिक होती हैं। (3) पत्नी को पीटने के कारणों में यौन-सम्बन्धों में असमायोजन, भावात्मक गड़बड़, पति की अहंभावना या हीनभावना, पति का शराबी होना, ईर्ष्या एवं पत्नी द्वारा पति के दुर्व्यवहार के प्रति निष्क्रियता बरतना, आदि प्रमुख हैं। (4) शिक्षित स्त्रियों की तुलना में अशिक्षित स्त्रियों को अधिक पीटा जाता है। (5) उन पत्नियों को जो अपने पति से 5 वर्ष से अधिक होती जाती हैं अपने पति द्वारा पीटे जाने की सम्भावना अधिक होती है। (6) परिवार के आकार और उसकी रचना की पत्नी को पीटने से परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है, (7) वे लोग जो बचपन में हिंसा के शिकार हुए थे बड़े होने पर पत्नी को पीटने की ओर अधिक रुझान रखते हैं। (8) शराबी पतियों द्वारा पत्नी को पीटने की मात्रा अधिक पायी जाती है जो नशे की तुलना में होश-हवास में अधिक पीटते हैं।

विधवाओं के प्रति हिंसा (Violence Against Widows)

भारत में विशेष रूप से हिन्दुओं में विधवाओं की एक गम्भीर समस्या है क्योंकि हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक संस्कार माना गया है और यह पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तर का बन्धन है जिसे तोड़ा नहीं जा सकता। अत: पति की मृत्यु के बाद पत्नी को दूसरा विवाह करने की छूट नहीं है। यही कारण है कि पति की मृत्यु के बाद से ही विधवा स्त्री के दु:ख प्रारम्भ हो जाते हैं। उसके सिर को मुंडवा दिया जाता है, वह अच्छे वस्त्र नहीं पहन सकती, सार्वजनिक उत्सवों एवं शुभ कार्यों में उसकी उपस्थिति को अपशकुन माना जाता है। सास-ससुर एवं पति के परिवार के लोग विधवा पर अत्याचार करते हैं, उसे डायन की संज्ञा देते हैं जिसने अपने पति को ही खा लिया है। विधवाओं के भी अनेक प्रकार हो सकते हैं: जैसे बिना बच्चों वाली युवा विधवा, एक-दो-बच्चों वाली प्रौढ़ विधवा एवं अधिक उम्र वाली विधवा, अधिकांशत: युवा एवं प्रौढ़ विधवाओं की समस्याएँ ही अधिक हैं। अधिक उम्र वाली विधवा तो अपने बच्चों के परिवार का अंग बन जाती है, वह अपने पोते-पोतियों की देखरेख करने, खाना पकाने, घर के कार्यों में मदद करने एवं मार्गदर्शन करने की दृष्टि से उपयोगी मानी जाती है। युवा एवं प्रौढ़ विधवाओं की समस्याएँ गम्भीर होती हैं। उनके साथ ही अनेक प्रकार के दुर्व्यवहार किए जाते हैं। उन्हें पीटा जाता है, गालियाँ दी जाती हैं, उनके साथ व्यभिचार एवं लैंगिक दुर्व्यवहार का प्रयत्न किया जाता है, उन्हें पति की सम्पत्ति से वंचित किया जाता है। भारत में स्त्रियों में अशिक्षा की अधिकता के कारण उन्हें पति के व्यापार, सम्पत्ति, बीमे की रकम और जमापूँजी, आदि की जानकारी नहीं होती है। इसका लाभ उठाकर उसके ससुराल वाले उससे कागजों पर अँगूठा लगवा कर उसकी वैधानिक सम्पत्ति को हड़पने का प्रयत्न करते हैं। (1) विधवाओं के उत्पीड़न के तीन प्रमुख कारण होते हैं—शक्ति, सम्पत्ति और कामवासना की पूर्ति। आयु, शिक्षा और वर्ग की सदस्यता का भी विधवा उत्पीड़न से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस दृष्टि से (2) वृद्ध विधवाओं की तुलना में युवा विधवाओं, (3) शिक्षित विधवाओं की तुलना में अशिक्षित विधवाओं तथा उच्च वर्ग की विधवाओं की तुलना में मध्यम एवं निम्न वर्ग की विधवाओं को अधिक उत्पीड़ित किया जाता है। (4) विधवा स्त्री की निष्क्रिय कायरता भी उसके उत्पीड़न का प्रमुख कारक है। (5) यद्यपि विधवाओं को पुनर्विवाह की छूट देने की दृष्टि से भारत में 'विधवा पुनर्विवाह अधिनियम', 1856 बना हुआ है, किन्तु विधवाओं द्वारा पुनर्विवाह बहुत कम ही किए जाते हैं। (6) सात का सत्तावादी व्यक्तित्व एवं पति के भाई बहिनों का असामंजस्य विधवा उत्पीड़न के प्रमुख कारण हैं। (7) परिवार की रचना और उसके आकार से विधवा उत्पीड़न का कोई सम्बन्ध नहीं है। (8) हिंसा के अपराधकर्ता अधिकांशत: पति के आकार के सदस्य होते हैं।

टास्क विधवाओं के उत्पीड़न के तीन प्रमुख कारण क्या-क्या हैं?

वेश्यावृत्ति (Prostitution)

एक सामाजिक बुराई के रूप में वेश्यावृत्ति अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है। वेश्यावृत्ति को यौन तृप्ति का एक विकृत एवं घृणित साधन माना गया है। इससे व्यक्ति का शारीरिक एवं नैतिक पतन होता है, उसे आर्थिक हानि उठानी पड़ती है तथा यह मानव के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में विष घोल देती है। **इलियट** और **मैरिल** लिखते हैं, "वेश्यावृत्ति एक भेद-रहित और धन के लिए स्थापित किया गया अवैध यौन-सम्बन्ध है जिसमें भावात्मक उदासीनता होती है।" वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए 1956 में **'स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम'** पारित किया गया, फिर भी यह प्रकट और अप्रकट दोनों ही रूप में भारत में विद्यमान है। प्रकट समूह में वे वेश्याएँ आती हैं जो रजिस्टर्ड होती हैं तथा स्पष्ट रूप से वेश्यालय चलाती हैं। शहरों में ऐसे क्षेत्र को जहाँ वेश्याएँ रहती हैं 'लाल रोशनी क्षेत्र' (Red Light Area) कहते हैं। अप्रकट रूप से वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियाँ नौकरी या व्यवसाय के साथ-साथ यह कार्य भी करती हैं। वर्तमान में बड़े-बड़े शहरों के शराबघरों, होटलों, कैबरे

स्थलों, नाचघरों तथा क्लबों में शिक्षित और उच्च घरों की लड़कियाँ भी इस व्यवसाय में लगी होती हैं। होटलों के मालिक, टैक्सी ड्राइवर, कैबरे नृत्य के संयोजक एवं अन्य दलाल अपना कमीशन लेकर इस कार्य में सहयोग देते हैं।

वेश्यावृत्ति का एक रूप **देवदासी प्रथा** भी है। इस प्रथा के अनुसार लड़कियों को मन्दिरों में देवताओं की सेवा के लिए भेंट चढ़ा दिया जाता है। ये लड़कियाँ मन्दिरों में गायन एवं नृत्य का कार्य तो करती ही हैं, साथ पंडितों, पुजारियों एवं जमींदारों की यौन-भूख बुझाने का कार्य भी करती हैं। गरीबी, विलासी जीवन व्यतीत करने की लालसा, स्त्री की आर्थिक पराश्रितता, पारिवारिक परिस्थितियाँ, विवाह-विच्छेद, विधवा विवाह पर रोक, दहेज-प्रथा, दुखी वैवाहिक जीवन, अनैतिक व्यापार, अवैध सम्बन्ध, असामान्य कामुकता एवं धार्मिक कारण लड़कियों को वेश्यावृत्ति करवाने के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारक हैं।

वेश्यावृत्ति के कारण नारी जगत का अपमान होता है, वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन में वृद्धि होती है, नैतिक पतन होता है, आर्थिक हानि होती है, यौन रोगों में वृद्धि होती है। अत: मानवता का यह तकाजा एवं नैतिकता की माँग है कि वेश्याओं को इस कुकर्म से रोककर नारी जाति के प्रति किए जाने वाले इस अपराध से नारी की रक्षा की जाए।

नारी हत्या तथा भ्रूण हत्या (Femicide and Foeticide)

भारतीय समाज पुरुष प्रधान है तथा यहाँ लड़की की तुलना में लड़के को अधिक महत्त्व दिया जाता है। धार्मिक दृष्टि से भी पुत्र प्राप्ति आवश्यक माना गया है क्योंकि वही श्राद्ध एवं तर्पण द्वारा मृत पिता एवं पूर्वजों को स्वर्ग पहुँचाता है। उत्तराधिकार की दृष्टि से भी पुत्र का होना आवश्यक है, किन्तु कई बार किसी परिवार में लड़कियों की संख्या अधिक होने पर लड़की के पैदा होते ही मार दिया जाता है (Female infanticide) जो नारी हत्या का ही एक रूप है। नारी हत्या हमें प्रकट और अप्रकट कई रूपों में देखने को मिलती है। माता के गर्भ में ही नारी शिशु को मार देना या जन्म देना या पीट-पीट कर मार देना, उसका उत्पीड़न करना या ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर देना जिनमें नारी आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाए, जहर देकर मार देना, गालाघोंट देना, आदि सभी नारी हत्या के प्रत्यक्ष रूप हैं। नारी हत्या का अप्रत्यक्ष रूप वह है जिसमें नारी शिशु के पालन-पोषण एवं चिकित्सा की ओर उचित ध्यान नहीं देने से वे मौत की शिकार हो जाती हैं। वैज्ञानिक प्रगति ने मानव को हज़ारों सुख-सुविधा के साधन जुटाए हैं, आज हम माता के गर्भ की जाँच जिसे 'एमनियोसंटेनिस' (Amniocentesis) कहा जाता है, के द्वारा भ्रूण की जाँच कर यह पता लगा सकते हैं कि उत्पन्न होने वाला शिशु लड़का है या लड़की। इस वैज्ञानिक ज्ञान का लोगों ने दुरुपयोग किया है और वह यदि भ्रूण लड़की का है तो उसका गर्भपात करवा देते हैं जो भ्रूण हत्या है। लड़के की चाह में लड़की की हत्या मानवता के माथे पर बहुत बड़ा कलंक है। आज के युग में तो लड़के व लड़कियाँ सभी समान हैं। वास्तव में जो स्थितियाँ देखने व सुनने में आती हैं उनके अनुरूप तो लड़कों की तुलना में लड़कियाँ ही माता-पिता की अधिक सेवा करती हैं और विश्वविद्यालयों एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के परिणाम यह बताते हैं कि योग्यता सूची में लड़कियाँ लड़कों से आगे ही हैं। आज जीवन के हर क्षेत्र में लड़कियों को दक्षता से कार्य करते हुए देखा जा सकता है। अत: लोगों के मन से यह भ्रम निकालना होगा कि पुत्र प्राप्ति आवश्यक है और उसकी चाह में किसी भी रूप में नारी हत्या अमानवीय है एवं नैतिकता व क़ानून के विरुद्ध अपराध है। नारी हत्या में पुरुष की अपेक्षा स्वयं नारी का योगदान भी कम नहीं होता है। वास्तव में देखा जाए तो नारी ही नारी की दुश्मन है। अत: सर्वप्रथम तो नारी को ही नारी के विरुद्ध होने वाले अपराधों को रोकने के लिए उठ खड़ा होना पड़ेगा।

छेड़छाड़ (Teasing)

नारी के विरुद्ध अपराधों में छेड़छाड़ भी एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति है। महाविद्यालयों के परिसर में, रेलों एवं बसों में, बाज़ारों में मनचले एवं उद्दण्ड किस्म के लड़कों द्वारा लड़कियों को भद्दे और गन्दे इशारे किए जाते हैं, उन पर

नोट

फब्तियाँ कसी जाती हैं, उन्हें अपशब्द कहे जाते हैं, उनके साथ गाली-गलौज की जाती है, उनको छूने का प्रयत्न किया जाता है, उन्हें नोंचने या चिकुटी, नाखुन चुभोने जैसी गन्दी हरकतें की जाती हैं। कभी-कभी ऐसे लोगों की सार्वजनिक रूप से जनता द्वारा पिटाई भी कर दी जाती है या पुलिस की गिरफ्त में आ जाने पर अच्छी खासी मरम्मत भी हो जाती है। इस प्रकार की गुण्डागर्दी बड़े शहरों में और विशेष रूप से उत्तरी भारत में अधिक पायी जाती है। दिल्ली, कानपुर, आगरा, बनारस और अन्य बड़े शहरों में छेड़छाड़ की घटनाएं ज्यादा होती हैं। ऐसी घटनाओं के विरोध में दिल्ली एवं अन्य नगरों में नारी संगठनों द्वारा प्रदर्शन भी किए गए हैं तथा गुण्डागर्दी के खिलाफ कानूनी कार्यवाही हेतु अभियान भी चलाए गए हैं, किन्तु कानून की लम्बी और थका देने वाली महंगी प्रक्रिया के कारण सज्जन व्यक्ति इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहते और इससे गुण्डों के हौंसले और बुलन्द होते हैं। नारी के प्रति छेड़छाड़ की घटनाओं को, सिनेमा एवं कैम्पस जैसे सीरियलों से बढ़ावा ही मिला है क्योंकि इनमें प्रदर्शित अच्छाई से नहीं वरन् बुराई से ही लोग अधिक प्रभावित होते हैं। ऐसी घटनाओं से बचने के लिए स्वयं लड़कियों को ही अपने आपको समर्थ बनाना होगा, जूड़ों-कराटे सीख कर आत्म रक्षा के उपाय करने होंगे, समूह बनाकर ऐसे गुण्डों से उन्हें ही निपटना होगा। सब कुछ सरकार, पुलिस और कानून पर ही नहीं छोड़ा जा सकता।

नारी के विरुद्ध उपर्युक्त अपराधों एवं बढ़ती हिंसा के अतिरिक्त भद्दे और भौंडे विज्ञापनों में नारी के नग्न एवं अर्द्ध-नग्न चित्रों के द्वारा वस्तुओं को बेचने का प्रयास भी नारी की मजबूरी का लाभ उठाना ही है।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कारण (Causes of Violence Against Women)

हम यहाँ उन कारणों का उल्लेख करेंगे जो महिलाओं के प्रति हिंसा को प्रेरित करते हैं–

1. **पुरुष प्रधानता** (Male Domination)–भारत में ही नहीं वरन् विश्व के लगभग सभी समाजों में पुरुषों की प्रधानता पायी जाती है। वह शक्ति का प्रतीक माना जाता है। पुरुष अपनी श्रेष्ठता, शक्ति एवं पुरुषत्व को स्थापित एवं साबित करने के लिए नारी पर अत्याचार करता है।

2. **स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता** (Economic Dependency of Women on Men)–भारत में स्त्रियों की पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता पायी जाती है। पति ही पत्नी का भरण-पोषण करता है। ऐसी स्थिति में उसे पति के अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। यदि उसे पति घर से निकाल देता है तो वह बेसहारा हो जाएगी एवं जीवनयापन की कठिनाई भी सामने आएगी।

3. **अशिक्षा** (Illiteracy)–भारत में स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत 2001 की जनगणना के अनुसार 53.6 है तथा पुरुषों में 75.2 है। शिक्षा के अभाव के कारण महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं तथा वे यह भी नहीं जानतीं कि उनके हितों की रक्षा के लिए कौन-कौन से क़ानून बने हुए हैं तथा उन पर अत्याचार होने पर उन्हें किन संगठनों की मदद लेनी चाहिए। अशिक्षा उन्हें घर की चहारदीवारी तक ही कैद करके रख देती है और वह अत्याचार सहने के लिए मज़बूर हो जाती हैं।

4. **महिलाओं के प्रति विद्वेष** (Hostility Towards Women)–कई पुरुषों में महिलाओं के प्रति विद्वेष की भावना भरी होती है जिसे वे उनके प्रति अत्याचार करके शांत करते हैं। जिन लोगों को अपने भूतकाल में किसी स्त्री ने तंग किया हो या जिसका प्रेम असफल हो गया हो, वह सम्पूर्ण नारी जगत के प्रति बदले की भावना से प्रेरित होकर कार्य करता है। उसके मन में स्त्रियों के प्रति घृणा एवं ईर्ष्या इतनी गहराई से बैठ जाती है कि उसके जीवन का उद्देश्य ही नारी उत्पीड़न हो जाता है और वह नारी को अपमानित करने में ही सुख की अनुभूति करता है।

5. **सामाजिक कुप्रथाएँ** (Evil Social Traditions)–भारत में अनेक कुप्रथाएँ हैं जिनमें बाल-विवाह, परदा-प्रथा, दहेज-प्रथा, विधवा पुनर्विवाह का अभाव, आदि प्रमुख हैं। इन कुप्रथाओं का शिकार महिलाओं को ही होना पड़ता है और उनसे सम्बन्धित अत्याचार भी महिलाओं को ही झेलने पड़ते हैं।

6. **पारिवारिक तनाव** (Family Tensions)–पारिवारिक तनाव भी महिलाओं के प्रति अत्याचार के लिए उत्तरदायी है। जब पति-पत्नी के स्वभाव में सामंजस्य नहीं होता है। विचारों में अन्तर होता है तब भी पुरुष अपने

को पत्नी पर थोपने का प्रयत्न करता है, उसे अपने अनुकूल बनने के लिए बाध्य करता है और अनुकूल न बनने एवं विरोध करने की स्थिति में पति द्वारा पत्नी पर जुल्म ढाए जाते हैं।

7. **पीड़ित द्वारा भड़काना** (Provocation by Victim)—कई बार पीड़ित स्त्रियों का व्यवहार ऐसा होता है जो पति को अत्याचार करने के लिए प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई स्त्री अपने पति की दूसरों के सामने बुराई करती है, वह ऐसे लोगों के बातचीत करती है जिन्हें उसका पति पसन्द नहीं करता है, पति के परिवार वालों के प्रति दुर्व्यवहार करती है, घर की ओर ध्यान नहीं देती है, किसी पराए मर्द से अनैतिक सम्बन्ध रखती है, सास-ससुर की आज्ञा का पालन नहीं करती है, पति के मामले में अनावश्यक हस्तक्षेप करती है या उस पर शक करती है, उसे ताने देती है या अपमानित करती है तो ऐसी स्थिति में पति भड़क जाता है और पत्नी के प्रति मार-पीट, गाली-गालौज एवं दुर्व्यवहार करता है। कई बार यह भी देखा जाता है कि जिन महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ, वे ऐसी भाव-भंगिमाएँ एवं मुद्राएँ प्रकट कर रही थीं कि पुरुष बलात्कार के लिए उत्तेजित हो गया। हत्या के मामलों में भी यह पाया गया कि महिला ने बहस के दौरान ऐसी स्थित पैदा कर दी की पुरुष हत्या के लिए उद्वेलित हो गया। अध्ययनों से यह भी प्रकट हुआ है कि भगा ले जाने के मामलों में भी लड़कियों ने ऐसा करने के लिए अपनी सहमति दी थी, किन्तु पकड़े जाने पर पुलिस एवं मामा-पिता के दबाव में आकर उन्होंने पुरुष पर जबरन भगा ले जाने का आरोप लगा दिया।

8. **नशा** (Intoxication)—वे पुरुष जो शराब पीते हैं या अन्य प्रकार का नशा करते हैं, नशे के दौरान भी पत्नी के प्रति अत्याचार करते हैं। बलात्कार के कई मामलों में यह पाया गया कि बलात्कारी नशे में धुत्त था। पति शराब पीकर जब घर आता है और पत्नी से कहा सुनी हो जाती है तब भी वह पत्नी को गाली देने या पीटने का कार्य करता है। इसका कारण यह है कि नशे की हालत में व्यक्ति को अपने द्वारा किए गए कार्यों के परिणामें की जानकारी नहीं होती है जिसके लिए वह होश में आने पर पश्चाताप करता है। ऐसा भी देखा गया है कि कई बार व्यक्ति अपराध करने के लिए साहस जुटाने के लिए भी शराब का सेवन करता है।

9. **अपराधी के प्रति निष्क्रियता** (Passiveness Towards Criminal)—कई बार अपराध की शिकार महिलाएँ अपने प्रति किए गए अपराध को बर्दाश्त करती रहती हैं और वे पुलिस या न्यायालय की शरण में जाने या अन्य लोगों से मदद लेने का प्रयत्न नहीं करती हैं। ऐसी स्थिति में अपराधी को निरन्तर अपराध करने की प्रेरणा मिलती रहती है और वह ऐसा करता चला जाता है।

10. **परिस्थितिवश प्रेरणा** (Situational Urge)—कई बार परिस्थितियाँ ही ऐसी हो जाती हैं कि व्यक्ति अपराध कर बैठता है। उदाहरण के लिए, अन्धेरी रात्रि में कोई स्त्री अकेले वीराने स्थान से गुजर रही हो तो वहाँ उपस्थित व्यक्ति बलात्कार के लिए प्रेरित हो जाता है। खेत, खान या फैक्ट्री में स्त्री के अकेले होने पर भी मालिक उसके साथ छेड़छाड़ या अवैध संबन्ध का प्रयत्न कर सकता है।

26.2 महिलाओं के प्रति हिंसा को रोकने के उपाय: सुझाव (Measures to Check Violence Against Women: Suggestions)

महिलाओं के प्रति किए जाने वाली हिंसा को रोकने के लिए हम निम्नांकित उपाय अपना सकते हैं—

1. **आश्रय की व्यवस्था** (Arrangement for Shelter)—सरकार और स्वयंसेवी संगठनों को ऐसी महिलाओं के लिए आवास की व्यवस्था करनी चाहिए जो पति और ससुराल वालों के अत्याचार से तंग आकर घर छोड़ना चाहती हैं। जिन महिलाओं का अपहरण किया गया है या जिन्हें भगा कर ले जाया गया है वे जब पकड़ ली जाती हैं तो उनके लिए तथा जिन्हें मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं या जिनके प्रति प्रतिदिन हिंसा हो रही है, ऐसी महिलाओं के लिए सुरक्षित, स्थायी या अस्थायी आश्रय जुटाना चाहिए।

नोट

2. **रोज़गार की व्यवस्था** (Arrangement for Employment)–स्त्रियों द्वारा उनके प्रति की जाने वाली हिंसा को बर्दाश्त करने का एक कारण आर्थिक है। वे अपने व अपने बच्चों के भरण-पोषण के लिए पति एवं ससुराल पक्ष के लोगों पर निर्भर होती हैं। यदि ऐसी महिलाओं के लिए रोज़गार एवं नौकरी की व्यवस्था की जाए, उन्हें छोटा-मोटा व्यवसाय करने के लिए ऋण की सुविधा उपलब्ध करायी जाए और परामर्श की सुविधा प्रदान करायी जाए तो वे अपने प्रति की गयी हिंसा को सहन नहीं करेंगी और आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करेंगी।

3. **शिक्षा की सुविधा प्रदान की जाए** (Provide Educational Facilities)–स्त्री पर अत्याचार का एक कारण स्त्रियों का अशिक्षित होना भी है। इसे रोकने के लिए स्त्री शिक्षा का प्रसार किया जाए जो पढ़ाई छोड़ चुकी हैं और आगे पढ़ना चाहती हैं, उनके लिए नि:शुल्क शिक्षा एवं व्यावसायिक एवं अन्य प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। इससे उनमें आत्मविश्वास बढ़ेगा, वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होंगी और अपने प्रति किए जाने वाले अत्यचारों का विरोध कर सकेंगी।

4. **दण्ड की व्यवस्था** (Punishment)–जो लोग अपनी पत्नियों को परेशान करते हैं, उनकी सामाजिक निन्दा की जाए और उन्हें सार्वजनिक रूप से दण्डित किया जाए, जिससे कि अन्य लोगों को भी सबक मिले और वे ऐसा करने के लिए प्रेरित न हों।

5. **महिला न्यायालयों की स्थापना** (Establishment of Women Courts)–महिलाओं के प्रति किए गए अपराधों एवं हिंसा की सुनवायी के लिए पृथक् से महिला न्यायालयों की स्थापना की जाए जिसमें अनुभवी महिला न्यायाधीश हों। इससे सामान्य न्यायालयों में जाने का महिलाओं में जो भय होता है वह समाप्त होगा और वे अपनी बात को इन न्यायालयों में साफ-साफ कह पाएंगी। ऐसे न्यायालयों की सुनवायी एवं कार्यवाही सार्वजनिक रूप से न हो। उनमें केवल न्यायाधीश, परिवादी एवं पीड़ित महिला की मदद करने वाले लोगों एवं आरोपियों को ही आने की इजाजत हो।

6. **कानूनी सहायता एवं परामर्श** (Legal Aid and Consultancy)–पीड़ित महिलाओं को कानूनी सहायता प्रदान करने एवं उनके विवादों को निपटाने के लिए **स्वयंसेवी संगठनों को आगे आना होगा** और वे मुफ्त में ऐसी पीड़ित महिलाओं की मदद करें एवं उन्हें उचित सलाह देकर उनका मार्ग दर्शन करें ताकि वे पुन: सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

7. **महिला संगठनों का निर्माण** (Formation of Women Organisations)–पीड़ित महिलाओं को अत्याचारों से मुक्ति, दिलाने उन्हें कानूनी एवं आर्थिक मदद देने, उन्हें नैतिक सम्बल देने एवं उनमें आत्मविश्वास जगाने के लिए अधिकाधिक महिला संगठनों की स्थापना की जाए। ऐसे संगठन पीड़ित महिला के पति, सास-ससुर एवं ससुराल पक्ष वालों से बातचीत कर, उन पर सामाजिक व नैतिक दबाव डालकर समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करें। व्यक्ति स्तर के स्थान पर यदि महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से प्रयत्न किए जांएगे तो वे अधिक कारगर होंगे।

8. **वैचारिक परिवर्तन** (Change in Attitude)–महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एवं अपराधों को रोकने के लिए लड़कियों के माता-पिता के विचारों में भी परिवर्तन लाना होगा। वे लड़कियों का बचपन से ही इस प्रकार का समाजीकरण करते हैं जिसमें उन्हें पति परमेश्वर की धारणा सिखायी जाती है, उन्हें कहा जाता है पति के घर डोली जाती है और अर्थी भी वहीं से उठती है, स्त्री को सहिष्णु होना चाहिए, आदि। ऐसे संस्कारों के कारण ही स्त्री सब कुछ बर्दाश्त करती रहती है और प्रतिरोध नहीं करती। वे अपनी पुत्रियों को विवाहित एवं विधवा जिन्हें उनके पति पीटते हैं या ससुराल वाले दुर्व्यवहार करते हैं, को उनकी इच्छा के विरुद्ध ससुराल में रहने को मजबूर क्यों करते हैं, वे उनको अपने घर क्यों नहीं बुला लेते, सामाजिक कलंक के डर से वे अपनी पुत्री को बलि का बकरा क्यों बनाते हैं?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. स्त्री पर अत्याचार का एक कारण स्त्रियों का .... होना भी है।
5. वे अपने और अपने बच्चों के .... के लिए पति एवं ससुराल पक्ष वालों पर निर्भर होती हैं।
6. महिलाओं के .... हिंसा और अपराधों को रोकने के लिए लड़कियों के माता-पिता में भी परिवर्तन लाना होगा।

नोट्स महिलाओं को निष्क्रिय रूप से अत्याचार नहीं सहना चाहिए, वे अपने दमन एवं शोषण के प्रति जागरूक हों, उनका विरोध करें, न्यायालय, क़ानून एवं अपने परिजनों से मदद माँगें। उनके द्वारा अत्याचार सहने का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है और वे भी भीरु हो जाते हैं, उनके व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। अत: सर्वप्रथम तो स्वयं महिलाओं को ही उठना होगा, जागना होगा, विरोध प्रकट करना होगा तभी वे संकट की स्थितियों में से मुक्त हो पाएंगी।

26.3 विवाह-विच्छेद की समस्या (Problem of Divorce)

सामाजिक एवं कानूनी रूप से पति-पत्नी के विवाह सम्बन्धों की समाप्ति ही विवाह-विच्छेद कहलाता है। विवाह-विच्छेद पति-पत्नी के वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन में असामंजस्य एवं असफलता का सूचक है। इसका अर्थ यह है कि जिन उद्देश्यों को लेकर विवाह किया गया वे पूर्ण नहीं हुए हैं। यह एक दु:खद घटना है, विश्वास की समाप्ति है, प्रतिज्ञा एवं मोह भंग की स्थिति है। इसमें एक साथी दूसरे का मूल्यांकन कर लेता है और जिसे रद्द कर दिया जाता है वह अपने आपको अपमानित एवं कुचला हुआ महसूस करता है, उसके आत्माभिमान को चोट पहुँचती है। यह एक वैधानिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या भी है।

हिन्दुओं में स्त्री के लिए पतिव्रत तथा सतीत्व के पालन की बात कही गयी है, अत: स्त्री द्वारा पति त्यागने की कल्पना नहीं की जा सकती और ऐसा करना उसके लिए सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से अनुचित माना गया, यद्यपि वैदिक काल में विवाह-विच्छेद के कुछ उदाहरण हैं। मनु, नारद, बृहस्पति, पाराशर, आदि ने भी कुछ परिस्थितियों में विवाह-विच्छेद को स्वीकृति प्रदान की है। मनु ने स्त्री के बांझ होने, उसके बच्चे जीवित न रहने या केवल लड़कियाँ ही होने अथवा झगड़ालू होने पर दूसरा विवाह करने की बात कही है। कौटिल्य ने भी ऐसी अवस्थाओं में पति को दूसरा विवाह करने की स्वीकृति दी है।

पति के जीवित रहते दूसरा विवाह करने वाली स्त्री को 'पुनर्भू' कहा गया है। यदि पति दुश्चरित्र हो, बहुत समय से विदेश में हो, अपने बन्धु-बान्धवों के प्रति कृतघ्न हो, जाति से बहिष्कृत कर दिया गया हो, पुरुषत्वहीन हो या उससे पत्नी के जीवन को संकट उत्पन्न हो सकता है तो ऐसी स्थिति में कौटिल्य पति को त्यागने की बात कहते हैं। पारस्परिक शत्रुता के कारण भी विवाह-विच्छेद हो सकता था। नारद एवं पाराशर ने पति के नपुंसक होने, अज्ञात होने, मर जाने, साधु हो जाने, जातिच्युत हो जाने की अवस्था में स्त्री को दूसरा पति ढूंढने की स्वीकृति दी है।

किन्तु ईसा काल के प्रारम्भ से ही नैतिकता की दुहाई देकर विवाह-विच्छेद को अधार्मिक, अपवित्र एवं घृणित कार्य समझा जाने लगा और उसके बाद तो विवाह-विच्छेद लगभग समाप्त ही हो गये। ईसा के 1000 वर्ष बाद तो यह धारणा दृढ़ हो गयी कि कन्यादान सिर्फ एक ही बार किया जाता है और पति चाहे कितना ही दुश्चरित्र एवं अत्याचारी क्यों न हो, उसे नहीं छोड़ा जा सकता।

नोट

विवाह-विच्छेद के कारण (Causes of Divorce)

शास्त्रकारों ने विवाह-विच्छेद के लिए पति के नपुंसक होने, स्त्री के बांझ होने, केवल लड़कियाँ ही होने, दुश्चरित्र होने एवं झगड़ालू होने की स्थिति में स्वीकृति दी है जो विवाह-विच्छेद के कारण हैं। दामले, फोनसेका तथा चौधरी ने विवाह-विच्छेद के अपने अध्ययनों में इसके कारणों को भी ज्ञात किया है।

दामले के अनुसार, पारिवारिक सामंजस्य में कमी (जिसमें पति-पत्नी के झगड़े, पति द्वारा दुर्व्यवहार एवं ससुराल वालों से झगड़े सम्मिलित हैं), पत्नी का बांझपन, पति या पत्नी का अनैतिक व्यवहार, बिमारी या स्वाभाव के कारण पति द्वारा परिवारिक दायित्वों का निर्वाह न करना, पति को सजा होना, आदि विवाह-विच्छेद के प्रमुख कारण रहे हैं।

फोनसेका ने पाया कि विवाह-विच्छेद के लिए परित्याग और क्रूरता (69.1%), परव्यक्तिगमन (20%), नपुंसकता, (8.3%), आदि प्रमुख कारण हैं।

टास्क विवाह-विच्छेद के कारणों पर प्रकाश डालें।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (Hindu Marriage Act, 1955)

18 मई, 1955 से जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में निवास करने वाले हिन्दुओं जिनमें जैन, बौद्ध एवं सिख भी सम्मिलित हैं, 'हिन्दू विवाह अधिनियम' लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा विवाह से सम्बन्धित पूर्व में पास किये गये सभी अधिनियम रद्द कर दिये गये और सभी हिन्दुओं पर एक समान क़ानून लागू किया गया। इस अधिनियम में हिन्दू विवाह की प्रचलित विभिन्न विधियों को मान्यता प्रदान की गयी है। साथ ही सभी जातियों के स्त्री-पुरुषों को विवाह एवं तलाक के अधिकार प्रदान किये गये हैं इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

विवाह की शर्तें (Conditions of Marriage)

किन्हीं दो हिन्दू स्त्री-पुरुषों के बीच विवाह के लिए निम्नांकित शर्तें रखी गयी हैं–

(*i*) स्त्री एवं पुरुष दोनों में से किसी का विवाह के समय दूसरा जीवन-साथ जीवित न हो। (*ii*) वर-वधू दोनों में से कोई भी विवाह के समय पागल या मूर्ख न हो। (*iii*) विवाह के समय वर की आयु 18 वर्ष और वधू की आयु 15 वर्ष से कम न हो, किन्तु मई 1976 में इस अधिनियम में संशोधन कर वर की आयु 21 वर्ष तथा वधू की आयु 18 वर्ष कर दी गयी है। (*iv*) दोनों पक्ष निषेधात्मक नातेदारी सम्बन्धों में न आते हों अर्थात् जिन प्रथाओं से वे नियन्त्रित होते हैं उनके विपरीत न हों। (*v*) दोनों पक्ष सपिण्डी न हों यदि उनकी परम्परा के अनुसार सपिण्ड विवाह मान्य है तो ऐसे विवाह को मान्यता दी जायेगी। (*vi*) यदि वधू की आयु 18 से कम है तो उसके अभिभावकों की स्वीकृति जरूरी है, अभिभावक न होने पर ऐसी अनुमति के बिना भी विवाह वैध है।

विवाह-सम्बन्ध की समाप्ति (Void of Marriage)

निम्नांकित दशाओं में विवाह होने पर भी उसे रद्द किया जा सकता है–

(*i*) विवाह के समय दोनों पक्षों में से किसी एक का भी जीवन-साथी जीवित हो और उससे तलाक न हुआ हो। (*ii*) विवाह के समय एक पक्ष नपुंसक हो। (*iii*) विवाह के समय कोई भी एक पक्ष जड़ बुद्धि या पागल हो। (*iv*) विवाह के एक वर्ष के अन्दर यह प्रमाणित हो जाय कि प्रार्थी अथवा उसके संरक्षक की स्वीकृति बलपूर्वक या कपट

से ली गयी थी। (*v*) विवाह के एक वर्ष के भीतर यह प्रमाणित हो जाय कि विवाह के समय पत्नी किसी अन्य पुरुष से गर्भवती थी और प्रार्थी इस बात से अनभिज्ञ था।

न्यायिक पृथक्करण (Judicial Separation)

इस अधिनियम की धारा 10 में कुछ आधारों पर पति-पत्नी को अलग रहने की आज्ञा दी जा सकती है। यदि पृथक् रहकर वे मतभेदों को भुलाने में सफल हो जाते हैं तो वैवाहिक सम्बन्धों की पुनर्स्थापना की जा सकती है। न्यायिक पृथक्करण के आधार निम्नांकित हैं–

(*i*) बिना कारण बताये प्रार्थी को दूसरे पक्ष ने प्रार्थना-पत्र देने के दो वर्ष पूर्व से छोड़ रखा हो। (*ii*) प्रार्थी के साथ दूसरे पक्ष द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया जाता हो। (*iii*) प्रार्थना-पत्र देने के एक वर्ष पूर्व से दूसरा पक्ष असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित हो। (*iv*) दूसरे पक्ष को कोई ऐसा संक्रामक यौन रोग हो जो प्रार्थी के संसर्ग से नहीं हुआ हो। (*v*) यदि दूसरा पक्ष प्रार्थना-पत्र देने के एक वर्ष पूर्व से पागल हो। (*vi*) यदि दूसरे पक्ष ने विवाह होने के बाद अन्य व्यक्ति के साथ सम्भोग किया हो।

क्या आप जानते हैं न्यायिक पृथक्करण ही आज्ञा मिलने के बाद दो वर्ष के भीतर भी वे अपने सम्बन्धों को सुधारने में असफल रहते हैं तो वे तलाक के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं जो कि धारा 13 के अनुसार स्वीकृत किया जा सकता है।

विवाह-विच्छेद (Divorce)

निम्नांकित आधारों पर न्यायालय विवाह-विच्छेद की स्वीकृति दे सकता है–

(*i*) दूसरा पक्ष व्यभिचारी हो। (*ii*) दूसरे पक्ष ने धर्म-परिवर्तन कर लिया हो और हिन्दू न रह गया हो। (*iii*) प्रार्थना-पत्र दिये जाने के तीन वर्ष पहले से दूसरा पक्ष असाध्य कुष्ठ या संक्रामक रोग से पीड़ित हो। (*iv*) दूसरा पक्ष संन्यासी हो गया हो। (*v*) पिछले सात वर्षों से दूसरे पक्ष के जीवित होने के बारे में न सुना गया हो। (*vi*)दूसरे पक्ष ने न्यायिक पृथक्करण के दो वर्ष या उससे अधिक अवधि के बाद तक पुनः सहवास न किया हो। (*vii*) दूसरे पक्ष ने दाम्पत्य अधिकारों के पुनः स्थापना हो जाने के दो वर्ष बाद तक उस पर अमल न किया हो। (*viii*) पति बलात्कार, गुदा मैथुन (Sodomy) अथवा पशुगमन (bestiality) का दोषी हो।

इस अधिनियम से स्पष्ट है कि **न्यायिक पृथक्करण और विवाह-विच्छेद** दो भिन्न बातें हैं। पृथक्करण की आज्ञा देकर न्यायालय दोनों पक्षों को समझौते के अवसर प्रदान करता है। यदि फिर भी वे साथ रहने को सहमत न हों तो विवाह भंग करने की स्वीकृति प्रदान की जाती है। कुछ परिस्थितियों में ही विवाह-विच्छेद की सीधी अनुमति दी जा सकती है। इस अधिनियम में पति अथवा पत्नी के निर्वाह धन (Alimony) की व्यवस्था भी की गयी है। यह राशि उस समय तक दी जायेगी जब तक निर्वाह धन प्राप्त करने वाला दूसरा विवाह न कर ले। इस अधिनियम के द्वारा पृथक्करण एवं विवाह-विच्छेद प्राप्त करना उतना सरल नहीं है जितना सोचा जाता है।

26.4 मुसलमानों में विवाह-विच्छेद (तलाक) (Divorce Among Muslims)

मुस्लिम विवाह एक समझौता है, दोनों पक्षों में से कोई भी पक्ष जब इस समझौते का पालन नहीं करता है तो तलाक द्वारा विवाह-विच्छेद किया जा सकता है। प्राचीन अरब में 'खोल' की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार पिता अपनी पुत्री को कभी भी अपने पति के बन्धन से मुक्त करा सकता था। ऐसा करने के लिए उसे वर द्वारा दिया गया सदक अर्थात् वधू-मूल्य लौटाना पड़ता था। आगे चलकर 'सदक' ने ही 'मेहर' का रूप ले लिया। पति की अनुमति मिलने

पर स्त्री पति द्वारा दिया गया मेहर लौट कर विवाह-विच्छेद कर सकती है। तलाक के क्षेत्र में मुस्लिम कानून पुरुषों के पक्ष में झुका हुआ है।

मुस्लिम तलाक क़ानून के अनुसार पति अपनी पत्नी को जब चाहे छोड़ सकता है। उसके लिए इतना ही पर्याप्त है कि वह पत्नी से चार माह तक सहवास न करे। मुसलमानों में तलाक अदालत एवं बिना अदालत की सहायता से तथा लिखित और मौखिक दोनों तरीकों से हो सकता है। लिखित में तलाक देने को तलाकनामा कहा जाता है। स्त्री की तुलना में पुरुष को ही तलाक देने की अधिक स्वतन्त्रता है।

तलाक के प्रकार निम्नांकित हैं–

1. **तलाक–**मुस्लिम क़ानून के अनुसार कोई भी पुरुष जो बालिग और स्वस्थ मस्तिष्क वाला है, बिना कारण बताये अपनी स्त्री को तलाक दे सकता है। नशे की हालत तथा पत्नी की अनुपस्थिति में भी तलाक शब्द के उच्चारण से ही तलाक हो जाता है, इसे मौखिक तलाक कहते हैं। मौखिक तलाक के तीन प्रकार हैं–

(क) **तलाके अहसन** (Talak-e-Ahasan)–इसमें पति पत्नी के तुहर (मासिक धर्म) के समय एक बार तलाक की घोषणा करता है और उसके बाद 'इद्दत' की अवधि में पत्नी से यौन-सम्बन्ध स्थापित नहीं करता है। 'इद्दत' चार मासिक धर्मों के बीच तीन महीने की अवधि को कहते हैं। इस अवधि तक यदि पति पत्नी के साथ सहवास नहीं करता है तो अवधि समाप्ति पर तलाक हो जाता है। 'इद्दत' की अवधि के पालन का मुख्य लक्ष्य यह ज्ञात करना है कि स्त्री गर्भवती तो नहीं है। इसके अतिरिक्त इस अवधि में पति को तलाक के निर्णय पर पुन: सोचने का अवसर मिल जाता है और वह चाहे जो अपना निर्णय बदल सकता है।

(ख) **तलाके हसन** (Talak-e-Hasan)–इसमें पति तीन तुहरों अथा मासिक धर्मों के बीच के समय में तीन बार तलाक शब्द कहता है और इस बीच वह पत्नी से सहवास नहीं करता इस अवधि की समाप्ति के बाद तलाक मान लिया जाता है।

(ग) **तलाक-उल-बिद्दत** (Talak-ul-Biddat)–इसमें पति किसी भी मासिक धर्म के अवसर पर थोड़े-थोड़े समय के बाद तलाक की तीन बार घोषणा करता है और इसके बाद इद्दत की अविधि समाप्त होने पर तलाक मान लिया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

7. मुसलमानों में ········· अदालत या बिना अदालत की सहायता से तथा लिखित या मौखिक दोनों तरिकों से हो सकता है।
8. मुसलमान ········· के अनुसार कोई भी पुरुष जो बालिग और स्वस्थ मस्तिक वाला है, बिना कारण बताये स्त्री को तलाक दे सकता है।
9. 'इद्दत' की अवधि के पालन का मुख्य लक्ष्य यह ज्ञात करना है कि स्त्री ········· तो नहीं है।

2. **इला** (Illa or Vow of Continence)–इसमें पति खुदा की कसम खाकर यह घोषण करता है कि वह चार माह या अधिक समय तक पत्नी के साथ सहवास नहीं करेगा। इस अवधि तक यदि वह सहवास नहीं करता है तो विवाह-विच्छेद हो जाता है।

3. **जिहर** (Zihar)–जब पति अपनी पत्नी की तुलना किसी ऐसे सम्बन्धी से करे जिनसे विवाह निषेध है; जैसे, वह यह कहे तुम तो मेरी माँ के समान हो, तो पत्नी पति को प्रायश्चित करने के लिए कहती है। यदि पति ऐसा नहीं करता है तो पत्नी अदालत से तलाक की माँग कर सकती है और अदालत ऐसी स्थिति में तलाक स्वीकार कर देती है।

4. **खुला** (Khula)–इसमें पत्नी पति से कहती है कि यदि वह उसे विवाह से मुक्त कर दे तो वह उसे मेहर वापस लौटाकर उसकी क्षतिपूर्ति कर देगी। यदि दोनों में सहमति हो जाती है तो तलाक हो जाता है।

5. **मुबारत** (Mubarat)–यह विवाह-विच्छेद दोनों की पारस्परिक सहमति से होता है, किन्तु इसमें खुला की तरह पत्नी पति को कोई धन नहीं देती है। इस प्रकार के तलाक में पत्नी इद्दत की अवधि के दौरान पति के पास ही रहती है।

6. **लियान** (Lian)–इसमें पति पत्नी पर व्यभिचार का आरोप लगाता है और पत्नी इसका खण्डन करती है और अदालत में प्रार्थना करती है कि यह तो पति अपने आरोप को वापस ले या खुदा को हाजिर-नाजिर समझ कर घोषण करे कि यह आरोप सत्य है। यदि पति का आरोप झूठा सिद्ध होता है तो पत्नी को विवाह-विच्छेद का अधिकार मिल जाता है। यदि पति अपना आरोप वापस ले लेता है तो मुकदमा समाप्त हो जाता है।

7. **तलाके तफबीज** (Talak Thafabeej)–इसमें पत्नी तलाक की माँग करती है जो उसे विवाह के समय पति द्वारा दिये गये अधिकारों के आधार पर प्राप्त होता है।

न्यायिक तलाक (Judicial Divorce)

शरीयत अधिनियम, 1937 (Shariat Act, 1937) ने मुस्लिम स्त्री को पति के नपुंसक होने और उसके द्वारा पत्नी पर झूठा व्यभिचार का दोषारोपण करने की स्थिति में तलाक का अधिकार प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त इला एवं जिहर के आधार पर भी तलाक दिया जा सकता है।

सन् 1939 में **मुस्लिम विवाह-विच्छेद अधिनियम** (Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939) बना। इस अधिनियम ने मुस्लिम स्त्री को निम्नांकित आधारों पर तलाक देने का अधिकार प्रदान किया है–

1. यदि चार वर्ष से पति का कोई पता न हो।
2. यदि पति दो वर्ष से पत्नी का भरण-पोषण करने में असमर्थ हो।
3. यदि पति को सात या अधिक वर्षों के लिए जेल की सजा हुई हो।
4. यदि पति तीन वर्ष से बिना किसी कारण के अपने वैवाहिक कर्तव्यों को निभाने में असमर्थ रहा हो।
5. यदि पति नपुंसक हो।
6. यदि पति पागल हो।
7. यदि पति संक्रामक यौन रोग एवं कोढ़ से ग्रस्त हो।
8. यदि उसका विवाह 15 वर्ष से कम की आयु में उसके पिता या अन्य संरक्षकों द्वारा कर दिया गया हो और इस अवधि में पति-पत्नी में यौन-सम्बन्ध स्थापित नहीं हुए हों और लड़के की 18 वर्ष की आयु पूर्ण होने के पहले ही ऐसे विवाह के विरुद्ध प्रतिवेदन कर दिया गया हो।
9. यदि पति पत्नी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता हो।
10. यदि पति चरित्रहीन स्त्रियों से सम्पर्क रखता हो।
11. यदि पति पत्नी को व्यभिचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने को बाध्य करता हो।
12. यदि पति पत्नी की सम्पत्ति को बेचता हो, उसके सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों में बाधा डालता हो।
13. यदि पति पत्नी के धार्मिक कार्यों में बाधा डालता हो।
14. एक से अधिक पत्नियाँ होने पर पति समान व्यवहार नहीं करता हो।
15. किसी अन्य आधार पर जो मुस्लिम क़ानून के अनुसार तलाक के लिए मान्य हो।

नोट

26.5 ईसाइयों में विवाह-विच्छेद (Divorce Among Christians)

ईसाई धर्म विवाह-विच्छेद की स्वीकृति नहीं देता। इनके किसी भी गिरजाघर में विवाह-विच्छेद की घोषणा नहीं की जा सकती है। रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय विवाह-विच्छेद के पूर्णत: विरुद्ध है जबकि प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदाय विशेष परिस्थितियों में इसका समर्थन करता है। किसी भी चर्च में न तो विवाह-विच्छेद किया जा सकता है और न ही विवाह-विच्छेद करने वाले स्त्री-पुरुष वहाँ पुन: विवाह कर सकते हैं। पहले जीवन-साथी की मृत्यु के एक वर्ष के पश्चात् ही चर्च उसे पुनर्विवाह की आज्ञा प्रदान करता है। यदि कोई पक्ष निषेधात्मक सम्बन्धों के अन्तर्गत आता हो, पागल हो गया हो या दूसरे पक्ष के साथ क्रूरता का व्यवहार करता हो, तो ऐसी परिस्थिति में चर्च उन्हें वैवाहिक पृथक्करण की आज्ञा दे देता है। ईसाइयों में सन्तानोत्पत्ति के बजाय पारस्परिक प्रेम को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इनमें बांझपन को भी वैवाहिक पृथक्करण का आधार माना गया है।

विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में ईसा मसीह ने कहा है, "वे दोनों एक जिस्म (शरीर) होंगे, बस वे दो नहीं बल्कि एक जिस्म हैं। इसलिए जिसे खुदा ने जोड़ा है, उसे आदमी जुदा न करे।" इस सम्बन्ध में आगे कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी को व्यभिचारिणी होने के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से छोड़ेगा और दूसरी स्त्री से विवाह करेगा, वह व्यभिचार करता है; और वह जो छोड़ी हुई स्त्री से विवाह करता है व्यभिचार करता है। स्पष्ट है कि ईसाइयों में विवाह-विच्छेद को धार्मिक दृष्टि से मान्यता प्रदान नहीं की जाती। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ईसाइयों में विवाह-विच्छेद नहीं पाये जाते हैं, उनमें अन्य धर्मानुयायियों के बजाय विवाह-विच्छेद अधिक की होते हैं। व्यवहार रूप में पारस्परिक प्रेम में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने पर ये लोग विवाह-विच्छेद को अनुचित नहीं मानते, परन्तु क्योंकि अनेक भारतीय ईसाई हिन्दू धर्म को छोड़कर ईसाई बने हैं, इस कारण हिन्दू मनोवृत्तियों का प्रभाव आज भी उन पर है और उनमें विवाह-विच्छेद की दर पाश्चात्य देशों के ईसाइयों की तुलना में कम ही है।

टास्क ईसाइयों में विवाह-विच्छेदन के कारणों का संक्षिप्त वर्णन करें?

26.6 भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 (The Indian Divorce Act, 1869)

इस अधिनियम के अनुसार, ईसाइयों को वैवाहिक रूप से विवाह-विच्छेद का अधिकार दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत धारा 10 में पत्नी के व्यभिचारिणी होने पर पति विवाह-विच्छेद के लिए अदालत में प्रार्थना-पत्र दे सकता है और पत्नी निम्नांकित आधारों में से किसी भी एक आधार पर विवाह-विच्छेद की माँग कर सकती है–

1. पति ने ईसाई धर्म को छोड़कर कोई अन्य धर्म स्वीकार कर लिया हो और किसी अन्य स्त्री के साथ विवाह कर लिया हो।
2. पति ने निषिद्ध सम्बन्धों के अन्तर्गत आने वाली किसी स्त्री के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो।
3. पति ने किसी अन्य स्त्री के साथ विवाह कर लिया हो और उसके साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित कर लिया हो।
4. पति बलात्कार, अप्राकृतिक व्यभिचार या पशुता का अपराधी हो।
5. पति के द्वारा किसी दूसरी स्त्री के साथ अनुचित मैथुन किया गया हो और पत्नी का कम-से-कम दो वर्ष से परित्याग कर दिया हो।

6. पति बहु-विवाह, व्यभिचार का अपराधी हो।
7. पति पत्नी के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करता हो।

इस अधिनियम की धारा 19 के अनुसार, अग्रलिखित दशाओं में ईसाई विवाह अमान्य घोषित किया जा सकता है–

1. विवाह के समय कोई पक्ष नपुंसक हो।
2. पति-पत्नी एक-दूसरे के निषेधात्मक रक्त-सम्बन्धी या विवाह-सम्बन्धी हों।
3. कोई भी एक पक्ष विवाह के समय पागल हो।
4. दोनों में से किसी का भी पहला पति या पत्नी जीवित हो।

विवाह को अवैध घोषित करने के लिए हाई कोर्ट द्वारा प्रमाणित राजाज्ञा होनी चाहिए। यदि विवाह के लिए किसी पक्ष की स्वीकृति छल या कपट द्वारा ली गयी है, तो हाईकोर्ट ऐसे विवाह को अवैध घोषित कर सकता है।

धारा 22 के अनुसार, व्यभिचार, क्रूरता अथवा परित्याग के कारण **न्यायिक पृथक्करण** की आज्ञा प्राप्त की जाती है। धारा 23 के अन्तर्गत धारा 19 में वर्णित आधारों पर भी न्यायिक पृथक्करण प्राप्त किया जा सकता है। धारा 23 के अनुसार, पति-पत्नी में से किसी के द्वारा भी वैवाहिक अधिकारों के पुनःस्थापन (Restitution of Conjugal Rights) के लिए प्रार्थना-पत्र दिया जा सकता है। धारा 34 के अन्तर्गत कोई भी पति अपनी पत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले व्यक्ति से क्षतिपूर्ति की माँग कर सकता है। धारा 36 में पत्नी को अपने पति से भरण-पोषण की माँग करने की व्यवस्था की गयी है। इस अधिनियम की धारा 50 के अनुसार, विवाह-विच्छेद की राजाज्ञा प्राप्त होने के छः महीने पश्चात् कोई भी पक्ष दूसरा विवाह कर सकता है, बशर्ते कि इस अवधि के बीच किसी प्रकार की कोई अपील नहीं की गई हो।

26.7 सारांश (Summary)

- महिलाओं के विरुद्ध हिंसा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। महाभारत काल में युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए में दाँव पर लगा दिया था। रामायण काल में रावण ने सीता का अपहरण किया था।
- महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के एक वर्गीकरण में हिंसा को तीन भागों में विभक्त किया गया है।
- अपराधिक हिंसा–बलात्कार, अपहरण आदि।
- घरेलू हिंसा–देहज संबंधी मृत्यु, पत्नी को पीटना, लैंगिक दुर्व्यवहार।
- सामाजिक हिंसा–दहेज के लिए तंग करना महिलाओं से छेड़-छाड़, स्त्री को संपत्ति में हिस्सा न देना।
- मुस्लिम तलाक क़ानून के अनुसार पुरुष स्त्री को जब चाहे तलाक दे सकता है।
- ईसाइयों में रोमन कैथोलिक संप्रदाय विवाह विच्छेद के बिल्कुल विरुद्ध है तथा प्रोरेस्टेंट सप्रदाय विशेष परिस्थिति में इसका समर्थन करता है।

26.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **दण्ड (Punishment)**–दण्ड अप्रिय तथा ग़ैर कानूनी क्रियाओं के लिए अपराधी को राज्य द्वारा दी जानेवाली पीड़ा है। ऐसे व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा या यातना देकर उसे बुरे कर्म का अहसास कराया जाता है।
2. **वेश्यावृत्ति (Prostitution)**–वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए 1956 में स्त्रियों तथा कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम पारित किया गया।

नोट

26.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परिवार में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के प्रकारों को बताएँ।
2. विधवाओं के प्रति हिंसा पर टिप्पणी लिखें।
3. हिंदुओं में विवाह-विच्छेद की समस्याओं पर विचार करें।
4. मुस्लिम तथा ईसाइयों में विवाह-विच्छेद के कारणों को बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. पाँच गुना
2. घटना
3. दण्डित
4. अशिक्षित
5. भरण-पोषण
6. विरुद्ध
7. तलाक
8. क़ानून
9. गर्भवती।

26.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में समाज–विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।
2. परिवार का समाजशास्त्र–डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

इकाई–27: पारिवारिक समस्याएँ: दहेज हत्या और बहू को जलाना (Family Problems: Dowry Death and Bride Burning)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 दहेज, हत्या एवं बहू को जलाना (Dowry Death and Bride Burning)

27.2 दहेज (Dowry)

27.3 सारांश (Summary)

27.4 शब्दकोश (Keywords)

27.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- दहेज के कारण होने वाली हत्या को रोकना।
- दहेज के कारण बहुओं को जलाने से रोकना।
- इसके लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासों को बताना।

प्रस्तावना (Introduction)

समाज में फैली तमाम रूढ़ियों एवं प्रथाओं में संभवत: सबसे अधिक कलंकित करने वाली प्रथा है-दहेज प्रथा। प्राचीन काल में भी दहेज प्रथा थी पर आजकल के समान विवाह के पूर्व कोई शर्त न थी। विवाह की समाप्ति पर वर को कन्या के अभिभावक अपनी सामर्थ्य और उत्साह से दहेज देते थे अब तो यह प्रथा यहाँ तक पहुँच गई है कि दहेज न लाने पर बहू को नए-नए ढंग से प्रताड़ित किया जाता है, उन्हें जिंदा जला दिया जाता है।

27.1 दहेज, हत्या एवं बहू को जलाना (Dowry Death and Bride Burning)

वर्तमान में दहेज एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। इसके कारण माता-पिता के लिए लड़कियों का विवाह एक अभिशाप बन गया है। जीवन-साथी चुनने का सीमित क्षेत्र, बाल-विवाह की अनिवार्यता, कुलीन विवाह, शिक्षा एवं सामाजिक प्रतिष्ठा, धन का महत्त्व, महंगी शिक्षा, सामाजिक प्रथा एवं प्रदर्शन तथा झूठी शान, आदि के कारण दहेज लेना और देना आवश्यक हो गया है। दहेज के कारण न जाने कितनी स्त्रियों को जला दिया गया, यातनाएँ दी गयी और आत्महत्याएँ हुई हैं। आए दिन पत्र-पत्रिकाओं में हम दहेज के कारण स्त्रियों की हत्याओं एवं उन्हें जला देने के समाचार पढ़ते हैं।

नोट्स दहेज ने ही बालिका-वध, पारिवारिक विघटन, ऋणग्रस्तता, निम्न जीवन-स्तर, बहुपत्नी प्रथा, बेमेल-विवाह, अनैतिकता, अपराध, भ्रष्टाचार एवं अनेक मानसिक बीमारियों को जन्म दिया है। दहेज के कारण ही कई परिवारों में पुत्री के जन्म को अपशकुन माना जाता है।

सामाजिक और आर्थिक विषमताएं बढ़ जाने के कारण दहेज एक महत्त्वपूर्ण प्रलोभन बन गया है। दहेज में रुपया से लेकर बर्तनों, जेवर, रेफ्रिजरेटर, कार तथा एयर कण्डिशनर तक की शर्तें होती हैं। इस प्रकार के लेन-देन के पीछे माता-पिता की इच्छा यह होती है कि इससे लड़की को ससुराल में प्रतिष्ठा और आर्थिक सुरक्षा प्राप्त होगी। किन्तु पुत्री के लिए सुरक्षा और उच्च सामाजिक स्थिति की यह कामना उसके माता-पिता को ऐसे असुरक्षित कगार पर ला खड़ा कर देती है जहाँ उन्हें ऐसी मांगें भी पूरी करनी पड़ सकती हैं जो उनकी आर्थिक क्षमता के बाहर होती हैं तब वे कर्जदार बन जाते हैं। वर्तमान में तो दहेज उन जातियों में भी प्रचलित हो गया है जहाँ पहले इसका नाम भी नहीं था। दहेज के कारण लड़कों के मोल-भाव होते हैं और जो ऊंची बोली लगाता है, उसे ही अच्छा वर मिल पाता है।

27.2 दहेज (Dowry)

भारतीय स्त्रियों की दहेज एक और विशेष समस्या है। हाल के वर्षों में नवजवान विवाहित स्त्रियों की मृत्यु की घटना ज्यादा हुई जिन्हें दहेज की शिकार कहा गया है। स्वेच्छिक संगठनों ने अपनी आवाज़ उठाते हुए दहेज के मुद्दे का विरोध किया है। नवजवान विवाहित स्त्रियों की हत्या या स्वयं उनके द्वारा आत्महत्या करना समाचार पत्रों के सामान्य शीर्षक हो गये। इस दबाव के कारण **दहेज निषेध अधिनियम, 1961** तथा 1984 में संशोधन हुआ। सन् 1986 में इस अधिनियम में पुन: संशोधन किया गया। **अब इस क़ानून के तहत न्यायालय के पास यह शक्ति आ गयी है कि वह अपने ज्ञान के आधार पर या किसी मान्यता प्राप्त कल्याण संस्था की शिकायत पर उसके विरुद्ध कार्यवाही कर सके।** इन अपराधों की जाँच ठीक प्रकार से करने के लिये अ-ज़मानती बना दिया गया है। भारतीय दण्ड संहिता में एक नया अनुच्छेद जोड़ा गया है जिसे दहेज हत्या कहा जाता है। भारतीय साक्षी अधिनियम में भी कुछ संशोधन हुए हैं जिससे गवाह जुटाने की परेशानी से बचा जा सके। लड़की की मृत्यु विवाह के सात वर्षों के अन्दर असामान्य परिस्थितियों में हुई हो तो इसमें पति या उसके परिवार वालों को प्रमाण देने के लिये उत्तरदायी ठहराया गया है। इस संशोधन में यह प्रावधान भी है कि वे दहेज निषेध अधिकारी नियुक्त कर दें, और दहेज सम्बन्धी मुद्दों को देखने के लिए एक कमेटी भी बैठा दें। दहेज के मुद्दों को प्रभावशाली ढंग से निपटाने के लिये दहेज विरोधी प्रकोष्ठ की भी स्थापना की गयी है।

इस पुस्तक में अन्यत्र हमने लिखा है कि दहेज की समस्या देश की सम्पूर्ण स्त्रियों की समस्या नहीं है। पहली बात तो यह है कि यह प्रथा अपने भयंकर स्वरूप में उच्च जातियों में पायी जाती है। उच्च जातियों में भी वैश्य जातियाँ इसकी विशेष शिकार हैं। निम्न जातियों में सामान्यतया दहेज प्रथा नहीं है। अगर आँचलिक दृष्टि से देखें तो यह प्रथा उत्तर की हिन्दू जातियों में अधिक है और दक्षिण आँचलों में इसका प्रभाव नगण्य है। इधर उत्तर-पूर्व में जहाँ जनजाति जनसंख्या बहुत है, दहेज का कोई चलन नहीं है। यहाँ तो वधू मूल्य प्रचलित है। मुसलमानों, आदिवासियों, ईसाइयों और पारसियों में दहेज प्रथा नहीं पायी जाती।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ……… ने अपनी आवाज उठाते हुए दहेज के मुद्दे का विरोध किया है।
2. भारतीय साक्षी अधीनियम में भी कुछ ……… हुए हैं जिससे गवाह जुटाने की परेशानी से बचा जा सके।
3. दहेज की समस्या देश की ……… स्त्रियों की समस्या नहीं है।

दहेज से संबंधित हत्याएँ (Dowry Deaths)

यद्यपि दहेज निषेधाज्ञा क़ानून, 1961 (डाउरी प्रोहिबिशन एक्ट, 1961) ने दहेज प्रथा पर रोक लगा दी है, परन्तु वास्तव में कानून केवल यही स्वीकार करता है कि समस्या विद्यमान है। वास्तविक रूप से यह कभी सुनने में नहीं आता कि किसी पति या उसके परिवार पर दहेज लेने के आग्रह को लेकर कोई मुकदमा चलाया गया हो। यदि कुछ हुआ है तो यह कि गत वर्षों में दहेज की माँग और उसके साथ-साथ दहेज को लेकर हत्याएँ बढ़ीं हैं। यदि एक सन्तुलित अनुमान लगाया जाये तो भारत में दहेज देने अथवा पूरा नहीं देने के कारण प्रतिवर्ष हत्याओं की संख्या लगभग 5,000 मानी जा सकती हैं। भारत सरकार की 1993 की रिपोर्ट के अनुसार (जनवरी 29, 1993) भारत में वर्तमान में हर 102 मिनट में एक दहेज से संबंधित हत्या होती है, तथा एक दिन में 33 व एक वर्ष में लगभग 5,000। अधिकांश दहेज-हत्याएं पति के घर के एकान्त में और परिवार के सदस्यों की मिलिभगत से होती हैं। इसलिये अदालतें प्रमाण के अभाव में दंडित न कर पाने को स्वीकार करती हैं। कभी-कभी पुलिस छानबीन करने में इतनी कठोर हो जाती है कि न्यायालय भी पुलिस अधिकारियों की कार्य-कुशलता और सत्यनिष्ठा पर संदेह प्रकट करते हैं।

दहेज-हत्याओं की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ जिनका मेरे आनुभविक अध्ययन से पता चला ये हैं: (1) मध्यम वर्ग की स्त्रियों के उत्पीड़न की दर निम्नवर्ग या उच्चवर्ग की स्त्रियों से अधिक होती हैं; (2) लगभग 70.0 प्रतिशत पीड़ित 21-24 वर्ष आयु-समूह की होती हैं, अर्थात् वे केवल शारीरिक रूप से ही नहीं, अपितु सामाजिक एवं भावात्मक रूप से भी परिपक्व होती हैं; (3) यह समस्या निम्न जाति की अपेक्षा उच्चजाति की अधिक हैं; (4) वास्तविक हत्या से पहले युवा वधू को कई प्रकार से बताया/अपमानित किया जाता है जो कि पीड़ित के परिवार के सदस्यों के सामाजिक व्यवहार के अव्यवस्थित संरूप को दर्शाता है; (5) दहेज-हत्या के कारणों में सबसे महत्त्वपूर्ण समाजशास्त्रीय कारक अपराधी पर वातावरण का दबाव या सामाजिक तनाव हैं जो उसके परिवार के आन्तरिक और बाह्य कारणों से उत्पन्न होते हैं; अन्य महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कारक हत्यारे का सत्तावादी व्यक्तित्व, प्रबल प्रकृति, और उसके व्यक्तित्व का असमायोजन है; (6) लड़की के शिक्षा के स्तर और दहेज के लिये की गई उसकी हत्या में कोई पारस्परिक संबंध नहीं होता; और (7) परिवार की रचना नव वधू के जलाने में निर्णायक भूमिका अदा करती है।

नोट

27.3 सारांश (Summary)

- जीवन साथी चुनाव का सीमित क्षेत्र, बाल विवाह की अनिवार्यता कुलीन विवाह, धन का महत्त्व आदि के कारण दहेज लेना और देना आवश्यक हो गया है।
- दहेज भारत में एक गंभीर समस्या बन गया है।
- दहेज के कारण हजारों स्त्रियों को प्रतिवर्ष जलाया जाता है।
- देश में प्रतिवर्ष लगभग पाँच हजार हत्याएँ दहेज के कारण होती है।
- सरकार द्वारा 'दहेज निरोधक अधिनियम 1961, बनाया गया है जिसके अंतर्गत दहेज लेना और देना दोनों अपराध है।

27.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **हरण विवाह (Marriage by capture)—**आदिवासियों में जीवन-साथी प्राप्त करने का एक तरीका, जिसमें एक व्यक्ति बलात् अपहरण कर पत्नी प्राप्त करता है। ऐसा माना जाता है कि उद्‌विकासीय स्तर पर जीवन-साथी प्राप्त करने का यह सर्व प्रथम तरीका होगा।
2. **दहेज (Dowry)—**दहेज निषेध अधिनियम, 1961 तथा 1984 में संशोधन हुआ।

27.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'दहेज एक गंभीर समस्या है' कैसे?
2. दहेज प्रथा को कैसे समाप्त किया जा सकता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. स्वेच्छिक संगठनों 2. संशोधन 3. सम्पूर्ण।

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार—के. एम. कपाड़िया।
2. एन्सीयन्ट सोसाइटी—सी. एच. मोरगा।

नोट

इकाई–28: भारत में विवाह एवं परिवारः क्षेत्रीय असमानता (Family and Marriage in India: Regional Diversities)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 उत्तर परिक्षेत्र (Northern Zone)

28.2 मध्य परिक्षेत्र (Central Zone)

28.3 दक्षिण परिक्षेत्र (South Zone)

28.4 कुल संगठन और विवाह के नियम (Clan Organisation and Marriage Rules)

28.5 उत्तर और दक्षिण भारत की नातेदारी व्यवस्था की तुलना (Comparison of Kinship Systems of North and South)

28.6 पूर्वी परिक्षेत्र (Eastern Zone)

28.7 सारांश (Summary)

28.8 शब्दकोश (Keywords)

28.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

28.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विभिन्न क्षेत्र के समाजों में विवाह में क्षेत्रीय असमानता बताना।
- विभिन्न क्षेत्र के समाजों में परिवार में क्षेत्रीय असमानता बताना।
- भारत में परिवार तथा विवाह में क्षेत्रीय असमानता बताना।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

विवाह और परिवार एक ही सामाजिक यथार्थ के दो पक्ष हैं। यह सामाजिक यथार्थ है–मनुष्य की शारीरिक-मानसिक और सामाजिक आवश्यकताएँ। विवाह और परिवार का विकास साथ-साथ हुआ है। ये दोनों संस्कृति के भी समवयस्क हैं क्योंकि बिना परिवार के नृवंश और संस्कृति को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता और बिना विवाह के परिवार की रचना संभव नहीं हो सकती।

ऐतिहासिक सामग्री की सार्थकता यह जानने में है कि क्यों किसी समाज में एक विशेष प्रकार के विवाह तथा परिवार का विकास हुआ है, न कि यह जानने में कि किसी संरचना का विकास स्वयं में किस प्रकार हुआ है।

भारत के अलग प्रांतों या क्षेत्रों में विवाह तथा परिवार के कार्य तथा नियमों में भिन्नताऐं पाई जाती है। हालांकि प्राय: सभी क्षेत्रों में परिवार और विवाह के उद्देश्य एक ही होते हैं। विवाह अनुस्थापन परिवार और प्रजनन परिवार के बीच की कड़ी है। दो एकाकी परिवारों में व्यक्तिगत सदस्यता का यह सत्य ही नातेदारी प्रथा को जन्म देता है। नातेदारी को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैं: "*परिवार से सम्बद्ध आधार पर सामाजिक सम्बन्ध*" (थियोडोरसन : 1969 : 221)। वह सम्बन्ध जो या तो समरक्तमूलक (Consanguinal) या दम्पत्तिस्वजन (Affinal) आधारित हों, व्यक्तियों के अधिकार व कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हैं। अत: नातेदारी व्यवस्था का अर्थ है: "प्रस्थितियों और भूमिकाओं और सम्बन्धों की एक ऐसी संचरित व्यवस्था जिसमें नातेदार (प्राथमिक, द्वैतियक, तृतीयक व दूरस्थ) जटिल शृंखलाबद्ध बन्धनों द्वारा परस्पर बंधे रहते हैं।" नातेदारों के बीच सम्बन्धों को बताने वाला पारस्परिक व्यवहार ऐसे शब्दों से संज्ञिप्त होता है जिनके द्वारा प्रत्येक नातेदार एक दूसरे को सम्बोन्धित करता है, अर्थात् व्यक्तिगत नाम से या नातेदारी की शब्दावली से (पिताजी, दादाजी, बहिन जी) या व्यक्ति व नातेदारी शब्दावली के सम्मिलित नाम से (राम के पिता, रीता की माँ, आदि)। नातेदारी शब्द (सम्बोधन व सन्दर्भ के) जो या तो *प्रारम्भिक* (जिन्हें किन्हीं अन्य शब्द में कम नहीं किया जा सकता, जैसे, माता, पिता, काका, चाचा, भाई, बहन, आदि) या यौगिक (जो प्रारम्भिक शब्द के योग से बना हो, जैसे बहनोई, मौसा आदि) या *वर्णनात्मक* (जो दो या अधिक प्रारम्भिक शब्दों के मेल से बना हो, जैसे बहनोई, मौसा, आदि) या वर्णनात्मक (जो दो या अधिक प्रारम्भिक शब्दों के मेल से बना हो, जैसे मौसेरी बहन, फुफेरा भाई, आदि)। और जिन्हें *एकाकी* (Isolative) कह कर विभेदित किया जाता है (एक ही नातेदार पर लागू होता है जो कि पीढ़ी, लिंग और वंश-सम्बन्धों से जाने जाते हों, जैसे भाई, बहिन, पति, पत्नी, आदि) या वर्गात्मक (Classification) शब्द दो या अधिक नातेदारी श्रेणी के लोगों पर लागू जैसे 'सम्भ्राता' (Cousin) पिता के भाइयों के पुत्रों और माता की बहिन के पुत्रों, दोनों के लिए प्रयुक्त। क्योंकि वर्गात्मक शब्द एक या अधिक मूल आधार की अवहेलना करते हैं (जैसे लिंग, आयु, पीढ़ी, दाम्पत्य मूलक निकटता, सह सम्बद्धता, विभाजन, आदि), इसलिए नातेदारों के श्रेणियों की संख्या हजारों से कुछ गिनी चुनी संख्या तक ही सीमित कर देते हैं।

हिन्दुओं के सामाजिक समारोहों, संस्कारों और दैनिक जीवन में परिवार के बाद नातेदारी समूह ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवन के संकटकाल में ही लोग केवल नातेदारों की ओर नहीं देखते हैं, बल्कि अन्य नियमित अवसरों पर भी उनकी सहायता लेते हैं। परिवार के बाद महत्त्वपूर्ण नातेदार समूह हैं: वंश और गोत्र। वंश एक रक्तमूलक एक पक्षीय वंशानुक्रम समूह (Consanguineous unilateral descent group) है जिसके सदस्य अपने को एक ज्ञात तथा वास्तविक सामान्य पूर्वज से सम्बद्ध मानते हैं। यह वंशानुक्रम समूह पितृवंशीय या मातृवंशीय हो सकता है। यह एक बहिर्विवाही (Exogamous) इकाई होती है। वंश के सदस्य आपस में भाई बहिन माने जाते हैं। वंश बन्धन कुछ पीढ़ियों तक ही रहते हैं। एक वंश परिवारों के बीच प्रमुख कड़ी सांस्कारिक उत्सवों (जैसे, जन्म, मत्यु, आदि) में सामान्य भागीदारी होती है। वंश, गोत्र में चला जाता है (Passes into) जो कि यद्यपि एक पक्षीय समूह है लेकिन वंश से बड़ा होता है। यह एक बर्हिविवाही समूह होता है। मातृवंशीय नातेदार व्यक्ति के जीवन उतने ही महत्त्व के होते हैं जितने कि पितृवंशीय नातेदार।

नोट

28.1 उत्तर परिक्षेत्र (Northern Zone)

नातेदारी की विशेषताएँ दक्षिण भारत में उत्तर तथा मध्य भारत से भिन्न होती हैं। नातेदारी व्यवस्था के सामाजिक सांस्कृतिक तत्व (Co-relates) हैं: *भाषा, जाति* (मैदानी और पहाड़ी) और क्षेत्र (Region)। नातेदारी सम्बन्धों पर इन तीनों तत्वों के प्रभाव के बावजूद कुछ सामूहिक आधारों पर नातेदारी संगठन पर बात करना सम्भव है, जैसे जाति एवं परिक्षेत्रीय आधार पर।

नोट्स यद्यपि उत्तरी परिक्षेत्र में नातेदारी व्यवहार क्षेत्र में और एक ही क्षेत्र में जाति से जाति में भिन्न है, फिर भी तुलनात्मक अध्ययन दर्शाता है कि एक 'आदर्श' उत्तरी संरूप पर बात करना सम्भव है, विशेष रूप से अधिकतर जातियों के बीच-अधिकतर सामान्य रूप से जाने वाली अभिवृत्तियों तथा प्रथाओं के सन्दर्भ में।

उत्तर परिक्षेत्र (Zone) के नातेदारी संगठन के सन्दर्भ में इरावती कर्वे (1953 : 115) ने कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएं बतायी हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं: (1) अहं (Ego) से कनिष्ट नातेदार उनके व्यक्तिगत नाम से सम्बोधित किए जाते हैं जब कि वरिष्ठ व्यक्ति नातेदारी शब्दों से। (2) ऊपरी व निचली (Ascending and descending) पीढ़ियों के सभी बच्चे अपने सहोदर समूह भाई बहिन (Sibling group) बराबर माने जाते हैं और सहोदर समूह के सभी बच्चे स्वयं के बच्चों के बराबर माने जाते हैं। (3) पीढ़ियों की एकता का सिद्धान्त माना जाता है (उदाहरणार्थ, पर बाबा, और बाबा को वही सम्मान दिया जाता है जो पिता को। (4) एक ही पीढ़ी में वृद्ध और युवा नातेदार पृथक माने जाते हैं। (5) तीन पीढ़ियों के सदस्यों के व्यवहार संरूप और कर्त्तव्य कठोरता से पालन किए जाते हैं। (6) संस्कृत मूल के कुछ प्राचीन नातेदारी शब्दों के स्थान पर नये शब्द प्रयोग किए जाने लगे हैं; उदाहरणार्थ पितामह के स्थान पर पिता, 'वक्ता' से बड़े के लिए 'जी' उपसर्ग लगाया जाता है (जैसे चाचा जी, ताऊ जी)। बंगाल में 'जी' के स्थान पर 'मोशाय' उपसर्ग लगाया जाता है। (7) निकट नातेदारों के बीच विवाह की अनुमति नहीं है। (8) विवाह के बाद लड़की को अपने सास-ससुर से (बातचीत में) आजादी (Free) नहीं रहती, बल्कि जब वह माँ बन जाती है तब वह सम्मान व शक्ति का पद प्राप्त कर लेती है और तब उस पर लगे प्रतिबन्ध कम हो जाते हैं। (9) परिवार इसी प्रकार संरचित होता है कि बच्चे, माता-पिता, दादा-दादी या तो साथ रहते हैं या उनके प्रति नातेदारी दायित्व पूरे किए जाते हैं। (10) उस संयुक्त परिवार के अतिरिक्त, जो व्यक्ति के लिए निकट सम्बन्धों की परिधि का प्रतिनिधित्व करता है, भी नातेदारी एक वृहत परिधि होती है जो उसके जीवन में महत्त्वपूर्ण होती है। यह बंधुत्व, उसके पितृ-स्वजन या मातृ-स्वजनों का प्रतिनिधित्व करता है जो उसके साथ तब खड़े रहते हैं और सहायता करते हैं जब तत्काल परिवार (सहायता में) कम पड़ जाता है।

28.2 मध्य परिक्षेत्र (Central Zone)

मध्य भारत के नातेदारी संगठन की विशेषताएँ उत्तर भारत से अधिक भिन्न नहीं हैं। मध्य भारत में नातेदारी की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं: (1) प्रत्येक क्षेत्र में विवाह प्रथाएँ उत्तर के समान ही मानी जाती हैं, अर्थात समरत्कता (Consanguinity) मुख्य विचार है जो विवाह में लागू रहता है। (2) अनेक जातियाँ बहिर्विवाही कुलों (Clans) में विभाजित होती हैं। कुछ जातियों में बहिर्विवाही कुल प्रतिलोम विवाही श्रेष्ठक्रम (Hypergamous hierarchy) में व्यवस्थित होते हैं। (3) नातेदारी शब्दावली विभिन्न नातेदारों के बीच घनिष्टता और निकटता दर्शाती है।

नोट

नातेदारों के बीच सम्बन्ध 'न्योता उपहार' रीति से संचालित होते हैं जिसके अनुसार प्राप्त नकद भेंट के बदले में बराबर की नकद भेंट दी जाती है। न्योता पंजी (Register) बनाई जाती है और यह पीढ़ियों तक सुरक्षित रखी जाती है। (4) गुजरात में, ममेरा प्रकार का सहोदरज विवाह (माँ के भाई से) और देवर विवाह (पति के भाई से विवाह) कुछ जातियों में प्रचलित है। (5) गुजरात में नियत-कालिक (Periodic) विवाह के रिवाज में बाल विवाह और असमान विवाह को प्रोत्साहन दिया है। ऐसे विवाहों का प्रचलन वहाँ आज भी है। (6) महाराष्ट्र में नातेदारी सम्बन्धों पर उत्तरी व दक्षिणी दोनों परिक्षेत्रों का प्रभाव है। उदाहरणार्थ, मराठों का कुल (Clan) संगठन राजपूतों की तरह का है जो सीढ़ी के रूप में व्यवस्थित होते हैं। कुलों को विभागों (Divisions) में संगठित किया जाता है और प्रत्येक भाग को इसमें सम्मिलित कुलों की संख्या के अनुसार नाम दिया जाता है; उदाहरणार्थः पंचकुली, सतकुली, आदि। कुल अनुलोम क्रम में व्यवस्थित होते हैं–सबसे ऊँचा पंचकुली, फिर सतकुली, आदि। पंचकुली आपस में विवाह कर सकते हैं या सतकुली कन्या ले सकते हैं, लेकिन अपनी पुत्री को पंचकुली से बाहर नहीं देते। (7) मध्य परिक्षेत्र में कुछ जातियों में, जैसे मराठा और कुन्बीस (Kunbis) में, बधू मूल्य का प्रचलन है यद्यपि दहेज प्रथा भी उनमें पायी जाती है। (8) यद्यपि महाराष्ट्र में परिवार व्यवस्था पितृवंशीय और पतिस्थानिक (Patrilocal) है लेकिन उत्तर भारत में विपरीत जहाँ पत्नी गौने के बाद अपने पति के साथ स्थाई रूप से रहती है और यदाकदा ही अपने पिता के घर जाती है, मराठा जाति में वह अपने पिता के घर बार-बार जाती है। एक बार वह अपने पिता के घर चली जाये तो उसे पति के घर लाना कठिन होता है। यह नातेदारों पर दक्षिण का प्रभाव दर्शाता है (9) यद्यपि नातेदारी के शब्द अधिकतर उत्तर के समान ही हैं लेकिन कुछ शब्द दक्षिण के द्रविड़ मूल के भी है; उदाहरणार्थ, भाई के लिए 'अन्ना' या 'नाना' और साथ ही 'दादा' का भी प्रयोग होता है। इसी प्रकार बहिन के लिए 'अक्का' 'ताई' और 'माई'। (10) राजस्थाना और मध्य प्रदेश में आदिवासियों में नातेदारी व्यवस्था जातिवादी हिन्दुओं से कुछ भिन्न है। यह अन्तर नातेदारी शब्दावली, विवाह नियमों, उत्तराधिकार व्यवस्था, और कुल के दायित्वों में रखने को मिलता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि उत्तर और मध्य परिक्षेत्रों में नातेदारी संगठन लगभग एक-सा ही है, फिर भी इसे उत्तर से दक्षिण को संक्रान्ति का क्षेत्र (Region of transition) कहा जा सकता है। महाराष्ट्र जैसा राज्य सांस्कृतिक उधार (Borrowing) और सांस्कृतिक समन्वय (Synthesis) का क्षेत्र है (कर्वे; 1953 : 176)।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. राजस्थान और मध्यप्रदेश में ········ में नातेदारी व्यवस्था जातिवादी हिन्दुओं से कुछ भिन्न है।
2. यद्यपि उत्तर और मध्य परिक्षेत्रों में नातेदारी संगठन लगभग एक सा ही है, फिर भी इसे उत्तर से दक्षिण को ········ का क्षेत्र कहा जा सकता है।
3. ·········· आपस में विवाह कर सकते हैं या सतकुली कन्या ले सकते हैं।

28.3 दक्षिण परिक्षेत्र (South Zone)

दक्षिण परिक्षेत्र एक जटिल नातेदारी व्यवस्था का संरूप प्रस्तुत करता है। यद्यपि अधिकतर जातियों और समुदायों में परिवार के रूप मुख्यतः पितृवंशीय और पतिस्थानिक हैं (जैसे नम्बूदरी), परन्तु जनसंख्या के ऐसे भाग भी हैं जो मातृवंशीय और पत्नीस्थानिक हैं (जैसे नायर)। काफी संख्या में ऐसे भी हैं जिसकी व्यवस्था में पितृवंशीय व मातृवंशीय दोनों संगठनों की विशेषताएँ मौजूद हैं (जैसे टोडा)। इसी प्रकार ऐसी जातियाँ/और जनजातियाँ भी हैं जिनमें

नोट

केवल बहुपत्नी प्रथा ही है (जैसे असारी, नायर), तथापि ऐसे भी हैं जिनमें बहुपत्नी प्रथा और बहुपति प्रथा दोनों प्रचलित हैं (जैसे टोडा)। फिर बहुपति प्रधान पितृवंशीय समूह भी हैं (जैसे असारी) और बहुपति प्रधान मातृवंशीय समूह भी है (जैसे तियान, नायर) और बहुपत्नी प्रधान पितृवंशीय समूह भी है (जैसे नम्बूदरी) लेकिन बहुपत्नी प्रधान मातृवंशीय समूह नहीं है। इसी प्रकार पितृवंशीय संयुक्त परिवार और मातृवंशीय संयुक्त परिवार भी हैं। यह सब दक्षिण परिक्षेत्र में नातेदारी संगठन की विविधता को दर्शाता है। यहाँ हम कुछ संगठनों/संरूपों पर चर्चा करेंगे।

मातृवंशीय परिवार में स्त्रियों में एक दूसरे से नातेदारी सम्बन्ध पुत्री, माता, बहिन, माँ, माँ की बहिन और बहिन की पुत्री के हैं। पुरुषों के साथ स्त्रियों के नातेदारी सम्बन्धों में पुरुष स्त्रियों के साथ भाई, पुत्र, पुत्री का पुत्र, और बहिन का पुत्र रूप में सम्बन्धित होते हैं। पुरुषों का एक दूसरे के साथ नातेदारी सम्बन्ध भाई, माँ का भाई और बहिन का पुत्र का होता है। ये सभी नातेदारी सम्बन्ध रक्तमूलक आधार के हैं। इनमें से विवाह से कोई सम्बन्ध नहीं बने हैं। ऐसा इसलिए कि पति परिवार में कभी-कभी आता है।

नोट्स पति और पत्नी के बीच साथी की भावना का अभाव है और पिता तथा बच्चों के बीच निकटता का अभाव है, और जहाँ तक पति की आय से जीवनयापन का सम्बन्ध है, स्त्रियाँ पूर्णरूपेण स्वतंत्र हैं। इस प्रकार से कुछ दक्षिणी परिवार उत्तरी परिवारों से भिन्न हैं।

'तरवड़' (Tarwad) कहलाने वाला मातृवंशीय संयुक्त परिवार ट्रावन्कोर के मलाबार में नायरों (Nairs) में तथा कुछ अन्य समूहों में पाए जाते हैं। 'तरवड़' परिवारों की प्रमुख विशेषताएँ हैं: (1) तरवड़ की सम्पत्ति इससे सम्बद्ध सभी पुरुषों और स्त्रियों की होती है। (2) अविवाहित पुत्र माँ के तरवड़ के सदस्य होते हैं लेकिन विवाहित पुत्र अपनी पत्नियों के तरवड़ के सदस्य होते हैं। (3) परिवार में सबसे वृद्ध सदस्य तरवड़ सम्पत्ति का प्रबन्धक होता है जिसे कर्णवान (Karnavan) उसकी पत्नी अम्माई (Ammayi) कहलाती है। (4) कर्णवान परिवार का पूर्ण शासक होता है। उसकी मृत्यु पर अगला वरिष्ठ सदस्य कर्णवान बन जाता है। वह अपने नाम से धन का नियोजन कर सकता है, सम्पत्ति को गिरवी रख सकता है, धन ऋण के रूप में दे सकता है, भूमि को उपहार स्वरूप दे सकता है, और आय और व्यय के लिए किसी सदस्य को जवाबदेय नहीं होता है। (5) जब तरवड़ बहुत बड़े आकार का हो जाता है तब यह तवाझी (Tavazhi) में विभक्त कर दिया जाता है। स्त्रियों के सम्बन्ध में तवाझी वह 'व्यक्तियों का समूह है जिसमें एक स्त्री, उसके बच्चे और स्त्री वंश के उसके सभी उत्तराधिकार शामिल होते हैं'।

1912 से पूर्व और 1912 के बाद के तरवड़ दो अलग-अलग लक्षणों वाले समूह हैं: (*a*) पहले की तरवड़ सम्पत्ति अविभाज्य (Indivisible) होती थी लेकिन अब विभाज्य होती है; (*b*) पूर्व का कर्णवान तरवड़ का सम्पूर्ण शासक हो गया है; (*c*) पूर्व के तरवड़ के सदस्य तब तक भरण पोषण के अधिकारी नहीं थे जब तक कि वे परिवार के मकान में न रहते हों, लेकिन अब पैतृक मकान से बाहर रहने पर भी सदस्य भरण पोषण के हकदार होते हैं; (*d*) पहले, कर्णवान की पूर्वज-पूजा सामान्य बात थी लेकिन अब नहीं है; (*e*) पहले पति पत्नी के बीच के सम्बन्ध औपचारिक होते थे लेकिन अब यह सम्बन्ध अधिक अनौपचारिक, व्यक्तिगत, और अधिक घनिष्ट और निकट हो गए हैं; (*f*) पहले तरवड़ के किसी एक सदस्य के द्वारा अर्जित सम्पत्ति उसकी मृत्यु के बाद तरवड़ को चली जाती थी लेकिन अब यह सम्पत्ति उसकी विधवा व बच्चों को चली जाती है और उसकी अनुपस्थिति में माँ और माँ

की माँ को। कपाड़िया (1947 : 348) ने भी लिखा है कि यह सत्य है कि 90 प्रतिशत से अधिक विदू (Veedus) (घर) में एक ही तवाझी होती है जो यह दर्शाता है कि गत कुछ दशकों में तरवड़ों का 'आणवीकरण' (Atomization) बढ़ रहा है।

नोट्स नायर जाति का तरवड़, 1912 के अधिनियम (ट्रावन्कोर), 1920 के अधिनियम (कोचीन) 1933 के क्रियान्वयन के बाद अब विखन्डित हो गया है। अब स्त्री की सम्पत्ति उसके पु्त्र और पुत्रियों को जाती है और फिर उसके पिता और पति को।

28.4 कुल संगठन और विवाह के नियम (Clan Organisation and Marriage Rules)

जाति पाँच बहिर्विवाही कुलों में विभाजित रहती है। कुल संगठन की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

1. प्रत्येक कुल (जिसमें काफी परिवार होते हैं) का अपना नाम होता है जो किसी जानवर या पौधे या अन्य किसी वस्तु के नाम पर होता है।
2. एक व्यक्ति किसी भी कुल से पत्नी का चयन कर सकता है, सिवाय अपने कुल के। परन्तु यह चयन सैद्धान्त है क्योंकि पुत्रियों के विनिमय (Exchange) का नियम भी रहता है।
3. विवाह में कुल बहिर्विवाह (Clan exogamy) का नियम ही नहीं चलता बल्कि पुत्रियों का परिवार विनिमय भी चलता है।
4. पुत्रियों के विनियम नियम के कारण अनेक नातेदारी से सम्बन्धित शब्द एक से होते हैं; उदाहरण के लिए ननद के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द भाभी के लिए भी प्रयोग किया जाता है, साल के लिये प्रयुक्त शब्द बहनोई के लिए भी, और ससुर शब्द भाभी के पिता के लिए भी प्रयोग किया जाता है।
5. मातृपक्ष के समानान्तर सहोदरजों (Parallel cousins) के बीच विवाह अर्थात् दो बहनों के बच्चों के बीच विवाह स्वीकृत नहीं होता है।
6. साली (पत्नी की छोटी बहन) से विवाह का प्रचलन है। एक ही परिवार में दो भाईयों से दो बहिनों का विवाह हो सकता है।
7. दक्षिण में अधिमान्य विवाह (Preferential mating) की प्रथा भी है। अनेक जातियों में प्रथम वरीयता बड़ी बहिन की पुत्री को दी जाती है, द्वितीय वरीयता पिता की बहिन की लड़की को, और तृतीय वरीयता माता के भाई की पुत्री को। परन्तु आजकल विलिंग सहोदरज संतति (Cross-cousin) विवाह, विशेषकर चाचा भतीजी विवाह को उन समूहों में जो या दो उत्तर भारतीयों के या पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आए हैं, चलन के बाहर और शर्म की बात माना जाता हैं।
8. विवाह के लिए प्रचलित निषेध (Taboos) हैं : एक व्यक्ति अपनी छोटी बहिन की पुत्री से विवाह नहीं कर सकता, एक विधवा अपने पति के बड़े या छोटे भाई से विवाह नहीं कर सकती (अर्थात देवर विवाह निषिद्ध है) और कोई व्यक्ति अपनी माँ की बहिन की पुत्री से विवाह नहीं कर सकता है।

9. जैसा कि उत्तर में होता है विवाह पीढ़ीगत विभाजन (Generational divisions) के सिद्धान्त की अपेक्षा वास्तविक आयु अन्तर पर आधारित होता है। इसका एक उदाहरण यह है कि दक्षिण में दादा और पोती का विवाह सम्भव है।
10. दक्षिण में विवाह और नातेदारी की एक और विशेषता यह है कि विवाह नातेदारी समूह को विस्तृत करने के लिए नहीं किया जाता, बल्कि प्रत्येक विवाह पहले से ही मौजूद बन्धनों को और मज़बूत बनाने के लिए किया जाता है। ऐसा विचार जो नातेदार पहले से ही काफी निकट थे उन्हें और निकट ला देता है।
11. एक लड़की को उसी व्यक्ति से विवाह करना पड़ता है। जो उससे आयु में बड़े समूह से (जिसे ताम-मम) (tam-mum) कहा जाता है) और साथ ही माता-पिता के समूह से छोटे समूह का हो, अर्थात् लड़की अपने किसी भी बड़े विलिंग सहोदरज संतति (cross-cousin) से विवाह कर सकती है। लड़के को 'ताम-पिन' (tan-pin) समूह में ही विवाह करना होता है, जो ताम-मम (tam-mum) समूह की सन्तान हो।
12. उत्तर की शब्दावली में जैसे कन्या, बहू, पीहर, और ससुराल जैसे शब्दों में अभिव्यक्त भावनाएँ और प्रस्थिति का दोहरापन दक्षिण में नहीं मिलता। ऐसा इसलिए है क्योंकि दक्षिण में विवाह के बाद लड़की अजनबी घर में प्रवेश नहीं करती जैसा कि उत्तर में होता है। किसी लड़की का पति या तो उसकी माता के भाई का पुत्र या ऐसा ही कोई रिश्तेदार होता है। दक्षिण में विवाह लड़की के लिए अपने पिता के घर से पृथकत्व का प्रतीक नहीं है। लड़की अपने ससुर के घर में भी स्वच्छन्द होती है।

टास्क कुल संगठन और विवाह के नियम का विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

28.5 उत्तर और दक्षिण भारत की नातेदारी व्यवस्था की तुलना (Comparison of Kinship Systems of North and South)

1. दक्षिण भारत के परिवार में जन्म के परिवार (जनक परिवार) (Family of orientation) और परिवार (Family of procreation) के बीच कोई भी स्पष्ट भेद नहीं है जैसा कि उत्तर के परिवार में होता है। व्यक्ति के जनक परिवार का कोई भी सदस्य (अर्थात पिता, माता और बहिन) विवाह (जनन) परिवार का सदस्य नहीं हो सकता लेकिन दक्षिण में यह सम्भव है।
2. उत्तर भारत में नातेदारी से सम्बन्धित प्रत्येक शब्द यह स्पष्ट करता है कि सन्दर्भित व्यक्ति रक्त-सम्बन्धी है या विवाह से, लेकिन दक्षिण भारत में ऐसा नहीं है।
3. दक्षिण भारत में व्यक्ति के कुछ नातेदार होते हैं जो उसके केवल रक्त-सम्बन्धी हैं और कुछ अन्य होते हैं जो एक साथ रक्त-सम्बन्धी और विवाहोपरान्त के सम्बन्धी होते हैं।
4. दक्षिण भारत में नातेदारी का संगठन दो समूहों में आयु श्रेणियों के अनुसार होता है, अर्थात् व्यक्ति से बड़ा (tam-mum) और छोटा (tam-pin) के आधार पर होता है। 'ताम' का अर्थ स्वयं, 'मम' का अर्थ पहले और 'पिन' का अर्थ बाद में होता है।
5. दक्षिण भारत में नातेदारी संगठन वर्षोक्रम में आयु (Chronological age) के अनुसार अन्तर पर निर्भर करता है जबकि उत्तर में यह पीढ़ी विभाजन (Generational divisions) के सिद्धान्त पर निर्भर करता है।

6. दक्षिण भारत में विवाहित लड़कियों के लिए व्यवहार के विशेष प्रतिमान नहीं होते जबकि उत्तर भारत में उन पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए जाते है।
7. दक्षिण भारत में विवाह का अर्थ यह नहीं होता कि लड़की पिता के घर से अलग हो गई, लेकिन उत्तर भारत में स्त्री अपने पिता के घर कभी-कभी ही जाती है।
8. उत्तर भारत में विवाह नातेदारी समूह को विस्तृत करने के लिए होता है जबकि दक्षिण भारत में यह पहले से ही मौजूद बन्धनों को और मज़बूत करने के लिए होता है।

28.6 पूर्वी परिक्षेत्र (Eastern Zone)

पूर्वी भारत (Eastern India) में नातेदारी संगठन भिन्न है। यहाँ जातिवादी हिन्दुओं की तुलना में आदिवासी अधिक हैं (बंगाल, बिहार, आसाम, और उड़ीसा के भागों में)। प्रमुख जनजातियाँ हैं: खासी, विरहोड़, मुण्डा और औराँव। इनमें नातेदारी संगठन का कोई प्रारूप नहीं है। मुण्डारी भाषी लोगों में पितृवंशीय पतिस्थानिक परिवार होते हैं, परन्तु इस परिक्षेत्र में संयुक्त परिवार बिरले ही मिलते हैं। विलिंग सहोदरज विवाह (Cross-cousin) यदाकदा मिलते हैं यद्यपि वधू मूल्य आम बात है। स्त्री को 'दो के रूप में' सम्बोन्धित किया जाता है, जैसे (तुम दो)। नातेदारी शब्दावली संस्कृत एवं द्रविड़ दोनों भाषाओं से ली गई है। खासी और गारों लोगों में मातृवंशीय संयुक्त परिवार मिलता है (जैसे दक्षिण में नायरों में)। विवाह के बाद पुरुष अपने माता-पिता के साथ विरले ही रहता है; वह एक अलग घर स्थापित करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि *भारत में नातेदारी संगठन जाति और भाषा से प्रभावित है।* प्रस्थिति तथा जीवनयापन के लिए कठिन स्पर्धा के आज के युग में, एक व्यक्ति का परिवार और उसके परिवार उसके सहायक के रूप में अवश्य होने चाहिए। जाति एवं भाषाई समूह समय-समय पर व्यक्ति की सहायता कर सकते हैं, लेकिन उसके कट्टर समर्थक, विश्वसनीय एवं वफादार लोग केवल उसके परिवार ही हो सकते हैं।

क्या आप जानते हैं यह आवश्यक है कि व्यक्ति को न केवल अपने नातेदारों से सम्बन्ध मजबूत रखने चाहिए बल्कि उसे अपने नातेदारों के दायरे में विस्तार भी करना चाहिए।

28.7 सारांश (Summary)

- दक्षिण भारत में एक परिवार शादी के रिश्ते द्वारा नातेदारी संबंध को और मज़बूत करना चाहता है जबकि उत्तर भारत में एक परिवार दूसरे प्रकार के लोगों से रिश्ता कायम करता है, जो पहले उससे जुड़े नहीं थे।
- मध्य भारत जैसे गुजरात में नियत कालिक (Periodic) विवाह के रिवाज में बाल-विवाह और असमान विवाह को प्रोत्साहन दिया है। ऐसे विवाहों का प्रचलन वहाँ आज भी है।
- मुण्डारी भाषी लोगों में पितृवंशीय पतिस्थानिक परिवार होते हैं। पूर्वी क्षेत्र में संयुक्त परिवार कम मिलते हैं।
- दक्षिण भारत में विवाह का अर्थ ये नहीं होता कि लड़की पिता के घर से अलग हो गई लेकिन उत्तर भारत में स्त्री अपने पिता के घर कभी-कभी ही जाती है।

28.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **आदिम समाज (Primitive Society)**—ऐसा कोई समाज जो इतिहास की शुरूआत अर्थात् लेखन कला के अविष्कार एवं विकास के पूर्व विद्यमान रहा हो, आदिम समाज के नाम से इंगित किया गया है।
2. **दक्षिण परिक्षेत्र (South Zone)**—इस क्षेत्र में अधिकतर जातियों और समुदायों में परिवार के रूप मुख्यत: पितृवंशीय और पतिस्थानिक हैं।

28.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. उत्तर क्षेत्र में परिवार एवं विवाह की क्या विशेषताएँ हैं?
2. दक्षिण क्षेत्र में परिवार एवं विवाह की क्या विशेषताएँ हैं?
3. मध्य तथा पूर्व क्षेत्र में विवाह एवं परिवार की क्या विशेषताएँ हैं?
4. उत्तर तथा दक्षिण क्षेत्र में परिवार एवं विवाह के प्रकार तथा नियमों में क्या अंतर पाए जाते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. आदिवासियों 2. संक्रांति 3. पंचकुली।

28.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में समाज—विरेन्द्रा प्रकाश शर्मा, डी. के. पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स।
2. परिवार का समाजशास्त्र—डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

नोट

इकाई–29: भारत में परिवार एवं विवाह: परिवर्तन की शक्तियाँ, बच्चों एवं बुजुर्गों की देखभाल के संदर्भ में परिवार (Family and Marriage in India: Forces of Change, Family in the Context of Care of the Child and the Aged)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 संयुक्त परिवार में परिवर्तन (विघटन): कारक (Factors Responsible for Changing or Disintegrating Joint Family)

29.2 संयुक्त परिवार की आधुनिक प्रवृत्तियाँ एवं परिवर्तन (Recent Tendencies and Changes in Joint Family)

29.3 संयुक्त परिवार का भविष्य (Future of Joint Family)

29.4 सारांश (Summary)

29.5 शब्दकोश (Keywords)

29.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

29.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- आधुनिक परिवार में परिवर्तन लाने वाले कारकों को समझाना।
- आधुनिक शहरी परिवार में बच्चे तथा बूढ़ों की सुरक्षा तथा विकास को बताना।

प्रस्तावना (Introduction)

परिवार से पूंजीवादी संगठनों में उत्पादन का स्थानांतरण आधुनिक परिवार के लिए काफी महत्त्व की चीज थी। उत्पादन संबंधी प्रकार्यों ने देहाती कृषि पर आधारित परिवार में एकता के सूत्रों का बीजारोपण किया। शहरी परिवार की स्थिति इसके एकदम विपरीत है और जहाँ तक आर्थिक गतिविधियों का सवाल है, यह बहुत हद तक "बाहर काम करने वाले सदस्यों द्वारा अर्जित आय पर अच्छी तरह विचार करने" तक ही खुद को सीमित रखता है।

औद्योगीकरण के बाद परिवार को प्रभावित करने वाले अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। इन सब में स्त्रियों की नई प्रस्थिति शायद सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह न केवल पाश्चात्य बल्कि भारतीय समाज के संदर्भ में भी सत्य है।

आधुनिक शहरी परिवार का अभ्युदय

परिवार आवास की तरह कोई स्थापित और मूर्त-सी चीज नहीं है बल्कि बहुत से क्रियाकलापों का एक समूह है जो संतान की उत्पत्ति और देखभाल पर केन्द्रित होता है। परिवार सिर्फ लोगों से मिलकर नहीं बनता है बल्कि उन लोगों से मिलकर बनता है जो एक साथ रहते हैं और अपना एक घर बना लेते हैं। अत: पारिवारिक जीवन को हम एक प्रकार के सामाजिक आचरण के रूप में देख सकते हैं। अत: यह स्वाभाविक है कि पारिवारिक जीवन पुरुषों, स्त्रियों व बच्चों के अन्य सामाजिक संबंधों के संदर्भ में उनके व्यवहार द्वारा प्रभावित होते हैं। फिर यह भी सच्चाई है कि अगर कोई परिवार अपने "आत्मसंतोष के कठोर दायरे में ही सिमटकर रह जाता है।" तो इसके लिए अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर पाना असंभव हो जाएगा। समाज की बदलती परिस्थितियों के प्रति निरंतर संवदेनशील रहना और उपयुक्त ढंग से स्वयं को अनुकूलित करना परिवार के लिए अनिवार्य है।

परिवार पर प्रभाव डालने वाले कारक

"परिवार स्वयं उतना परिवर्तित नहीं हुआ जितना परिवर्तन इस पर आरोपित किया गया है। यह संक्रमण की स्थिति में है क्योंकि सभ्यता स्वयं संक्रमण की स्थिति में है।"

सबसे पहले हम अनुप्रयुक्त (अप्लाइड) विज्ञान के प्रभावों पर विचार करते हैं। विज्ञान ने औद्योगिक संगठन के क्षेत्र में क्रांतिकारी आर्थिक परिवर्तनों का श्रीगणेश किया है। "घर के बजाय कारखाना उत्पादन की इकाई हो गया" क्योंकि वाष्प क्वथनित्र (स्टीम बॉयलर) घर के लिए आवश्कता से ज्यादा बड़ा था और इससे उत्पन्न शक्ति के लिए अधिक स्थान की जरूरत थी।"

परिवार पर अनुप्रयुक्त विज्ञान का एक अन्य प्रभाव जन्म नियंत्रण की तकनीकों में सुधार और इनके प्रचार-प्रसार के रूप में उभरकर सामने आया है। यह सत्य है कि पहले भी जन्म दर पर नियंत्रण के संतोषजनक तरीके ढूँढ़ने के प्रयास होते रहे हैं और इसलिए यह कोई नई बात नहीं है। पर फिर भी अपनी अत्यधिक दक्षता और व्यापक अपील के लिहाज से यह नया ही है। हर तरफ इसकी चर्चा हो रही है और जोर-शोर से इसे प्रचारित तथा विज्ञापित किया जा रहा है। सार्वजनिक रूप से लोगों के समक्ष तर्कपूर्ण भाषा में लघु परिवार के मानदंड का समर्थन किया जाता है।

परिवार पर अपने प्रभाव में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन की छाप छोड़ना ही शहरी संस्कृति के प्रभुत्व का कारण है। शहरी जीवन के उन विविध पक्षों में से जो परिवार को प्रभावित करते हैं, हम दो की चर्चा यहाँ कर सकते हैं। एक ओर तो जनसंख्या का दबाव सामुदायिक आधार पर सार्वजनिक मनोरंजन, स्वास्थ्य आदि से संबद्ध कुछ खास-खास सेवाएँ प्रदान करने की आवश्यकता और अवसर पैदा करता है तो दूसरी ओर किसी शहरी परिवार के पुरुष सदस्य अपने काम के सिलसिले में दिन का अधिकांश समय घर से बाहर गुजारते हैं। परिणामस्वरूप कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में परिवार के पिता की अपेक्षा शहरी परिवार का पिता अपने बच्चों की शिक्षा

नोट

में नगण्य भूमिका निभाता है। कभी-कभी माँ को भी घर से बाहर काम करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में शहर में रहने वाले लोगों ने छोटे-छोटे बच्चों की देखभाल के लिए क्रेच, नर्सरी, किंडरगार्टन आदि जैसी विद्यालय स्तर से पहले की अनेक 'एजेन्सियाँ' विकसित कर ली हैं।

पर शहर का प्रभाव सिर्फ उन्हीं लोगों तक सीमित नहीं है जो इसकी भौगोलिक सीमाओं के अंदर सिमटे हुए हैं। सच्चाई तो यह है कि इसका प्रभाव इससे ज्यादा व्यापक है और इसका हस्तक्षेप समाज के हर स्तर में है।

अंततः हमें इस तथ्य को भी ध्यान में रखना होगा कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं ने राज्य पर विभिन्न सामाजिक व आर्थिक दायित्वों का बोझ लाद दिया है जो पहले सिर्फ परिवार के सरोकार थे। दृष्टांतों के रूप में हम उन विभिन्न सामाजिक सुरक्षा उपायों का जिक्र कर सकते हैं जो आधुनिक राज्यों द्वारा क्रियान्वित किए गए हैं।

इन विविध प्रभावों के परिणामस्वरूप, आधुनिक परिवार की प्रत्येक विशेषता यही जताती है कि कृषि पर आधारित या घर-गृहस्थी वाले परिवार से संबंधित चिंतन के लंबे समय से स्थापित मौलिक प्रतिमान टूट रहे हैं।

आधुनिक परिवार की संरचना

इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य सबसे पहली बात यह है कि नाभिकीय परिवार ने बहुत हद तक और खासकर पाश्चात्य समाजों में समरक्त परिवार को विस्थापित कर दिया है। इस तरह के परिवर्तन भारत के शहरी क्षेत्रों में भी लगातार दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार के आर्थिक महत्त्व में ह्रास ने परिवार समूह की पुरानी एकता को धक्का पहुँचाया है। जब कोई व्यक्ति किसी कारखाने में नौकरी पर लेता है और अपने माता-पिता और भाइयों के प्रयासों से स्वतंत्र होकर अपने तयी कुछ कमाने-धमाने लगता है तो मिले-जुले परिवार के व्यय के लिए अपनी कमाई देने का उसका इरादा उस हद तक मज़बूत नहीं रह जाता है जिस हद तक उस समय था जब वह और उसके भाई साथ-साथ जमीन पर काम कर रहे थे।

दूसरी ध्यातव्य चीज पति और पत्नी के आपसी संबंध की प्रकृति में आने वाला बदलाव है। नारी की आर्थिक स्वतंत्रता ने विवाह के प्रति उसके पूरे दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। अब उसे "दाता" की तलाश उस हद तक नहीं होती है। जीवन-साथी का उसका चुनाव अक्सर प्रेम, स्नेह, रुचि या तेवर में समानता जैसी बातों द्वारा निर्धारित होता है। चूँकि आधुनिक परिवार अब उत्पादन की इकाई नहीं रह गया है, पुरुष भी अपनी पत्नी का चुनाव उसके कौशल अथवा कार्यक्षमता के आधार पर नहीं बल्कि इन्हीं बातों के आधार पर करता है। साथ ही पुरुष व स्त्री-इन दोनों की आर्थिक स्वतंत्रता ने उन्हें "उस पैतृक नियंत्रण व सामाजिक दबाव के अन्य रूपों से मुक्ति दिला दी है जिनका संबंध इस बात से है कि उन्हें किससे और कब शादी करनी चाहिए।"

आधुनिक परिवार में पति व पत्नी के संबंध को एक अलग कोण से देखा जा सकता है। चूँकि कृषि पर आधारित परिवार एक आर्थिक संगठन था, इसके लिए किसी-न-किसी तरह के नेतृत्व की ज़रूरत थी। आमतौर पर यह दायित्व पुरुषों के पास होता था। पर आधुनिक शहरी परिवार में, नेतृत्व और नियंत्रण की आवश्कता उतनी ज्यादा नहीं है। अतः पति और पत्नी दोनों एक-दूसरे के साथ विचार-विमर्श करते हैं और ऐसे निर्णयों पर पहुँचने का प्रयास करते हैं जिनमें दोनों की सहमति हो।

इस संदर्भ में तीसरी ध्यातव्य चीज आधुनिक परिवार का तुलनात्मक रूप से अधिक अस्थिर स्वरूप है। अतः आधुनिक शहरी परिवारों में पति व उसकी पत्नी के बीच विवाद की संभावनाएँ पुराने कृषि पर आधारित परिवारों की अपेक्षा ज्यादा हैं जिनमें पत्नी व पति की भूमिकाएँ सुनिश्चित होती थीं। परिवार के आर्थिक व सुरक्षात्मक प्रकार्यों की समाप्ति तथा ह्रास जैसे विभिन्न अन्य कारकों के चलते इन भूमिका संघर्षों को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है। पश्चिम में ही नहीं बल्कि भारत में भी शहरी परिवारों में तलाक की तेजी से बढ़ती दरें उन तनावों व दबावों का संकेत देती हैं जो इन परिवारों पर हावी हैं।

चौथी बात यह है कि आधुनिक परिवार कृषि पर आधारित परिवारों की अपेक्षा छोटे आकार के हैं। इस प्रवृत्ति के लिए दो कारण मुख्य रूप से ज़िम्मेदार हैं। एक ओर तो परिवार से उत्पादन के स्थानांतरण के कारण खेत पर काम करने वाली अतिरिक्त श्रम-शक्ति के रूप में बड़े आकार के परिवार का मेरूदंड टूट गया। दूसरी ओर जन्म नियंत्रण की तकनीकों में होने वाली प्रगतियों ने पितृत्व के सोचे समझे नियोजन को संभव बना दिया।

आधुनिक परिवार के प्रकार्य

आधुनिक परिवार ने कृषि पर आधारित परिवार के परंपरागत प्रकार्यों में से अनेक को तिलांजलि दे दी है। हम पहले ही यह देख चुके हैं कि उत्पादन के प्रकार्यों को निष्पादित करने का दायित्व परिवार से स्थानांतरित होकर घर से बाहर आर्थिक संगठनों को प्राप्त हो गया है।

शिक्षा भी इसी तरह घर की चहारदीवारी से बाहर आ चुकी है। विद्यालयों में विभिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती है जिसे अपने बच्चों को दे पाना अतीत में कभी किसी परिवार के लिए संभव न था। नर्सरी स्कूलों और किंडरगार्टनों के बढ़ते प्रचलन के साथ बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा की अधिकांश जिम्मेदारी विशेषज्ञों के हाथों में आ गई है। साथ ही शहरों ने खेल के मैदानों से वंचित छोटे-छोटे घरों में रहने वाले बच्चों को अवकाश के समय गलियों, सड़कों, सार्वजनिक पार्कों और खेल के मैदानों में खेलने-घूमने की आजादी दी है। इसके परिणामस्वरूप वे अपने माता-पिता, भाइयों या बहनों के प्रभाव से और भी ज्यादा दूर हो जाते हैं। इस तथ्य ने कि पिता और यदा-कदा माँ भी घर से बाहर काम करती है, बच्चों की शिक्षा में उनके योगदान को निस्संदेह काफी सीमित कर दिया है।

बीमार, बूढ़े और बेरोजगार लोगों की देखभाल के रूप में परिवार जिन सुरक्षात्मक प्रकार्यों का निर्वाह पहले करता था उन्हें निबाहने की जिम्मेदारी अब अस्पतालों, सेवासदनों और क्लीनिकों की अथवा राज्य की है जो अपने नागरिकों के हित में वृद्धावस्था पेंशन, बेरोज़गारी भत्ता आदि जैसे सामाजिक सुरक्षा के उपायों पर अमल करता है।

मनोरंजन की सुविधाएँ जब प्राय: परिवार के दायरे के बाहर ही उपलब्ध होती हैं। रहने के क्वार्टरों का छोटा आकार, परिवार के सदस्यों की कमतर संख्या, उन्हें एक साथ कर पाने की कठिनाई, घर पर इन सुविधाओं का अभाव, थियेटर, फिल्म आदि के रूप में अपेक्षाकृत सस्ते व्यावसायिक मनोरंजन के साधनों का विकास, आधुनिक परिवहन के साधनों का सुगमता से उपलब्ध होना—ये सब ऐसे कारक हैं जो घर की परिधि से बाहर परिवार के सदस्यों को मनोरंजन के अवसर तलाशने के लिए प्रेरित करते हैं। पुन: उम्र के आधार पर इन बाहरी मनोरंजनों का संघटन इन कार्यक्रमों में एक इकाई के रूप में पूरे परिवार की भागेदारी की संभावना को अवरूद्ध करता है।

इस तरह अपने अधिकांश परंपरागत प्रकार्यों से वंचित होकर आधुनिक परिवार मुख्य रूप से तीन काम करता है जिन्हें मैकाइवर और पेज परिवार के अनिवार्य प्रकार्यों का नाम देते हैं—(*i*) बच्चों का प्रजनन और पालन-पोषण; पर इस लिहाज से भी परिवार की कुछ जिम्मेदारियाँ मातृत्व सदन, 'एंटे-नेटल क्लीनिक' आदि जैसी बाहरी एजेन्सियों ने ले लीं हैं, (*ii*) दंपत्तियों की यौन आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए एक स्थायी आधार प्रदान करना; विवाह रूपी संस्था इन्हें न केवल अपनी शारीरिक भूख मिटाने का अवसर देती है बल्कि अपने आपसी प्रेम को गहरा बनाने तथा इसे वासना या शारीरिक हवस के स्तर से ऊँचा उठाने की प्रेरणा भी देती है। (*iii*) अपने सदस्यों के लिए घर प्रदान करना; ये सदस्य न केवल एक साथ एक ही छत के नीचे रहते हैं बल्कि आत्मीयता, अपनत्व और ऊष्म संबंध में सहभागिता द्वारा एक ऐसा माहौल तैयार करते हैं जो अन्य किसी भी संगठन के लिए संभव नहीं है।

29.1 संयुक्त परिवार में परिवर्तन (विघटन): कारक (Factors Responsible for Changing or Disintegrating Joint Family)

परम्परात्मक भारतीय संयुक्त परिवार में अनेक परिवर्तन हुए हैं और वह संक्रमण के काल से गुजर रहा है। नवीन परिस्थितियों के कारण संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तनों को कुछ विद्वानों ने विघटन माना है तो कुछ ने इसे

नोट

स्वरूप परिवर्तन ही कहा है। डॉ. आर.एन. सक्सेना ने संयुक्त परिवार में परिवर्तन लाने वाली शक्तियों को तीन भागों में बांटा है–

1. **आर्थिक शक्तियाँ–** जिसमें औद्योगीकरण एवं पूँजीवादी व्यवस्था प्रमुख है;

2. **भावनात्मक शक्तियाँ–**जिनमें उदारवाद, व्यक्तिवाद एवं पश्चिमी विचारधाराएँ प्रमुख हैं;

3. **नये सामाजिक क़ानून–** इनमें विवाह एवं सम्पत्ति से सम्बन्धित नवीन कानून आते हैं।

देवानन्द तथा **थॉमस** ने परिवर्तन के कारकों को तीन भागों में बांटा है–

1. **नवीन विचार** जैसे, उपयोगितावाद, व्यक्तिवाद, रोमान्स, यौन स्वतंत्रता एवं धर्म का घटता प्रभाव; **2. नवीन अनुशास्तियाँ** (New sanctions) जैसे, परिवार, विवाह, सम्पत्ति एवं सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित कानून; **3. नवीन सामाजिक संरचना–**जिसमें प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित गुणों का महत्त्व पाया जाता है। **बॉटोमोर** (Bottomore) लिखते हैं, "संयुक्त परिवार का विघटन केवल औद्योगीकरण से सम्बन्धित विभिन्न दशाओं का ही परिणाम नहीं है, बल्कि उसका प्रमुख कारण यह है कि सयुंक्त परिवार आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल सिद्ध हो चुका है।" **डॉ. कपाड़िया** ने नवीन न्याय व्यवस्था, यातायात के नवीन साधन, औद्योगीकरण, शिक्षा के प्रसार तथा परिवर्तित मनोवृत्तियों को संयुक्त परिवार के विघटन के लिए उत्तरदायी माना है। **पणिक्कर** संयुक्त परिवार के विघटन के लिए सदस्यों पर आवश्यकता से अधिक नियंत्रण लगाने और इस कारण उनके संबंधों का क्षेत्र सीमित होना मानते हैं। संयुक्त परिवार को विघटित या परिवर्तित करने वाले कारण अग्र प्रकार हैं–

1. **औद्योगीकरण** (Industrialisation): 18वीं सदी में औद्योगिक क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति से भारतीय समाज को परिचित कराने का श्रेय अंग्रेजों को है। औद्योगिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश में रेलों, सड़कों तथा यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों का तीव्र विकास हुआ। नये-नये अनेक व्यवसाय खुले तथा साथ ही ग्रामीण उद्योग नष्ट हुए। परिवार अब उत्पादन की इकाई नहीं रहा, लोग गाँव छोड़कर काम की खोज में शहरों में आने लगे, इससे परिवार की एकता टूटी तथा कृषि अर्थव्यवस्था का स्थान औद्योगिक एवं पूँजीवादी व्यवस्था ने लिया। संयुक्त परिवार के सदस्य नौकरी एवं व्यवसाय के कारण दूर-दूर बिखर गये। नगरों में लोग अकेले या अपनी पत्नी एवं बच्चों के साथ छोटे-छोटे परिवारों में रहने लगे। नगरों में **मकानों के अभाव** ने भी संयुक्त परिवार के स्थान पर लोगों को छोटे-छोटे परिवारों में रहने को बाध्य किया। संयुक्त परिवार कृषि अर्थव्यवस्था का आधार था, जब कृषि भूमि में भी मशीनों का प्रयोग हुआ और **कृषि के स्थान पर उद्योगों का महत्त्व बढ़ा तो इसने भी संयुक्त परिवारों को तोड़ा।** ग्रामीण उद्योगों में परिवार के लोग मिलकर कार्य करते थे, किन्तु जब **ग्रामीण उद्योगों का ह्रास हुआ** और उसका स्थान कारखाना प्रणाली ने ले लिया तो ग्रामीण उद्योगों में लगे लोग काम की खोज में औद्योगिक केन्द्रों की ओर मुड़े। अत: अब ग्रामीण संयुक्त परिवारों का बने रहना संभव न था। औद्योगीकरण ने **रोज़गार के अवसरों में वृद्धि की,** लोग नवीन व्यवसायों में काम करने के लिए घर छोड़कर दूर-दराज क्षेत्रों में जाने लगे। औद्योगीकरण ने नयी अर्थव्यवस्था प्रदान की जिसमें स्त्रियों के लिए भी नौकरी की सुविधा थी। **स्त्रियों द्वारा नौकरी** करने पर उनमें आत्म-निर्भरता एवं जागरूकता आयी, वे संयुक्त परिवार के शोषणकारी एवं दमघोंटू वातावरण से मुक्ति पाने के लिए विद्रोह करने लगीं एवं एकाकी परिवार की स्थापना के लिए ज़ोर देने लगीं। **औद्योगीकरण ने नकद मज़दूरी प्रणाली को लागू किया** जिससे सदस्यों के श्रम को पैसों में आंकना सरल हो गया। परिवार में कम एवं अधिक कमाने वालों के बीच उच्चता एवं निम्नता की भावना पैदा हुई, उनमें व्यक्तिवादी भावना पनपी और वे अपने द्वारा कमाये धन को अपने बीबी-बच्चों पर खर्च करना उचित मानने लगे।

नोट्स औद्योगिक व्यवस्था में **धन एवं व्यक्तिगत** गुणों का अधिक महत्त्व पाया जाता है तथा व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार ही व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। इन सारी परिस्थितियों ने व्यक्ति को संयुक्त परिवार से पृथक् रहकर एकाकी परिवार बनाने के अवसर एवं प्रेरणा प्रदान की तथा संयुक्त परिवार के विघटन में योग दिया।

2. नगरीकरण (Urbanisation): औद्योगीकरण एवं यातायात के नवीन साधनों ने शहरों को जन्म दिया। धीरे-धीरे महानगर बने एवं नगरीय सभ्यता का उदय हुआ। नगर में विभिन्न विचारधाराएँ, आदर्श तथा सामाजिक मूल्य पाये जाते हैं। नगरों के लोग नवीनता प्रिय, व्यक्तिवादी, भौतिकवादी एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण में विश्वास रखने वाले होते हैं। शहरी स्त्रियाँ स्वतंत्रता में अधिक विश्वास करती हैं और वे सास की दासता से मुक्ति चाहती हैं। इसलिए वे पति को एकाकी परिवार बसाकर रहने का आग्रह करती हैं। शहरों में मकानों के अधिक किराये एवं अभाव के कारण भी बड़े-बड़े परिवारों का एक साथ निवास सम्भव नहीं हो पाता है। शहरों में व्यवसाय की बहुलता के कारण भी ग्रामीण लोग अपने परिवारों को छोड़कर व्यवसाय की खोज में यहाँ आते हैं जहाँ वे अकेले या पत्नी व बच्चों सहित छोटे-छोटे परिवारों में रहते हैं। शहर का सामाजिक-आर्थिक पर्यावरण, ग्रामीण पर्यावरण की अपेक्षा अधिक गतिशील है, वहाँ व्यक्ति का अधिकतर समय पारिवारिक प्रभाव क्षेत्र से बाहर बीतता है, जिससे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

3. पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति एवं विचारधारा का प्रभाव (Impact of Western Education, Culture and Ideology): भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण भारतीयों का पश्चिम की शिक्षा, संस्कृति एवं विचारधारा से परिचय हुआ, उनके दर्शन एवं सामाजिक मूल्यों को भारतीयों ने भी अपनाया। व्यक्तिवाद, उदारवाद, प्रकृतिवाद, उपयोगितावाद एवं अस्तित्ववाद तथा पश्चिमी साहित्य एवं शिक्षा आदि का भी भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर प्रभाव पड़ा। भारतीयों ने पश्चिम से ही स्त्री-पुरुष की समानता के विचार ग्रहण किये। **वाल्टेयर** एवं **रूसो** ने कहा कि मनुष्य कुछ स्वत्वों को लेकर पैदा होता है, उनकी रक्षा की जानी चाहिए। संयुक्त राज्य अमेरिका ने मानव अधिकारों की घोषणा की। इन सभी के परिणामस्वरूप भारत में प्रेम-विवाह व अन्तर्जातीय विवाह होने लगे तथा विवाह एक समझौता मात्र रह गया और कानूनों द्वारा परिवार के कर्ता की सत्ता पर अंकुश लगा दिये गये। फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूटने लगे।

4. कानूनों का प्रभाव (Impact of Legislation): अंग्रेजों के समय से ही देश में ऐसे अनेक क़ानून बने जिन्होंने संयुक्त परिवार की एकता पर प्रहार किये। संयुक्त परिवार की एकता का मूल कारण यह था कि पारिवारिक सम्पत्ति में किसी सदस्य के वैयक्तिक अधिकार नहीं थे, लेकिन **'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम'** 1929 ने उन व्यक्तियों को भी सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किये जो संयुक्त परिवार से अलग रहना चाहते थे। 1930 के **'बुद्धि लब्धि अधिनियम'** (Gains of Learning Act) ने व्यक्ति की स्वयं अर्जित सम्पत्ति की सीमा को विस्तृत कर दिया। **सन्** 1939 **के हिन्दू स्त्रियों का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम** (Hindu Women's Right to Property Act) ने संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकारों को स्वीकार किया। इससे भी परिवार की सम्पत्ति विभाजित होने लगी। **अग्रवाल** का मत है कि **आय-कर अधिनियम** ने संयुक्त परिवार के विघटन को अधिक तीव्र कर दिया है। आय-कर से बचने के लिए भाई अपनी सम्पत्ति का बंटवारा कर लेते हैं। संयुक्त परिवार में सदस्यों की अधिकता का कारण था बाल-विवाह, किन्तु **बाल-विवाह निरोधक अधिनियम**, 1929 ने बाल-विवाहों पर कानूनी रोक लगा दी। 1856 के **विधवा पुनर्विवाह अधिनियम** ने विधवा स्त्रियों को विवाह की छूट दी जिससे वे अपने मृत पति के परिवार को छोड़कर नये घर में जाने लगीं। इससे भी परिवार की संयुक्तता टूटी। 1954 के **'विशेष विवाह अधिनियम'** ने किसी भी जाति एवं धर्म के लोगों के विवाह को स्वीकृति प्रदान की।

नोट

इससे अन्तर्जातीय विवाह होने लगे जो संयुक्त परिवार के आदर्शों के प्रतिकूल थे। 1955 के **'हिन्दू विवाह अधिनियम'** में स्त्री-पुरुषों को विवाह-विच्छेद का अधिकार प्रदान किया गया, इससे भी संयुक्त परिवार टूटे। **डॉ. राल्फ** (Ralf) का मत है कि इस कानून का प्रभाव शहरों में विशेष रूप से पड़ा। **'हिन्दू उत्तराधिकार नियम'** 1956 ने पुत्रियाँ एवं स्त्रियों को भी पारिवारिक सम्पत्ति में उत्तराधिकारी बना दिया। 1961 के **'दहेत निरोधक अधिनियम'** ने परिवार के कर्ता की निरंकुशता को कम किया। इस प्रकार इन सभी अधिनियमों के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार का विघटन होने लगा।

5. पारिवारिक झगड़े (Family Quarrels): संयुक्त परिवार में प्रतिदिन सम्पत्ति, बच्चों एवं स्त्रियों को लेकर होने वाले झगड़ों से मुक्ति पाने के लिए भी सदस्य संयुक्त परिवार छोड़कर सुख व शान्ति के लिए एकाकी परिवारों में रहने लगते हैं।

6. परिवार के कार्यों का घटना (Reduction of Family Functions): वर्तमान समय में संयुक्त परिवार के कार्यों को अन्य संघों एवं संस्थाओं ने ग्रहण कर लिया है, अत: उसकी उपयोगिता घट गयी है। शिक्षा का कार्य अब शिक्षण संस्थाओं द्वारा किया जाता है। परिवार का मनोरंजन का कार्य व्यापारीकृत मनोरंजन संस्थाओं, क्लबों एवं सिनेमाघरों ने ले लिया है। कपड़े धोने का कार्य लाण्ड्रियों द्वारा, अनाज कूटने-पीसने का कार्य फ्लोर मिलों द्वारा तथा सिलाई का कार्य टेलरिंग हाउसों द्वारा होने लगे हैं। इससे संयुक्त परिवार पर व्यक्ति की निर्भरता समाप्त हुई है।

7. महिला आंदोलन (Feminist Movement): स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण उनमें जागृति आयी है। वे अब संयुक्त परिवार के शोषण से मुक्ति का प्रयास करने लगी है, घर की चारदीवारी लांघकर अपने व्यक्तित्व का विकास करने के लिए संयुक्त परिवार के बजाय एकाकी परिवारों की पक्षधर बनी हैं। स्त्रियों की इस नवीन प्रवृत्ति के कारण भी संयुक्त परिवार विघटित हुए हैं।

8. जनसंख्या वृद्धि (Growth of Population): भारत में तीव्र गति से जनसंख्या की वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप भूमि पर दबाव बढ़ा है। जब गाँवों में छोटे-छोटे भूमि के टुकड़ों पर खेती करके बड़े परिवार का पालन-पोषण करना कठिन हो गया तो लोग काम की तलाश में परिवार एवं गाँव छोड़कर बाहर जाने लगे, इससे भी संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ।

9. यातायात एवं संचार के साधन (Means of Transportation and Communication): संचार एवं यातायात के नवीन साधनों ने लोगों में गतिशीलता पैदा की। प्राचीन समय में इन साधनों के अभाव में एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान पर जाना एक कठिन कार्य था। अत: स्वत: ही लोग एक स्थान पर संयुक्त परिवारों में रहते थे।

10. सामाजिक सुरक्षा (Social Security): कुछ समय पहले तक बीमारी, बुढ़ापा एवं संकट के समय में संयुक्त परिवार ही अपने सदस्यों को सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करता था, किन्तु वर्तमान में स्वास्थ्य बीमा, कर्मचारी क्षतिपूर्ति क़ानून, खान-प्रसूति लाभ क़ानून, प्रोविडेण्ट फण्ड, ग्रेच्युइटी आदि के द्वारा व्यक्ति को सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा प्रदान की गयी है, अत: गाँवों में न सही परन्तु शहरों में तो संयुक्त परिवार की उपयोगिता घटी है।

संयुक्त परिवार से सम्बन्धित अध्ययन (Studies Regarding Joint Family)

विभिन्न शक्तियों के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार एवं विघटन की प्रक्रियाएँ प्रारंभ हुईं। परिवर्तित परिस्थितियों में संयुक्त परिवार क्या रूप ग्रहण कर रहे हैं? उनमें कौन-कौन सी नवीन प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई हैं और वे प्राचीन संयुक्त परिवारों में किस प्रकार भिन्न हैं, आदि प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए जनगणना अधिकारियों एवं समाजशास्त्रियों ने देश के विभिन्न भागों में अनेक अध्ययन किये उनका हम यहाँ संक्षेप में उल्लेख करेंगे—

1. जनगणना के आंकड़े: सन् 1911 की विभिन्न प्रांतों की जनगणना रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए **गेत** (Gait) ने कहा कि संयुक्त परिवारों में विघटन की प्रवृत्ति दिखायी देती है। 1951 के जनगणना अधिकारी ने भी जनगणना के आंकड़ों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "छोटे-छोटे परिवार का इतना अधिक अनुपात (गाँवों में 33% और

कस्बों में 38%) ऊपरी तौर पर यही संकेत करता है कि देश के परंपरागत रीति-रिवाजों के अनुसार अब परिवार संयुक्त रूप से नहीं चल रहे हैं और संयुक्त परिवार से अलग होने तथा अलग घर बसाने की प्रवृत्ति प्रबल है।" सन् 1901 की जनगणना पर टिप्पणी करते हुए गेत कहते हैं कि केवल उच्च जातियों में ही संयुक्त परिवारों की बहुलता है, निम्न जातियों एवं जनजातियों में यह प्रथा बहुत कम है और विवाह के बाद पुरुष पृथक् घर बनाकर रहते हैं।

2. **के. टी. मर्चेण्ट** ने सन् 1930-32 में विवाह तथा परिवार से सम्बन्धित विचारों में परिवर्तन का पता लगाने के लिए 446 स्नातकों का अध्ययन करने पर पाया कि शिक्षित लोग संयुक्त परिवार में रहना पसंद करते हैं तथा पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ संयुक्त परिवार के अधिक विरोध में हैं।

3. **के. एम. कपाड़िया** ने 513 स्नातकों का सर्वेक्षण किया तो ज्ञात हुआ कि शिक्षित हिन्दुओं का 60% भाग अब भी संयुक्त परिवार में रहता है और केवल $\frac{1}{8}$ वां भाग ही इससे असन्तुष्ट है। संयुक्त परिवार का विरोध करने वाले एक व्यक्ति के सामने 3 या 4 उसके पक्ष में मत देने वाले हैं। कपाड़िया ने दक्षिणी गुजरात के नवसारी कस्बे के 246 परिवारों एवं आस-पास के 15 गाँवों के 1099 परिवारों का अध्ययन करने पर पाया कि वहाँ एकाकी एवं संयुक्त परिवारों की संख्या लगभग बराबर थी।

4. **बी. वी. शाह** (B.V. Shah) ने बड़ौदा के 200 छात्रों का उनके संयुक्त परिवार के बारे में विचार ज्ञात करने के लिए अध्ययन करने पर पाया कि 16% छात्रों ने ही संयुक्त परिवार के विरोधी विचार व्यक्त किये और शेष ने इसका समर्थन किया।

5. **सुधा कालडेटे** ने पुराने बम्बई राज्य का अध्ययन करने पर पाया कि नगरीकरण के प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं।

6. **एडविन डी. ड्राइवर** ने 1958 में बम्बई के नागपुर जिले के 2314 जोड़ों का अध्ययन किया। उनका निष्कर्ष यह था कि 36 वर्ष से अधिक उम्र के लोग तथा अशिक्षितों की तुलना में शिक्षित लोग संयुक्त परिवार में रहने के पक्ष में थे।

7. **आई. पी. देसाई** ने सौराष्ट्र के महुआ कस्बे में 410 परिवारों का अध्ययन किया। उनकी परिभाषा के अनुसार महुआ में 28% एकाकी परिवार और 72% संयुक्त परिवार हैं। सम्पत्ति एवं आर्थिक हितों ने संयुक्तता को बल प्रदान किया है। वहाँ संयुक्त परिवार में रहने वाले प्रत्येक तीन व्यक्तियों के सामने एकाकी परिवार में रहने वाले व्यक्ति की संख्या एक थी।

8. **पी. एम. कोलिण्डा** ने महाराष्ट्र के पूना जिले के लोनीखण्ड गाँव का अध्ययन करने पर वहाँ संयुक्त परिवार की अधिकता पायी। साथ ही वहाँ निम्न जातियों की तुलना में उच्च जातियों में संयुक्त परिवार अधिक थे। उन्होंने क्षेत्रीय आधार पर भारत में संयुक्त परिवार के अनुपात में अन्तर पाया, गंगा के मैदान व मैसूर की उत्तरी-पश्चिमी जातियों में, पश्चिमी बंगाल एवं मध्य भारत की तुलना में संयुक्त परिवार अधिक थे।

9. **एलिन. डी. रॉस** ने बंगलौर के मध्यम तथा उच्च वर्ग के 157 स्त्री-पुरुषों का साक्षात्कार लिया। उन्होंने संयुक्त परिवार को परिवर्तित करने वाली शक्तियों का भी उल्लेख किया और बताया कि प्रौद्योगिक शक्तियाँ संयुक्त परिवार को परिवर्तित कर रही है।

10. **एम. एस. गोरे** ने दिल्ली एवं हरियाणा के आस-पास के 499 अग्रवाल परिवारों का अध्ययन किया जो ग्रामों एवं शहरों में रहते थे। उनके अध्ययन के दो निष्कर्ष निकले-(*i*) अब भी लोगों का झुकाव संयुक्त परिवार के पक्ष में है; (*ii*) नगरीय प्रभाव एवं शिक्षा ने संयुक्त परिवार के स्वरूप को बदला है।

नोट

11. **बी. के. रामानुजम** का मत है कि वर्तमान में व्यक्तिगत और आर्थिक कारणों से एकाकी परिवारों की प्रवृत्ति बढ़ रही है। वे यह मानते हैं संरचना की दृष्टि से तो संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, किन्तु प्रकार्यात्मक दृष्टि से बने हुए हैं।

क्या आप जानते हैं रॉल्फ, देवानंद एवं थॉमस, बी. आर. अग्रवाल, योगेश अटल, ए. एम. शाह, गुडे, लेम्बार्ट, बी. जी. देसाई, ज्योतिर्मयी शर्मा, आर. के. मुखर्जी आदि अनेक समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों द्वारा संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तनों की पुष्टि की है।

टास्क संयुक्त परिवार से संबंधित अध्ययन का विश्लेषण करें।

29.2 संयुक्त परिवार की आधुनिक प्रवृत्तियाँ एवं परिवर्तन (Recent Tendencies and Changes in Joint Family)

परिवर्तन की विभिन्न शक्तियों के संघात के कारण भारतीय संयुक्त परिवार की संरचना एवं प्रकार्यों में अनेक परिवर्तन हुए हैं और कई नयी प्रवृत्तियाँ प्रकट हुई हैं। उनका यहाँ हम संक्षेप में उल्लेख करेंगे–

I. संयुक्त परिवार की संरचना में परिवर्तन (Changes in the Structure of Joint Family)

1. **आकार में परिवर्तन:** संयुक्त परिवार में तीन या अधिक पीढ़ियों के कई सदस्यों के साथ-साथ रहने से इनका आकार बड़ा होता था, किन्तु अब शिक्षा के प्रसार, परिवार-नियोजन एवं जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की इच्छा आदि के कारण छोटे-छोटे परिवार बनने लगे हैं जिनमें पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे होते हैं।

2. **कर्ता की सत्ता का ह्रास:** पहले परिवार के मुखिया का निर्णय ही महत्त्वपूर्ण था। नवीन शिक्षित पीढ़ी जो समानता एवं प्रजातंत्र के विचारों से ओत-प्रोत है, पिता की निरंकुश सत्ता को नहीं मानती, विवाह एवं व्यक्तिगत मामलों में वे अब अपना निर्णय स्वयं करने लगे हैं।

3. **स्त्रियों की शक्ति में वृद्धि:** स्त्री शिक्षा के कारण स्त्रियाँ घर की चारदीवारी से बाहर आयीं, वे नौकरी करने लगीं। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हुईं; नवीन कानूनों ने उन्हें पुरुषों के समान ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान किये; उनके पद एवं सम्मान में वृद्धि हुई तथा पुरुषों की सत्ता कम हुई। अब वे क्लबों में जाने लगीं, इससे परिवार के कार्यों में अन्तर आया।

4. **विवाह के रूप में परिवर्तन:** विवाह साथी चुनने में पहले माता-पिता एवं रिश्तेदारों का महत्त्वपूर्ण हाथ था, किन्तु अब लड़के एवं लड़की जीवन-साथी का चुनाव स्वयं करने लगे हैं। अब विवाह दो परिवारों के स्थान पर दो व्यक्तियों का मामला बन गया है। बाल-विवाह की समाप्ति, विधवा पुनर्विवाह, प्रेम-विवाह एवं विलम्ब विवाह के कारण परिवार का स्वरूप परिवर्तित हुआ है।

5. **अस्थायित्व:** वर्तमान समय में परिवारों में गतिशीलता एवं अस्थायित्व में वृद्धि हुई है। नौकरी एवं व्यवसाय के कारण लोग स्थान परिवर्तन करने लगे। इससे परिवार, पड़ोस एवं नातेदारी का नियंत्रण शिथिल हुआ तथा विवाह-विच्छेद को बढ़ावा मिला। यौन-संबंधी नवीन धारणाओं ने भी संयुक्त परिवार के महत्त्व को कम किया है।

6. पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन: संयुक्त परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों में शिथिलता आयी है। घनिष्ठता एवं आत्मीयता के स्थान पर वर्तमान में औपचारिकता पायी जाती है, पारिवारिक नियंत्रण कमज़ोर हुआ है, अब परिवार एक औपचारिक संगठन मात्र होता जा रहा है।

7. सामूहिकता के तत्वों में कमी: परंपरात्मक संयुक्त परिवार की एकता बनाये रखने के लिए सामूहिक निवास, सामूहिक सम्पत्ति, पूजा एवं सामूहिक भोजन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है, किन्तु वर्तमान में परिवार के सदस्यों द्वारा अलग-अलग स्थानों पर रहने के कारण सामूहिक पूजा एवं रसोई संभव नहीं है और सम्पत्ति का भी विभाजन होने लगा है। फलस्वरूप परिवार की सामूहिकता समाप्त हुई एवं एकाकी प्रवृत्ति प्रबल हुई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. स्त्री शिक्षा के कारण स्त्रियाँ घर की ········ से बाहर आयीं, वे नौकरी करने लगी।
2. विवाह साथी चुनने में माता-पिता एवं रिश्तेदारों का ········· हाथ था। किन्तु अब लड़की-लड़का खुद जीवन-साथी का चुनाव करने लगे हैं।
3. संयुक्त परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों में ········ आयी है।

II. संयुक्त परिवार के कार्यों में परिवर्तन (Changes in the Functions of the Joint Family)

1. शिक्षा एवं सांस्कृतिक कार्यों में परिवर्तन: पहले संयुक्त परिवार ही अपने सदस्यों को शिक्षा प्रदान करने, उसका समाजीकरण करने एवं उन्हें प्रथाओं, परंपराओं, रीति-रिवाजों, धर्म एवं संस्कृति से परिचित कराने का कार्य करता था, किन्तु अब यह कार्य शिक्षण एवं सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा किया जाने लगा है।

2. धार्मिक कार्यों में परिवर्तन: पहले संयुक्त परिवार सदस्यों के धार्मिक कार्यों की पूर्ति करता था। वह यज्ञ, हवन, पूजा, उपासना, व्रत एवं त्यौहार तथा धार्मिक उत्सवों के द्वारा धार्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करता था, किन्तु धर्म का महत्त्व घटने से परिवार के धार्मिक कार्यों में भी कमी आयी है।

3. आर्थिक कार्यों में परिवर्तन: संयुक्त परिवार उत्पादन एवं उपभोग की इकाई था। उसमें श्रम-विभाजन पाया जाता था। वह सदस्यों की सभी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था, किन्तु अब परिवार उपभोग करने वाली इकाई मात्र रह गया है। अब सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा आर्थिक सुरक्षा प्रदान की जाने लगी है।

4. मनोरंजन के कार्यों में परिवर्तन: पहले संयुक्त परिवार ही अपने सदस्यों को मनोरंजन प्रदान करता था, किन्तु अब सिनेमा, रेडियो, टेलीविजन, क्लब एवं व्यापारिक मनोरंजन की संस्थाओं ने यह कार्य अपने हाथ में ले लिया है।

परंपरात्मक संयुक्त परिवार संरचना एवं प्रकार्य दोनों ही दृष्टि से संयुक्त थे, किन्तु वर्तमान में संयुक्त परिवार में दोनों ही दृष्टि से परिवर्तन आये हैं। गोरे तथा देसाई का मत है कि वर्तमान में संरचनात्मक दृष्टि से संयुक्त परिवार घटे हैं, किन्तु प्रकार्यात्मक दृष्टि से अब भी संयुक्त परिवारों की संख्या कम नहीं हुई है।

29.3 संयुक्त परिवार का भविष्य (Future of Joint Family)

संयुक्त परिवार में होने वाले अनेक परिवर्तनों के कारण यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या संयुक्त परिवार भविष्य में समाप्त हो जाएँगे या उनका पूर्णत: विघटन हो जायेगा? इस बारे में दो मत पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है और वे भविष्य में समाप्त हो जाएँगे। दूसरी ओर आशावादियों का मत

नोट

है कि संयुक्त परिवारों का यह विघटन नहीं वरन् रूपान्तरण है, नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन की प्रक्रिया है। विघटन का समर्थन करने वालों का मत है कि संयुक्त परिवार का आकार छोटा होना, कर्ता की सत्ता में कमी, स्त्रियों के अधिकारों में वृद्धि, सम्पत्ति संबंधी सदस्यों को दिये गये अधिकार, पारिवारिक नियंत्रण की शिथिलता एवं उसके कार्यों में कमी आना, आदि विघटन के ही सूचक हैं। इन लोगों की मान्यता है कि भारत में ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण एवं नगरीकरण बढ़ेगा तथा यातायात के नवीन साधनों का विकास होगा त्यों-त्यों संयुक्त परिवार का विघटन होगा और एकाकी परिवारों में उसी प्रकार वृद्धि होगी जैसे यूरोप में हुई। दूसरी ओर आशावादियों का कहना है कि यह आवश्यक नहीं है कि औद्योगीकरण एवं परिवर्तनकारी शक्तियाँ भारत में भी यूरोप के समान प्रभाव पैदा करें। यहाँ परिवार का विघटन नहीं वरन् रूपान्तरण हो रहा है। **प्रो. कपाड़िया** का मत है कि आज भी संयुक्त परिवार अपने सदस्यों को पूर्ण रूप से सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। बाल-विवाह प्रथा के प्रचलन के कारण नव-विवाहित जोड़े का भरण-पोषण संयुक्त परिवार ही करता है। गाँवों में चिकित्सा संबंधी सुविधाओं के अभाव के कारण बीमारी व प्रसव के समय संयुक्त परिवार के सदस्य ही सेवा-सुश्रूषा करते हैं। इसके अतिरिक्त विधवा एवं परित्यक्ता बहनों एवं पुत्रियों का भरण-पोषण भी संयुक्त परिवार में होता है। पिछले कुछ वर्षों में बीमा, प्रॉविडेण्ट फण्ड, ग्रेच्युइटी, चिकित्सा, भरण एवं बोनस आदि के रूप में सामाजिक सुरक्षा के कुछ प्रयत्न हुए हैं, किन्तु यह लाभ उद्योगों एवं राजकीय सेवाओं में लगे लोगों तक ही सीमित है। करीब 70 प्रतिशत जनसंख्या जो कृषि पर निर्भर है एवं गाँवों में रहती है, उनके लिए तो संयुक्त परिवार ही सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। अत: संयुक्त परिवार का भविष्य गाँवों से बँधा है। कृषि व संयुक्त परिवार का भी घनिष्ठ संबंध है। परिवार विभाजन का अर्थ है कृषि योग्य भूमि का विभाजन। संयुक्त परिवार ही कृषि कार्य में अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता को पूरा करता है। **प्रो. कपाड़िया** ने संयुक्त परिवार का भविष्य दो बातों पर निर्भर बताया है। वे लिखते हैं कि आज परिवार के सामने आर्थिक एवं सैद्धान्तिक संकट है। आर्थिक संकट यह है कि शहर में कमाने वाला व्यक्ति गाँव में रहने वाले परिवारजनों के लिए बचा कर नहीं भेज सकता, इससे गाँव के परिवारजनों के साथ उसके संबंध तनावपूर्ण हो जाते हैं। सैद्धान्तिक संकट यह है कि नयी पीढ़ी परिवार की सत्ता के नियंत्रण में नहीं रहना चाहती। अब सास एवं बहू के मध्य संघर्ष गहरा हुआ है, सास बहू को प्राप्त नयी स्थिति एवं पति द्वारा उसके प्रति दिखायी जाने वाली सहानुभूति को सहन नहीं कर सकती। यदि परिवार इन संकटों को पार कर जाता है तो उसके टूटने के कोई नहीं हैं। **कपाड़िया** मानते हैं कि 'हिन्दू मनोवृत्तियाँ आज भी संयुक्त परिवार के पक्ष में हैं।' **डॉ. आर. एन. सक्सेना** ने भी संयुक्त परिवार द्वारा प्रदान किये जाने वाले आर्थिक एवं सामाजिक संरक्षण की पुष्टि की है। वे कहते हैं कि "वर्तमान संयुक्त परिवार का वास्तविक रूप एक परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में है न कि सम्मिलित निवास-स्थान, सम्पत्ति और रसोई में। यह निश्चय है कि आज संयुक्त परिवार विभाजन की संख्या बढ़ गयी है तथा प्रत्येक विभाजित संयुक्त परिवार कालान्तर में कई नये संयुक्त परिवारों को जन्म देता है।" **डॉ. इन्द्रदेव** का मत है कि संयुक्त परिवार टूटकर सीधे शुद्ध व्यक्तिगत परिवार नहीं बन रहे हैं वरन् वे जो रूप ले रहे हैं, उन्हें मध्यवर्ती प्रकार (intermediary types) कहा जा सकता है। आई.पी. ईसाई एवं अन्य समाजशास्त्रियों की मान्यता है कि नाभिक परिवार संयुक्त परिवार चक्र में एक अवस्था है। संयुक्त परिवार से पृथक् होने वाले निर्मायक भाग प्रारंभ में नाभिक परिवारों के रूप में होते हैं और कालान्तर में वे संयुक्त परिवार के रूप में विकसित हो जाते हैं।" **राम कृष्ण मुकर्जी** लिखते हैं, "भारतीय समाज में केन्द्रीय प्रवृत्ति संयुक्त परिवार को जारी रखने की है जबकि संयुक्त संरचनाओं की समानान्तर शाखाओं को तोड़ देने की और ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि समानान्तर प्रवृत्ति का स्थान निकट भविष्य में भी किसी अन्य के द्वारा लिया जा रहा है।"

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में संयुक्त परिवारों का भविष्य धुंधला नहीं है, यद्यपि समय के साथ-साथ इसमें अनेक परिवर्तन आये हैं जो इसके विघटन के नहीं वरन् रूपान्तरण के प्रतीक हैं।

अनादि काल से परिवार को समाज की आधारभूत इकाई माना जाता है। मानव समाज के लिए परिवार न केवल आवश्यक है, अपितु एक सुरक्षित एवं आदर्श संस्था भी है। विगत कुछ वर्षों में इस संस्था की जड़ें कुछ हिलने लगी

नोट

हैं। यह खतरा बढ़ता हुआ देखा सन् 1984 को संयुक्त राष्ट्रसंघ ने परिवार का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया था। यह तो एक फैशन ही बन गया है जिस चीज के लिए कोई खतरा महसूस होने लगता है तो उसका दिवस या वर्ष। भारतवर्ष में हिन्दी दिवस मनाने की आवश्यकता इसीलिए पड़ती है कहीं भारतीय यह भूल न जाएँ कि हिन्दी ही उनकी राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता रखती है।

आज के इस भौतिकवादी युग में प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी स्वार्थों में इतना उलझा है कि उसे दूसरों के बारे में सोचने की फुरसत नहीं और अगर वह दूसरे के बारे में सोचता है तो बड़े अहसान के साथ। सच तो यह है कि आज न तो सम्बन्धों का कोई अर्थ है न बँधे हुए परिवारों का। अधिकांशत: भारतीय छिटक-छिटक कर अपने परिवारों से बहुत दूर होते जा रहे हैं। अधिकांश आधुनिक परिवारों में रहने वाले लोग संयुक्त परिवार की ओर देखते तो हैं, जिसमें व्यक्ति का सुख-दुख न केवल उनके माता-पिता, दादा-दादी, भाई-बहन सभी मिलकर बाँटते थे और आज भी संयुक्त परिवारों में ऐसा ही होता है। संयुक्त परिवारों की अपनी ही विशेषताएँ हैं। संयुक्त परिवार में किसी भी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, क्षमताओं की अभिवृद्धि का पूरा अवसर होता है और सबसे बड़ी बात यह है कि बच्चों का सामाजिक विकास अत्यन्त स्वस्थ वातावरण में होता है, किन्तु औद्योगिक समाज के उदय व इससे सम्बन्धित आर्थिक गतिशील संरचना ने संयुक्त परिवार के आकार को अत्यन्त सीमित कर दिया है। संयुक्त परिवारों के टूटने का बहुत बड़ा कारण है कि परिवारों में कुछ लोगों की कम आयु है, इसलिए महिलाओं का घर से बाहर जाकर नौकरी करना पड़ता है। यह विषमताएँ परिवारों को तोड़ने के लिए काफी हैं। यदि माता-पिता भी उनके घर आते हैं तो वह अतिथि समझे जाते हैं। लेकिन अभी यह धागे पूरी तरह टूटे नहीं हैं क्योंकि काफी परिवारों में आँख की थोड़ी बहुत शर्म शेष है।

क्या आप जानते हैं आज का मनुष्य अत्यन्त स्वार्थी एवं अपने में सिमटकर रह गया है। आज परिवार का अर्थ है पति-पत्नी और बच्चे।

पिछले वर्षों में मानव समाज में तकनीकी एवं आर्थिक क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन मूल्य प्रभावित हुए हैं। एक ओर समाज में पहले से ही स्थापित मान्यता और दूसरी ओर आर्थिक प्रगति के चन्द आधुनिक स्वरूप का जाल जिसने रीति-रिवाजों और लोगों की अभिरुचि में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं किया है। यहाँ एक विरोधाभासी परिस्थिति है, जिसके कारण परिवार की इकाई का निरन्तर विखण्डन हो रहा है। अब संबंधों में वह मधुरता नहीं है। भाई को न तो भाई की याद, न ही बहन की याद आती है। माता-पिता के सामने विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। परिवर्तन समय की स्वाभाविक वृत्ति है। ऐसा कभी नहीं था कि परिवर्तन रुका, किन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस परिवर्तन ने जैसे सब कुछ छिन्न-भिन्न करके रख दिया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने एक लेख में भारतीय संस्कृति के संदर्भ में उदाहरण दिया है। वे कहते हैं कि यदि हम शान्त और सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें अपने वेदों के इस वाक्य को पुन: अपनाना है–**'तेन त्यक्तेन भुंजीथा'** अर्थात् त्याग के साथ भोग। अब पारिवारिक स्थिति में इस युक्ति का किस प्रकार उपयोग हो सकता है। वह एक उदाहरण से सिद्ध किया जाए। वे कहते हैं कि "मान लीजिए एक सम्मिलित परिवार है जिसका प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक सुख पहुँचा सके और इसीलिए वह पूरी शक्ति लगाकर उतना उपार्जन कर लेते हैं, जिससे अधिक उपार्जन करने की शक्ति परिवार में नहीं है। उसी परिवार का प्रत्येक व्यक्ति इस भावना से काम करता है कि उसको अपने सुख के लिए अधिक से अधिक उपार्जन करना चाहिए तो भी सब व्यक्तियों का सामूहिक उपार्जन उतना ही होगा, जितना कि प्रथमोक्ति स्थिति में, इस तरह सामूहिक सम्पत्ति दोनों स्थितियों में बराबर होगी और उसका बराबर बँटवारा कर दिया जाए तो प्रत्येक को बराबर ही सुख होगा। पर इन दोनों स्थितियों में बहुत बड़ा अन्तर यह पड़ जायेगा कि पहली स्थिति में संघर्ष का कोई भय नहीं, क्योंकि कोई केवल अपने लिए कुछ नहीं कर रहा है और दूसरे में संघर्ष अनिवार्य है। हम समझते हैं कि हमारी संस्कृति का तकाजा है कि पहली स्थिति में हम अपने को लाएँ। यदि संसार का संघर्ष, चाहे वह व्यक्ति व्यक्ति के बीच का हो चाहे देश देश के बीच का, वर्तमान रहेगा ही।"

शुरू-शुरू में उनके माता-पिता को बहुत अच्छा लगता है। गर्व से कहते हैं कि उनके बच्चे विदेश में काम कर रहे हैं या वहीं मकान बना लिया है, लेकिन कालान्तर में यही खुशी गम में बदलती जाती है। बच्चे तो अपने संसार में मस्त हो जाते हैं और बूढ़े माता-पिता उनका इन्तजार करते रहते हैं। महानगरों में बड़े-बूढ़ों की समस्या बहुत अधिक बढ़ गई है। धनी बूढ़े माता-पिता कोठियों में अकेले रहते हैं। उनके पास घर का कामकाज करने के लिए नौकर होते हैं और एक दिन वही नौकर उनकी हत्या करके घर लूटकर ले जाते हैं। आजकल बच्चों की मानसिकता भी बदल गई है। वे अपने माता-पिता या बड़ों की बात आँख मूँदकर सुनना पसंद नहीं करते। जब तक छोटे होते हैं, अशक्त होते हैं डरकर माता-पिता की बात मान लेते हैं, लेकिन जैसे ही वे आत्मनिर्भर बन जाते हैं बड़ों की बात मानना उनकी शान के खिलाफ हो जाता है। उनका अहं इतना बढ़ जाता है कि यदि बड़े कोई बात कहेंगे तो वे हर्गिज नहीं मानेंगे। इस प्रकार परिवारों में सहज मानवीय मूल्य कहीं खो गये हैं। दादी माँ की प्यारी कहानियों का नैतिक मूल्य कचरे के डिब्बे में दिखाई पड़ते हैं। अब यदि बड़े-बूढ़े घर में रहते हैं तो छोटे बच्चे की देखभाल मात्र को रह गये हैं।

नौकरी करने वाली स्त्रियाँ, जिनके छोटे-छोटे बच्चे हैं, वे अपने सहयोगियों से खुले आम यह कहती हैं कि जब तक बच्चे छोटे हैं सास-ससुर को साथ में रखना ही पड़ेगा। बच्चों के बड़े होते ही हम अलग हो जायेंगे। नैतिक मूल्यों का इतना भयंकर पतन भला परिवार की व्यवस्था को कैसे अर्थपूर्ण बना सकता है। आधुनिक युग स्वच्छन्दता जिज्ञासा का युग है। नितान्त वैयक्तिकता ही मात्र रह गया है। पहले परिवार के सदस्य एक साथ बैठकर बातें करते सुख-दुख बाँटते थे। अपने परिवार के उन लोगों के विषय में परस्पर बातचीत करते थे जो दूर थे, जिसका परिणाम होता था कि घर के बच्चे भी दूर रहने वाले अपने परिवारजन अप्रत्यक्ष रूप में ही परिचित हो जाते थे, वैसा अब कुछ नहीं रहा। ऐसा नहीं कि इस सबके लिए किसी के पास समय नहीं। कितनी ही व्यस्तता हो, जो समय निकालना चाहता है वह निकाल ही लेता है। सच यह है कि आज इस सबकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। पिछली पीढ़ी के लोग इस परिवर्तन को अत्यन्त व्यथा से एवं खामोशी से देखते हैं, लेकिन उसे अभिव्यक्ति का अधिकार नहीं है। शायद इसीलिए आज वृद्धों के लिए पश्चिमी देशों की भाँति भारत में स्थान-स्थान पर वृद्धाश्रम खोले जाते हैं। इन बिखरते हुए परिवारों का सबसे अधिक दुष्प्रभाव बच्चों पर पड़ रहा है और खामियाज़ा बूढ़ों को भुगतना पड़ता है।

नोट्स वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में भावना का कहीं कोई स्थान नहीं है और मजे की बात यह है कि वे भी अपने को बेहद भावुक और संवेदनशील भी कहते हैं, लेकिन वह सारी भावात्मकता व संवेदनशीलता अपने तक सीमित होकर रह गई है।

इस बदलते परिवेश में सभ्यता संस्कृति का पतन खामोशी से देखने सिवाय और चारा भी क्या है। अधिक से अधिक समस्याओं के लिए वाद-विवाद प्रतियोगिता है, कुछ समाज सेवी संस्थाएँ गोष्ठियाँ करती हैं, लेकिन इस समस्या का निराकरण व्यावहारिक रूप में सम्भव होता दिखाई नहीं देता। छोटे स्वयं को बड़ों के सामने अत्यधिक बुद्धिमान प्रमाणित करने का ही प्रयास करते हैं और बड़े खामोशी से मन ही मन मुस्कराते हुए उनके इस अहं को स्वीकार कर लेते हैं। संयुक्त परिवारों में बच्चों का सामाजिक विकास, बहुत अच्छा होता है। एकल परिवार बच्चों के स्वस्थ व्यक्तित्व विकास के लिए किसी तरह भी पूर्ण नहीं माने जा सकते, किन्तु समय की गति को रोकना मनुष्य के हाथ में शायद नहीं है। यह समस्या यहीं पर समाप्त नहीं होती, आश्चर्य तो यह है कि केवल पति-पत्नी एक-दूसरे के साथ खुश नहीं रह पाते।

29.4 सारांश (Summary)

- परिवार पर अपने प्रभाव में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन शहरी संस्कृति का प्रभुत्व है।
- आधुनिक परिवार में बच्चों का प्रजनन और पालन-पोषण अब परिवार की जगह मातृत्व सेवा-सदन तथा एंटे-नेटल क्लीनिक ने ले ली है।
- बीमार, बूढ़े और बेरोज़गार लोगों की देखभाल के रूप में परिवार जिन सुरक्षात्मक प्रकार्यों का निर्वाह पहले करता था उन्हें निबाहने की जिम्मेदारी अब अस्पताल, सेवा-सदनों आदि ने ले ली है।

29.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **नगरीय (Urban)**—नगर-निवास की विशिष्ट जीवन-शैली को नगरीय कहते हैं।
2. **संयुक्त परिवार में परिवर्तन**—संयुक्त परिवार में परिवर्तन लाने वाली तीन शाक्तियाँ हैं—

   1. आर्थिक शक्तियाँ 2. भावनात्मक शक्तियाँ 3. नये सामाजिक कानून।

29.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परिवार में परिवर्तन लाने वाले कारकों का वर्णन करें।
2. संयुक्त परिवार का भविष्य बताएँ।
3. आधुनिक शहरी परिवार में बच्चे तथा बूढ़ों की सुरक्षा में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. चारदिवारी 2. महत्त्वपूर्ण 3. शिथिलता।

29.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. भारत में विवाह एवं परिवार—के. एम. कपाड़िया।
2. परिवार का समाजशास्त्र—डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

नोट

इकाई–30: परिवार एवं विवाह के जनसांख्यिकीय अथवा जनांकिकीय आयाम (Demographic Dimensions of Family and Marriage)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
30.1 विषय-वस्तु (Subject-Matter)
30.2 जनसंख्या के सिद्धान्त (Theories of Population)
30.3 सारांश (Summary)
30.4 शब्दकोश (Keywords)
30.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
30.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- भारतीय समाज के परिवार एवं विवाह की संरचना की जानकारी।
- परिवार के अंदर सदस्यों की जीवन-प्रत्याशा, लिंग अनुपात, आयु-संरचना के बारे में जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक जनांकिकीय के अन्तर्गत जन्म-दर, मृत्यु-दर, आवास-प्रवास, लैंगिक संरचना, आयु संरचना, जनसंख्या का घनत्व एवं वितरण, जीवन-प्रत्याशा, जीवन-स्तर, जनसंख्या नियन्त्रण, आदि का अध्ययन किया जाता है।

यहाँ हमें इस बात को भी ध्यान में रखना है कि किसी भी देश की जनसंख्या के अध्ययन के लिए हमें उसके सामाजिक पक्षों को भी जानना होगा। यहीं पर समाजशास्त्र और जनांकिकी एक-दूसरे से सम्बन्धित हो जाते हैं और वे सामाजिक जनांकिकीय को जन्म देते हैं।

30.1 विषय-वस्तु (Subject-Matter)

किसी भी देश की जनसंख्या का घनत्व, बनावट और गुण उस देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। उसकी प्रगति को निर्धारित करने में यह महत्त्वपूर्ण कारक है। किसी भी देश की जनसंख्या वहाँ पर उपलब्ध साधनों की तुलना में सन्तुलित होनी चाहिए। अनियन्त्रित जनसंख्या वृद्धि जनसंख्या विस्फोट के लिए उत्तरदायी है। जनाधिक्य साम्राज्यवाद, गरीबी, बेरोज़गारी, अपराध, पारिवारिक कष्ट एवं विघटन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में जन्म देने के लिए उत्तरदायी हैं। देश के आर्थिक विकास की गति में बढ़ती जनसंख्या बाधक रही है। इसने योजनाबद्ध विकास की गति को धीमा किया है। पिछड़े राष्ट्रों में तो जनसंख्या वृद्धि ने कई गम्भीर समस्याओं को जन्म दिया है, जैसे श्रम शक्ति का बेकार होना, छात्र असन्तोष का बढ़ना तथा निर्धनता में वृद्धि होना, आदि।

नोट्स किसी भी देश के भविष्य निर्माण एवं उसे खुशहाल बनाने में वहाँ की जनसंख्या का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। जनसंख्या की कमी और अधिकता देश के उत्पादन, आवास प्रवास, गर्भ-निरोध, आर्थिक विकास, राजनीतिक सम्बन्ध नियोजित परिवर्तन, सरकार एवं समाज की नीति आदि को प्रभावित करते हैं।

30.2 जनसंख्या के सिद्धान्त (Theories of Population)

जनसंख्या की समस्या को हल करने में प्राचीनकाल से ही समाज-वैज्ञानिको एवं अर्थशास्त्रियों की रुचि रही है। किसी भी देश में कितनी जनसंख्या होनी चाहिए, जनसंख्या की वृद्धि किस गति से होती है, जनसंख्या वृद्धि को किस प्रकार रोका जा सकता है, आदि प्रश्नों को लेकर समय-समय पर अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। हम यहाँ जनसंख्या के कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

माल्थस का जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त (Population Theory of Malthus)

माल्थस ने 1798 में 'एन ऐसे ऑन प्रिन्सीपल्स ऑफ पापुलेशन' नामक पुस्तक में जनसंख्या सम्बन्धी अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। माल्थस एक पादरी थे और उन्होंने यूरोप के कई देशों की जनसंख्या वृद्धि का गहन अध्ययन किया। माल्थस के सिद्धान्त के तीन आधार हैं–

1. **जनसंख्या में वृद्धि दर**–आपका मत था कि जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितिक (Geometrical) क्रम से होती है अर्थात् उसका क्रम 1, 2, 4, 8, 16, 32, 64, के रूप में होता है। इस प्रकार से यदि कोई बाधा न हो तो किसी भी देश की जनसंख्या 25 वर्षों में दुगुनी हो जाती है।
2. **खाद्य-सामग्री के उत्पादन की दर**–माल्थस का मत है कि जनसंख्या वृद्धि दर की तुलना में खाद्य-सामग्री का उत्पादन बहुत धीमा है। खाद्य-सामग्री की वृद्धि **गणितीय अनुपात** अर्थात् 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, आदि के क्रम में होती है। इस प्रकार जितनी अवधि में एक देश की जनसंख्या 16 गुनी बढ़ेगी, उसी अवधि में खाद्य-सामग्री का उत्पादन केवल 5 गुना ही। तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या देश में भुखमरी, बेकारी, संघर्ष, युद्ध, अपराध एवं अनेक अन्य बुराइयों को जन्म देती है।

3. **जनसंख्या नियन्त्रण**–माल्थस के अनुसार बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित करने के दो उपाय हैं– (क) नैसर्गिक प्रतिबन्ध (Positive Check), (ख) निवारक या निरोधक प्रतिबन्ध (Preventive Check)।

(क) नैसर्गिक प्रतिबन्ध–इस प्रकार का प्रतिबन्ध प्रकृति द्वारा लगाया जाता है। इस प्रकार के प्रतिबन्ध में मृत्यु-दर बढ़ जाती है। जब किसी देश में खाद्य-सामग्री की तुलना में जनसंख्या अत्यधिक बढ़ जाती है तो प्रकृति उसे रोकने के लिए बाढ़, भूकम्प, प्लेग, महामारी, अकाल, अनावृष्टि, भुखमरी, प्राकृतिक प्रकोप एवं युद्ध आदि लाती है जिससे अतिरिक्त जनसंख्या नष्ट हो जाती है और वांछित मात्रा में जनसंख्या बनी रहती है।

(ख) निवारक या निरोधक प्रतिबन्ध–इसमें वे प्रतिबन्ध आते हैं जो बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए समाज स्वयं अपने पर लागू करता है। इसमें वे कृत्रिम उपाय आते हैं जिनसे तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की संख्या, आदि का उल्लेख करेंगे। साथ ही जनसंख्या वृद्धि के कारणों एवं राष्ट्रीय जनसंख्या नीति पर भी विचार करेंगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. नैसर्गिक प्रतिबंध ········ द्वारा लगाया जाता है।
2. जब किसी देश में ········ की तुलना में जनसंख्या बढ़ जाती है तो प्रकृति उसे रोकने के लिए बाढ़, भूकम्प, अनावृष्टि, युद्ध आदि लाती है।
3. ········ जो बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए समाज स्वयं अपने पर लागू करता है।

भारत में विभिन्न दशकों में हुई जनसंख्या वृद्धि को संलग्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है।

भारत में जनसंख्या

वर्ष	जनसंख्या (करोड़)	दस-वर्षीय वृद्धि दर %
1911	25.20	5.7
1921	25.13	–0.3
1931	27.89	11.0
1941	31.86	14.2
1951	36.10	11.2
1961	43.92	21.6
1971	54.81	24.8
1981	68.51	24.8
1991	84.63	23.5
2001	102.87	21.5
2011	121.01	17.6

तालिका से 1911 से 2011 तक की भारत की जनसंख्या वृद्धि के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है। 1911 से 1921 का समय भारत में जनसंख्या घटने का है क्योंकि इस समय महामारी, प्लेग, हैजा, आदि फैले जिन्होंने हजारों लोगों की जानें लीं। 1921 से जनसंख्या बढ़ोत्तरी का समय प्रारम्भ होता है। 1931 से 1941 तक जनसंख्या लगभग स्थिर रही, जबकि आगे की दशाब्दियों में वृद्धि दर ऊंची रही। 1931-41 की दशाब्दी एवं 1941-51 की दशाब्दी में महत्त्वपूर्ण भेद है। 1947 में भारत-विभाजन के कारण काफी मात्रा में लोग पाकिस्तान से भारत आए, जबकि पहले वाले जनसंख्या आंकड़ों में भारत व पाकिस्तान एक ही थे। 1961 में भारत की जनसंख्या 43.92 करोड़ थी, जो 1971 में 54.81 करोड़ तथा 1981 में 68.51 करोड़ हो गई। 1991 में यह 84.63 करोड़ थी। 2001 की जनगणनानुसार जनसंख्या 102.87 करोड़ है और 2011 की जनगणनानुसार जनसंख्या 121.01 करोड़ है।

2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या में 16.49% भाग उत्तर प्रदेश का, 8.07% भाग बिहार का, 9.42% महाराष्ट्र का, 7.81% भाग पश्चिम बंगाल का, 5.49% भाग राजस्थान का, तथा 5.87% भाग मध्य प्रदेश का है। इस प्रकार से ये प्रान्त देश की 54.85% प्रतिशत जनसंख्या का निर्माण करते हैं।

भारतीय जनसंख्या से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं–(*i*) भारत में प्रतिवर्ष लगभग 1.8 करोड़ जनसंख्या बढ़ती है जो ऑस्ट्रेलिया की जनसंख्या के लगभग बराबर है। (*ii*) भारत में विश्व की लगभग 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इस प्रकार से हर 100 व्यक्तियों में 16 व्यक्ति भारतीय हैं, अर्थात् विश्व का हर सातवां व्यक्ति भारतीय है, (*iii*) भारत में वर्तमान में प्रति हजार पर जन्म-दर 22.5 और मृत्यु-दर 7.3 है। (*iv*) 2011 की जनगणना के अनुसार देश में 62.37 करोड़ पुरुष तथा 58.64 करोड़ स्त्रियां हैं। इस प्रकार भारत में 1,000 पुरुषों के पीछे 940 स्त्रियां हैं। (*v*) 2011 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता का प्रतिशत 74.04 है, (*vi*) देश की 27.8% प्रतिशत जनसंख्या नगरों में तथा 72.2% प्रतिशत गांवों में निवास करती है।

जन्म-दर तथा मृत्यु-दर (Birth-rate and Death-rate)

(*i*) **जन्म-दर**–भारत में अन्य देशों की तुलना में जन्म-दर अधिक है। जन्म-दर और मृत्यु-दर के आंकड़ों में पंजीकृत और अनुमानित आधारों पर अन्तर पाया जाता है, क्योंकि देश में सभी जन्म लेने और मरने वालों के नाम पंजीकृत नहीं कराए जाते। विभिन्न दशकों में भारत में अनुमानित जन्म-दर तालिकानुसार थी–

दशक	जन्म-दर प्रति हजार
1921-30	46.4
1931-40	35.2
1941-50	39.3
1951-60	41.7
1961-70	41.1
1971-80	33.6
1981-90	29.9
2006-07	23.1
2009	22.5

भारत में 2009 में जन्म-दर 22.5 व्यक्ति प्रति हजार प्रति वर्ष थी जो कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में चीन को छोड़कर सर्वाधिक है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में भी जन्म-दर में भिन्नता है। शहरों की तुलना में गाँव में जन्म-दर

नोट

अधिक है। यह भिन्नता प्रान्तीय आधार पर भी देखी जा सकती है, सबसे अधिक जन्म-दर असम की है और सबसे कम तमिलनाडु की।

किसी भी देश की जन्म-दर को प्रभावित करने में वहां की सामाजिक दशाओं, मृत्यु-दर, भ्रूण-हत्या, बांझपन, वैयक्तिक स्वतन्त्रता, उत्पादन का विकास, स्वास्थ्य की दशाएं, महत्त्वाकांक्षाएं, आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। भारत में ऊंची जन्म-दर के अनेक कारण हैं; जैसे गर्म जलवायु, बाल-विवाह का प्रचलन, मनोरंजन के साधनों का अभाव, संयुक्त परिवार प्रणाली, विवाह की अनियवार्यता, चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि, भाग्यवादिता, आदि। भारत में जन्म दर को प्रभावित करने में शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, ग्रामीण और शहरी निवास, जाति, आदि कारकों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

(*ii*) **मृत्यु-दर**–जन्म-दर की ही भाँति मृत्यु-दर के पंजीकृत और अनुमानित आंकड़ों में भी भिन्नता पायी जाती है। विभिन्न दशकों में प्रति हजार व्यक्तियों पर भारत में मृत्यु-दर निम्न प्रकार थी–

दशक	मृत्यु-दर प्रति हजार
1921-30	36.3
1931-40	31.2
1941-50	27.4
1951-60	28.8
1961-70	18.9
1971-80	11.9
1981-90	9.6
2006-07	7.4
2009	7.3

जन्म-दर की तरह मृत्यु-दर भी भारत में अन्य देशों की तुलना में अधिक है क्योंकि यहाँ स्वास्थ्य का स्तर और जीवन-स्तर निम्न है, पौष्टिक आहार की कमी है तथा चिकित्सा सुविधाओं का अभाव है। इनके अतिरिक्त, यहाँ गरीबी और महामारी का प्रकोप भी रहा है। 1921 से पहले तीन दशकों में अकाल, प्लेग और इन्फ्लूएन्जा, आदि के कारण मृत्यु-दर अधिक थी। 1921 के बाद से प्रत्येक दशक में मृत्यु-दर कम हुई है। 1991 में यह 9.6 व्यक्ति प्रति हजार प्रति वर्ष थी। 2009 जनसंख्या के अनुसार मृत्यु-दर 7.3 व्यक्ति प्रति हजार है। सबसे अधिक मृत्यु-दर चार वर्ष तक की आयु के बच्चों में पायी जाती है। आयु की दृष्टि से उस मृत्यु-दर को अच्छा माना जाता है जो बचपन और युवावस्था में कम तथा वृद्धावस्था में अधिक हो। भारत में अधिक मृत्यु-दर के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं; जैसे, गरीबी, प्राकृतिक प्रकोप (भूकम्प, बाढ़, अकाल), संक्रामक रोग, औद्योगिक गन्दी बस्तियाँ एवं चिकित्सा सुविधाओं का अभाव आदि।

जनघनत्व (Density of Population)—जनघनत्व का तात्पर्य है कि एक किलोमीटर क्षेत्र में कितने व्यक्ति निवास करते हैं। जनघनत्व निकालने के लिए देश के कुल भू-भाग का देश की कुल जनसंख्या में भाग दिया जाता है। 1901 में भारत का जनघनत्व 77 व्यक्ति, 1961 में 173, 1981 में 230 तथा 2011 में 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था। देश में वर्तमान में सर्वाधिक जनघनत्व दिल्ली का 11,207 तथा चण्डीगढ़ का 9252 है। प्रान्तों में पश्चिम बंगाल का जनघनत्व 1029, केरल का 859, बिहार का 1102, उत्तर प्रदेश का 828 तथा हरियाणा का 573 है। प्रान्तों में सबसे कम जनघनत्व अरुणाचल प्रदेश का केवल 17 व्यक्ति है। मिजोरम का 52, नागालैण्ड का 119

नोट

सिक्किम का 86 एवं मणिपुर का 122 है। इस प्रकार जनघनत्व की दृष्टि से भारत में विभिन्न प्रान्तों में अनेक विषमताएँ विद्यमान हैं।

प्रत्याशित आयु (Life Expectancy)

प्रत्याशित आयु का तात्पर्य है जीवित रहने की आयु जिसकी देश के निवासी व्यक्ति के जन्म के समय आशा कर सकते हैं। 1941 में भारत के लोगों की औसत आयु 24 वर्ष थी, जो 1951 में 32.1 से बढ़कर 2007 में 63.5 वर्ष हो गयी। शिक्षा, चिकित्सा एवं रहन-सहन के स्तर में वृद्धि के कारण भारत की औसत आयु में वृद्धि हुई है।

आयु रचना (Age Structure)

किसी भी देश की जनसंख्या में आयु संरचना के आधार पर महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जा सकती है; जैसे, स्कूल जाने वाली जनसंख्या, श्रम करने वाले लोग तथा मतदाताओं की जनसंख्या, आदि। 2001 की जनगणना के अनुसार 14 वर्ष तक के बच्चों का प्रतिशत 41 है। यह प्रतिशत यह बताता है कि इस देश में दूसरों पर आश्रितों की संख्या अधिक है। 60 वर्ष या इससे अधिक आयु के लोगों का प्रतिशत 7.28 है। इस प्रकार लगभग 44.5% जनसंख्या देश में बच्चों व बूढ़ों की है तथा शेष 62.45% की आयु 15 से 59 के बीच की है। देश में **कार्यशील जनसंख्या** 39% है।

क्या आप जानते हैं देश में आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने और खुशहाली लाने की दृष्टि से आवश्यक है कि कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत बढ़ाया जाए।

लिंग अनुपात (Sex Ratio)

किसी भी देश की जनसंख्या में लिंग अनुपात या स्त्री-पुरुष अनुपात का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व पाया जाता है कि वह विवाह की दर, बच्चों की जन्म तथा मृत्यु-दर को प्रभावित करती है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश में पुरुषों की संख्या 62.37 करोड़ एवं स्त्रियों की संख्या 58.64 करोड़ है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ 1,000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 940 है, जबकि 2001 में लिंग अनुपात 933 था। केरल में 1,000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 1084 है जो राज्यों में सर्वाधिक है। राज्यों में सबसे कम लिंग अनुपात हरियाणा का 1,000 पुरुषों के पीछे 877 स्त्रियाँ हैं। जम्मू एवं कश्मीर में 1,000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 883, सिक्किम में 889, पंजाब में 893 एवं उत्तर प्रदेश में 908 है। ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में भी लिंग अनुपात में अन्तर पाया जाता है। नगरीय क्षेत्रों में लिंग अनुपात 859 तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 952 है। भारत में स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण है पुरुष शिशुओं का अधिक जन्म लेना, बाल्यावस्था में लड़कियों की उचित देखभाल न होना तथा बाल-विवाह के कारण शीघ्र माँ बनने से प्रसव-काल में स्त्रियों की अधिक मृत्यु होना, आदि।

धर्म (Religion)

भारत के निवासी विभिन्न धर्मों के अनुयायी हैं। भारतीय समाज में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, सिक्ख, बौद्ध, पारसी, आदि धर्मों को मानने वाले लोग पाए जाते हैं। यहाँ विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों का प्रतिशत 2001 की जनगणना के अनुसार इस प्रकार है–

हिन्दू 82.75 प्रतिशत, मुसलमान 13.81 प्रतिशत, ईसाई 2.40 प्रतिशत, सिक्ख 1.92 प्रतिशत, बौद्ध 0.79 प्रतिशत, जैन 0.42 तथा अन्य 0.66 प्रतिशत।

भाषा (Language)

भारत विभिन्न भाषा-भाषी लोगों का देश है। यहाँ 1,652 भाषाएं एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। यहाँ भाषाओं को प्रमुखत: दो भागों में बाँटा जा सकता है: **प्रथम, द्रविड़ भाषाएँ;** जैसे तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, आदि; **द्वितीय, इण्डोआर्यन भाषाएं,** जैसे संस्कृत, हिन्दी, मागधी मराठी, राजस्थानी, पंजाबी तथा उड़िया, आदि। वर्तमान में भारतीय संविधान में 22 भाषाओं को मान्यता दी गयी है जिनमें से प्रत्येक की अपनी एक लिपि है। इनमें हिन्दी का सर्वप्रथम स्थान है। इन 22 भाषाओं के अतिरिक्त मालवी, भोजपुरी मारवाड़ी एवं पहाड़ी भाषाएं भी महत्त्वपूर्ण हैं जिनका प्रयोग काफी लोग करते हैं।

भाषा के आधार पर भारत की जनसंख्या

भाषा	बोलने वालों का प्रतिशत
हिन्दी	39.85
बांग्ला (बंगाली)	8.22
तेलुगू	7.80
मराठी	7.38
तमिल	6.26
उर्दू	5.13
गुजराती	4.81
कन्नड़	3.87
मलयालम	3.59
उड़िया	3.32
पंजाबी	2.76
असमी	1.55
सिंधी	0.25
नेपाली	0.25
कोंकणी	0.21
मणिपुरी	0.15
कश्मीरी	0.01
संस्कृत	0.01
अन्य	4.58

साक्षरता (Literacy)

जिस देश में साक्षरता का प्रतिशत जितना अधिक होगा, वह देश विकास की दिशा में उतना ही तेजी से आगे बढ़ेगा। भारत में साक्षरता की दृष्टि से स्थिति सन्तोषजनक नहीं है, यद्यपि यहाँ साक्षरता के प्रतिशत में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

वर्ष	साक्षरता प्रतिशत
1951	16.7
1961	24.0
1971	29.5
1981	36.2
1991	52.21
2001	64.8
2011	74.04

स्पष्ट है कि पिछले 50 वर्षों में भारत में साक्षरता दर में काफी वृद्धि हुई। 1991 में 22.42 करोड़ पुरुष तथा 12.77 करोड़ स्त्रियाँ साक्षर थीं। 2001 में 33.65 करोड़ पुरुष तथा 22.41% करोड़ स्त्रियाँ साक्षर थीं। 2011 में पुरुष साक्षरता 82.14% तथा महिला साक्षरता 65.46% है।

देश में सर्वाधिक साक्षरता 93.91% केरल में पायी जाती है। साक्षरता का प्रतिशत मिजोरम में 91.58, त्रिपुरा में 87.75, गोवा में 87.40 एवं हिमाचल प्रदेश में 83.78 है। बिहार में शिक्षा का प्रतिशत सबसे कम है। देश में 1951 में साक्षरता का प्रतिशत 16.7, 1961 में 24, 1971 में 29.5, 1981 में 36.2, 1991 में 52.21, 2001 में यह प्रतिशत 64.8 एवं 2011 में 74.04 हो गया। नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों तथा स्त्रियों एवं पुरुषों में साक्षरता अनुपात में अन्तर पाया जाता है। नगरों में ग्रामीण पुरुषों एवं स्त्रियों की तुलना में अधिक साक्षरता पायी जाती है।

ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या (Rural and Urban Population)

वर्तमान में 4 व्यक्तियों में से एक व्यक्ति नगर में रहता है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में 27.8 प्रतिशत व्यक्ति नगरों में तथा 72.2 प्रतिशत गांवों में निवास करते हैं। सन् 1921 से सन् 2001 तक की ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या निम्नांकित तालिका द्वारा दर्शायी जा रही है।

वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या (प्रतिशत)	नगरीय जनसंख्या (प्रतिशत)
1921	88.8	11.3
1931	88.0	12.0
1941	86.1	13.9
1951	82.7	17.3
1961	82.0	18.0
1971	80.1	19.9
1981	76.3	23.7
1991	74.3	25.7
2001	72.2	27.8

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में नगरीकरण में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1971-81 के दशक में नगरीकरण की वार्षिक वृद्धि दर 3.83 प्रतिशत थी जो 1981-91 में घटकर 3.09 प्रतिशत रह गई। 1991-2001 के दशक में

नोट

नगरीकरण का प्रतिशत 2.83 है। **भारत का सबसे बड़ा नगर मुम्बई है** जिसकी जनसंख्या 1.26 करोड़ है। कोलकाता दूसरे नम्बर पर है, जिसकी जनसंख्या 1.02 करोड़ है, तीसरा स्थान दिल्ली का (93.2 लाख) व चौथा स्थान मद्रास का (43.4 लाख) है। 2001 की जनगणना के अनुसार पूरे देश में 5,161 शहर एवं कस्बे हैं जिनकी कुल आबादी 26.8 करोड़ है। जनगणना विभाग 5 हजार से अधिक आबादी वाले स्थानों को नगरों में गिनता है एवं इससे कम को गाँव मानता है। 10 लाख से अधिक आबादी वाले नगर 1981 में 12, 1991 में 23 थे जो 2001 में 35 हो गए हैं।

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की जनसंख्या (Population of Scheduled Castes and Tribes)

2001 की जनगणना के अनुसार देश में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 16.65 करोड़ तथा अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 8.35 करोड़ है। इसका तात्पर्य है कि देश की कुल जनसंख्या का 24.46 प्रतिशत से भी कुछ अधिक भाग अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों से निर्मित है। अनुसूचित जातियों की सर्वाधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश में (3.51 करोड़) तथा उसके बाद पश्चिम बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, आन्ध्र, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान की है। सर्वाधिक जनजातीय जनसंख्या मध्य प्रदेश (1.22 करोड़) में है। हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब तथा केन्द्रशासित प्रदेश चण्डीगढ़ एवं दिल्ली में कोई जनजातियाँ नहीं हैं।

भारत में जन-विस्फोट (Population Explosion in India)

हमने भारत की जनसंख्या-वृद्धि के विभिन्न दशकों के आंकड़ों का अवलोकन किया। साथ ही यहाँ की जन्म-दर, मृत्यु-दर एवं आवास-प्रवास के तथ्यों का विश्लेषण भी किया। ये सारे तथ्य इस बात के द्योतक हैं कि भारत में प्रतिवर्ष जनसंख्या-वृद्धि बड़ी तेजी से हो रही है जिसने हमारे आर्थिक विकास, प्रशासन, सामाजिक कल्याण, आदि को प्रभावित किया है। भारत आज विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से दूसरे नम्बर का देश है।

नोट्स बढ़ती जनसंख्या ने हमारे यहाँ बेकारी और गरीबी में वृद्धि की है। इसलिए कहा जाता है कि भारत में जन-विस्फोट हो रहा है और यदि इसे समय रहते नियन्त्रित नहीं किया गया तो इसके भयंकर परिणाम होंगे।

भारत में अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि (जन विस्फोट) के लिए उत्तरदायी कारण–

1. **गर्म जलवायु–**गर्म जलवायु के कारण यहाँ लड़कियों में शीघ्र ही परिपक्वता आ जाती है और वे कम उम्र में ही सन्तान पैदा करने के योग्य हो जाती हैं। प्रजनन की प्रक्रिया के लम्बी अवधि तक चलते रहने के कारण अधिक सन्तानें जन्म लेती हैं।
2. **बाल विवाह–**बाल विवाह प्रथा के कारण छोटे-छोटे बच्चों का विवाह करवा दिया जाता है, अत: स्त्रियों के उत्पादन काल (15 से 35 वर्ष की आयु) का पूरा-पूरा उपयोग होता है। इस कारण से भी अधिक संख्या में सन्तानें जन्म लेती हैं।
3. **मनोरंजन के साधनों का अभाव–**मनोरंजन के साधनों का अभाव होने के कारण निम्न वर्ग के लोगों और ग्रामीणों में स्त्री ही मनोरंजन का साधन समझी जाती है।
4. **संयुक्त परिवार प्रणाली–**संयुक्त परिवार प्रथा के प्रचलन के कारण परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति अपने बेटों और पौत्रों का विवाह अपने सामने की सन्पन्न होते देखना चाहते हैं। ऐसे परिवारों में बच्चों के लालन-पालन

में भी कोई कठिनाई नहीं होती। साथ ही बड़ा कुटुम्ब समाज में सत्ता, शक्ति एवं प्रतिष्ठा का भी सूचक माना जाता रहा है।

5. **अशिक्षा**—शिक्षा के अभाव के कारण लोग जनसंख्या वृद्धि के परिणामों को नहीं समझते और अबाध गति से सन्तानों को जन्म देते हैं।
6. **निम्न जीवन स्तर**—निम्न जीवन-स्तर के कारण लोग यह सोचते हैं कि अधिक सन्तान होंगी तो वे भी उत्पादन कार्य में लग कर अधिक धन अर्जित करेंगे और जीवन-स्तर को उन्नत कर सकेंगे। साथ ही यहाँ निम्न जीवन-स्तर के कारण सन्तानों की शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण और ऐशों-आराम के लिए अधिक खर्च नहीं करना पड़ता है। अत: यदि परिवारों में सन्तानों की संख्या बढ़ती भी है तो किसी को कोई कष्ट नहीं होता।
7. **परिवार नियोजन के साधनों की जानकारी का अभाव**—परिवार नियोजन के साधनों के प्रति पूर्ण जानकारी का अभाव एवं अरुचि भी जनसंख्या-वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।
8. **विवाह की अनिवार्यता**—विवाह की अनिवार्यता के कारण प्रत्येक भारतीय को अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए विवाह करना होता है। विवाह भारत में एक धार्मिक संस्कार है और मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य भी। अत: जब विवाह होगा तो उसका आवश्यक परिणाम सन्तानोत्पत्ति होगी परन्तु विदशों में विवाह करना बहुत कुछ व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है।
9. **पुत्र प्राप्ति को अधिक महत्त्व**—पुत्र को अधिक महत्त्व देने के कारण तब तक सन्तानोत्पत्ति होती रहती है जब तक कि कोई पुत्र न हो जाए। धर्मशास्त्रों में मोक्ष प्राप्ति के लिए पुत्र की उत्पत्ति को आवश्यक माना गया है।
10. **चिकित्सा सुविधाएँ**—चिकित्सा की सुविधाओं के कारण भारत में मृत्यु-दर घटी है और जन्म-दर बढ़ी है।
11. **पश्चिम का प्रभाव**—पाश्चात्य मूल्यों के बढ़ते प्रभाव के कारण स्त्री-पुरुषों में सहवास की स्वतन्त्रता बढ़ी है।
12. **चलचित्रों, अश्लील साहित्य, तड़क-भड़क एवं चुस्त पोशाक** आदि ने यौन उत्तेजना पैदा की है।
13. **भाग्यवादी**—भाग्यवादी होने के कारण भारतीय यह समझते हैं कि सन्तान ईश्वर की देन है और जिसने जन्म दिया है खाने को भी वही देगा। साथ ही वे जन्म-दर नियन्त्रण को पाप मानते हैं। इस्लाम धर्म में भी जन्म को अच्छा माना गया है। बाइबिल में भी अधिक जन्म को स्वीकार करते हुए लिखा है कि वृद्धि करो और पृथ्वी को लोगों से भर दो।
14. **जनहानि में कमी**—युद्धों और शान्तिकाल में कुछ अपवादों को छोड़कर भारत में जनसंख्या की हानि बहुत कम हुई हैं। डॉ. चन्द्रशेखर का मत है कि पिछली पांच दशाब्दियों में भारत में कुछ अपवादों को छोड़कर मानव क्षति कम हुई है।
15. **शरणार्थियों का आगमन**—भारत में जनसंख्या वृद्धि का एक कारण पड़ोसी देशों से शरणार्थियों का आना भी है।

जनाधिक्य के प्रभाव

1. **जनाधिक्य और आर्थिक विकास—प्रो. कोलिन क्लार्क** जनसंख्या-वृद्धि को देश को आर्थिक विकास के लिए हानिकारक मानते हैं क्योंकि बचत का अधिकांश भाग जनसंख्या पर खर्च होने से शुद्ध राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय बहुत ही कम रह जाती है।

नोट

2. **जनसंख्या वृद्धि और पूंजी निर्माण**–जनसंख्या-वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति प्राकृतिक साधनों में भी कमी हो जाती है और उत्पादकता गिरती है। ऐसी परिस्थिति में पूंजी निर्माण का कार्य एक समस्या बन जाती है।
3. **जनसंख्या वृद्धि और खाद्य समस्या**–जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने पर पिछड़े एवं विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या की मांग के अनुरूप पूर्ति नहीं हो पाती। अतः वहाँ भुखमरी की समस्या पैदा होती है और विदेशों से अनाज मंगाना पड़ता है।
4. **जनसंख्या एवं मूल्य वृद्धि**–जनसंख्या के बढ़ने से वस्तुओं की प्रभावपूर्ण मांग में भी वृद्धि हो जाती है किन्तु उसी मात्रा में पूर्ति न होने पर वस्तुओं की कीमतें बढ़ जाती हैं।
5. **जनसंख्या-वृद्धि और शिक्षा**–जनसंख्या-वृद्धि के साथ-साथ पिछड़े राष्ट्रों में निरक्षरों की संख्या बढ़ने की सम्भावना रहती है।
6. **जनसंख्या-वृद्धि और आवास-समस्या**–जनसंख्या-वृद्धि होने पर लोगों को बसाने और उनके लिए स्वास्थ्यप्रद मकानों की व्यवस्था करने की समस्या पैदा होती है।
7. **जनसंख्या-वृद्धि और बेकारी**–बढ़ती जनसंख्या किसी देश में बेकारी, अर्द्ध-बेकारी एवं छिपी बेकारी को जन्म देती है।
8. **जनसंख्या-वृद्धि एवं जीवन-स्तर**–परिवार में जनसंख्या बढ़ने पर सीमित आय को ही सभी सदस्यों पर खर्च करना होता है। ऐसी स्थिति में सदस्यों के लिए भोजन, वस्त्र, शिक्षा, मनोरंजन, खेल-कूद आदि की सुविधाएँ समुचित रूप से नहीं जुटाई जा सकती। अतः जनसंख्या की अधिकता निम्न जीवन-स्तर के लिए उत्तरदायी है।
9. **जनसंख्या वृद्धि और गरीबी**–किसी देश में आवश्यकता से अधिक मात्रा में जनसंख्या में वृद्धि होने पर गरीबी बढ़ती है। प्रत्येक देश में प्राकृतिक साधन एवं भूमि सीमित मात्रा में होते हैं जिनका उपयोग अधिक जनसंख्या के लिए करने पर प्रति व्यक्ति साधनों की उपलब्धि कम हो जाती है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय पर भी पड़ता है। फलतः देश में सामान्य गरीबी बनी रहती है।
10. **जनसंख्या वृद्धि और अपराध**–जब किसी देश में जनसंख्या वृद्धि तीव्र गति से होती है तो सभी के भरण-पोषण के लिए साधन जुटा पाना सम्भव नहीं होता। ऐसी दशा में देश में गरीबी, बेकारी और अपराध बढ़ते हैं।
11. **जनसंख्या-वृद्धि एवं परिवार का विघटन**–परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ने पर नियन्त्रण की भी समस्या पैदा हो जाती है। माता-पिता परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण की व्यवस्था के लिए घर से बाहर जीविका कमाने चले जाते हैं तो बच्चे नियन्त्रण के अभाव में मनमानी करने लगते हैं। उनमें उच्छृंखलता पनपती है, पारिवारिक मूल्यों की अवहेलना की जाती है, सदस्यों में निराशा पैदा होती है और सत्ता की उपेक्षा होने लगती है। ये सभी परिस्थितियाँ परिवार में विघटन के लिए उत्तरदायी हैं।
12. **जनसंख्या-वृद्धि और नागरिक समस्याएँ**–जनसंख्या-वृद्धि औद्योगीकरण और नगरीकरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को जन्म देती है। लोग गांव छोड़कर शहरों की ओर आने लगते हैं। परिणामस्वरूप उद्योगों एवं नगरों द्वारा जनित सामाजिक समस्याएँ पनपती हैं।
13. **जनसंख्या-वृद्धि और राजनीति**–जनसंख्या-वृद्धि युद्ध, साम्राज्यवाद, क्रान्ति, पूंजीवाद, आदि के लिए भी उत्तरदायी है। अधिक जनसंख्या प्रशासकों के सामने प्रशासनिक समस्याएँ पैदा कर देती है।

टास्क जनाधिक्य के कारण पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करो।

30.3 सारांश (Summary)

- समाजिक जनांकिकी के अंतर्गत जन्म-दर, मृत्यु-दर, आयु संरचना, विवाह की स्थिति, लैंगिक संरचना आदि का अध्ययन किया जाता है।
- माल्थस के सिद्धांत के तीन आधार हैं—जनसंख्या में वृद्धि-दर, खाद्य सामग्री के उत्पादन की दर, जनसंख्या नियंत्रण।
- भारत में प्रतिवर्ष 1.8 करोड़ जनसंख्या बढ़ती है जो ऑस्ट्रेलिया की जनसंख्या के लगभग बराबर है।
- वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, देश की कुल जनसंख्या लगभग 121.01 करोड़ है, जिसमें 62.37 करोड़ (51.53%) पुरुष एवं 58.64 करोड़ (48.46%) महिलाएं है।
- 2011 की जनगणनानुसार, लिंगानुपात 940 प्रति हजार एवं साक्षरता 74.04 प्रतिशत है।

30.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **जनांकिकी (Demography)—**जनांकिकी जनसंख्या का विज्ञान है जो जन्म, विवाह, मृत्यु एवं प्रवासिता के सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा जनसंख्या की दशा, दर एवं गतिशीलता का अध्ययन करता है।
2. **भारत में जन-विस्फोटक (Population Explosion in India)—**भारत में प्रतिवर्ष जनसंख्या-वृद्धि बड़ी तेजी से हो रही है जिसने हमारे आर्थिक विकास, प्रशासन, सामाजिक कल्याण, आदि को प्रभावित किया है।

30.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. भारत में परिवार एवं विवाह की जनसांख्यिकीय संरचना के बारे में बताएँ।
2. भारत में जन-विस्फोट के कारणों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. प्रकृति 2. खाद्य-सामग्री 3. निरोधक प्रतिबंध।

30.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. मानव समाज—किंग्सले डेविस।
2. परिवार का समाजशास्त्र—डा. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
3. भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी—शोभिता जैन, रावत पब्लिकेशन।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in